GOVERNMENT OF INDIA

ARCHÆOLOGICAL SURVEY OF INDIA

CENTRAL
ARCHÆOLOGICAL
LIBRARY

ACCESSION NO. 1696

CALL No. 954.09204/Neh

D.G.A. 79

स्वाधीनता और उसके बाद

जवाहरलाल नेहरू

के

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाषणों का संकलन

(सितम्बर १९४६ से मई १९४९ तक)

1696

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY
New Delhi

954.09204
Neh

पब्लिकेशन्स डिवीज़न

सूचना तथा प्रसार मंत्रालय

भारत सरकार

जनवरी, १९५४

मूल्य ५)

CEN... ...OLOGICAL
LIBRARY, NEW DELHI.
Acc. No. 1696
Date 25-6-54
Call No. ~~[illegible]~~
954.09204
Neh

मुद्रक—बी० पी० ठाकुर, लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्रस्तावना

ये सब संगृहीत भाषण, केवल चार के अतिरिक्त, भारत द्वारा स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद डेढ़ वर्ष से कुछ अधिक अवधि में दिये गए थे। इनका संकलन विषय-क्रम तथा समय-क्रम के अनुसार किया गया है। माननीय प्रधान मंत्री की अभिरुचि की व्यापकता के कारण केवल प्रत्येक विभाग ही अधिक विस्तृत नहीं हो गया है, वरन् वह विभाग भी, जिसे 'प्रकीर्ण प्रकरण' कहा गया है। इस कारण किसी एक सिद्धान्त के आधार पर इन भाषणों का चुनाव निर्धारित नहीं है। इनमें से कुछेक भाषण, विशेषतः काश्मीर संबंधी भाषण, संबंधित ऐतिहासिक वर्णन प्रस्तुत करते हैं दूसरे भाषणों में नीति के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार किया गया है, और कुछेक भाषणों में भावनाओं का संचार है, जो राष्ट्र को अत्यधिक उद्योग करने के लिये अनुप्रेरित करती हैं। दूसरी ओर, व्याख्याता के अनुपम व्यक्तित्व ने उन्हें एक आधारभूत एकता प्रदान कर दी है। नैतिक मूल्यों के लिये उनके आग्रह, उनकी सरलता तथा निष्कपटता तथा उनकी स्वभावगत सचाई ने उनके वचनों में स्थायी महत्व का समावेश कर दिया है।

इसके साथ ही माननीय प्रधान मंत्री की अभिरुचियों की विचित्रता एवं विविधता और तथ्यों तथा प्रवृत्तियों को हृदयंगम करने की उनकी सतर्क जागरूकता ने उनके भाषणों को तात्कालिक प्रयोजन से परिपूर्ण कर दिया है। उन्हें अपने "काल के सूक्ष्म इतिवृत्त एवं संक्षिप्त संग्रह" ठीक तौर से कहा जा सकता है। उनमें उन घटनाओं तथा संकटों को रेखांकित किया गया है, जिनका स्वाधीनता के प्रभात काल से ही इस देश ने मुकाबला किया है और जिनका अब भी मुकाबला करना पड़ रहा है। जैसा कि माननीय प्रधान मंत्री ने कहा है "इस पीढ़ी को कठिन श्रम का दंड मिला है।" अपनी महानता के श्रेष्ठतम प्रासाद को पूर्ण करने से पूर्व आगे आनेवाले वर्षों में भारत को श्रम और शोक में ही जीवन-यापन करना है।

इन भाषणों में खतरों तथा संकटों पर प्राप्त विजय तथा गौरवपूर्ण सफलताओं का भी स्थान है। प्रधान मंत्री इस पर जोर देते अपने को तनिक भी श्रान्त अनुभव नहीं करते कि आशा और भविष्य की किरण तब तक जगमगाती रहेगी, जब तक कि जनता अपने स्वामी के उपदेश को नहीं भूल जाती। जब तक वह अपने

साध्यों का साधनों के साथ समन्वय करती रहेगी, यह पुरातन राष्ट्र फिर अपनी गरिमा को प्राप्त करेगा और अन्तर्राष्ट्रीय समाज में अपना समुचित स्थान प्राप्त करेगा ।

इस संकलन के सभी भाषण, केवल एक भाषण को छोड़कर, अंग्रेजी में दिये गये थे । "अंतिम यात्रा" भाषण हिन्दी में ही दिया गया था । अतः वह मौलिक रूप में हिन्दी में प्रस्तुत किया गया है, शेष भाषणों का हिन्दी में रूपान्तर किया गया है ।

विषय-सूची

स्वाधीनता

भाग्य से सौदा	..	..	३
नियत दिवस	..	..	५
भारत की जनता का प्रथम सेवक	..	..	७
हमारी स्वतन्त्रता का वार्षिक समारोह	..	..	१०
स्वतंत्र भारत एक वर्ष का हुआ	..	..	१२

महात्मा गांधी

प्रकाश बुझ गया	..	..	१९
एक गरिमा अदृश्य हो गयी	..	..	२२
अंतिम यात्रा	..	..	२६
सबसे बड़ा भारतीय	..	..	३२
सबसे उपयुक्त स्मारक	..	..	३७
राष्ट्रपिता	..	..	३९
एक वर्ष पहले	..	..	४३

साम्प्रदायिकता

पांच नदियों का यह अभागा प्रदेश	..	..	४७
धर्म और राजनीति का भयावह गठबंधन		..	५३

काश्मीर

कौन जिम्मेवार है ?	..	..	६१
काश्मीर की अग्नि-परीक्षा	..	..	६७
काश्मीर सम्बन्धी तथ्य	..	..	७५
काश्मीर से प्रतिज्ञा	..	..	८१
इतिहास का प्रवाह	..	..	८३
भारत को कुछ छिपाना नहीं है	..	..	९९
काश्मीर की कहानी आगे चलती है		..	१०३

हैदराबाद

यह हैदराबाद का प्रश्न	..	..	११५
हम शांतिप्रिय लोग हैं	..	..	१२१

शिक्षा

विश्वविद्यालयों को बहुत कुछ सिखाना है		..	१२७
शिक्षा मानव-मन की मुक्ति के लिये है	..	..	१३३
काम का समय	..	..	१३९

उद्योग

उत्पादन हमारी पहली आवश्यकता है १६३
उत्पादन बढ़ाओ या खत्म हो जाओ १७५
हमारी आर्थिक नीति १७९
अकेला सही रास्ता १९१
हमें मिलजुल कर शक्ति लगानी चाहिये .. १९९

भारत की वैदेशिक नीति

भारत की वैदेशिक नीति २१७
भारत गुटबन्दी से बाहर है २२९
विदेशों में प्रचार की समस्या २४५
अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत का उदय २५३
हमारी वैदेशिक नीति २७१

भारत और राष्ट्रमंडल

एक दैवी और ऐतिहासिक निर्णय २९१
यह नये प्रकार का साहचर्य २९५
हमने भविष्य को बांध नहीं दिया ३०९

भारत और विश्व

एशिया दुबारा जागा है ३२३
संकट का युग ३३१
एशिया के लिये आर्थिक स्वतंत्रता ३३५
विश्व स्वास्थ्य संघ ३४५
सहयोग का एक नया वातावरण ३४९
संयुक्त राष्ट्रों के प्रति ३५१
अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग ३५७
वायुमंडल पर विजय ३५९
इन्डोनीशिया में संकट ३६५

प्रकीर्ण प्रकरण

अन्तरिम राष्ट्रीय सरकार ३७३
स्वतंत्र पूर्णसत्तात्मक गणराज्य ३७९
ध्येयों के सम्बन्ध में प्रस्ताव ३९१
रक्षा सम्बन्धी सेवाओं के प्रति ४०१
एक जलयान का जलावतरण ४०३
माउन्टबेटन-परिवार के प्रति ४०७
राष्ट्रीय गीत के लिये लय ४१३
हमारी लम्बी यात्रा का अन्तिम चरण.. .. ४१७
इस पीढ़ी को कठिन परिश्रम का दंड मिला है .. ४२७
मनुष्य के आत्मोत्सर्ग का लेखा ४३५
सरोजिनी नायडू ४४१

चित्र-सूची

पृष्ठ ३ पर

जवाहरलाल नेहरू

पृष्ठ ८-९ पर

संविधान सभा में १४-१५ अगस्त १९४७ की मध्य रात्रि के समय भाषण देते हुए

जवाहरलाल नेहरू १५ अगस्त, १९४७ को दिल्ली के लाल किले पर भारतीय राष्ट्र पताका को फहराते हुए। उनके साथ रक्षा मंत्री सरदार बलदेव सिंह (बाईं ओर से दूसरे) और अन्य उच्च सैनिक अधिकारी भी हैं

ध्वजारोहण समारोह देखते हुए विशाल जनसमूह

महामहिम लार्ड माउंटबैटेन स्वाधीन भारत के प्रथम प्रधान मंत्री के रूप में श्री नेहरू को शपथ दिला रहे हैं

पृष्ठ ४०-४१ पर

बंबई में अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति की एक बैठक में श्री नेहरू महात्मा गांधी के साथ

महात्मा गांधी तथा श्री नेहरू भंगी बस्ती, नई दिल्ली में प्रार्थना सभा में जाते हुए

महात्मा गांधी की ७८वीं जयन्ती के समय भंगी बस्ती, नई दिल्ली में सामूहिक चरखा यज्ञ में भाग लेते हुए श्री नेहरू

सेन्ट्रल विस्टा, नई दिल्ली से गुजरती हुई महात्मा गांधी की शव-यात्रा

पृष्ठ ८८-८९ पर

जम्मू (काश्मीर) तथा पठानकोट के राजपथ के बीच सब मौसमों में उपयुक्त माधोपुर पुल का ७ जुलाई १९४८ को उद्घाटन करते हुए श्री नेहरू

श्री नगर में श्री नेहरू एक घायल सैनिक के लिये सैनिक अस्पताल में अपने हस्ताक्षर दे रहे हैं

काश्मीर से पहली बार टेलीफोन द्वारा वार्ता कर रहे हैं

श्री नगर में महिला सैन्यदल का निरीक्षण करते हुए

पृष्ठ १२८ पर

नागपुर विश्वविद्यालय में १ जनवरी, १९५० को दीक्षान्त समारोह के अवसर पर भाषण देते हुए

पृष्ठ १६८-१६९ पर

हिन्दुस्तान एअर क्राफ्ट फैक्टरी, बेंगलौर में श्री नेहरू

नई दिल्ली में सिचाई क केन्द्रीय बोर्ड के उन्नीसवें वार्षिक अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए

नई दिल्ली में फेडरेशन आफ इंडियन चेम्बर्स आफ कामर्स ऐण्ड इन्डस्ट्री के वार्षिक अधिवेशन में भाषण देते हुए

'जल उषा' को समुद्र में उतारते समय

पृष्ठ २५७ पर

अपने निवास स्थान पर अपनी पुत्री तथा पौत्र के साथ

पृष्ठ ३८४–३८५ पर

पेरिस में ३ नवम्बर, १९४८ को संयुक्त राष्ट्रसंघ की साधारण सभा के विशेषाधिवेशन में भाषण देते हुए

उटकमंड (दक्षिण भारत) में जून १९४८ में सुदूरपूर्व तथा एशिया के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ के आर्थिक कमीशन के अधिवेशन में भाषण देते हुए श्री नेहरू

मार्च १९४७ में, नई दिल्ली में प्रथम एशियायी संबंध सम्मेलन में

नई दिल्ली में, नवम्बर १९४८ में, अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष विज्ञान संघ की एशियायी प्रादेशिक कान्फ्रेन्स का उद्घाटन करत हुए

पृष्ठ ३९२–३९३ पर

विस्थापित व्यक्तियों के बीच

नई दिल्ली में, भारत में अमेरिकन राजदूत डा० हेनरी ग्रेडी व श्रीमती ग्रेडी को बिदाई देते समय

गवर्नमेंट हाउस के स्टाफ द्वारा लार्ड माउंटबेटेन को दिये गये एक विदाई भोज के समय

दिल्ली के निकट मेहरौली ईदगाह में मुस्लिम बालिकाओं के साथ बातचीत करते हुए

स्वाधीनता

भाग्य से सौदा

बहुत वर्ष हुए हमने भाग्य से एक सौदा किया था, और अब अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने का समय आया है—पूरी तौर पर या जितनी चाहिए उतनी तो नहीं, फिर भी काफी हद तक। जब आधी रात के घंटे बजेंगे, जबकि सारी दुनिया सोती होगी, उस समय भारत जगकर जीवन और स्वतंत्रता प्राप्त करेगा। एक ऐसा क्षण आता है, जो कि इतिहास में कम ही आता है, जबकि हम पुराने को छोड़कर नए जीवन में पग धरते हैं, जबकि एक युग का अन्त होता है, जबकि राष्ट्र की चिर दलित आत्मा उद्धार प्राप्त करती है। यह उचित है कि इस गंभीर क्षण में हम भारत और उसके लोगों और उससे भी बढ़कर मानवता के हित के लिए सेवा अर्पण करने की शपथ लें।

इतिहास के उषाकाल में भारत ने अपनी अनंत खोज आरंभ की। दुर्गम सदियां उसके उद्योग, उसकी विशाल सफलता और उसकी असफलताओं से भरी मिलेंगी। चाहे अच्छे दिन आएं हों, चाहे बुरे, उसने इस खोज को आंखों से ओझल नहीं होने दिया; न उन आदर्शों को ही भुलाया जिनसे उसे शक्ति प्राप्त हुई। आज हम दुर्भाग्य की एक अवधि पूरी करते हैं, और भारत अपने आपको फिर पहचानता है। जिस कीर्ति पर हम आज आनन्द मना रहे हैं, वह और भी बड़ी कीर्ति और आनेवाली विजयों की दिशा में केवल एक पग है, और आगे के लिए अवसर देने वाली है। इस अवसर को ग्रहण करने और भविष्य की चुनौती स्वीकार करने के लिए क्या हममें काफी साहस और काफी बुद्धि है ?

स्वतंत्रता और शक्ति जिम्मेदारी लाती हैं। वह जिम्मेदारी इस सभा पर है, जो कि भारत के संपूर्ण सत्ताधारी लोगों का प्रतिनिधित्व करने वाली संपूर्ण सत्ताधारी सभा है। स्वतंत्रता के जन्म से पहले हमने प्रसव की सारी पीड़ाएँ सहन की हैं और हमारे हृदय इस दुख की स्मृति से भरे हुए हैं। इनमें से कुछ पीड़ाएँ अब भी चल रही हैं। फिर भी, अतीत समाप्त हो चुका है और अब भविष्य ही हमारा आवाहन कर रहा है।

यह भविष्य आराम करने और दम लेने के लिए नहीं है बल्कि निरंतर प्रयत्न करने के लिए है, जिससे कि हम उन प्रतिज्ञाओं को, जो हमने इतनी बार

संविधान परिषद्, नई दिल्ली में १४ अगस्त १९४७ को दिया गया एक भाषण।

की हैं और उसे जो आज कर रहे हैं, पूरा कर सकें। भारत की सेवा का अर्थ करोड़ों पीड़ितों की सेवा है। इसका अर्थ दरिद्रता और अज्ञान और अवसर की विषमता का अन्त करना है। हमारी पीढ़ी के सब से बड़े आदमी की यह आकांक्षा रही है कि प्रत्येक आँख के प्रत्येक आंसू को पोंछ दिया जाय। ऐसा करना हमारी शक्ति से बाहर हो सकता है, लेकिन जब तक आँसू हैं और पीड़ा है, तब तक हमारा काम पूरा नहीं होगा।

इसलिए हमें काम करना है और परिश्रम करना है और कठिन परिश्रम करना है जिससे कि हमारे स्वप्न पूरे हों। ये स्वप्न भारत के लिए हैं, लेकिन ये संसार के लिए भी हैं, क्योंकि आज सभी राष्ट्र और लोग आपस में एक दूसरे से इस तरह गुँथे हुए हैं कि कोई भी बिल्कुल अलग होकर रहने की कल्पना नहीं कर सकता। शांति के लिए कहा गया है कि वह अविभाज्य है; स्वतंत्रता भी ऐसी ही है, और अब समृद्धि भी ऐसी है, और इस एक संसार में, जिसका कि अलग अलग टुकड़ों में अब विभाजन संभव नहीं, संकट भी ऐसा ही है।

भारत के लोगों से, जिनके हम प्रतिनिधि हैं, हम अनुरोध करते हैं कि विश्वास और निश्चय के साथ वे हमारा साथ दें। यह क्षुद्र और विनाशक आलोचना का समय नहीं है; असद्भावना या दूसरों पर आरोप का भी समय नहीं है। हमें स्वतंत्र भारत की विशाल इमारत का निर्माण करना है, जिसमें कि उसकी संतान रह सकें।

महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करने की आज्ञा चाहता हूँ :

"यह निश्चय हो कि :

(१) आधी रात के अंतिम घंटे के बाद, इस अवसर पर उपस्थित संविधान सभा के सभी सदस्य यह शपथ लें:—

> 'इस पवित्र क्षण में, जबकि भारत के लोगों ने दुःख झेल कर और त्याग करके स्वतंत्रता प्राप्त की है, मैं, जो कि भारत की संविधान सभा का सदस्य हूँ, पूर्ण विनयपूर्वक भारत और उसके निवासियों की सेवा के प्रति, अपने को इस उद्देश्य से अर्पित करता हूं कि यह प्राचीन भूमि संसार में अपना उपयुक्त स्थान ग्रहण करे और संसारव्यापी शांति और मनुष्य मात्र के कल्याण के निमित्त अपना पूरा और इच्छापूर्ण अनुदान प्रस्तुत करे।'

(२) जो सदस्य इस अवसर पर उपस्थित नहीं हैं वे यह शपथ (ऐसे शाब्दिक परिवर्तनों के साथ जो कि सभापति निश्चित करें) उस समय लें जब कि वे अगली बार इस सभा के अधिवेशन में उपस्थित हों।"

नियत दिवस

नियत दिवस आ गया है, वह नियत दिवस जिसे कि भाग्य ने निश्चित किया था और भारत आज फिर लंबी नींद और कोशिशों के बाद जागा है और शक्तिशाली, मुक्त और स्वतंत्र हुआ है। कुछ अंशों में अतीत हमसे अब भी मिला हुआ है, और जो प्रतिज्ञाएं हमने इतनी बार की हैं उन्हें पूरा करने के लिए हमें बहुत कुछ करना बाकी है। फिर भी हम मोड़ पार कर चुके हैं। हमारे लिए नया इतिहास शुरू होता है, वह इतिहास जो हमारे जीवन और कार्यों से रचा जायगा और जिसके बारे में दूसरे लोग लिखेंगे।

भारत में हमारे लिए, सारे एशिया के लिए और संसार के लिए, यह एक महान क्षण है। एक नये नक्षत्र का उदय होता है, प्राच्य की स्वतंत्रता के नक्षत्र का, एक नई आशा उत्पन्न होती है, एक चिर अभिलषित कल्पना साकार होती है। यह नक्षत्र कभी न डूबे और यह आशा कभी विफल न हो।

हमें इस स्वतंत्रता से आनन्द है, यद्यपि हमारे चारों ओर बादल घिरे हुए हैं और अपने लोगों में से बहुत से दुख के मारे हैं, और कठिन समस्याएं हमारे चारों ओर हैं। लेकिन स्वतंत्रता अपनी जिम्मेदारियां और बोझ लाती है और हमें स्वतंत्र और अनुशासनपूर्ण लोगों की भाँति उनका सामना करना है।

आज के दिन सबसे पहले हमें इस स्वतंत्रता के निर्माता, राष्ट्रपिता का ध्यान आता है, जो भारत की पुरानी भावना के मूर्त रूप होकर स्वतंत्रता की मशाल ऊंची किए हुए थे और जिन्होंने हमारे चारों ओर फैले हुए अंधकार को दूर किया था। हम अकसर उनके अयोग्य अनुयायी रहे हैं और उनके संदेश से विलग हो गए हैं। लेकिन हम ही नहीं, आनेवाली पीढ़ियां इस संदेश को याद रक्खेंगी और अपने दिलों पर भारत के इस बड़े बेटे की छाप को धारण करेंगी, जो कि अपने विश्वास और शक्ति और साहस और विनय में इतना महान था। हम स्वतंत्रता की इस मशाल को, चाहे जैसी आंधी और तूफान आवें, कभी बुझने न देंगे।

इसके बाद हमें उन अज्ञात स्वयंसेवकों का और स्वतंत्रता के सैनिकों का ध्यान आना चाहिए जिन्होंने बिना प्रशंसा या पुरस्कार पाए, भारत की सेवा में अपनी जानें दी हैं।

हमें अपने उन भाइयों और बहनों का भी ध्यान आता है जो राजनैतिक सीमाओं के कारण हमसे जुदा हो गए हैं और जो दुर्भाग्यवश उस स्वतंत्रता में, जो हमें प्राप्त हुई है, भाग नहीं ले सकते। वे हमारे हैं, और चाहे जो हो, हमारे ही

नई दिल्ली से १५ अगस्त, १९४७ को समाचार-पत्रों को दिया हुआ संदेश।

बने रहेंगे, और हम उनके अच्छे और बुरे भाग्य के बराबर ही साझीदार होंगे।

भविष्य हमें बुला रहा है। हम कहां जायँगे और हमारा क्या प्रयत्न होगा ? हमारा प्रयत्न होगा साधारण मनुष्य को, भारत के किसानों और मजदूरों को स्वतंत्रता और अवसर दिलाना ; गरीबी और अज्ञान और रोग से लड़-कर उनका अन्त करना ; एक समृद्ध, जनसत्तात्मक और प्रगतिशील राष्ट्र का निर्माण करना; और ऐसी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक संस्थाओं की रचना करना, जिनसे कि प्रत्येक पुरुष और स्त्री को न्याय और जीवन की परि-पूर्णता प्राप्त हो सके।

हमारे सामने कठिन काम करने को हैं। जब तक हम अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करते, जब तक हम भारत के सभी लोगों को वैसा नहीं बना लेते जैसा कि भाग्य ने नियत किया है, तब तक हममें से किसी के लिए दम लेने का समय नहीं है। हम एक ऐसे बड़े देश के नागरिक हैं जो कि विशाल उन्नति के पथ पर अग्रसर है और हमें उस ऊँचे आदर्श के अनुकूल अपना जीवन बनाना है। हम सभी, चाहे हम किसी धर्म के हों, समान रूप से भारत की संतान हैं, और हमारे अधिकार, विशेषा-धिकार और दायित्व बराबर-बराबर हैं। हम सांप्रदायिकता या संकीर्णता को उत्साहित नहीं कर सकते, क्योंकि कोई राष्ट्र, जिसके लोग विचार अथवा कार्य में संकीर्ण हों, बड़ा नहीं हो सकता।

संसार के राष्ट्रों तथा लोगों का हम अभिवादन करते हैं और यह प्रतिज्ञा करते हैं कि शांति, स्वतंत्रता और प्रजातंत्र को अग्रसर करने में हम उनके साथ सहयोग करेंगे।

भारत के लिए, अपनी अत्यन्त प्रिय मातृभूमि के लिए, जो कि प्राचीन और सनातन और चिर-नवीन है, हम अपनी भक्तिपूर्ण श्रद्धांजलि भेंट करते हैं, और अपने को उसकी सेवा के लिए पुनः प्रतिज्ञाबद्ध करते हैं। जय हिंद !

भारत की जनता का प्रथम सेवक

मेरे देश भाइयो, भारत और भारत की स्वतंत्रता के हित में अपनी सेवा अर्पित करने का सौभाग्य मुझे बहुत वर्षों से रहा है। आज मैं पहली बार भारतीय जनता के प्रथम सेवक के रूप में, उसकी सेवा और सुधार के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होकर, अपने पद से आप से बोल रहा हूँ। मैं यहां इसलिए हूँ कि आपकी ऐसी इच्छा थी, और मैं यहां तभी तक हूँ, जब तक कि आप अपना विश्वास देकर, मेरा सम्मान करते हैं।

हम आज स्वतंत्र और पूर्ण सत्ताधारी लोग हैं और हमने अपने को अतीत के बोझ से मुक्त कर लिया है। हम संसार की ओर स्पष्ट और मैत्री-पूर्ण आँखों से और भविष्य की ओर आस्था और विश्वास के साथ देखते हैं।

विदेशी आधिपत्य का बोझ दूर हो गया है, लेकिन स्वतंत्रता अपनी अलग जिम्मेदारियां और भार लाती है और उन्हें हम स्वतंत्र लोगों की भावना से ही, आत्म-संयम के साथ और उस स्वतंत्रता की रक्षा और विस्तार करने के निश्चय से वहन कर सकते हैं।

हमने बहुत कुछ हासिल कर लिया है; परन्तु हमें अभी इससे अधिक हासिल करना है। तो आइए हम अपने नए धंधों में, दृढ़ता से और उन ऊँचे सिद्धांतों को ग्रहण करते हुए, जिन्हें कि हमारे महान नेता ने सिखाया है, लग जांय। सौभाग्य से गांधी जी मार्ग-प्रदर्शन के लिए, हमें प्रेरणा देने के लिए और सदा आदर्श अध्यवसाय का पथ दिखाने के लिए हमारे साथ हैं। बहुत दिनों से उन्होंने हमें सिखाया है कि आदर्श और उद्देश्य उन साधनों से पृथक नहीं किए जा सकते जो कि उनकी सिद्धि के लिए उपयोग में लाए जाते हैं; अर्थात् अच्छे उद्देश्यों की सिद्धि अच्छे साधनों द्वारा ही संभव है। यदि हम जीवन की महान बातों की ओर लक्ष्य करते हैं, यदि हम भारत का स्वप्न बड़े राष्ट्र के रूप में देखते हैं, जो कि शांति और स्वतंत्रता का अपना प्राचीन संदेश दूसरों को दे रहा है, तब हमें स्वयं बड़ा बनना है और भारत माता की योग्य सन्तान बनना है। संसार की निगाहें हम पर हैं और वे पूर्व में इस स्वतंत्रता के जन्म को ध्यान से देख रही हैं और विचार कर रही हैं कि इसका अर्थ क्या है।

---

१५ अगस्त, १९४७ को नई दिल्ली से प्रसारित भाषण।

हमारा पहला ध्येय यह होना चाहिए कि हम सब प्रकार के आंतरिक झगड़ों और हिंसा का अन्त करदें, जो कि हमें कलुषित करके गिराते हैं और जो कि स्वतंत्रता के पक्ष को हानि पहुँचाते हैं। ये जनता की महान आर्थिक समस्याओं पर, जिन पर तुरन्त ध्यान देने की आवश्यकता है, विचार करने में बाधक होते हैं।

अपनी दीर्घकालीन पराधीनता और विश्वव्यापी युद्ध और उसके परिणामों ने हमारे आगे बहुत-सी अत्यावश्यक समस्याओं को एक साथ डाल दिया है। आज हमारी जनता के लिए भोजन और वस्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुओं की कमी है, और हम मुद्रा-स्फीति और बढ़ती हुई कीमतों के बवंडर में पड़ गए हैं। हम इन समस्याओं को तुरन्त हल नहीं कर सकते, साथ ही उनके हल करने में देर भी नहीं लगा सकते। इसलिए हमें बुद्धिमत्ता के साथ ऐसी योजनाएँ बनानी हैं जिनसे हमारी जनता का बोझ कम हो और उनके रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठे। हम किसी का बुरा नहीं चाहते, लेकिन यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि अपनी चिर-पीड़ित जनता के हितों का ध्यान हमें सबसे पहले होना चाहिए और अन्य स्वार्थों को उनके आगे झुक जाना चहिए। हमें अपनी दकियानूसी भूमि-व्यवस्था को शीघ्र ही बदलना है और हमें एक बड़े और संतुलित पैमाने पर उद्योग-व्यवसायों को उन्नत करना है, जिससे कि देश की संपत्ति बढ़े और लाभ उचित रूप में वितरित हो सके।

उत्पादन आज की सर्वप्रथम आवश्यकता है और उत्पादन में रुकावट डालने या उसे कम करने का प्रत्येक प्रयत्न राष्ट्र को, और विशेष रूप से हमारे बहुसंख्यक श्रमिकों को, हानि पहुँचा रहा है। लेकिन केवल उत्पादन पर्याप्त नहीं, क्योंकि इस का परिणाम यह हो सकता है कि संपत्ति खिंच कर कुछ थोड़े से हाथों में आ जाय। यह उन्नति के मार्ग में बाधक होगा और आज के प्रसंग में अस्थिरता और संघर्ष उत्पन्न करेगा। अतएव समस्या को हल करने के लिए उचित और न्याय्य वितरण अत्यन्त आवश्यक है।

भारत सरकार के हाथ में इस समय जलप्रवाह के नियंत्रण द्वारा नदियों की घाटियों के विकास की, बाँधों और जलागरों और सिंचाई के साधनों के निर्माण की, और पन-बिजली की शक्ति के विकास की कई बड़ी योजनाएँ हैं। इनसे खाने की वस्तुओं के उत्पादन में तथा सभी तरह के औद्योगिक विकास में सहायता मिलेगी। ये कार्य सभी योजनाओं के लिए बुनियादी हैं और हम इन्हें जल्दी-से-जल्दी पूरा करना चाहते हैं, जिससे कि जनता को इनका लाभ मिल सके।

इन सब बातों के लिए शांति की स्थिति और सभी सम्बन्धित लोगों का सहयोग और कठिन और निरंतर श्रम आवश्यक हैं। इसलिए हमें इन महान और

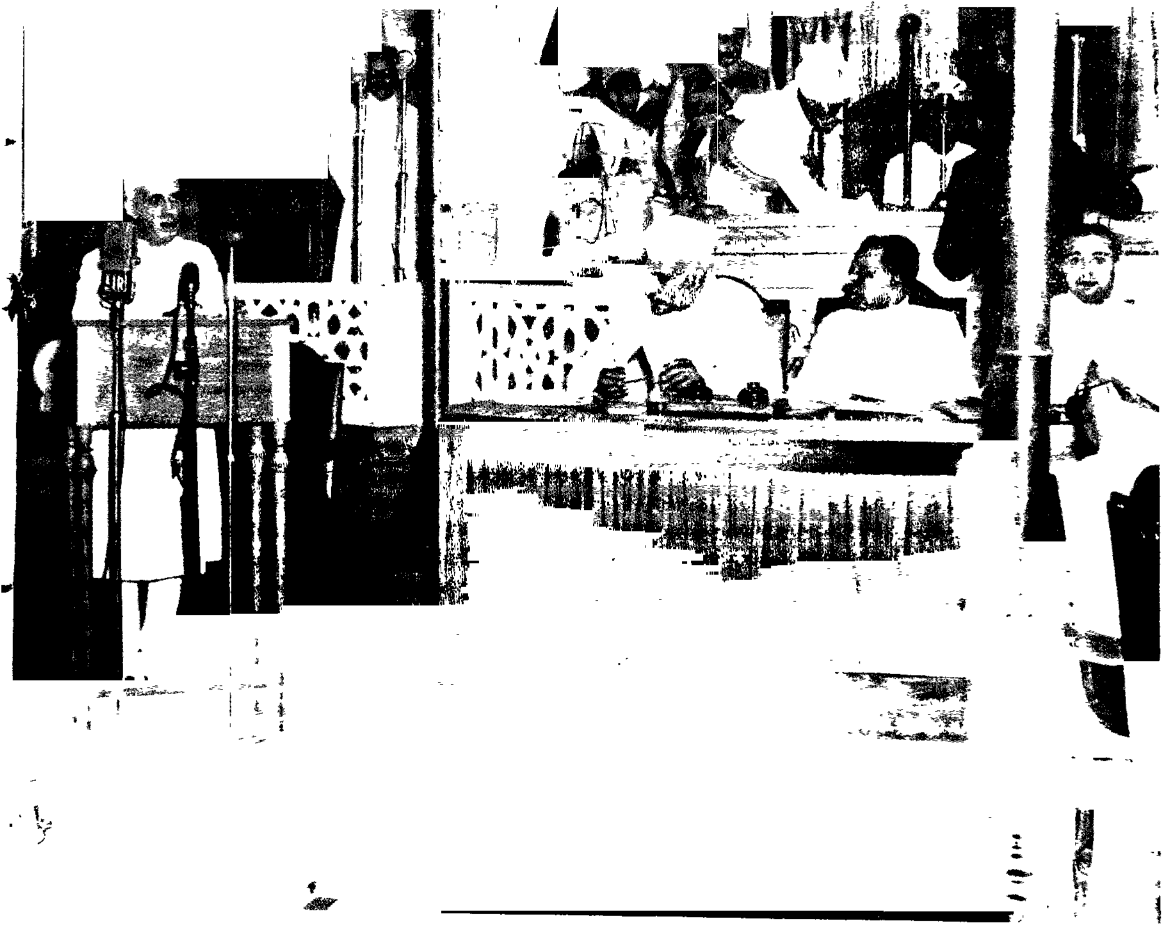

संविधान सभा में १४-१५ अगस्त, १९४७ की मध्य रात्रि के समय भाषण देते हुए

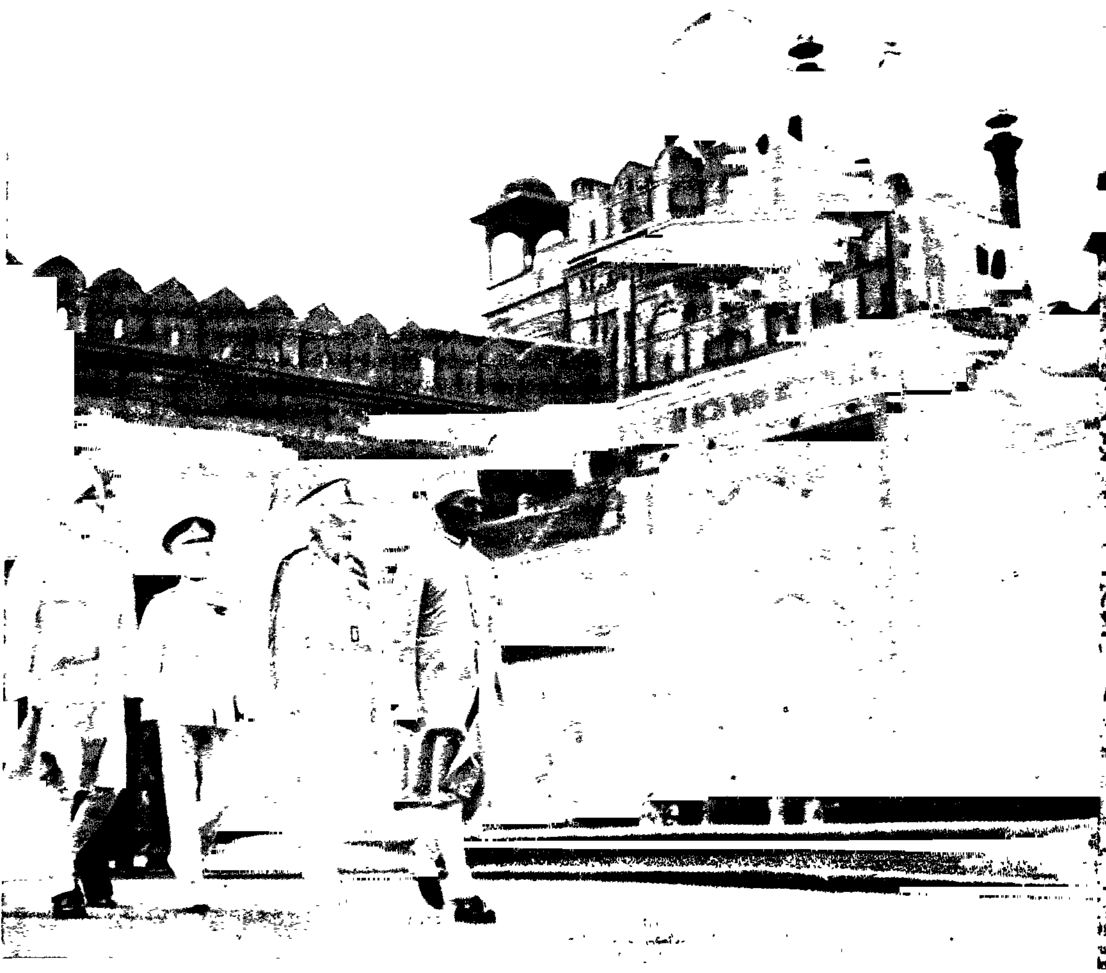

जवाहरलाल नेहरू १५ अगस्त, १९४७ को दिल्ली के लाल किले पर भारतीय राष्ट्र पताका को फहराते हुए। उनके साथ रक्षा मंत्री सरदार बल्देव सिंह (बाईं ओर से दूसरे) और अन्य उच्च सैनिक अधिकारी भी हैं

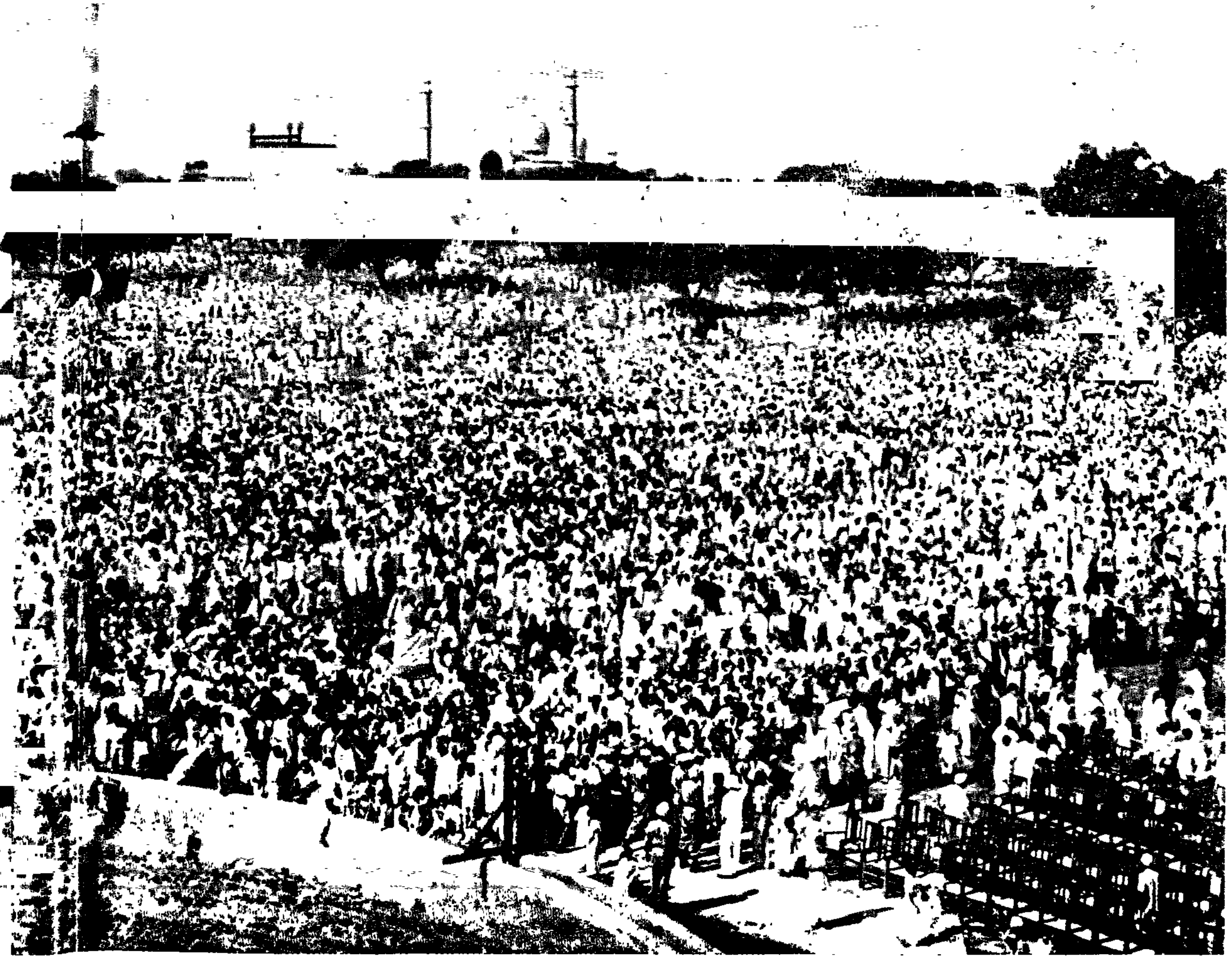

ध्वजारोहण समारोह देखते हुए विशाल जनसमूह

ाहामहिम लार्ड माउन्टबैटन स्वाधीन भारत के प्रथम प्रधान मंत्री के रूप में श्री नेहरू को शपथ दिला रहे हैं

करने योग्य कामों में लग जाना चाहिए और आपस के झगड़े-फसाद को भूल जाना चाहिए। झगड़ा करने का समय अलग होता है और मिल-जुलकर उद्योग करने का अलग। काम करने का समय अलग होता है और खेल-कूद का अलग। आज न झगड़ा करने का समय है, न बहुत खेल-कूद का। यदि हम अपने देश और अपनी जनता के साथ घात नहीं करना चाहते तो आज हमें एक दूसरे से सहयोग करना चाहिये और मिल-जुल कर काम करना चाहिए और यथार्थ सद्भावना से काम करना चाहिए।

मैं कुछ शब्द नागरिक तथा सैनिक राजसेवकों से कहना चाहूंगा। पुराने अन्तर और भेद मिट गए हैं और आज हम सभी भारत के स्वतंत्र बेटे और बेटियां हैं और अपने देश की स्वतंत्रता का तथा उसकी सेवा में लगने का हमें गर्व है। हम समान रूप से भारत के प्रति निष्ठा रखते हैं। हमारे सामने जो कठिन समय है उसमें हमारे राज-सेवकों और विशेषज्ञों को बड़े महत्व का भाग लेना है और हम एक साथी की भांति उन्हें भारत की सेवा में लगकर ऐसा करने का बुलावा देते हैं। जय हिन्द!

हमारी स्वतन्त्रता का वार्षिक समारोह

१५ अगस्त का दिन आया, और हमें जो कुछ हासिल हुआ था, उस पर, विभाजन के दुख के बावजूद, हमने खुशियाँ मनाईं। हमने स्वतंत्रता के सूर्य की ओर तथा उस अवसर की ओर देखा जिसे स्वतंत्रता अपने साथ लाती है। यद्यपि सूर्य उगा, पर काले बादलों के कारण वह हमसे छिपा रहा, और हमारे लिए धुंधला उषाकाल जैसा ही बना रहा। यह उषाकाल बहुत लंबा रहा है और दिन का प्रकाश अभी आने को है। एक राजनैतिक निश्चय कर लेने से या नया संविधान बना लेने से या किसी आर्थिक नीति से ही स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हो जाती। वह तो मन और हृदय की वस्तु है। यदि मन संकीर्ण या कुहरे से ढँका रहा और हृदय में घृणा और कड़ुवापन हुआ तो स्वतंत्रता नहीं रह जाती।

दूसरी बार १५ अगस्त का दिन आया है और जो कुछ बीता है, उसके बावजूद, यह एक पवित्र दिन है। इस वर्ष के भीतर बहुत कुछ हुआ है और हमने अपनी लंबी यात्रा की थोड़ी सी मंजिल पार की है। लेकिन यह वर्ष दुख और लज्जा से भी भरा रहा है और भारत की उस भावना के प्रति, जो कि उसकी एक विशेषता रही है, विश्वासघात का रहा है। इस वर्ष ने, राष्ट्रपिता की हत्या द्वारा कुकृत्य की विजय होते देखी है। इससे अधिक लज्जा और दुख की बात हममें से किसी के लिए भी क्या हो सकती है ?

हम इस दिन, जैसा कि उचित है, उत्सव मना रहे हैं, लेकिन हमारे उत्सव में आत्मश्लाघा और व्यर्थ की सामान्य बातों के लिए स्थान नहीं। यह हृदय को टटोलने वाला और अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए पुनः आत्म-समर्पण करने वाला दिन होना चाहिए। हमने क्या कर लिया है, इसके विषय में हमें उतना विचार नहीं करना चाहिए, जितना कि इस विषय में कि हमें क्या करना है या हमने क्या बात गलत की है। हमें उन करोड़ों शरणार्थियों के विषय में सोचना चाहिए, जो अब भी बेघर बार घूम रहे हैं। हमें भारत की उस विशाल जनता का ध्यान करना चाहिए, जो अब भी कष्ट में है और जिसने हमें आशा के साथ देखा है और जो अपने दुखी जीवन में सुधार की आशा लगाए हुए है। हमें भारत के महान

नई दिल्ली से १५ अगस्त, १९४८ को दिया गया एक संदेश।

साधनों का भी ध्यान करना चाहिए, जिनका उपयोग यदि जनता के हित के लिए किया जाय, तो भारत का नक्शा बदल सकता है और वह महान और समृद्ध बन सकता है। हमें इस महान कार्य में पूरी शक्ति के साथ लगना चाहिए। लेकिन सबसे बड़ी बात यह है कि हमें उन महान शिक्षाओं को याद रखना चाहिए जो महात्मा गाँधी से हमें मिली हैं और उन आदर्शों को जिन्हें कि उन्होंने हमारे सामने रखा है। यदि हम उन शिक्षाओं और आदर्शों को भूलते हैं, तो हम अपने ध्येय और अपने देश के प्रति विश्वासघात करते हैं।

इसलिए अपनी स्वतंत्रता के इस वर्ष-दिवस पर हम स्वतंत्र भारत और उसके लोगों के हित के लिए पुनः अपने को अर्पण करते हैं। हम इसके योग्य सिद्ध हों। जय हिंद !

स्वतन्त्र भारत एक वर्ष का हुआ

देशवासियो, साथियो और मित्रो, एक वर्ष हुआ, आज ही के दिन, इसी समय, मैंने एक भाषण आपके लिए प्रसारित किया था। स्वतंत्र भारत आज एक वर्ष का हुआ। लेकिन अपनी स्वतंत्रता के इस बाल्यकाल में ही यह कैसी यातनाओं और संकटों से गुजरा है! फिर भी वह जिंदा है, यद्यपि जो जोखिम और मुसीबतें इसने झेली हैं वे एक अधिक पुराने और मजबूत राष्ट्र को भी दबा देने के लिए काफी थीं। इस सफलता के लिए और दूसरी अनेक सफलताओं के लिए, जो हमारे देशवासियों को प्राप्त हुई हैं, हमें लोगों को धन्यवाद देना चाहिए। यह उचित है कि अपने कामों को हम तुच्छ न समझें, और उस साहस, परिश्रम और त्याग को न भूलें जिससे हमारे देशवासियों ने इस संकट के वर्ष में बहुत सी मुसीबतों का सामना किया है और उन पर विजय पाई है।

लेकिन हमें अपनी असफलताओं और गलतियों को भी नहीं भूलना चाहिए, क्योंकि हमारी असफलताएँ और भूलें भी बहुत रही हैं। इनमें से कुछ बहुत स्पष्ट हैं, लेकिन मुख्य असफलता तो एक आत्मिक दुर्बलता रही है, उन ऊँचे आदर्शों से गिर जाना रहा है, जिन्हें कि हमारे राष्ट्रपिता ने, जिनके योग्य नेतृत्व में हमने चौथाई सदी से अधिक समय तक अपनी लड़ाई जारी रक्खी थी और आगे बढ़े थे, हमारे सामने रक्खा था। उन्होंने हमें सिखाया था कि ऊंचे उद्देश्यों की सिद्धि ऊँचे साधनों द्वारा ही होती है। आदर्शों और उद्देश्यों को उनकी प्राप्ति के साधनों से कभी अलग नहीं किया जा सकता। उन्होंने हमें भय को दूर रखना सिखाया था, क्योंकि भय केवल तुच्छ ही नहीं है, बल्कि घृणा और हिंसा को पैदा करने वाला है।

हम में से बहुतों ने यह पाठ भुला दिया और भय हम पर छा गया। यह भय किसी दूर के दुश्मन का नहीं था, बल्कि एक दूसरे का भय था, और इसके परिणाम-स्वरूप दुष्कृत्य देखने में आए।

हमारे गुरु, जिनसे हमें प्रेरणा मिलती थी, अब नहीं रहे। हमें अब भार अपने ही कंधों पर उठाना है और पहला प्रश्न जिसे हमें अपने से पूछना चाहिए वह यह है—क्या हम उनकी शिक्षा और संदेश पर दृढ़ हैं; अथवा हम नए रास्तों

नई दिल्ली से १५ अगस्त, १९४८ को प्रसारित भाषण।

में भटक पड़े हैं ? मैं आप से यह कहना चाहता हूँ कि कठिन परीक्षा के इस वर्ष से मुझे और भी अधिक विश्वास हो गया है कि यदि भारत की उन्नति करना है और उसे महान बनाना है, जैसा कि उसे होना चाहिए और जैसा कि वह होकर रहेगा, तो ऐसा उस संदेश और शिक्षा पर दृढ़ रह कर ही किया जा सकता है । मैं जानता हूँ कि मैं निर्बल हूँ और अक्सर भारत के प्रति, जिसकी सेवा के लिए मैंने बार-बार शपथ ली है, अयोग्य सिद्ध हुआ हूं । लेकिन हम चाहे कितने भी अयोग्य हों, हममें अब भी उस शक्ति का कुछ अंश है, जो हमारे नेता हमें दे गए हैं। वह शक्ति हमें उनसे ही नहीं, उनके संदेश से भी प्राप्त होती है। इसलिए आज मैं मातृभूमि की सेवा की और उन आदर्शों के पालन की, जिन्हें कि गांधीजी ने हमारे सामने रक्खा था, फिर से शपथ लेता हूँ।

हम सभी भारत की चर्चा करते हैं और हम सभी भारत से बहुत बातों की आशा करते हैं। हम उसे इसके बदले में क्या देते हैं ? जो कुछ हम उसे देते हैं, उससे अधिक हम उससे लेने के अधिकारी नहीं। भारत अन्त में हमें वही देगा, जो कि प्रेम और सेवा और उत्पादक तथा रचनात्मक कार्य के रूप में हम उसे देंगे। भारत वैसा ही होगा जैसे कि हम होंगे: हमारे विचार और कार्य उसे रूप प्रदान करेंगे। हम उसकी कोख से उत्पन्न बच्चे हैं, आज के भारत के छोटे-छोटे अंश हैं; साथ ही हम आनेवाले कल के भारत के जनक हैं। हम बड़े होंगे तो भारत बड़ा बनेगा, और हम तुच्छ विचार वाले और अपने दृष्टिकोण में संकीर्ण बनेंगे, तो भारत भी वैसा ही होगा ।

गत वर्ष, हमारी आपत्तियाँ अधिकतर ऐसे ही संकीर्ण दृष्टिकोण और तुच्छ कार्यों का, जो कि भारत की महान सांस्कृतिक देन से इतने भिन्न हैं, परिणाम रही हैं। साम्प्रदायिकता से, मुसलमानों, हिन्दुओं और सिखों की साम्प्रदायिकता से, हमारी स्वतंत्र भावना के कुचले जाने का भय रहा है। प्रान्तीयता उस विशाल एकता के रास्ते में बाधक बनी है, जो कि भारत की प्रतिष्ठा और उन्नति के लिए इतनी आवश्यक है। हममें फूट की भावना फैली है और उसने हमें उन बड़ी बातों को भूल जाने दिया है, जिनके हम समर्थक रहे हैं।

हमें अब अपने को फिर से पहचानना है और अपनी कल्पनाओं से स्वतंत्र भारत को अपनाना है। हमें पुराने मूल्यों को फिर से खोज निकालना है और उन्हें स्वतंत्र भारत की नई रूपरेखा में स्थान देना है। स्वतंत्रता जिम्मेदारी लाती है और आत्म-संयम, परिश्रम और स्वतंत्र जनता की भावना द्वारा ही उसकी रक्षा हो सकती है।

इसलिए हमें उन सभी बातों को छोड़ देना चाहिए, जो हमें बाँधती हैं और गिराती हैं। हमें भय और साम्प्रदायिकता और प्रांतीयता का त्याग करना चाहिए। हमें एक स्वतंत्र और जनसत्तात्मक भारत का निर्माण करना चाहिए, जहाँ कि अपनी जनता का हित ही सबसे प्रथम स्थान रखता हो और दूसरे हित उसके अधीन समझे जायँ।

स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं रह जाता, यदि वह हमारी जनता के अनेक बोझों को हलका नहीं करती। जनसत्तावाद का अर्थ सहिष्णुता है, केवल उन लोगों के प्रति सहिष्णुता नहीं, जो कि हमसे सहमत हैं, बल्कि उन लोगों के प्रति जो कि हमसे सहमत नहीं होते। स्वतंत्रता की प्राप्ति के साथ-साथ हमारे व्यवहारों में परिवर्तन आना चाहिए, जिससे कि उनका इस स्वतंत्रता से ठीक-ठीक मेल हो सके।

संघर्ष चल रहा है और ऐसी अफवाहें हैं कि भारत में और सारी दुनिया में और भी घोर संघर्ष होने वाला है। हमें सभी स्थितियों और संभावनाओं के लिए तैयार रहना है। जब राष्ट्र पर संकट हो, तब प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह बिना भय के और बिना किसी पुरस्कार की आशा के अपनी सेवा राष्ट्र को भेंट करे। लेकिन आज मैं संघर्षों और युद्धों के विषय में नहीं, बल्कि शांति और सहयोग के विषय में कहना चाहता हूँ, और संसार के सभी राष्ट्रों और अपने पड़ोसी देश के प्रति यह कहना चाहता हूँ कि शांति और मित्रता बनाए रखना हमारा ध्येय है। हम यदि युद्ध करना चाहते हैं तो वह केवल गरीबी और उससे जनित विपत्तियों के विरुद्ध युद्ध है।

सारी दुनिया संसार-व्यापी युद्ध के परिणामों से पीड़ित है और मुद्रा-स्फीति से, बढ़ी कीमतों से और बेकारी से लोग दुखी हैं। भारत में ये सभी बातें हैं, साथ ही उन विशाल-संख्यक भाइयों और बहनों की चिन्ता हम पर है, जो कि अपार कष्टों को झेल रहे हैं और जो अपने घरों से भगाए जाकर, दूसरी जगह नई जिन्दगी की खोज में हैं।

हमें यह लड़ाई लड़नी है अर्थात् आर्थिक संकट के विरुद्ध लड़ाई लड़नी है और बेघरों को बसाना है। इस लड़ाई में नफरत और हिंसा के लिए जगह नहीं है, बल्कि केवल अपने देश और अपने लोगों की सेवा का भाव है। इस लड़ाई में हर एक भारतवासी सैनिक बन सकता है। व्यक्तियों और समूहों के लिए व्यापक हित को छोड़ कर निजी संकीर्ण हितों का ध्यान करने का अवसर नहीं है। यह समय आपस में झगड़ने और फूट का नहीं है।

इसलिए मैं अपने देशवासी सभी स्त्री-पुरुषों से, जिनके हृदयों में भारत का प्रेम है और जो उसकी जनता को उठाना चाहते हैं, यह अनुरोध करता हूँ कि आपस में भेद उत्पन्न करने वाली दीवारों को हटा दें और एक महान् राष्ट्र क उपयुक्त इस ऐतिहासिक तथा विशाल उद्योग में मिल-जुल कर भाग लें।

सभी सरकारी नौकरों से, चाहे वे फौजी हों चाहे गैर-फौजी, मैं अनुरोध करूँगा कि वे दृढ़ श्रद्धा से भारत की सेवा करें और सचाई, परिश्रम, योग्यता और निष्पक्षता से अपने कर्त्तव्य का पालन करें। जो इस संकट के समय

अपना कर्त्तव्य नहीं पालन करता वह भारत और उसके लोगों के प्रति अपने कर्त्तव्य से चूकता है ।

देश के युवकों से मैं विशेष रूप से अनुरोध करूंगा, क्योंकि वे आने वाले कल के नेता हैं और उन पर भारत के मान और स्वतंत्रता की रक्षा का भार आयेगा।

मेरी पीढ़ी एक बीतती हुई पीढ़ी है और शीघ्र ही हम भारत की प्रज्वलित मशाल, जो कि उसकी महान और सनातन आत्मा की प्रतीक है, युवा हाथों और सुदृढ़ बाहुओं को सौंप देंगे । मेरी यह कामना है कि वे उसे ऊपर उठाए रक्खें और उसके प्रकाश को कम अथवा धुंधला न होने दें, जिससे कि वह प्रकाश घर-घर में पहुँच कर, हमारी जनता में श्रद्धा, साहस और समृद्धि उत्पन्न करे ।

महात्मा गांधी

प्रकाश बुझ गया

मित्रो और साथियो, हमारे जीवन से प्रकाश जाता रहा और सब तरफ अँधेरा छा गया है। मैं नहीं जानता कि मैं आपसे क्या कहूँ। हमारे प्रिय नेता, जिन्हें हम बापू कहते थे, जो राष्ट्रपिता थे, अब नहीं रहे। शायद मेरा ऐसा कहना गलत है। फिर भी हम उन्हें अब न देखेंगे, जैसा कि हम इन बहुत से वर्षों से देखते आए हैं। उनके पास दौड़ कर सलाह लेने या उनसे सांत्वना पाने के लिए अब हम न जा सकेंगे। यह एक भयानक आघात है—केवल मेरे लिए ही नहीं बल्कि इस देश के करोड़ों लोगों के लिए। और इस आघात की व्यथा मेरे या अन्य किसी के परामर्श से कम नहीं हो सकती।

मैंने कहा कि प्रकाश जाता रहा, लेकिन मैंने गलत कहा; क्योंकि वह प्रकाश, जिसने कि इस देश को आलोकित किया, कोई साधारण प्रकाश नहीं था। जिस प्रकाश ने इस देश को इन अनेक वर्षों में आलोकित किया है वह आने वाले अनेक वर्षों तक इस देश को आलोकित करता रहेगा और एक हजार वर्ष बाद भी यह प्रकाश इस देश में दिखाई देगा और दुनिया इसे देखेगी और यह अनगिनत हृदयों को शांति देगा। क्योंकि वह प्रकाश तात्कालिक वर्तमान से कुछ अधिक का प्रतीक था, वह जीवित और शाश्वत सत्यों का प्रतीक था और हमें ठीक मार्ग का स्मरण दिलाते हुए तथा इस प्राचीन देश को भूलों से बचाते हुए स्वतंत्रता की ओर ले जाने वाला था।

यह सब तब हुआ है, जबकि उनके सामने बहुत कुछ और करने को था। हम उनके संबंध में ऐसा कभी नहीं सोच सकते थे कि उनकी आवश्यकता नहीं रही या यह कि उन्होंने अपना काम पूरा कर दिया। लेकिन अब, विशेष रूप से, जबकि हमारे सामने इतनी कठिनाइयां हैं, उनका हमारे बीच में न होना एक ऐसी चोट है जिसका सहन करना बड़ा कठिन है।

एक पागल आदमी ने उनके जीवन का अन्त कर दिया। जिसने ऐसा किया उसे मैं पागल ही कह सकता हूँ। फिर भी, पिछले वर्षों और महीनों में देश में काफी विष फैलाया गया है और उस विष ने लोगों के मन पर अपना असर डाला है। हमें इस विष का सामना करना है, हमें इस विष को जड़ से उखाड़ना है, और हमें उन सभी संकटों का सामना करना है, जो कि हमें

---

३० जनवरी, १९४८ को नई दिल्ली से प्रसारित भाषण।

घेरे हुए हैं। और उनका सामना करना है, पागलपन या बुराई से नहीं, बल्कि उसी ढंग से, जिस ढंग से कि हमारे प्रिय नेता ने हमें सिखाया है।

अब पहली बात याद रखने की यह है कि हममें से किसी को क्रोध के आवेश में कदापि कोई अनुचित कार्य नहीं करना है। हमें सशक्त और दृढ़ निश्चयी लोगों की भाँति आचरण करना है, सभी संकटों का जो हमें घेरे हुए हैं, दृढ़ता से सामना करते हुए और अपने महान शिक्षक और महान नेता की उन आज्ञाओं का, जो उन्होंने दी हैं, दृढ़ता से पालन करते हुए और सदा यह याद रखते हुए आचरण करना है कि यदि, जैसा मुझे विश्वास है, उनकी आत्मा हमें देख रही है, तो किसी भी बात से उनकी आत्मा इतनी अधिक अप्रसन्न नहीं हो सकती जितनी कि यह देख कर कि हमने कोई निकृष्ट आचरण किया है या कोई हिंसा का काम किया है।

इसलिए हमें ऐसा काम न करना चाहिये। लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं कि हम कमजोरी दिखलावें, बल्कि यह कि हमें मजबूती से और मिल-जुल कर अपने आगे की सब कठिनाइयों का सामना करना चाहिए। हमें एक साथ मिल कर रहना चाहिए और इस महान विपत्ति के सामने अपनी छोटी-छोटी तकलीफों और कठिनाइयों और आपस के झगड़ों का अन्त कर देना चाहिए। यह महान दुर्घटना हमारे लिए इस बात की द्योतक है कि हम जीवन की सभी बड़ी बातों को याद रक्खें और उन सभी छोटी बातों को, जिनका हम जरूरत से अधिक ध्यान करते रहे हैं, भूल जावें। अपनी मृत्यु द्वारा उन्होंने हमें जीवन की बड़ी बातों का, उस जीवित सत्य का, स्मरण दिलाया है, और यदि हम इसे याद रखते हैं, तो भारत का भला होगा।

कुछ मित्रों का प्रस्ताव था कि महात्मा गांधी का शव कुछ दिनों तक लेपादि द्वारा सुरक्षित रक्खा जाय, जिससे कि करोड़ों व्यक्ति उन्हें अपनी अंतिम श्रद्धांजलि भेंट कर सकें। लेकिन यह उनकी इच्छा थी, और इसे उन्होंने बार-बार दुहराया था कि ऐसी कोई बात न होनी चाहिए। हमें ऐसा न करना चाहिए। वे लेपादि द्वारा शरीर को सुरक्षित रखने के घोर विरोधी थे। इसलिए हम लोगों ने उनकी इच्छा का पालन करने का निश्चय किया, दूसरों की इच्छा इससे भिन्न चाहे जितनी रही हो।

इसलिए शनिवार को दिल्ली शहर में यमुना नदी के किनारे उनका दाह-संस्कार होगा। शनिवार को दोपहर से पहले ११-३० बजे बिड़ला-भवन से उनकी अर्थी निकाली जायगी और यह एक पूर्व-निश्चित मार्ग से चलकर यमुना नदी तक जायगी।

शाम के लगभग ४ बजे दाह संस्कार होगा। स्थान और मार्ग की सूचना रेडियो तथा समाचार-पत्रों द्वारा दे दी जायगी।

दिल्ली के लोगों को, जो अपनी अंतिम श्रद्धांजलि भेंट करना चाहें, इस मार्ग के किनारे इकट्ठे हो जाना चाहिए। मैं यह सलाह न दूंगा कि बहुत लोग बिड़ला भवन में आवें, बल्कि यह कि बिड़ला भवन से लेकर यमुना तक के इस लम्बे मार्ग के दोनों ओर इकट्ठे हो जायें । मैं उम्मीद करता हूँ कि वे शांतिपूर्वक और बिना प्रदर्शन के ऐसा करेंगे। इस महान आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पण करने का यही सबसे अच्छा और उपयुक्त ढंग होगा। इसके अतिरिक्त शनिवार हम सबके लिए उपवास तथा प्रार्थना का दिन होना चाहिए।

जो लोग दिल्ली से बाहर भारत में अन्य जगहों में रहते हैं, वे भी निस्संदेह इस अंतिम श्रद्धांजलि में, जिस रूप में उनसे होगा, भाग लेंगे। उनके लिए भी यह दिन उपवास और प्रार्थना का होना चाहिए। और दाह-कर्म के लिए निश्चित समय पर, यानी शनिवार को सायंकाल ४ बजे लोगों को नदी अथवा समुद्र तट पर जाकर प्रार्थना करनी चाहिए। जब हम प्रार्थना करें, तो सबसे बड़ी प्रार्थना यह होगी कि हम इस बात की प्रतिज्ञा करें कि अपने को सत्य के लिए और उस उद्देश्य के लिए, जिसके लिए हमारा यह महान देशवासी जीवित रहा और मरा, हम अपने को अर्पित करेंगे। यही सबसे अच्छी प्रार्थना है जो हम उनके और उनकी स्मृति के प्रति भेंट कर सकते हैं। यही सबसे अच्छी प्रार्थना है जो कि हम भारत और अपने लिए कर सकते हैं। जय हिन्द ।

एक गरिमा अदृश्य हो गई

महोदय, आपने जो कुछ कहा है उससे क्या मैं अपने को सम्मिलित कर सकता हूँ? प्रमुख व्यक्तियों के निधन पर इस सभा में श्रद्धांजलि भेंट करने और उनकी प्रशंसा तथा शोक स्मृति में कुछ कहने की परम्परा रही है। अपने मन में मैं निश्चय नहीं कर पाया हूँ कि मेरे लिये या इस सभा में किसी के लिये भी इस अवसर पर अधिक कहना उपयुक्त भी होगा, क्योंकि मैं व्यक्तिगत रूप से भी और भारत सरकार का मुखिया होने के नाते भी घोर लज्जा का अनुभव करता हूँ कि हम अपनी सबसे महान् निधि की रक्षा करने में असफल रहे। हम इस सम्बंध में ठीक उसी प्रकार असफल रहे हैं जिस प्रकार कि कई महीनों से हम बहुत से निर्दोष पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों की रक्षा करने में असफल रहे हैं। यह हो सकता है कि यह भार और कार्य हमारी या किसी भी सरकार की शक्ति से बाहर का रहा है। फिर भी यह असफलता है। और आज यह बात कि इस महान व्यक्ति को, जिसको हम असीम आदर और प्रेम प्रदान करते रहे हैं, हम न बचा सके, हम सभी के लिये लज्जाजनक है। एक भारतीय की हैसियत से मेरे लिये यह लज्जा की बात है कि एक भारतीय ने उनके विरुद्ध अपना हाथ उठाया; एक हिन्दू की हैसियत से भी मेरे लिये लज्जा की बात है कि एक हिन्दू ने आज के सब से बड़े भारतीय और इस युग के सब से महान् हिन्दू के प्रति यह नृशंस कर्म किया।

हम जब लोगों की प्रशंसा करते हैं तो भली भाँति चुने हुए शब्दों में करते हैं, और हमारे पास बड़प्पन की कुछ माप-तौल होती है। पर हम उनकी किस प्रकार प्रशंसा करें और माप-तौल करें, क्योंकि वे उस साधारण मिट्टी के बने ही न थे जिसके कि हम बने हैं। वे आये, उनका जीवन काफी लम्बा रहा और वे उठ गये। इस सभा में उनके प्रति हमारी प्रशंसा के शब्दों की आवश्यकता नहीं, क्योंकि उन्होंने जीवन में जो प्रशंसा प्राप्त की वह इतिहास के किसी जीवित व्यवित को प्राप्त नहीं हुई। उनकी मृत्यु के बाद इन दो-तीन दिनों में उन्हें संसार भर की श्रद्धांजलि प्राप्त हुई है, हम उसमें क्या जोड़ सकते हैं? हम, जो कि उनके बच्चे रहे हैं, और कदाचित् उनके शरीर से उत्पन्न बच्चों से अधिक उनके सन्निकट रहे हैं, उनकी प्रशंसा कैसे कर सकते हैं? क्योंकि हम चाहे कितने ही, अयोग्य हों, हम, अधिक या कम अंश में, उनकी आत्मा के बच्चे रहे हैं।

संविधान परिषद् (व्यवस्थापिका), नई दिल्ली, में २ फरवरी, १९४८ को दिया गया वक्तव्य।

एक आलोक जाता रहा और वह सूर्य जो हमारे जीवन को गर्मी और प्रकाश देता था, डूब गया और हम ठंड और अँधकार में काँप रहे हैं। फिर भी, वह न चाहेगा कि हम ऐसा अनुभव करें। आखिर उस आलोक ने, जिसे हमने इतने वर्षों तक देखा, दैवी ज्वाला के उस मनुष्य ने, हमें भी बदला—और हम जैसे भी हैं, इन वर्षों में उन्हीं के बनाये हुए हैं, और उस दैवी ज्वाला से हममें से बहुतों ने एक छोटी-सी चिनगारी ग्रहण की है, जिसने हमें शक्ति दी है, और जिसने हमसे कुछ हद तक उनके निर्दिष्ट मार्ग पर काम कराया है। इसलिये यदि हम उनकी प्रशंसा करते हैं तो हमारे शब्द कुछ तुच्छ लगते हैं, और यदि हम उनकी प्रशंसा करते हैं तो हम कुछ हद तक अपनी भी प्रशंसा करते हैं। बड़े आदमियों और विख्यात आदमियों के काँसे और संगमर्मर के स्मारक बनाये जाते हैं, लेकिन यह ज्योति-पुरुष अपने जीवन-काल में अनेक कर्त्तव्यों द्वारा करोड़ों-करोड़ों हृदयों में प्रतिष्ठित हुआ, इससे हम सभी–चाहे थोड़ी मात्रा में ही सही–कुछ कुछ वैसे ही बन गये जैसे कि वे थे। इस प्रकार वे सारे भारत में फैल गये, न केवल महलों में, या चुनी हुई जगहों में या सभाओं में बल्कि छोटे और पीड़ित लोगों की प्रत्येक झोंपड़ी और कुटिया में। वे करोड़ों व्यक्तियों के हृदयों में जीवित हैं और अनंत युगों तक जीवित रहेंगे।

तो हम उनके बारे में और सिवा इसके क्या कह सकते हैं, कि इस अवसर पर हम विनम्रता का अनुभव करें। उनकी प्रशंसा करने के हम अधिकारी नहीं हैं—उनकी, जिनका हम पूरी तरह और पर्याप्त रूप में अनुसरण नहीं कर सके। यह उनके प्रति प्रायः अन्याय होगा कि हम उनके विषय में कुछ शब्द कह कर रह जायँ, जब कि वे हम से काम और मेहनत और त्याग की अपेक्षा करते थे। बहुत अंशों में, पिछले तीस या अधिक सालों में, उन्होंने इस देश को त्याग की ऐसी पराकाष्ठा तक पहुँचाया, जैसी कि इस क्षेत्र में अन्यत्र न मिलेगी। वे इसमें सफल हुए। फिर भी अन्त में ऐसी घटनाएँ घटीं जिनसे निस्संदेह उन्हें बड़ा ही कष्ट पहुँचा, यद्यपि उनकी कोमल मुखाकृति से मुसकान कभी न गई और न उन्होंने किसी से कोई कठोर वचन कहा। फिर भी, उन्हें कष्ट हुआ होगा—कष्ट इस बात का कि यह पीढ़ी जिसे कि उन्होंने शिक्षा दी थी, कसौटी पर पूरी न उतरी, और कष्ट इस बात का कि हम लोग उनके दिखाए मार्ग को छोड़कर चले। और अन्त में उन्हीं के एक बच्चे के हाथ ने—क्योंकि वह भी तो किसी भी दूसरे भारतीय की तरह उनका बच्चा ही है—उन्हें मार गिराया।

बहुत युगों बाद इतिहास इस काल पर, जिससे हम गुजरे हैं, अपना निर्णय देगा। वही इसकी सफलताओं और विफलताओं का निश्चय करेगा। हम लोग इसके इतने सन्निकट हैं कि ठीक-ठीक निश्चय नहीं कर सकते और यह नहीं समझ सकते कि

क्या हुआ है, और क्या नहीं हुआ। हम जो कुछ जानते हैं वह यह है कि एक गरिमा थी जो अब नहीं रही। हम जो कुछ जानते हैं वह यह है कि तत्काल अंधकार है, यद्यपि निश्चय ही वह बहुत घना अंधकार नहीं है क्योंकि जब हम अपने दिलों को देखते हैं तो अब भी उस जीवित ज्वाला को पाते हैं, जिसे उन्होंने प्रदीप्त किया था और यदि यह जीवित ज्वाला मौजूद है, तो इस देश में अन्धकार नहीं हो सकता और हम लोग, अपने यत्न से उनको याद करते और उनके मार्ग पर चलते हुए, इस देश को, स्वयं तुच्छ होते हुए भी, जो ज्वाला उन्होंने हमें दी, उसी से फिर आलोकित करने में सफल होंगे।

वे कदाचित् अतीत भारत के—और क्या मैं यह कहूँ कि भविष्य के भारत के भी ?—सब से बड़े प्रतीक थे जो हमें प्राप्त हो सकते थे। हम उस अतीत और आने वाले भविष्य के बीच वर्तमान के भयावह छोर पर खड़े हैं और हम सभी प्रकार के खतरों का सामना कर रहे हैं, और सब से बड़ा खतरा कभी-कभी विश्वास की कमी है, जो हमारे सामने उपस्थित होती है, नैराश्य की भावना है जो सामने आती है, हृदय और आत्मा का हताश होना है जिसे हम उस समय अनुभव करते हैं जब कि हम आदर्शों को गिरता देखते हैं, जब हम देखते हैं कि वे बड़ी बातें, जिनकी हम चर्चा करते थे, थोथे शब्द मात्र रह गए हैं, और जीवन दूसरी ही दिशा में जाता दीखता है। फिर भी, मैं विश्वास करता हूँ कि कदाचित् यह समय शीघ्र ही बीत जायगा।

अपने जीवन में तो यह ईश्वरीय पुरुष महान् था ही, वह अपनी मृत्यु में भी महान् हुआ, और मुझे इसमें किंचित् संदेह नहीं कि अपनी मृत्यु द्वारा भी उसने उस बड़े उद्देश्य की सेवा की, जिसकी कि वह आजन्म करता रहा। हम उनके लिये शोकाकुल हैं, और सदा शोकाकुल रहेंगे क्योंकि हम मनुष्य हैं और अपने प्यारे स्वामी को नहीं भूल सकते। लेकिन मैं जानता हूँ कि वे इसे न पसन्द करते कि हम उनके लिये शोक करें। जब उनके प्रियतम और निकटतम व्यक्ति उठ गये हैं तो उनकी आँखों में आँसू नहीं आये हैं—केवल उनमें एक दृढ़ निश्चय उत्पन्न हुआ है कि जिस महान् उद्देश्य की सेवा करना उन्होंने चुना उसमें वे लगे रहें। इसलिये यदि हम केवल शोकाकुल होते हैं तो वे हमें झिड़केंगे। यह उनको श्रद्धाँजलि भेंट करने का कोई ढंग नहीं। एकमात्र ढंग यह है कि हम अपना दृढ़ निश्चय प्रकट करें और यह नई प्रतिज्ञा करें कि हम उचित आचरण करेंगे और अपने को उस महान् कार्य के लिये समर्पित करेंगे जिसे कि उन्होंने उठाया था, और जिसे कि उन्होंने इतनी बड़ी हद तक पूरा किया। इसलिये हमें काम करना है, हमें परिश्रम करना है, हमें त्याग करना है और इस प्रकार, कम-से-कम कुछ हद तक, यह सिद्ध करना है कि हम उनके योग्य अनुयायी हैं।

महोदय, जैसा आपने कहा, यह स्पष्ट है कि यह घटना, यह दुर्घटना, केवल एक पागल आदमी का असंबद्ध कृत्य नहीं है। यह परिणाम है अहिंसा और घृणा के उस खास वातावरण का जो इस देश में कई महीनों और वर्षों से, खासकर पिछले कई महीनों से बना हुआ है। वह वातावरण हमारे चारों ओर व्याप्त है और हमें घेरे हुए है, और यदि हमें उस उद्देश्य की पूर्ति करनी है जिसे कि उन्होंने हमारे सामने रक्खा, तो हमें इस वातावरण का मुकाबला करना है, उसके विरुद्ध लड़ना है और घृणा और हिंसा, आदि बुराइयों को जड़ से उखाड़ फेंकना है।

जहाँ तक इस सरकार का संबंध है, मैं आशा करता हूँ कि वह इसका सामना करने में कोई यत्न, कोई उद्योग उठा न रखेगी, क्योंकि अगर हम ऐसा नहीं करते, अगर हम अपनी कमजोरी से या किसी कारण से जिसे हम पर्याप्त समझते हैं, शब्द या लेख या कार्य द्वारा इस हिंसा को और घृणा के इस प्रचार को रोकने का समुचित प्रयत्न नहीं करते तो हम वास्तव में इस सरकार में रहने के योग्य नहीं हैं, हम लोग निश्चय ही उनके अनुयायी होने के योग्य नहीं हैं और हम उस महान् आत्मा के लिये, जो दिवंगत हुई है, प्रशंसा के शब्द कहने के योग्य भी नहीं हैं। इसलिये इस अवसर पर, या किसी भी अवसर पर, जब हम इस महान् दिवंगत स्वामी के विषय में सोचें तो उचित यही है कि हम काम और परिश्रम और त्याग को ध्यान में रखकर सोचें। जहाँ भी हम बुराई देखते हों उसका सामना करने के विचार से और जिस रूप में उन्होंने हमारे सामने सत्य को रक्खा है उसे ग्रहण किये रहने के विचार से हम उनके विषय में सोचें, और यदि हम ऐसा करेंगे, तो हम चाहे जितने अयोग्य हों, हम कम से कम अपने कर्तव्य का पालन करेंगे और उनकी आत्मा के प्रति उचित श्रद्धांजलि भेंट करेंगे।

वे चले गये और सारा भारत आज अपने को अनाथ अनुभव कर रहा है और बिछोह के शोक में डूब रहा है। हम सभी को इस भावना का आभास है और मैं नहीं कह सकता कि इससे हम कब मुक्त होंगे। साथ ही साथ हम एक गर्वपूर्ण कृतज्ञता की भावना का भी अनुभव कर रहे हैं कि इस पीढ़ी का सौभाग्य रहा है कि हम इस महान् व्यक्ति के संपर्क में आये। आने वाले युगों में, अब से सैकड़ों, और संभवतः हजारों वर्ष बाद, लोग इस पीढ़ी का ध्यान करेंगे जब कि यह ईश्वरीय पुरुष इस धरती पर चलता था, और हमारा ध्यान करेंगे, जो कि चाहे जितने छोटे रहे हों, उनके दिखाये मार्ग पर और उस पवित्र धरती पर, जिस पर उनके पैर पड़े, चल सके हैं। आइये हम उनके योग्य बनें।

अंतिम यात्रा

आखिरी सफर खतम हुआ, अंतिम यात्रा समाप्त हो गई। प्रायः ५० वर्ष से भी अधिक समय तक महात्मा गांधी हमारे इस देश में सर्वत्र भ्रमण करते रहे, हिमालय और सीमा-प्रान्त और ब्रह्मपुत्र से लेकर कन्याकुमारी तक सारे प्रांतों में, देश के सभी हिस्सों में वे घूमे—खाली तमाशा देखने के लिये नहीं बल्कि जनता की सेवा करने के लिये, जनता को पहिचानने के लिये। शायद और कोई भी भारतीय ऐसा न होगा जिसने इस भारत देश में इतना भ्रमण किया हो, यहाँ की जनता को इतना पहिचाना हो, और जनता की इतनी सेवा की हो। तो उनकी इस दुनिया की यात्रा खत्म हुई। हमारी और आपकी यात्राएँ अभी जारी हैं।

कुछ लोग उनके लिए शोक करते हैं। और शोक करना कुछ मुनासिब भी है, उचित भी है। लेकिन शोक किस बात का? गांधी जी के गुजरने का या किसी और बात का? महात्मा जी का जीवन और महात्मा जी की मृत्यु दोनों ही ऐसी रही हैं, कि हमेशा के लिये हमारा देश उनकी वजह से चमकता रहेगा।

शोक किस बात का? हाँ, शोक अपने पर है, महात्मा जी पर नहीं। अपने ऊपर, अपनी दुर्बलता पर, हमारे दिलों में जो द्वेष है, जो अदावतें हैं और जो लड़ाइयां हम आपस में लड़ते हैं उन पर। याद रखिये, महात्मा जी ने किस बात के लिए अपनी जान दी? याद रखिये, क्या बात पिछले चन्द महीनों से उन्होंने विशेष-रूप से पकड़ी थी? अब हम उनका आदर करते हैं परन्तु आदर खाली नाम का तो नहीं होना चाहिये, आदर होना चाहिये उनकी बातों का, उनके उपदेश का और विशेषकर उस बात का जिसके लिये उन्होंने अपना जीवन अर्पण कर दिया। और फिर हम और आप यहाँ इस त्रिवेणी से, गंगा तट से, घर जाकर जरा अपने अपने दिलों से पूछें कि हमने अपना कर्तव्य कितना किया। हमें जो रास्ता महात्मा जी ने दिखाया था उस पर कहाँ तक हम चले, कहां तक हमने आपस में मेल रखने की कोशिश की, कहां तक लड़ाई की? अगर इन बातों पर हम विचार करें और फिर सही रास्ते पर चलें तभी हमार लिये और हमारे देश के लिये भला है। एक महापुरुष हमारे देश में आया, दुनिया भर में उसकी चमक फैली, हमारा देश भी चमका और फिर

---

१२ फरवरी, १९४८ को प्रयाग में त्रिवेणी संगम पर पूज्य बापू के अस्थि-विसर्जन के बाद दिया गया भाषण।

हमारे देश के और हमारे ही एक भाई के हाथ से उनकी हत्या हुई। क्या बात है? आप सोचें। एक आदमी पागल हो या न हो, लेकिन क्या बात है कि इस आदमी ने हत्या की। इसलिये कि इस देश में एक दूसरे के दिलों में, एक दूसरे के विरुद्ध, दुश्मनी और लड़ाई-झगड़े का विष फैलाया गया है। उसी विष में से ये सब जहरीले पौधे निकल रहे हैं। अब आपका और हमारा काम है कि उस जहर को हम खत्म करें। हमने अगर महात्मा जी से कुछ सबक सीखा है तो किसी एक व्यक्ति से, एक शख्स से, दुश्मनी का कोई सवाल ही नहीं उठता। हम किसी से दुश्मनी नहीं करेंगे, लेकिन जो बुरा काम है, जो जहरीली बात है, उससे दुश्मनी करेंगे, उसका मुकाबला करेंगे और उसको हरायेंगे। यह सबक हमने महात्मा जी से सीखा है। हम कमजोर हैं, फिर भी उनके साथ रहकर कुछ बड़प्पन हममें भी आ गया है। उनके साये में हम भी लोगों को कुछ लम्बे चौड़े मालूम होने लगे। लेकिन असल में तेज उनका था, प्रताप उनका था, शक्ति उनकी थी और रास्ता उनका था। कुछ लड़खड़ाते, कुछ ठोकरें खाते हम भी उस रास्ते पर चले, इसलिये कि हम भी कुछ सेवा कर सकें। देश का अब वह सहारा गया, लेकिन मैं कैसे कह सकता हूँ कि वह गया? क्योंकि यहाँ आज जो लाखों आदमी मौजूद हैं उनके अन्दर से और देश के करोड़ों आदमियों के दिलों से क्या गाँधी जी की तस्वीर हटेगी? नहीं, क्यों कि आज जिन करोड़ों लोगों ने उनको देखा है वे याद रखेंगे। आगे नई नस्लें आयेंगी, नये अंकुर उगेंगे, जो अपनी आंखों से उन्हें नहीं देखेंगे, लेकिन फिर भी उनके दिल में वह तस्वीर जमी रहेगी, क्योंकि देश के इतिहास में वह जम गई है। आज कहा जाता है कि वह गाँधी-युग एक तरह से खत्म हुआ, जो ३०–४० वर्ष हुए भारत में शुरू हुआ था। लेकिन खत्म कैसे हुआ, समाप्त कैसे हुआ? वह तो एक तरह से, एक दूसरे ढंग से अब शुरू हुआ है। अब तक उनके साये में हम उनका सहारा लेते थे, उनसे हमें मदद मिलती थी। अब हमें और आपको अपने पैरों पर खड़ा होना है। हाँ, उनके उपदेश का सहारा लेना है, उनकी याद का सहारा लेना है, उनसे थोड़ा-बहुत जो सीखा है उसको सामने रखकर चलना है। सहारा तो उनका काफी है; लेकिन अब अपने पैरों पर खड़ा होना है और विशेषकर जो उनका आखिरी उपदेश है, संदेश है, उसको याद रखना है। वह उपदेश यह है कि हमें डरना नहीं चाहिये। वे हमेशा यह सिखाते थे कि हम अपने दिल से डर निकाल दें, द्वेष निकाल दें, एक दूसरे से लड़ाई-झगड़ा बन्द कर दें, और अपने देश को आजाद करें। उन्होंने हमारे देश को आजाद कराया, स्वराज्य लिया। स्वराज्य लिया और ऐसे तरीके से लिया कि सारी दुनिया को आश्चर्य हुआ। वह हमें मिला तो, लेकिन मिलते वक्त हम उनका सबक भूल गये, हम बहक गये और लड़ाई-झगड़ा करने लगे जिससे देश का नाम बदनाम हुआ। आज कल हमारे यहाँ कितने ही नौजवान हैं जो बहके हुए हैं और न जाने क्या-क्या नारे लगाते हैं, और न जाने क्या-क्या गलत बातें कहते हैं।

पर वे इस देश के नौजवान हैं। हमें उनको सही रास्ते पर लाना है। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि लोगों के दिलों में, यह जो द्वेष का जहर फैला हुआ है, जो कहता है कि हिन्दू को मुसलमान से लड़ना है मुसलमान को हिन्दू से लड़ना है या सिख को और किसी से लड़ना है, जो धार्मिक झगड़े पैदा करता है या धर्म के नाम पर राजनैतिक झगड़े पैदा करता है, वह बुरी चीज है, और उसे दूर करना ही होगा। उसने हमारे देश को नीचे गिराया है और अगर हम होशियार नहीं होते तो हमें तथा हमारी आज़ादी को तबाह करेगा। इसलिये हिन्दुस्तान को होशियार करने के लिये महात्मा जी ने लगभग दो-तीन सप्ताह पहले उपवास किया था। उनकी तपस्या और उनके बलिदान से जनता कुछ जागी, कुछ हम ने और जनता के प्रतिनिधियों ने जाकर उनसे इकरार किया, प्रतिज्ञा की कि हम इस गलत रास्ते पर नहीं चलेंगे। उन्होंने अपना व्रत उपवास खत्म किया। उस समय किसको मालूम था कि थोड़े ही दिनों में मौन और उपवास का एक लम्बा सिलसिला शुरू हो जायगा? सप्ताह में, वे एक दिन मौन रहते थे, पर आज हमेशा के लिये हमारे और आपके लिये मौन हो गये। तो आखिरी सबक उनका यह था इस लड़ाई-झगड़े को रोका जाय। बहुत कुछ लोग उस सबक को समझे, आप और हम भी सब समझे और देश भी समझा। आप यह याद रखिये कि अगर ऐसा लड़ाई-झगड़ा जारी हुआ, अगर ऐसी बातें हमारे देश में हुईं, जिनका एक नमूना और बहुत ही खतरनाक नमूना महात्मा जी की मौत है, अगर हमारे देश में लोग हाथ उठाने लगे, और महात्मा जी जैसे महापुरुष की हत्या करने लगे, सो भी इस लिये कि वे उनकी राय से सहमत नहीं हैं या उनकी राजनीति को समझते नहीं हैं, तो यह देश के लिये बड़ा खतरनाक होगा। हम कहते हैं कि हमारे देश में जनता का राज्य हो, स्वराज्य हो, इसके माने क्या है? इसके माने ये हैं कि हम एक-दूसरे को समझें, सारी जनता अपने प्रतिनिधि चुने और जो बात वे निश्चय करें, वह की जाय। अगर इस तरह हम एक-दूसरे को समझ कर नहीं चलते और हर आदमी एक दूसरे से लड़ता है तो देश कैसे बचेगा? वह तो तबाह हो जायगा। यहाँ हमारे देश के फौज के बहुत से सिपाही बैठे हैं। अपने देश की आजादी और देश के लिये गरूर करना उनका कर्तव्य है। वे देश की सेवा करें, देश की रक्षा करें। अगर सिपाही एक-दूसरे से लड़ा करें तो फौज की फौज ही खत्म हो जायगी। फिर फौज की ताकत तो नहीं रही। इस तरह देश की ताकत और देश की शक्ति एक दूसरे से लड़ने से खत्म होती है। झगड़े की जो बातें हों उनका मिलकर और एक-दूसरे को समझाकर, फैसला कर लेना, यही ठीक स्वराज्य है, ठीक जनता का राज्य है। तो इस राय पर जो लोग नहीं चलना चाहते वे दूसरे रास्ते पर चलते हैं। किन्तु जब वे हमको और आपको नहीं समझा सकते तो फिर तलवार और बन्दूक लेकर लोगों को मारना शुरू कर देते हैं।

वे अपने भाइयों को, इस लिये मारते हैं क्योंकि जनता उनके विरुद्ध है। अगर जनता उनके विरुद्ध न हो तो वे फिर जनता के बल पर हुकूमत की कुर्सी पर बैठ सकते हैं। लेकिन जब वे यह जानते हैं कि जनता उनके विरोध में है और वे जनता को अपनी तरफ नहीं ला सकते तो झगड़ा-फसाद करते हैं ताकि हुकूमत में उलट-फेर हो और उससे वे कोई फायदा उठायें। लेकिन यह समझना लड़कपन है कि मार-पीट या झगड़ा फसाद करके इस देश की हुकूमत बदली जा सकती है या उसमें कोई उलट-फेर किया जा सकता है। जो आदमी कुछ भी नहीं समझता वही ऐसी बात कह सकता है। फिर भी ऐसी बात हुई तो क्यों हुई? इसलिये कि हमारे देश के बहुत से लोगों ने, जिनमें वे लोग भी शामिल हैं जो ऊँची-ऊँची पदवियों पर हैं, इस जहरीले विष की फिजा को देश में बढ़ाया। अब हमारा और आपका काम है कि इस जहर को पकड़ें और इसे खत्म करें, नहीं तो याद रखिये यह देश इस जहर में डूब जायगा। मुझे विश्वास है कि हम इसका विरोध पूरी तरह करेंगे। हमने बहुत कुछ खो कर यह सबक सीखा है। हमारे दिल और हाथ-पैर इसलिये कमजोर थे कि महात्मा जी की मृत्यु हो चुकी है। हम और आप में से कितने ऐसे हैं जो इस बात की प्रतिज्ञा नहीं करेंगे कि हम ऐसा झगड़ा-फसाद नहीं होने देंगे, जिससे महात्मा जी मरे, जिससे हमारे देश का, ही नहीं सारी दुनिया का महापुरुष मरा। इस प्रतिज्ञा को जहाँ तक हममें ताकत है, हम पूरा करेंगे।

तो आप और हम सब इस गंगा के तट से वापस जायंगे। हमारा दिल उदास है, उसमें अकेलापन है। विचार आता है कि क्या अब कभी हम गाँधी जी को नहीं देखेंगे। दौड़-दौड़ कर हम उनके पास जाते थे। जब कोई दिल में परेशानी होती थी, जब कोई बड़ा प्रश्न होता था और समझ में न आता था तब हम उनसे सलाह लेते थे। अब कोई सलाह देने वाला नहीं है और न कोई हमारे बोझ को उठाने वाला है। हमारे देश में न जाने कितने हजार या लाख पुरुष उनको अपना मित्र समझते थे और उनके पास दौड़-दौड़ कर जाते थे। सभी उनके बच्चे से हो गये थे। इसीलिये उनका नाम 'राष्ट्रपिता' था। वे हमारे देश के पिता थे। उनके न रहने से देश के लाखों करोड़ों घरों में आज उतना ही शोक है जितना कि पिता के मर जाने से होता है। तो हम यहाँ से जायंगे उदास होकर, अकेले होकर। पर साथ ही हम यहाँ से जायंगे एक गरूर लेकर—गरूर इस बात का कि हमारे देश में हमारा नेता एक ऐसा महापुरुष था जिसने सम्पूर्ण देश को सचाई के रास्ते पर दूर तक पहुँचा दिया, और हमें जो लड़ाई का तरीका बताया वह भी हमेशा सचाई का था। याद रखिये, उन्होंने जो रास्ता हमें दिखाया वह लड़ाई का था, वह चुपचाप हिमालय की चोटी पर बैठने वाले महात्मा का नहीं था। वे हमेशा अच्छे कामों के लिये लड़ाई लड़ने वाले थे।

उनकी लड़ाई सत्य, अहिंसा और शांति की थी, जिससे उन्होंने ४० करोड़ आदमियों को आजाद कराया। इसलिये हमें चुपचाप नहीं बैठा रहना है। हमें अपना कर्तव्य पूरा करना है और हमारा कर्तव्य यह है कि हमने जो प्रतिज्ञा की है, उसे पूरा करें और हमारे देश में जो विष फैला है और खराबियाँ पैदा हुई हैं उनको हटाकर सच्चाई के रास्ते पर, धर्म के रास्ते पर चलें। हम इस देश को ऐसा स्वतंत्र और आजाद बनायें कि इसमें हर धर्म का आदमी, खुशी से मिलकर रहे और एक-दूसरे की सहायता करे और दुनिया को भी हम रास्ता दिखायें। यह प्रतिज्ञा करके हम यहाँ से जायं तो हमारे लिये भला है। हमने एक बड़ा सबक तो सीखा और अगर हम अपनी दुर्बलता के कारण इस बात को नहीं कर सके, तो फिर यह कहा जायगा कि एक महापुरुष आया और चला गया लेकिन जनता उसके योग्य नहीं थी, बहकती थी, छोटी थी और उसके बड़ेपन को भी नहीं समझती थी।

इन पिछले तीस-चालीस वर्षों में आपने और हमने न मालूम कितनी बार 'महात्मा जी की जय' के नारे लगाये। सारे देश में वह आवाज गूंजी। परन्तु उस आवाज को सुनकर महात्मा जी का दिल दुखता था। वे अपनी जय क्यों चाहते। वे तो विजयी पुरुष थे। उनकी जय आप क्या करेंगे? जय तो हमारी और आपकी होने वाली है। उनकी जय तो है, हमेशा के लिये, एक विजयी पुरुष की हैसियत से। हजार—दस हजार वर्ष तक उनका नाम लिया जायगा। और जय हमारी और आपकी वे चाहते थे, इस देश की जनता की और विशेष कर गरीब जनता की। वे किसानों, हरिजन भाइयों, दरिद्रों और गिरे हुओं की सेवा करते थे और उनको जाकर उठाते थे। उनके ढंग पर उन्होंने अपना रहन-सहन बनाया और कोशिश की कि देश में कोई नीचा न हो। वे दरिद्रनारायण की चर्चा किया करते थे। इस तरीके से उन्होंने आपकी और हमारी जय चाही थी, देश की जय चाही थी। लेकिन हमारी और आपकी और देश की जय और तो कोई नहीं कर सकता था। वह तो हम अपने बाहुबल से ही कर सकते थे। इसलिये उन्होंने हमें मंत्र पढ़ाया और सिखाया कि हम क्या करें और क्या न करें। वे खाली ऊपरी जय नहीं चाहते थे, और देशों की तरह शोरगुल मचाकर या हुल्लड़ और बेईमानी करके या तलवार बंदूक भी चला कर वे जीतना नही चाहते थे, क्योंकि ऐसी जीत बहुत दिनों तक नहीं चलती। सत्य की विजय ही स्थायी विजय होती है। इसलिये अपनी लड़ाई में उन्होंने सत्य और अहिंसा के ही अस्त्र का सदा प्रयोग किया। जिस विजय की नींव सत्य पर रखी जाती है, उस पर कितनी ही बड़ी इमारत बनाई जा सकती है। ऐसी इमारत कभी गिरती नहीं, क्योंकि उसकी बुनियाद मजबूत है। आज कल की दुनिया में क्रांति होती है, इन्कलाब और उलट-फेर होते हैं, कभी

देश नीचे जाता है कभी ऊपर। फरेब, झूठ और दगाबाजी का बोलबाला है, यह आज कल की राजनीति है। उन्होंने हमें दूसरी ही राजनीति सिखाई, सचाई, अहिंसा, और एक दूसरे से प्रेम करने की राजनीति। उन्होंने हमें बताया कि हमारे इस भारत देश में बहुत से धर्म और मजहब हैं। ये बहुत दिनों से चले आये हैं और अब भारत के ही हो गये हैं, विदेश के नहीं। ये सब हमारे हैं और इनके मनाने वाले सब हमारे भाई हैं। हमें मिलकर रहना है। किसी को अधिकार न हो कि वह दूसरे के अधिकार को छीने, किसी को अधिकार न हो कि वह किसी दूसरे का हिस्सा ले। हमारी जनता का राज्य हो और उसमें सारे ३०–४० करोड़ हिन्दुस्तानियों का बराबर का भाग हो। यह न हो कि थोड़े से अमीर लोग उसके बड़े हिस्सेदार बन जायँ और हमारी सारी जनता गरीब ही रह जाय। यह स्वराज्य महात्मा जी का नहीं था, आम जनता का था और आम जनता का स्वराज्य एक कठिन बात है; लेकिन धीरे-धीरे हम इस तरफ जा रहे हैं उनका सबक सीख कर और उनकी शक्ति और तेज लेकर हम धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे हैं। लेकिन अब उनका यह आखिरी सबक देखकर समय आ गया है कि हम ज्यादा चुस्ती से आगे बढ़ें और समझें, उसकी खराबियों को खत्म करें और फिर आगे बढ़ें। तब असल में हम और आप बहुत जोरों से और सचाई से कह सकेंगे कि 'महात्मा गांधी की जय।'

सब से बड़ा भारतीय

दो सप्ताह हुए जब भारत ने और दुनिया ने उस दुर्घटना का हाल जाना जो भारत को आने वाले युगों तक कलंकित करेगी। ये दो सप्ताह दुःख और हृदय-मंथन के, प्रबल और दबे हुए भावों की उठती हुई बाढ़ के, और करोड़ों आंखों से गिरने वाले आँसुओं की धार के रहे हैं। काश कि ये आँसू हमारी कमजोरियों और छोटेपन को बहाकर हमें उस गुरु के कुछ योग्य बनाते जिसका मातम हम मना रहे हैं। इन दो सप्ताहों में भू-मंडल के कोने कोने से, राजाओं और सत्ताधारियों ने और बड़े-बड़े अधिकारियों और साधारण लोगों ने, जो स्वभावतः उन्हें अपना मित्र, साथी और नेता समझते थे, श्रद्धांजलियाँ भेंट की हैं।

भावनाओं की यह बाढ़ धीरे-धीरे ही कम होगी जैसा कि इस तरह की भावनाओं का नियम है। फिर भी हममें से कोई भी ऐसा नहीं है जो पहले जैसा बना रहे, क्योंकि वे हमारे जीवन और चिंतन के ताने-बाने में समा गये थे।

लोग उनके स्मारक के रूप में उनकी काँसे या संगमर्मर की मूर्त्तियाँ या स्तम्भ बनाने की बात चलाते हैं और इस तरह उनका उपहास करते हैं और उनके संदेश को झूठा बनाते हैं। हम उन्हें किस तरह की श्रद्धांजलि भेंट करें जिसे कि वे स्वयं पसंद करते? उन्होंने हमें जीने और मरने का ढंग बताया है और अगर हमने वह सबक नहीं सीखा, तो यही बेहतर है कि हम उनका कोई स्मारक न बनायें क्योंकि उनका जो एकमात्र उपयुक्त स्मारक हो सकता है वह है उनके दिखाये रास्ते पर श्रद्धा से चलना और जिन्दगी और मौत में अपना कर्तव्य पालन करना।

वे सबसे बड़े हिन्दू और सबसे बड़े भारतीय थे, इतना बड़ा अनेक पीढ़ियों में कोई नहीं हुआ, और उन्हें हिन्दू और भारतीय होने का गर्व था। उन्हें भारत से इसलिये प्रेम था कि उसने सदा ही कुछ अक्षुण्ण सत्यों का प्रतिनिधित्व किया है। यद्यपि वे बड़े ही धार्मिक व्यक्ति थे और उस राष्ट्र के पिता कहलाये जिसे कि उन्होंने स्वतंत्रता दिलाई, फिर भी किसी संकीर्ण धार्मिक या राष्ट्रीय बंधन से उनकी आत्मा बंधी नहीं थी। इस प्रकार वे एक महान् अन्तर्जातीय व्यक्ति बने। उनका विश्वास मनुष्य मात्र की एकता में था और उन्होंने विशेष रूप से सर्वत्र करोड़ों गरीबों, दुखियों और दलितों की सेवा को अपनाया था।

---

१४ फरवरी, १९४८ को नई दिल्ली से प्रसारित भाषण।

उनकी मृत्यु के अवसर पर जितनी श्रद्धांजलियाँ उन्हें भेंट हुईं, उतनी इतिहास में किसी दूसरे मनुष्य को नहीं मिलीं। कदाचित् सब से अधिक प्रसन्नता उन्हें उन सौहार्दपूर्ण श्रद्धांजलियों से प्राप्त हुई होती जो कि पाकिस्तान के लोगों से उन्हें मिली हैं। दुर्घटना के दूसरे दिन हम सभी क्षण भर के लिये उस कड़ुएपन को भूल गये जो पिछले महीनों के संघर्ष और बिलगाव के कारण हममें पैदा हो गया था, और गांधी जी भारत के लोगों के प्रिय नेता के रूप में सामने आये, उस भारत के जो कि इस जीवित राष्ट्र के बटवारे से पहले था।

लोगों के हृदय और मस्तिष्क पर उनके इस गहरे प्रभाव का क्या कारण था? आने वाले युग इस विषय पर अपना निर्णय देंगे। हम लोग तो उनके समय से इतने निकट हैं कि उनके अद्भुत रूप से संपन्न व्यक्तित्व के सभी पहलुओं का ठीक ठीक अनुभव भी नहीं कर सकते। लेकिन हम लोग भी इस बात का अनुभव करते हैं कि सत्य के लिये उनमें महान् प्रेम था। यही सत्य–प्रेम उन्हें यह घोषणा करने के लिये बराबर प्रेरित करता था कि अच्छे उद्देश्य की सिद्धि बुरे साधनों द्वारा नहीं हो सकती। अगर साधन बुरे हों तो स्वयं उद्देश्य में टेढ़ापन आ जायगा। जब कभी वे समझते थे कि उन्होंने भूल की है तो यही सत्य–प्रेम उन्हें अपनी भूलों की घोषणा करने के लिये प्रेरित करता था–अपनी कुछ भूलों को उन्होंने हिमालय जैसी बड़ी भूलें बताया है। यही सत्य प्रेम उन्हें बुराई और असत्य से, वह जहाँ भी हों और परिणाम जो भी हो, लड़ने की प्रेरणा देता था। इस सत्य ने गरीबों और अकिंचनों की सेवा को उनके जीवन की एक प्रबल प्रेरणा बना दिया था, क्योंकि जहां भी विषमता, भेद और दमन है वहीं अन्याय, बुराई और असत्य भी है। और इस तरह वे सामाजिक या राजनैतिक बुराइयों से पीड़ित सभी लोगों के प्रिय और एक आदर्श जनसमाज के प्रतिनिधि बन गये थे। इस सत्य के कारण ही ऐसा था कि जहां भी वे बैठ जाते वह स्थल मंदिर बन जाता था और जहां उनके पैर पड़ जाते वह स्थल तीर्थ हो जाता था।

वे शरीर से हमें छोड़कर चले गये और अब हम उन्हें फिर कभी न देख सकेंगे, और न उनका मीठा स्वर सुन सकेंगे न दौड़ कर उनकी सलाह लेने जा सकेंगे लेकिन उनकी अमिट स्मृति और अमर संदेश हमारे साथ सदा बने रहेंगे। हम इनका आदर किस तरह कर सकते हैं और जीवन को उनके अनुरूप कैसे बना सकते हैं?

भारत में वे एकता के महान प्रवर्तक थे। उन्होंने हमें सिखाया कि दूसरों के साथ केवल सहिष्णुता का बरताव ही नहीं करना चाहिये बल्कि उन्हें समान उद्योगों में मित्र और साथी समझना चाहिये। उन्होंने हमें अपने छोटे-छोटे स्वार्थों और पक्षपातों से ऊपर उठकर दूसरों में भलाई देखने की शिक्षा दी। उनके जीवन के अंतिम कुछ महीने और स्वयं उनकी मृत्यु हमारे लिये इस उदार सहिष्णुता

और एकता के उनके संदेश के प्रतीक बन गये हैं। उनकी मृत्यु से कुछ पहले हमने उनके सामने इसके लिये प्रतिज्ञा की थी। हमें इस प्रतिज्ञा का पालन करना चाहिये और याद रखना चाहिये कि भारत यहां के सभी रहने वालों का, वे चाहे जिस धर्म के हों, समान्य घर है। वे हमारी महान विरासत के बराबर के साझीदार हैं और उनके बराबर के अधिकार और कर्तव्य हैं। हमारा एक मिला-जुला राष्ट्र है, जैसा कि सभी बड़े राष्ट्र अनिवार्य रूप से होते हैं। यदि हमने दृष्टि-कोण की कोई संकीर्णता दिखाई और इस बड़े राष्ट्र को सीमाओं में बांधने का यत्न किया तो यह उनकी अंतिम शिक्षा के साथ दगा होगी और निश्चय ही हम तबाह हो जायेंगे और उस आजादी को खो बैठेंगे जिसके लिये उन्होंने परिश्रम किया और जिसे उन्होंने एक बड़े अंश में हमारे लिये हासिल किया।

भारत के साधारण व्यक्ति की, जिसने कि अब तक इतने दुख झेले हैं, सेवा करना भी उतना ही आवश्यक है। उसका हक सब से ऊपर होना चाहिये और उसकी दशा के सुधार के रास्ते में जो कुछ भी बाधा हो उसे अलग हटा देना चाहिये। नैतिक और मानुषिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि साधारण राजनैतिक समझ-बूझ की दृष्टि से भी यह आवश्यक हो गया है कि आम आदमी का स्तर ऊंचा किया जाय और उसे उन्नति करने का पूरा अवसर दिया जाय। जो सामाजिक संगठन उसे यह अवसर नहीं देता, वह अपने आप को खोटा प्रमाणित करता है और उसे बदल देना चाहिये।

गांधी जी चले गये हैं परन्तु उनकी प्रज्वलित आत्मा हमारे चारों ओर व्याप्त है। अब हमारे ऊपर बोझ आ पड़ा है और तत्काल यह आवश्यक हो गया है कि हम इस बोझ को अपनी पूरी सामर्थ्य से उठायें और निभाएं। हमें आपस में मिल जुल कर रहना है और साम्प्रदायिकता के उस घोर विष का मुकाबला करना है जिसने हमारे युग के सब से बड़े व्यक्ति की जान ली। हमें इसको जड़ से उखाड़ना है, भटके हुए लोगों के प्रति प्रतिशोध की भावना से नहीं, बल्कि स्वयं इस बुराई के साहसपूर्ण विरोध की भावना से। यह बुराई गांधी जी की मृत्यु से समाप्त नहीं हो गई। और यह बात तो और भी लज्जाजनक है कि कुछ लोगों ने इस हत्या पर विभिन्न प्रकार से खुशियां मनाईं। जिन्होंने ऐसा किया या जो इस तरह के विचार रखते हैं वे भारतीय कहलाने के अधिकारी नहीं हैं।

मैंने बताया है कि राष्ट्र के इस संकट के अवसर पर हमें मिल-जुल कर रहना चाहिये और जहां तक संभव हो सार्वजनिक विवाद से बचना चाहिये और मुख्य बातों में एकमत प्राप्त करने पर जोर देना चाहिये। मैं समाचार-पत्रों से विशेषरूप से

अनुरोध करूंगा कि वे इस आवश्यक कार्य में सहायता दें और व्यक्तिगत अथवा ऐसी आलोचनाएं न करें जो देश में फूट को उत्तेजना देती हों। मैं विशेष रूप से यह अनुरोध कांग्रेस के अपने उन करोड़ों मित्रों और साथियों से भी करूंगा जिन्होंने महात्मा गांधी का नेतृत्व स्वीकार किया है अगर्चे वह अकसर कसौटी पर पूरे नहीं उतरे ।

अखबारों में पढ़कर और अन्य सूत्रों से भी यह जानकर कि सरदार पटेल और मेरे बीच गहरे भेद के होने की दबी हुई चर्चा हो रही है, मुझे बेहद दुख हुआ है। बेशक बहुत वर्षों से स्वभाव के तथा दूसरे भेद बहुत विषयों पर हम लोगों में रहे हैं, लेकिन कम से कम भारतवर्ष को यह जानना चाहिये कि इन भेदों से ऊपर हमारे राजनैतिक जीवन की प्रमुख बातों में हमारा एकमत रहा है और बड़े-बड़े कामों में हमने चौथाई सदी बल्कि इससे अधिक समय तक मिलजुल कर उद्योग किया है। सुख और दुख में हम बराबर साथ रहे हैं। क्या यह संभव है कि हमारे राष्ट्र के भविष्य के लिये जो यह संकटकाल सामने आया है उसमें हम में से कोई छोटापन दिखायेगा और राष्ट्रहित के अतिरिक्त किसी दूसरी बात पर ध्यान देगा? मैं सरदार पटेल के प्रति सम्मान और आदर प्रकट करूंगा, न केवल उनकी राष्ट्र के प्रति आजन्म सेवाओं के लिये बल्कि उन महान कार्यों के लिये भी जो कि उन्होंने उस समय से किये हैं, जब से कि वह और मैं भारत सरकार की सेवा में रहे हैं। वे युद्ध और शांति के समय हमारी जनता के बहादुर सरदार रहे हैं। जब कि दूसरे डिग जाते वे दृढ़निष्ठ रहे हैं और वे एक बड़े संगठनकर्ता हैं। इन अनेक वर्षों में उनके साथ काम करने का मेरा सौभाग्य रहा है और समय के साथ-साथ उनके प्रति मेरा प्रेम और उनके महान गुणों के प्रति मेरा आदर बढ़ता गया है ।

हाल में अखबारों में कुछ अनधिकृत समाचार प्रकाशित हुए हैं जिनसे लोगों में गलतफहमी फैल गई है कि मैंने अपने पुरान मित्र तथा साथी जयप्रकाश नारायण के विरुद्ध कड़ी भाषा में आलोचना की है । ये समाचार गलत हैं। मैं यह कहना चाहूंगा कि भारत के समाजवादी दल की कुछ नीतियों से मुझे गहरा दुख पहुंचा है ।और मैं समझता हूं कि आवेश में आकर या घटनाओं के आघात से वे गलत काम और गलत बयानी में पड़े हैं, लेकिन मुझे जयप्रकाश नारायण की योग्यता या सचाई में कभी भी संदेह नहीं रहा । एक मित्र के रूप में मैं उनका आदर करता रहा हूं और मुझे विश्वास है कि एक समय आयेगा जब कि वे भारत के भाग्य को स्वरूप देने में बड़े महत्व का भाग लेंगे। दुर्भाग्य से समाजवादी दल ने बहुत समय से नकारात्मक नीतियां ग्रहण की हैं और उसने उन व्यापक विचारों को छोड़ दिया है जिन पर कि पहले ध्यान देना चाहिये।

इसलिये, अपने सार्वजनिक जीवन में सहिष्णुता और सहयोग लाने के पक्ष में

और उन सभी शक्तियों के पक्ष में जो कि भारत को एक बड़ा और उन्नतिशील राष्ट्र बनाना चाहती है, मिल-जुल कर काम करने का में अनुरोध करता हूं। मेरा अनुरोध है कि साम्प्रदायिकता और संकीर्ण प्रांतीयता के विष के विरुद्ध जीतोड़ प्रयत्न हो। मेरा अनुरोध है कि उद्योग के क्षेत्र के संघर्ष बंद हों, और भारत के नवनिर्माण के लिये सभी लोगों का मिल-जुल कर प्रयत्न हो। इन महान कार्यों के लिये में प्रतिज्ञा करता हूं और मुझे पूरा विश्वास है कि इस पीढ़ी के लोगों द्वारा गांधी जी के स्वप्न किन्हीं अंशों में पूरे होंगे। इस प्रकार हम उनकी स्मृति का सम्मान कर सकेंगे और उनके लिये एक उपयुक्त स्मारक का निर्माण कर सकेंगे।

सबसे उपयुक्त स्मारक

स्वभावतः भारत का प्रत्येक भाग महात्मा गांधी जी का किसी न किसी रूपमें स्मारक निर्माण करना चाहता है। प्रांतीय सरकारें, रियासतों की सरकारें, म्युनिसिपैलिटियाँ, स्थानीय बोर्ड और सार्वजनिक संस्थाएं तथा अन्य व्यक्ति सभी अपने-अपने ढंग से स्मारक स्थापित करने के लिए उत्सुक हैं। मंदिरों से लेकर प्रतिमाओं तक के निर्माण के विभिन्न सुझाव रखे गये हैं। अपने एक हाल के वक्तव्य में सरदार पटेल ने पूरे जोर के साथ उन सभी प्रयत्नों के प्रति विरोध प्रकट किया है जो मंदिरों तथा ऐसे स्मारकों के निर्माण के लिए हो रहे हैं और जिनसे मूर्तिपूजा का आभास होता है। इससे निश्चय ही गांधी जी अप्रसन्न हुए होते और वास्तव में उन्होंने ऐसे विषयों पर अपने विचार बड़े कठोर शब्दों में प्रकट किए हैं।

स्पष्ट ही सबसे उपयुक्त स्मारक उनकी महान शिक्षाओं का अनुसरण करना और राष्ट्र के विकास के लिए उनके रचनात्मक विचारों को आगे बढ़ाना है।

फिर भी यह तो निश्चित-सा ही है कि कुछ मूर्तियाँ तो स्थापित की ही जायंगी। यदि ऐसा हो, तो इस बात का अधिक से अधिक यत्न होना चाहिए कि केवल कलात्मक कृतियों की स्थापना की ही इजाजत दी जाय। दुर्भाग्य से भारत में मूर्ति-कला का स्तर गिरा हुआ है और अधिकतर लोग व्यक्ति के जैसे तैसे दूर के सादृश्य से भी संतुष्ट हो जाते हैं। हमारे शहर और सार्वजनिक स्थल ऐसी कृतियों से भरे पड़े हैं जिन्हें कल्पना की कैसी भी खींच-तान से कलात्मक या देखने में सुन्दर नहीं कहा जा सकता। अनेक अवसरों पर मुझे ऐसी कच्ची कृतियों को देखकर आघात पहुंचा है। मैं उन लोगों को, जो इस प्रकार के स्मारकों का विचार कर रहे हैं, इस बात के लिए आगाह कर देना चाहता हूं कि जल्दी में कोई निर्णय न करें, बल्कि कांग्रेस सभापति के सभापतित्व में स्थापित राष्ट्रीय स्मारक समिति के इस प्रश्न पर विचार विमर्श की प्रतीक्षा करें।

एक और विषय है जिसकी ओर मैं जनता का ध्यान दिलाना चाहूंगा। सारे भारत में सड़कों, चौकों, और सार्वजनिक इमारतों का नामकरण गांधी जी के नाम पर करने की प्रवृत्ति हो रही है। यह बहुत सस्ते ढंग का स्मारक है और इसमें बिना श्रम या व्यय के कुछ संतोष तो मिल ही जाता है। प्रायः मुझे तो

नई दिल्ली में २५ फरवरी, १९४८ को दिया गया वक्तव्य।

यह उनके नाम से लाभ उठाने का प्रयत्न लगता है और बिना किसी उद्योग के यह दिखाना जैसा लगता है कि हम उनका सम्मान करते हैं । इससे भी अधिक वांछनीय तो यह है कि प्रसिद्ध ऐतिहासिक नामों को, जिनकी अपनी विशिष्टता है, बदला न जाय। यदि ऐसी प्रवृत्तियां रोकी नहीं जातीं तो गांधी जी के नाम पर हजारों सड़कें, पार्क और चौक हो जायंगे। इससे न तो हमारी सुविधाओं में वृद्धि होगी और न राष्ट्रपिता की कीर्त्ति में। नतीजा केवल यह होगा कि बातें नीरस ढंग से दुहराई जायंगी और अव्यवस्था उत्पन्न होगी। हम में से अधिकतर लोग तब गांधी रोड गांधी नगर या गांधीग्राम में रहने लगेंगे ।

राष्ट्रपिता

मित्रो और साथियो, आज के दिन जिसे हम राष्ट्रपिता की स्मृति में विशेष रूप से अर्पित करते हैं, मैं आप लोगों से क्या कहूँ ? आज मैं आपसे प्रधान मंत्री की हैसियत से कुछ न कह कर जवाहरलाल की हैसियत से कहूँगा, जो कि आप लोगों की तरह ही भारत की लम्बी मुक्ति-यात्रा का एक यात्री है और जिसका यह महान सौभाग्य रहा है कि गुरु के चरणों में बैठकर भारत और सत्य की सेवा करना सीखे। न मैं आपसे आजकल की उन समस्याओं के बारे में कुछ कहूंगा जिनसे हमारा दिमाग परेशान है और जिनकी ओर निरंतर ध्यान देने की आवश्यकता है। बल्कि मैं उन बुनियादी बातों के विषय में कहना चाहूंगा जिन्हें गांधीजी ने हमें सिखाया है और जिनके बिना जीवन सारहीन और खोखला रहेगा।

उन्होंने हमें निष्कपट व्यवहार और सत्य से प्रेम करना सिखाया, न केवल हमारे व्यक्तिगत जीवनों में बल्कि सार्वजनिक बातों और राष्ट्रों के समागम में। उन्होंने हमें मनुष्य और उसके श्रम के गौरव का पाठ पढ़ाया। उन्होंने उस पुरानी शिक्षा को दुहराया कि घृणा और हिंसा का परिणाम घृणा, हिंसा और विनाश के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। और इस तरह उन्होंने निर्भीकता, एकता, सहिष्णुता और शांति का मार्ग दिखाया।

हम लोगों ने उनकी शिक्षा के अनुरूप कहाँ तक अपना जीवन ढाला ? मुझे भय है कि बहुत अधिक नहीं। फिर भी हमने बहुत कुछ सीखा और उनके नेतृत्व में हमने शांतिपूर्ण साधनों द्वारा अपने देश की स्वतंत्रता प्राप्त की। लेकिन ठीक मुक्ति के समय हम भटक गए और बुरे मार्गों में पड़ गए। इससे उनके महान् हृदय पर असीम आघात पहुंचा, उस हृदय पर जिसकी धड़कन सदा भारत और उन महान सत्यों के लिए, जिनका कि युग-युगांतरों से भारत प्रतीक रहा, हो रही थी।

आज के विषय में क्या कहा जाय ? जब हम उनका स्मरण करते हैं और उनकी प्रशंसा करते हैं और कभी-कभी बच्चों की भांति उनकी मूर्तियां स्थापित करने की बात करते हैं, तब क्या यह भी विचार करते हैं कि वह संदेश जिसके लिए वे जिये और मरे, क्या था ? मुझे भय है कि हम सभी उस संदेश के अनुरूप अपना

महात्मा गांधी के जन्म दिवस के अवसर पर २ अक्तूबर, १९४८ को नई दिल्ली से प्रसारित एक भाषण।

जीवन डालने से बहुत दूर हैं । लेकिन इसका मुझे निश्चित विश्वास है कि वे महान शक्तियाँ, जिन्हें उन्होंने संचालित किया था, मौन परन्तु जोरदार ढंग से अपना काम कर रही हैं और भारत को उस दिशा में ले जा रही हैं जिधर ले जाने की उनकी इच्छा थी। और भी शक्तियां हैं; फूट और असत्य, हिंसा और संकीर्णता की शक्तियां हैं, जो कि विरोधी दिशा में काम कर रही हैं। दोनों के बीच निरंतर संघर्ष है, जिस प्रकार कि अच्छाई और बुराई की शक्तियों के बीच सारे संसार में संघर्ष चलता है। यदि हम गांधी जी की स्मृति का आदर करते हैं तो हमें सक्रियता से ऐसा करना चाहिए और जिन ध्येयों का वे प्रतिनिधित्व करते थे उनके पक्ष में सतत काम करना चाहिए।

मुझे अपने देश का गर्व है, अपनी राष्ट्रीय थाती का गर्व है, बहुत-सी बातों का गर्व है, लेकिन मैं आपसे गर्वपूर्वक नहीं बल्कि बड़ी विनम्रता से कह रहा हूँ क्योंकि घटनाओं ने मेरा उत्साह भंग कर दिया है। मैं प्राय: संकोच अनुभव करता हूँ, और भारत का स्वप्न जो मैं देखता रहता था, मन्द पड़ गया है। मैंने भारत से प्रेम किया है और उसकी सेवा करनी चाही है, उसकी भौगोलिक विशालता के कारण नहीं; इसलिए भी नहीं कि अतीत में वह महान था, बल्कि इसलिए कि उसके वर्तमान में मेरी आस्था है और मुझे विश्वास है कि वह सत्य और स्वतंत्रता तथा जीवन के उच्च आदर्शों पर दृढ़ रहेगा ।

क्या आप चाहते हैं कि भारत इन महान उद्देश्यों और आदर्शों पर दृढ़ रहे जिन्हें गांधी जी ने हमारे सामने रखा था ? यदि ऐसा है तो आपको विचार करना होगा और उनके आदेशों के अनुसार काम करना होगा । क्षणिक आवेश या तुच्छ लाभों के फेर से बचना होगा। आपको उस प्रत्येक प्रवृत्ति को जड़ से उखाड़ कर फेंकना होगा जो कि राष्ट्र को निर्बल बनाती है, चाहे वह सांप्रदायिकता हो, चाहे पार्थक्य, चाहे धार्मिक कट्टरता, चाहे प्रांतीयता और चाहे वर्ग का गर्व।

हमने बार-बार दोहराया है कि हम इस देश में किसी प्रकार की भी साम्प्रदायिकता सहन नहीं करेंगे, और हम एक स्वतंत्र लौकिक राज्य का निर्माण कर रहे हैं जहां प्रत्येक धर्म और विश्वास के लिए समान स्वतंत्रता और सम्मान है, जहां प्रत्येक नागरिक को समान स्वतंत्रता तथा अवसर प्राप्त हैं । इसके बावजूद कुछ लोग अब भी सांप्रदायिकता और पार्थक्य की भाषा में बात करते हैं। मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि मैं इसका पूरा विरोधी हूँ और अगर आपको गांधीजी की शिक्षा में विश्वास है तो मैं आशा करता हूँ कि आप भी इसी प्रकार इसके विरोधी होंगे ।

बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति की एक बैठक में श्री नेहरू महात्मा गांधी के साथ

महात्मा गांधी तथा श्री नेहरू भंगी बस्ती, नई दिल्ली में प्रार्थना-सभा में जाते हुए

महात्मा गांधी की ७८वीं जयन्ती के समय भंगी बस्ती, नई दिल्ली में सामूहिक चरखा-यज्ञ में भाग लेते हुए श्री

सेंट्रल विस्टा, नई दिल्ली से गुजरती हुई महात्मा गांधी की शव-यात्रा

दूसरी बुराई प्रांतीयता की है और आज हम इसे बहुत बढ़ती हुई देख रहे हैं, जिसके चक्कर में पड़ कर हम महत्वपूर्ण विषयों को भूल जाते हैं । इसका भी विरोध और मुकाबला करना है ।

हाल ही में कुछ लोगों ने भारत को एक आक्रान्ता राष्ट्र बताया है। मैं केवल यही कहूँगा कि उन्होंने ऐसा अज्ञानवश ही कहा है। यदि भारत किसी दूसरे राष्ट्र के विरुद्ध आक्रामक उपाय अपनाता है तो मेरे और मेरे अनेक साथियों के लिए भारत सरकार में कोई स्थान नहीं रह जाता। यदि हम आक्रमण करते हैं तो अब तक जिन उद्देश्यों का हमने समर्थन किया है और जो कुछ गांधी जी ने हमें सिखाया है उस सबके प्रति हम झूठे ठहरेंगे ।

हमारे पड़ोसी देश पाकिस्तान ने, पिछले सप्ताहों में एक विचित्र उत्तेजना दिखाई है। मैं उसके समाचारपत्रों और नेताओं के वक्तव्यों को पढ़कर दंग रह गया। इन भाषणों या वक्तव्यों का तथ्य से कोई सरोकार नहीं और ये घोर भय और बेतुकी धारणाएं उत्पन्न करने वाले हैं। अगर पाकिस्तान के लोग ऐसा घृणा और भय पैदा करने वाला साहित्य नित्य पढ़ते रहेंगे तो मुझे आश्चर्य नहीं कि भारत की जो तस्वीर वे अपने मन में बनाते हैं वह वास्तविकता से बिल्कुल रहित है। मुझे इसका गहरा रंज है, क्योंकि जैसा मैंने पहिले कहा है, पाकिस्तान के लोगों को मैं अजनबी नहीं समझता । वे हमारे देशवासी रहे हैं, और न वे और न हम भूतकाल को भुला सकते हैं या अपना करीबी रिश्ता भुला सकते हैं, तात्कालिक उद्वेग हमें चाहे अलग करता हुआ दीखे। मैं बड़ी सचाई और मित्रता की भावना से पाकिस्तान के उन सभी लोगों, को जो कि भारत के विरुद्ध बिना सोचे समझे प्रचार कर रहे हैं, सतर्क करना चाहूंगा। वे अपने ही देश तथा उसके लोगों का इससे अहित कर रहे हैं ।

मैं पाकिस्तान के लोगों को बिश्वास दिला सकता हूँ कि भारत किसी भी देश पर आक्रमण करने की इच्छा नहीं रखता, और पाकिस्तान के विरुद्ध तो बिलकुल भी नहीं। हम चाहते हैं कि पाकिस्तान शांतिपूर्वक रहे और उन्नति करे और हमारे और उसके घने संबंध रहें। हमारी ओर से कभी भी आक्रमण न होगा।

लेकिन कश्मीर के लोगों के विरुद्ध और भारतीय संघ के विरुद्ध भयानक और अक्षम्य आक्रमण हुआ है । हमने उस आक्रमण का मुकाबला उस तरह से किया है जैसा कि कोई भी स्वाभिमानी देश करता । स्मृतियाँ क्षणिक होती हैं और यह याद रखना चाहिए कि ग्यारह महीने से कुछ अधिक पहले कश्मीर में क्या हुआ। पाकिस्तान ने इस बात से इन्कार किया कि उसका

इस आक्रमण में कोई हाथ है और अकाट्य प्रमाणों के बावजूद इन्कार ही करता रहा । संयुक्त राष्ट्रों की सुरक्षा परिषद् में इसी इन्कार के आधार पर उसने अपना मुकदमा खड़ा किया, और अब उसे स्वीकार करना पड़ा है कि उसकी सेनाएं कश्मीर में काम कर रही है जो कि भारतीय संघ का अंग है । इतिहास में कम मिसालें ऐसी मिलेंगी जहां कोई मुकदमा सत्य के इतने घोर प्रतिवाद के आधार पर रचा गया हो । संयुक्त राष्ट्रों के कमीशन ने विराम संधि का प्रस्ताव किया। हमने उसे स्वीकार किया। पाकिस्तान ने अपने गर्व और उन्माद में उसे अस्वीकार कर दिया।

मैं आपसे और पाकिस्तान के लोगों से कहना चाहता हूँ और अब मैं प्रधान मंत्री की हैसियत से बोल रहा हूँ कि चाहे जो हो जाय, हम कदापि इस आक्रमण को सहन न करेंगे। हम इसका पूरे बल से मुकाबला करेंगे, क्योंकि इसमें न केवल कश्मीर की रक्षा का प्रश्न है, बल्कि भारत के लोगों के सम्मान का प्रश्न है, और राष्ट्रों के विधान की प्रतिष्ठा का प्रश्न है।

पिछले वर्ष या इससे कुछ अधिक समय के बीच भारत में बहुत सी घटनाएं घटी हैं, जिनसे मुझे मार्मिक दुःख पहुंचा है, क्योंकि ये बुरी घटनाएं थीं और गुरु की शिक्षा के विरुद्ध थीं। लेकिन हमने काश्मीर या हैदराबाद में जो कुछ किया है उसके लिए मुझे कोई क्षोभ नहीं । वास्तव में यदि हमने जो कुछ किया है या कर रहे हैं उसे न करते तो और भी अधिक उत्पात और हिंसा और उत्पीड़न हुआ होता। यदि भारत कश्मीर की सहायता के लिए न दौड़ता या एक एक अनाचारी गुट से दलित हैदराबाद के लोगों की मदद के लिये न जाता, तो मुझे उस पर लज्जा आती।

दूसरे देशों में जो कुछ भी हो, हमें शांत रहना चाहिए और गांधी जी की शिक्षाओं के प्रति सच्चे बने रहना चाहिए। अगर हम उनके प्रति सच्चे रहे तो हम अपने प्रति और भारत के प्रति सच्चे रहेंगे और अपने प्यारे देश में जो कुछ भी होगा अच्छा ही होगा। जय हिन्द !

एक वर्ष पहले

मित्रो और साथियो, एक वर्ष हुआ, यहाँ से, आज ही के दिन और इसी समय मैंने एक भाषण दिया था और यह घोषित किया था कि वह प्रकाश, जिसने हमारी जीवनियों को आलोकित किया था, बुझ चुका है, और हम अंधकार से घिर गए हैं। और अब मैं आपसे फिर निवेदन कर रहा हूँ, जबकि आपने और मैंने इस घटनापूर्ण वर्ष का बोझ अपने कंधों पर उठा लिया है।

यह प्रकाश बुझा नहीं क्योंकि यह पहले से भी अधिक प्रकाशमान है और हमारे प्रिय नेता का संदेश हमारे कानों में गूंज रहा है। फिर भी हममें से बहुत से अकसर पूर्व ग्रहों और उद्वेगों से प्रभावित होकर इस प्रकाश के समक्ष अपनी आंखें मूंद लेते हैं और इस संदेश के प्रति अपने कान बन्द कर लेते हैं।

आइए, हम आज अपनी आंखें, अपने कान और अपने दिलों को खोलें और श्रद्धापूर्वक उनका ध्यान करें, और सबसे अधिक इस बात पर विचार करें कि वे किन सिद्धान्तों पर दृढ़ रहे और हमसे वे क्या कराना चाहते थे।

आज शाम को हममें से बहुतों ने भारत में सर्वत्र, नगरों, कस्बों और गांवों में वह संदेश सुना जिसे गांधी जी दोहराया करते थे और हमने उसके प्रकाश में काम करने की नए सिरे से प्रतिज्ञा की है। आज की विघटनशील दुनिया में इस सन्देश की जैसी आवश्यकता है वैसी पहले कभी नहीं थी। इस दुनिया ने अपनी समस्याओं को बार-बार हिंसा और घृणा के तरीकों से हल करने का प्रयत्न किया है। बार-बार यह तरीका असफल रहा है और संकट का सामना करना पड़ा है। अब समय आ गया है कि हम अपने कटु अनुभव से शिक्षा लें।

वह शिक्षा यह है कि नैतिक मूल्यों की उपेक्षा करके हम अपने विनाश का ही आह्वान करते हैं और यह कि हम भारत और संसार की बुराइयों का अन्त केवल शांतिपूर्ण ढंग से और सहयोग द्वारा और स्वतंत्रता तथा सत्य की निष्काम सेवा द्वारा कर सकते हैं और हमें भारत के लोगों में एकता और सद्भावना का प्रचार करना चाहिए और वर्गभेदों को तथा जन्म, जात-पांत और

महात्मा गांधी के मृत्यु दिवस पर, ३० जनवरी, १९४९ को नई दिल्ली से प्रसारित एक भाषण।

धर्म पर आधारित भेदों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। जो लोग हमारे प्रति बुरे विचार रखते हैं उनके लिए हमें मित्रता पूर्वक हाथ बढ़ाना है और उनकी सद्-भावन प्राप्त करनी है।

संसार के राष्ट्रों से हमारा यह कहना है : हमारा आप में से किसी से भी कोई झगड़ा नहीं है; हम केवल आपका मैत्रीपूर्ण सहयोग संसार के सभी लोगों की स्वतंत्रता और कल्याण की स्थापना के महान कार्य में चाहते हैं; हम दूसरों पर न अधिकार करना चाहते हैं और न उनसे किसी तरह का अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं, लेकिन हम अपनी स्वतंत्रता की रक्षा भी अपनी पूरी शक्ति और कोई भी जोखिम उठाकर करेंगे। हमारा स्वर मन्द भले ही हो लेकिन जो संदेश वह दे रहा है वह शक्तिहीन नहीं। उसमें सत्य की शक्ति है और उसकी विजय होकर रहेगी।

इस विचार और प्रतिज्ञा के साथ, आइए, हम अपने गुरु और प्रिय नेता को, जो हमें छोड़कर चले गए हैं, लेकिन फिर भी जो हमारे इतने निकट हैं, अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करें। मेरी यह कामना है कि हम उनके तथा उनके संदेश और अपनी प्रिय मातृभूमि भारत के योग्य सिद्ध हों जिसकी सेवा के लिए हमने आज पुनः अपने को समर्पित किया है। जय हिन्द !

साम्प्रदायिकता

पांच नदियों का यह अभागा प्रदेश

१५ और १६ अगस्त को भारत ने स्वतंत्रता मिलने की खुशी मनाई, न केवल भारत ने बल्कि भारतीयों ने, इस विस्तृत संसार में जहाँ कहीं भी वे थे। मुझे विदेशों से शुभ कामनाओं के हजारों संदेश मिले हैं। वे दुनिया के कोने-कोने से बड़े राष्ट्रों के प्रतिनिधियों, प्रसिद्ध पुरुषों और भारतीयों के पास से आए हैं। स्वतंत्र राष्ट्रों की बिरादरी में भारत का स्वागत करने वाले दूसरे देशों के इन नेताओं के, संदेशों का मुझ पर गहरा असर जरूर पड़ा है, लेकिन समुद्र पार के अपने देशवासियों के अत्यन्त मार्मिक संदेशों ने मेरे हृदय को जितना स्पर्श किया है, औरों ने उतना नहीं किया। मातृभूमि से दूर रहते हुए, वे भारत की स्वतंत्रता के शायद हमसे अधिक भूखे रहे हैं, और इस स्वतंत्रता की प्राप्ति उनके जीवन की एक महान घटना है। मेरी कामना है कि नया भारत अपने प्रवासी बच्चों को, जो कि उसके प्रति इतने गर्व और प्यार से देखते हैं सदा याद रखे और उन्हें जो भी मदद दे सकता हो, दे।

करीब-करीब सारे भारत ने स्वतंत्रता-प्राप्ति के अवसर पर उत्सव मनाया, लेकिन पांच नदियों के अभागे प्रदेश ने ऐसा नहीं किया। पंजाब ने, पूर्व और पश्चिम में, समान रूप से विपत्ति और दुःख उठाया है। बहुत जगहों में हत्या और अग्निकांड और लूटमार हुई है और शरणार्थियों का प्रवाह एक जगह से दूसरी जगह उमड़ पड़ा है।

हमारी सरकार के प्रारंभिक कार्यों में एक कार्य पंजाब की चिन्ता करना था। इसलिए १७ तारीख के सवेरे अपने सहयोगी, रक्षा मंत्री सरदार बलदेव सिंह और पाकिस्तान के प्रधान मंत्री मि० लियाकत अली खां तथा उनके कुछ साथियों के साथ मैं वहाँ शीघ्रता से गया। जो कुछ हमने वहाँ देखा और किया, उसे मैं आपको बताना चाहता हूँ। काफी उत्तेजनापूर्ण अफवाहें फैलती रही हैं और जनता के मन स्वभावतः सारे भारत में विचलित हैं, क्योंकि जैसी भी घटना घटे, पंजाब के निवासी, चाहे वे पूर्व के हों या पश्चिम के, हमारे अपने लोग हैं, और जो कुछ उन पर बीतती है हम पर बीतती है।

आपको यह स्मरण रखना चाहिए कि १५ अगस्त तक सारे पंजाब में एक दूसरा ही शासन था। यह प्रांत गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्ट की धारा ९३ के अन्तर्गत शासित था। १५ तारीख को शासन बदला। इस प्रकार नई प्रांतीय सरकारें अभी केवल चार दिन

नई दिल्ली से १९ अगस्त, १९४७ को प्रसारित एक भाषण!

ही हैं। यही बात नई केन्द्रीय सरकार के विषय में भी है। इन केन्द्रीय अथवा प्रांतीय सरकारों की सीधी जिम्मेदारी केवल १५ अगस्त से है । पूर्वी और पश्चिमी पंजाब की सरकारों को अपना काम सँभालने और विभागों के उचित संचालन से पूर्व ही, अपनी जन्मघड़ी से ही एक भयानक संकट का सामना करना पड़ा है।

पंजाब की अनर्थकारी घटनाओं की कहानी हमें कई महीने पीछे इस वर्ष के मार्च महीने में ले जाती है। एक के बाद एक आफतें आई हैं और हर एक की प्रतिक्रिया दूसरी जगह हुई है । मै यह कथा यहाँ न सुनाऊंगा, और न मैं यही बताऊँगा कि किसका दोष है । पंजाब के बहुत-से हिस्सों में काफी हत्याएं, अग्निकांड और सभी प्रकार के अपराध हुए हैं और इस सुन्दर और इतने होनहार प्रान्त ने इन महीनों में अनगिनत यातनाएं झेली हैं। इस लम्बी कहानी के कहने से कोई विशेष लाभ न होगा । हम अपना नया जीवन १५ अगस्त से आरंभ करते हैं।

मि० लियाकत अली खां, सरदार बलदेव सिंह और मैं पहले पटियाला गए और वहां हमने पूर्वी और पश्चिमी पंजाब के मंत्रियों से और भिन्न-भिन्न नागरिक तथा फौजी अफसरों से सलाह की। हम विभिन्न संप्रदायों के नेताओं से, विशेषकर अकाली सिख नेता मास्टर तारासिंह और ज्ञानी करतार सिंह से मिले। इसके बाद हम लाहौर गये और वहाँ की घटनाओं का आँखों देखा हाल सुना और इसके बाद हम अमृतसर गये।

अमृतसर और लाहौर दोनों जगहों में हमने एक दारुण वृत्तांत सुना और हमने हिन्दू,मुस्लिम, सिख शरणार्थियों को हजारों की संख्या में देखा। शहर में कहीं-कहीं अब भी आगें जल रही थीं, और हाल के अत्याचारों के समाचार हम तक पहुँचे। हम सब इस विषय में एकमत थे कि जैसी स्थिति हमने देखी, वैसी स्थिति में हमें दृढ़ता से कार्य करना चाहिए और जो कुछ हो गया है उसके संबंध में कड़ए तर्क-वितर्क में नहीं पड़ना चाहिए और परिस्थिति की यह मांग थी कि कुछ भी करना पड़े, अपराधों का अन्त करना चाहिए।

ऐसा न होने से इस प्रदेश और सभी संप्रदायों के लोगों के लिए नितान्त अशान्ति और विनाश का सामना था। समाज-विरोधी लोग अपना काम कर रहे थे, सभी प्रकार की सत्ता का खुलेआम विरोध कर रहे थे और समाज के आधार-भूत ढांचे को नष्ट कर रहे थे। जब तक इन लोगों का दमन नहीं होता, चाहे वे किसी भी संप्रदाय के हों, तब तक किसी भी व्यक्ति के लिए कोई स्वतंत्रता या सुरक्षा नहीं थी; और इसलिए हम सभी लोगों ने जो वहाँ उपस्थित थे, चाहे वे दोनों केन्द्रीय

या दोनों प्रांतीय सरकारों के थे और चाहे वे विभिन्न संप्रदायों के नेता थे, यह प्रतिज्ञा की कि इस हत्या और अग्निकांड का अन्त करने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगाएंगे।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमने कारगर उपाय किए हैं जो न केवल शासन और फौजी दृष्टिकोण से, बल्कि इससे भी महत्वपूर्ण बात—अपनी समस्त जनता की लोकप्रियता के दृष्टिकोण से प्रभावकारी हैं।

हमने पंजाब की दोनों प्रांतीय सरकारों के ऊंचे पदाधिकारियों की समितियां स्थापित की हैं और नागरिक तथा फौजी अधिकारियों के बीच संपर्क स्थापित करने वाले पदाधिकारी नियुक्त किए हैं, जिससे कि दोनों प्रांतीय सरकारों और फौजों में आपस में अधिक से अधिक सहयोग हो सके। हमने केन्द्रीय सरकारों को इस कार्य में सहायता देने के लिए वचनबद्ध किया है। लोकप्रिय नेताओं ने हमें अपने अधिक से अधिक सहयोग का आश्वासन दिया है।

मुझे विश्वास है कि हम इस स्थिति को कारगर ढंग से वश में ला सकेंगे और जल्दी ही पंजाब में अमन की हालत लौटेगी, लेकिन इसके लिए क्या सरकारी अफसर, और क्या सभी संबंधित लोग, सभी के अधिकतम उद्योग की और निरंतर सतर्कता की आवश्यकता है। हममें से हर एक को, जिसे कि अपने देश का ध्यान है, इस शांति और सुरक्षा की स्थापना के काम में सहायता करनी चाहिए।

अतीत में, दुर्भाग्यवश, हमारे यहाँ बड़े पैमाने पर सांप्रदायिक झगड़े हुए हैं। भविष्य में उन्हें बर्दाश्त न किया जायगा। जहाँ तक कि भारत सरकार का संबंध है, वह प्रत्येक सांप्रदायिक उत्पात का दृढ़ता से दमन करेगी। वह प्रत्येक भारतीय को बराबरी के दर्जे का समझेगी और उसे उन सभी अधिकारों को दिलाने का उद्योग करेगी जो किसी दूसरे को प्राप्त हैं।

हमारा राज्य सांप्रदायिक राज्य नहीं है, वह एक लोकतंत्रात्मक राज्य है जिसमें प्रत्येक नागरिक के समान अधिकार हैं। सरकार इन अधिकारों की रक्षा के लिए कटिबद्ध है।

मि० लियाकत अली खां ने मुझे विश्वास दिलाया है कि पाकिस्तान सरकार की भी यही नीति है।

हमने शरणार्थियों को लाहौर से अमृतसर और अमृतसर से लाहौर पहुँचाने का प्रबंध कर लिया है। ये रेलगाड़ियों और मोटरलारियों द्वारा

पहुँचाए जायंगे और हम आशा करते हैं कि जिन लोगों की इच्छा होगी, वे बहुत जल्दी अपने निर्दिष्ट स्थल पर पहुँचा दिये जायेंगे। इसके अलावा हम उनके रहने और खाने का भी प्रबंध कर रहे हैं। भारत सरकार ने पूर्वी पंजाब सरकार को ५ लाख रुपये शरणार्थियों की सहायता के लिए देना आज मंजूर किया हैं। इसके अतिरिक्त उसने उन शरणार्थियों के लिए, जो दिल्ली तथा और जगहों में पहुँच गए हैं, ५ लाख की स्वीकृति दी है। हमारे शरणार्थी-कमिश्नर श्री चन्द्रा अमृतसर के लिए तुरन्त रवाना हो रहे हैं।

हम लाहौर में एक डिप्टी हाई कमिश्नर नियुक्त कर रहे हैं, जिनका काम वहाँ हमारे हितों का ध्यान रखना और विशेषकर उन शरणार्थियों की देखभाल करना होगा जो कि पूर्वी पंजाब में आना चाहते हैं। हम पूर्वी पंजाब की सरकार के पास शरणार्थियों को टिकाने के लिए कुछ तम्बू भेजने की आशा कर रहे हैं; हर प्रकार से जो हमारे लिए संभव होगा, हम पंजाब के पीड़ितों की सहायता करेंगे। जहाँ तक कि पूर्वी पंजाब का प्रश्न है, वहां सीधी हमारी जिम्मेदारी है और हम उसके अनुसार कार्य करेंगे।

जहाँ हम उन लोगों को जो पूर्वी पंजाब में आना चाहते हैं, प्रत्येक सहायता पहुंचायेंगे, वहां हम यह न चाहेंगे कि नई सरहदों के आरपार लोगों के सामूहिक प्रव्रजन को प्रोत्साहन मिले, क्योंकि ऐसा होने से सभी को अपार कष्ट पहुँचेगा। हम उम्मीद करते हैं कि बहुत जल्दी शांति और व्यवस्था स्थापित हो जायगी और लोगों को अपने-अपने धंधों में लगने की सुरक्षा प्राप्त होगी।

हमने यह सब तो किया है, लेकिन अन्त में भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि हमें लोगों से क्या सहयोग प्राप्त होता है। इस सहयोग की दृढ़ आशा करके ही हम आगे बढ़ रहे हैं, और विश्वास के साथ यह घोषणा कर रहे हैं कि हम इस पंजाब की समस्या को शीघ्र ही हल करेंगे। ये भयानक उपद्रव होते रहे तो वहां या भारत में कहीं भी हम कोई उन्नति नहीं कर सकते। इसलिए मैं सभी संबंधित लोगों से प्रार्थना करता हूँ कि इस दायित्व का मजबूती और साहस से सामना करें और यह दिखा दें कि स्वतंत्र भारत एक कठिन परिस्थिति पर किस प्रकार काबू पाता है।

पंजाब की समस्या हमारी प्राथमिक समस्याओं में से है और मैं जल्दी ही या जब भी जरूरत हो वहाँ फिर जाने का विचार कर रहा हूँ। चूंकि हम जनता का सहयोग चाहते हैं, इसलिए हमें उनको ठीक-ठीक बातें बताना चाहिए। इसलिए मैंने आज आप से यह सब कहा है, और आवश्यकता पड़ने पर मैं फिर आप से कहूँगा।

1696

इस बीच में, मैं आशा करता हूँ कि लोग बे सिर-पैर की अफवाहों पर विश्वास न करेंगे, जो कि सहज में फैल कर लोगों के मन पर असर डालती हैं। वास्तविकता काफी बुरी है, लेकिन अफवाहें उसे और भी बुरी बना देती हैं।

जिन लोगों ने पंजाब के इन बुरे दिनों में तकलीफें उठाई हैं उनके प्रति हमारी गहरी समवेदना है। बहुतों ने अपनी जानें गंवाई हैं, बहुतों ने अपना सर्वस्व खो दिया है। हम मरों को जिला नहीं सकते, लेकिन जो लोग जिन्दा हैं उन्हें निश्चय ही सरकार से अब सहायता मिलनी चाहिए, और बाद में सरकार को उन्हें फिर से बसाना चाहिए।

धर्म और राजनीति का भयावह गठबन्धन

महोदय, इससे पहले कि यह विवाद और आगे बढ़े, मैं चाहूंगा कि इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में सरकार का जो रुख है, उसे बता दूं। सरकार इस प्रस्ताव का स्वागत करती है और इस प्रस्ताव के पीछे जो उद्देश्य है, उसकी सिद्धि के लिए, जो कुछ उसकी शक्ति में है, करना चाहती है। माननीय प्रस्तावक की धारावाही वक्तृता के बाद, मुझे इस प्रस्ताव की वांछनीयता के संबंध में, कुछ कहने की जरूरत नहीं है। वास्तव में यह एक अनिवार्य नीति है, जिसे कि हर एक स्वतंत्र देश को जरूर अपनाना चाहिए। इस नीति के कार्यान्वित होने के विरुद्ध संभव है कि पहले कुछ कारण रहे हों, यद्यपि मैं समझता हूं कि पहले भी हममें से जिन्होंने कुछ अंशों में भी सांप्रदायिकता को स्वीकार किया था, उन्होंने भूल की थी और बुद्धिहीनता का काम किया था और उनकी नासमझी से हमें बहुत नुकसान हुआ। फिर भी पहले हालतें दूसरी थीं। परन्तु जब एक देश स्वतंत्रता से परिचालित होता है, तब इस नीति के अलावा दूसरा उपाय ही नहीं होता। नहीं तो गृह-युद्ध अनिवार्य है। वास्तव में हमने देख लिया है कि राजनीति में सांप्रदायिकता ने हमें कहां पहुंचा दिया है, और हमें इस बात को साफ-साफ अपने मन में समझ लेना चाहिए, और देश को समझ लेना चाहिए कि धर्म और राजनीति का सांप्रदायिकता के रूप में मेल एक अत्यन्त भयावह मेल है। और उससे बहुत बुरे और कुत्सित परिणाम उत्पन्न होते हैं।

यह भाषण संविधान परिषद् (व्यवस्थापिका) नई दिल्ली, में ३ अप्रैल, १९४८ को परिषद् के सदस्य श्री अनन्तशयनम आयंगर के निम्न प्रस्ताव पर होने वाले वादविवाद के अवसर पर दिया गया था:—

"क्योंकि जनसत्ता के उचित रूप में कार्यान्वित होने के लिए और राष्ट्रीय एकता तथा मजबूती के लिए यह आवश्यक है कि भारतीय जीवन से सांप्रदायिकता अलग हो, इस परिषद का मत है कि किसी भी सांप्रदायिक संगठन को जो कि अपने विधान से अथवा अपने किसी पदाधिकारी या अधिकार में उपनिहित विवेक द्वारा अपनी सदस्यता से धर्म, जाति और उपजाति या इनमें से किसी कारण से लोगों को वंचित करता है, अपने संप्रदाय की वास्तविक धार्मिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त अन्य कामों में भाग लेने की आज्ञा न हो और इस प्रकार के कामों को रोकने के लिए व्यवस्था संबंधी तथा शासकीय सभी उपाय किए जायं।"

यह प्रस्ताव अपने संशोधित रूप में प्रधान मंत्री द्वारा उनके भाषण के अन्त में संशोधन के स्वीकृत होने पर सभा द्वारा स्वीकृत हुआ था।

हम सदा इस बात पर बल देते रहे हैं कि राजनीति और नीतिशास्त्र में मेल रक्खा जाए और मैं आशा करता हूँ, कि हम सदा इसी पक्ष में रहेंगे। चौथाई सदी या इससे भी अधिक काल से महात्मा गांधी ने हमें राजनीति को नैतिक स्तर पर रखना सिखाया है। हमें इसमें कहाँ तक सफलता मिली है, इसका निर्णय संसार के ऊपर और आनेवाली पीढ़ियों के ऊपर है। लेकिन, कम से कम, एक विशेष बात थी कि हमने इस महान आदर्श को अपने सामने रखा और अपने निर्बल और लड़खड़ाते ढंग से सही, उसे कार्यान्वित करने की कोशिश की। लेकिन राजनीति का और धर्म का संकीर्णतम अर्थ में संयोग, जिसका परिणाम सांप्रदायिक राजनीति है—इसमें कोई संदेह नहीं कि यह एक अत्यन्त भयानक संयोग है और इसका अन्त कर देना चाहिए। माननीय प्रस्तावक ने जैसा बताया है, यह स्पष्ट है कि यह संयोग देश के लिए व्यापक रूप से हानिकर है। यह बहु संख्यकों के लिए हानिकर है, लेकिन यह कदाचित् किसी भी अल्प संख्यक समुदाय के लिए, जो इस से लाभ उठाना चाहता है, सबसे अधिक हानिकर है। मैं समझता हूँ कि भारत का अब तक का इतिहास भी यह दिखायेगा। लेकिन हर हालत में एक अल्पसंख्यक समुदाय, जो कि अपने को अलग-अलग रखना चाहता है, देश के लिए हानिकर है, और सबसे अधिक वह अपने ही हितों को हानि पहुंचाता है, क्योंकि अनिवार्य रूप से वह अपने और दूसरों के बीच में एक रुकावट खड़ी करता है—धर्म के स्तर पर रुकावट नहीं, बल्कि राजनीति के स्तर पर रुकावट और कभी-कभी कुछ अंशों में आर्थिक स्तर पर भी; और इस प्रकार आचरण करते हुए वह कभी भी वास्तव में वह प्रभाव नहीं रख सकता, जिसके लिए उसे उचित रूप से आकांक्षा करनी चाहिए।

इस समय संविधान-परिषद् में भारत के भावी संविधान का निर्माण हो रहा है और इसमें संदेह नहीं कि वह इसे दो तीन महीनों में अन्तिम रूप देकर पक्का कर देगी और कोई भी प्रस्ताव जो हम स्वीकार करें उससे उस संविधान को, जिस रूप में वह स्वीकार होगा, बदला नहीं जा सकता। लेकिन आखिर संविधान बनाने वाली सभा कमोबेश यही सभा है, कुछ विशेष अन्तर नहीं। और यदि यह सभा इस प्रस्ताव की भावना के अनुकूल विचार रखती है तो मुझे कुछ भी संदेह नहीं कि संविधान परिषद् भी इस प्रस्ताव के अनुकूल विचार रखेगी। इसके अतिरिक्त, उस संविधान-परिषद के संबंध में जो भी प्रमाण हमारे सामने हैं, वे बताते हैं कि वह इस प्रस्ताव की शर्तों के अनुकूल दूर तक पहुंच चुकी है। इसने हमारे पुराने संविधान की बहुत-सी सांप्रदायिकता की पोषक बातों को अलग कर दिया है। ऐसी और बातें रहेंगी या नहीं, स्पष्ट है कि मैं इसकी जमानत नहीं दे सकता। लेकिन जहां तक कि मेरा संबंध है, मैं समझता हूं कि साम्प्रदायिकता, वह चाहे जिस रूप में हो, जितनी कम हो उतना ही हमारे संविधान के और सरकार के व्यावहारिक संचालन के लिये अच्छा है।

अब, महोदय, जहां तक इस प्रस्ताव का सम्बन्ध है, जैसा कि मैंने कहा, हम इसके अन्तर्गत ध्येय का और इसके पीछे जो भावना है उसका सरगर्मी से स्वागत करते हैं। लेकिन इस प्रस्ताव में इसे कार्यरूप में लाने के लिए व्यवस्था संबंधी और शासकीय उपायों की चर्चा हुई है। ये शासकीय तथा व्यवस्था संबंधी उपाय क्या होंगे, इसका फौरन बता सकना असंभव है। इसके लिए बहुत गहरी छान-बीन आवश्यक होगी, खास तौर से व्यवस्था सम्बन्धी बातों के सम्बन्ध में। और अनुमानतः सरकार के लिए उचित मार्ग यह होगा, कि यदि यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, जैसा कि मुझे विश्वास है कि यह होगा, तो वह यह विचार करे कि कौन से शासकीय और विशेषकर कौन से व्यवस्था सम्बन्धी उपाय इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए आवश्यक होंगे। इसके बाद सभा के अगले अधिवेशन में व्यवस्था सम्बन्धी उपायों तथा सिफारिशों पर विचार किया जाए।

इस बीच में निस्संदेह हमारा नया संविधान बन चुका होगा और उस समय, हमें यह विचार करन में सहायता मिलेगी कि वे व्यवस्था सम्बन्धी उपाय नए संविधान के अनुसार क्या हों। लेकिन हमें उस समय तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। जहाँ तक सरकार का सम्बन्ध है, उद्देश्य यह है कि हमें इस प्रस्ताव के अभिप्राय के अधिकतम अनुकूल काम करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, इस प्रस्ताव का उद्देश्य, मैं मानता हूँ, यह भी है कि इस विषय में देश का पथ-प्रदर्शन हो, जिसमें कि देश जहाँ तक संभव हो यह साफ-साफ समझ ले कि हमारे लिए काम करने का एकमात्र ठीक ढंग यह है कि साम्प्रदायिकता के राजनैतिक पहलू के हर एक रूप और प्रकार से छुटकारा पाया जाय। इसे हम स्वीकार करते हैं। अब, इस समय, जैसा कि कुछ सदस्य बाद में बता सकते हैं, प्रस्तावित संविधान के मसविदे में कुछ निश्चित साम्प्रदायिक तत्व हैं। उदाहरण के लिए, मेरा ख्याल है कि यह प्रस्ताव है कि यद्यपि सम्मिलित और सामान्य निर्वाचक-मंडल हों फिर भी अल्पमत वालों के लिए या परिगणित जातियों के लिए, मैं समझता हूँ, कमोबेश जनसंख्या के आधार पर जगहें सुरक्षित रहें। अब मैं यह नहीं कह सकता कि इसके सम्बन्ध में अंतिम निर्णय क्या हो। व्यक्तिगत रूप से मैं उम्मेद करता हूँ कि जितनी कम सुरक्षित जगहें हों, उतना ही अच्छा है। और मैं समझता हूँ कि किसी और वर्ग या बहुसंख्यकों की दृष्टि की अपेक्षा, स्वयं अल्प-संख्यकों या जिनके लिए जगहें सुरक्षित करने का विचार है उनके अपने हितों की दृष्टि से यह अधिक अच्छा रहेगा।

इस विषय का एक और पहलू भी है, जिसे ध्यान में रखना चाहिए। हम जनसत्ता और एकता आदि की बात करते हैं और मैं आशा करता हूँ कि शीघ्र ही हम देश में अधिकाधिक जनसत्ता और एकता पावेंगे। यह जनसत्ता केवल राजनीति का मामला ही नहीं है। जनसत्ता की उन्नीसवीं सदी की यह कल्पना, कि हर व्यक्ति

को एक वोट देने का अधिकार प्राप्त हो, उन दिनों एक काफी अच्छी कल्पना थी। लेकिन वह अपूर्ण थी और आज लोग एक अधिक विस्तृत और गहरी जनसत्ता की कल्पना करते हैं। आखिरकार एक दरिद्र के, जिसे एक मताधिकार प्राप्त हो और लखपती के बीच, जिसे भी एक ही मताधिकार प्राप्त हो, कोई समता नहीं है। लखपती के पास अपना प्रभाव डालने के सौ साधन हैं, जो कि दरिद्र को प्राप्त नहीं हैं। आखिरकार उस आदमी के, जिसे शिक्षा की महान् सुविधाएं प्राप्त रही हैं, और उस के बीच, जिसे ये प्राप्त नहीं रही हैं, कोई समानता नहीं हैं। इसलिए शिक्षा, सम्पत्ति तथा और प्रकार से आदमियों में आपस में बड़े भेद होते हैं। मैं समझता हूँ कि लोगों के बीच कुछ हद तक भेद रहेंगे भी। योग्यता और समझ के विचार से सब मनुष्य समान नहीं हैं। लेकिन मुख्य बात यह है कि लोगों को अवसर की समानता प्राप्त होनी चाहिए और जहाँ तक जिसकी योग्यता हो, वहाँ तक उसे पहुँचने का मौका मिलना चाहिए।

अब आज भारत में यह मानी हुई बात है कि कुछ दलों, वर्गों और व्यक्तियों के बीच बड़े-बड़े भेद हैं। जो लोग चोटी पर हैं और जो सबसे नीचे हैं, उनके बीच एक बड़ी खाई है। अगर हमारे यहाँ जनसत्ता होनी है, तो यह आवश्यक और अनिवार्य हो जाता है कि न केवल इस खाई पर एक पुल बाँधा जाय, बल्कि यह खाई बहुत कम की जाय। वास्तव में जहाँ तक अवसर का प्रश्न है, जहां तक अन्त में साधारण जीवन की हालतों का प्रश्न है, और जहाँ तक जीवन की आवश्यकताओं का प्रश्न है, उक्त भेदों को बहुत कम करना ज़रूरी है। ऐश आराम की वस्तुओं को अभी छोड़ा जा सकता है, यद्यपि मैं मुझे कोई वजह नहीं जान पड़ती कि कुछ लोग ऐश आराम के लिये क्यों विशिष्ट समझें जायँ। लेकिन यह कदाचित् एक दूर की तस्वीर है। अब चूंकि भारत में इतने बड़े भेद हैं, हम लोगों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि न केवल मानवता की दृष्टि से, वल्कि जनसत्ता की पूर्ति की दृष्टि से भी, जो लोग सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से नीचे गिरे हुए हैं, उन्हें उठावें और उन्हें बढ़ने और उन्नति करने के सभी संभावित अवसर दें। यही देश की साधारणतः मानी हुई नीति रही है और यही सरकार की स्वीकृति नीति है। तो इस नीति के अनुसार कुछ सुरक्षित जगहें कायम की गईं, उदाहरण के लिए परिगणित लोगों के लिए। अनेक छात्रवृत्तियाँ, पाठ्य पुस्तकें संबंधी सुविधाएं आदि दी गई हैं, और निस्संदेह इससे भी अधिक दी जायंगी न केवल परिगणित जातियों को, बल्कि देश के और पिछड़े हुए वर्गों को भी। आदिवासी जन हैं और और लोग भी हैं, जिन्हें सभी प्रकार की सहायता की आवश्यकता है। हमारे लिए यह कहना काफी नहीं कि हमने एक आदिवासी को मताधिकार दे दिया और उसके प्रति हमने अपने कर्त्तव्य का पालन कर लिया। सैकड़ों हजारों वर्षों तक उसके प्रति अपना कर्त्तव्य पालन न करके, उसे एक मताधिकार देकर हम अपने को और कर्त्तव्यों से मुक्त समझते हैं। अतएव हमें सदा इस दृष्टि से विचार करना है कि जिन्हें अब

तक अवसर नहीं मिले हैं, हमें उनके स्तर को ऊँचा करना है। मैं व्यक्तिगत रूप से यह नहीं समझता कि राजनीति के स्तर पर ऐसा करने का सबसे अच्छा उपाय उनके लिए जगहों की सुरक्षा आदि है। मैं समझता हूं कि सबसे अच्छा तरीका और बुनियादी तथा सारभूत तरीका आर्थिक और शिक्षा के क्षेत्रों में उनकी शीघ्रता से तरक्की करना है। इसके बाद वे अपने पैरों पर आप खड़े हो सकेंगे।

जब आप किसी व्यक्ति या समुदाय को ऐसा सहारा देते हैं, जिससे उसे अपनी शक्ति का, जो कि वास्तव में उसके पास है नहीं, भ्रम होता है, तो बड़ा खतरा पैदा होता है। यह सहारा बाहरी होता है और जब यह हटा लियां जाता है, तो यकायक समुदाय कमजोर पड़ जाता है। एक राष्ट्र को आखिर अपने पैरों के बल खड़ा होना चाहिए। जब तक वह किसी बाहरी सहारे का भरोसा रखता है, तब तक वह मजबूत नहीं, वह कमजोर है। इसलिए जैसा कि कहना चाहिए, यह बाहरी सहारा यानी जगहों की सुरक्षा आदि, संभव है कि पिछड़े हुए वर्गों के लिए कभी-कभी सहायक हो, लेकिन यह राजनैतिक प्रसंग में एक झूठा मान ले आता है, शक्ति का एक झूठा मान उत्पन्न करता है, और इसलिए अन्त में इसका प्रायः उतना महत्त्व नहीं जितना कि वास्तविक शिक्षा तथा संस्कृति सम्बन्धी और आर्थिक उन्नति का है, जो कि उन्हें किसी भी कठिनाई या विरोधी का सामना करने की भीतरी शक्ति देती है। फिर भी मैं कल्पना कर सकता हूँ कि अपने इन अभागे देशवासियों की वर्तमान परिस्थिति में, जिन्हें अतीत में ऐसे अवसर नहीं मिले हैं, इस बात के लिए विशेष प्रयत्न होना चाहिए कि निश्चय ही शिक्षा और आर्थिक क्षेत्र में और राजनैतिक क्षेत्र में भी उन्हें उस समय तक उचित समर्थन दिया जाय, जब तक कि वे बिना किसी बाहरी सहायता के अपने पैरों के बल खड़े न होने लगें।

इसलिए मैं यह प्रस्ताव सरकार की ओर से स्वीकार करता हूँ। लेकिन इसे स्वीकार करते हुए मैं इस बात को बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि जहाँ तक इसके कार्यान्वित करने का प्रश्न है, विशेषकर कानून के क्षेत्र में, इस पर पुनः ध्यानपूर्वक विचार करना होगा और वह अन्त में पुनः इस सभा के सामने लाना होगा।

"सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी" शब्दों को जिनकी इस प्रस्ताव के एक संशोधन में चर्चा हुई है, प्रस्ताव में जोड़ना स्वीकार करने में मुझे सरकार की ओर से कोई आपत्ति नहीं है, यह अब इस प्रकार पढ़ा जायगा :

".......अपने सम्प्रदाय की वास्तविक धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं के अतिरिक्त अन्य कामों में भाग लेने की आज्ञा न हो............."।

कांश्मीर

कौन ज़िम्मेवार है ?

आज रात मैं आपसे काश्मीर के बारे में कहना चाहता हूँ। इस प्रसिद्ध घाटी के सौन्दर्य के बारे में नहीं, बल्कि उस भय-कंप के बारे में जिसका काश्मीर को हाल में सामना करना पड़ा है। हम लोग बहुत संकट के दिनों से होकर गुजरे हैं और हमें कितने ही महत्वपूर्ण और दूर तक प्रभाव डालने वाले निर्णय करने पड़े हैं। हमने ऐसे निर्णय किए हैं और मैं आपको उनके बारे में बताना चाहता हूँ।

पड़ोसी सरकार ने, ऐसी भाषा में जो सरकारों की तो क्या बल्कि जिम्मेदार लोगों की भी भाषा नहीं है, भारत सरकार पर यह आरोप लगाया है कि उसने काश्मीर को धोखेबाजी से भारतीय संघ में सम्मिलित किया है। ऐसी भाषा के प्रयोग में मैं उनकी बराबरी नहीं कर सकता, और न ऐसा करने की मेरी इच्छा ही है, क्योंकि मैं एक जिम्मेदार सरकार और जिम्मेदार जनता की तरफ से बोल रहा हूँ। मैं मानता हूँ कि काश्मीर में दंगा और बल-प्रयोग हुआ है, लेकिन प्रश्न यह है इसके लिए जिम्मेदार कौन है? जम्मू और काश्मीर रियासत के बड़े हिस्से बाहरी आक्रमणकारियों द्वारा, जो कि हथियारों और सामान से सुसज्जित हैं ध्वस्त हो चुके हैं, और उन्होंने शहरों और गाँवों को लूटा तथा तबाह किया है। उन्होंने वहाँ के बहुत से निवासियों को तलवार के घाट उतार दिया है। इस सुरम्य और शान्त देश में भीषणता का आक्रमण हुआ और श्रीनगर का सुन्दर शहर भी नष्ट होते होते बचा।

मैं यह सबसे पहले बता देना चाहता हूँ कि काश्मीर के संबन्ध में हमने हर एक कदम पूरे सोच विचार के बाद और परिणामों को ध्यान में रखते हुए रखा है, और मुझे विश्वास है कि हमने जो कुछ किया है, ठीक किया है। इन कदमों का न उठाना हमारे लिए एक दायित्व के प्रति धोखा देना होता, और बल-प्रयोग के सामने, जिसके साथ ही साथ अग्निकांड, स्त्रियों के प्रति बलात्कार और कत्ल हो रहे हों, बुजदिली के साथ झुक जाना होता।

कुछ हफ्तों से हमें जम्मू प्रान्त के रियासती प्रदेश में आक्रमणकारी दलों के चुपके-चुपके प्रवेश करने के समाचार मिल रहे थे; इस बात के भी कि काश्मीर और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त की सरहद पर हथियारबन्द आदमियों का जमाव हो रहा है।

---

२ नवम्बर १९४७ को नई दिल्ली से प्रसारित एक भाषण।

हम स्वभावतः इससे चिन्तित हुए, न केवल इस खयाल से कि काश्मीर और उसके लोगों से हमारे निकट के सम्बन्ध हैं, बल्कि इसलिए भी कि काश्मीर बड़े बड़े राष्ट्रों का सरहदी इलाका है, इसलिए वहाँ जो कुछ हो रहा है, उसमें दिलचस्पी लेना हमारे लिए अनिवार्य है। लेकिन हम किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं करना चाहते थे और न हम लोगों ने दस्तन्दाज़ी का कोई कदम उठाया, अगर्चे जम्मू प्रान्त के एक हिस्से पर आक्रमणकारी चढ़ आए थे।

यह कहा गया है कि जम्मू की ओर से पाकिस्तान की सरहद पार करके हमले हुए थे, और मुसलमान मारे, भगाए या निकाल दिये गए थे। हमने बुराई की निन्दा करने में कभी संकोच नहीं किया है, चाहे उसके करने वाले हिन्दू हों या सिख हों या मुसलमान हों। इसलिए अगर हिन्दुओं या सिखों या रियासत के कर्मचारियों ने जम्मू प्रान्त में कोई दुर्व्यवहार किया है, तो हम निश्चय रूप से उसकी निन्दा करते हैं और उनके किए पर खेद प्रकट करते हैं।

लेकिन मेरे सामने जम्मू सूबे के ९५ गाँवों की एक विस्तृत सूची है, जिनका पाकिस्तान से आए आक्रमणकारियों ने विध्वंस किया है। भिम्बर जैसे एक काफी बड़े कस्बे को लूटकर उसे विध्वस्त कर दिया गया है। और भी कस्बों पर घेरा डाल दिया गया है और पुंच्छ और मीरपुर के इलाकों के काफी बड़े हिस्से आज हमला करने वालों के अधिकार में हैं। क्या यह इस बात का संकेत देता है कि काश्मीर की ओर से पश्चिमी पंजाब पर आक्रमण हुए? इससे क्या यह नहीं जाहिर होता कि पश्चिमी पंजाब से काश्मीर रियासत में बराबर संगठित हमले होते रहे हैं? इन हमला करने वालों के पास नए से नए ढंग के आधुनिक हथियार हैं। यह कहा गया है कि अग्निज्वाला फेंकने वाले अस्त्रों का भी उपयोग हुआ है और उनके पास एक बिगड़ा हुआ टैंक भी पाया गया है।

इस समय के आसपास काश्मीर रियासत ने हमसे हथियारों की माँग की। हमने इस विषय में कोई जल्दी नहीं की और अगर्चे हमारे रियासती और रक्षा मंत्रियों ने मंजूरी दे दी थी, तथापि व्यवहार में कोई हथियार भेजे नहीं गए।

२४ अक्तूबर की रात को मुझे मालूम हुआ कि एक धावा और हुआ है और इस बार वह एबटाबाद-मानसरा सड़क की ओर से हुआ है, जो काश्मीर में मुजफ्फराबाद के पास प्रवेश करती है। हमें बताया गया कि एक सौ से ऊपर लारियों में हथियारबन्द और सामान से लैस आदमियों ने सरहद पार कर मुजफ्फराबाद को लूट लिया है और बहुत से आदमियों की हत्या की है, जिनमें जिले के मजिस्ट्रेट भी थे, और अब वे झेलम घाटी की सड़क से श्रीनगर की तरफ बढ़ रहे हैं। रियासती फौजें थोड़ी-थोड़ी संख्या में सारी रियासत में फैली हुई थीं और वे इस

हथियारबन्द और सुसंगठित धावे का मुकाबला नहीं कर सकती थीं। नागरिक जनता, हिन्दू और मुसलमान, इन हमला करने वालों के सामने से भाग रही थी।

२४ अक्तूबर की रात को पहली बार काश्मीर रियासत की ओर से भारत में प्रवेश करने की तथा सैनिक सहायता की प्रार्थना की गई। २५ ता० को सबेरे हमने रक्षा-समिति में इस पर विचार किया, लेकिन सेना भेजने के विषय में इस कार्य की प्रत्यक्ष कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए, कोई निर्णय नहीं किया। २६ ता० को सबेरे हमने इस मामले पर फिर विचार किया। अब तक स्थिति और भी नाजुक हो चुकी थी। धावा करने वालों ने कई कस्बों में लूटमार की थी और महूरा के बिजलीघर को, जहाँ से सारे काश्मीर में बिजली पहुँचती है, नष्ट कर दिया था। वे घाटी में प्रवेश करने ही वाले थे। श्रीनगर और सारे काश्मीर का भाग्य तराजू के कांटे पर था।

हमारे पास सहायता माँगने के जरूरी सँदेसे न केवल महाराजा की सरकार की ओर से, बल्कि जनता के प्रतिनिधियों की ओर से भी आए, खासकर काश्मीर के उस बड़े नेता और नेशनल कांफ्रेंस के सभापति शेख मुहम्मद अब्दुल्ला के पास से। काश्मीर सरकार और नेशनल कांफ्रेंस दोनों ही ने इस पर जोर दिया कि काश्मीर का भारतीय संघ में प्रवेश हम स्वीकार करें। हमने इस प्रवेश को स्वीकार करने का और हवाई जहाजों से सेना भेजने का निश्चय किया, लेकिन हमने एक शर्त लगाई कि इस प्रवेश पर रियासत में शान्ति और व्यवस्था स्थापित हो जाने के बाद काश्मीर की जनता की राय ली जाए। हमें इस बात की चिन्ता थी कि एक संकट के क्षण में और बिना काश्मीर के लोगों को अपना विचार प्रकट करने का पूरा अवसर दिए हुए हम कोई अन्तिम निर्णय न कर लें। अन्त में निर्णय करना उन्हीं का काम था।

और यहाँ मैं यह स्पष्ट कर देना चाहूंगा कि हमारी बराबर यह नीति रही है कि जहाँ भी किसी रियासत के किसी भी अधिराज्य में प्रवेश करने के विषय में झगड़ा हो, वहाँ रियासत की जनता का निर्णय ही माना जायगा। इस नीति के अनुसार हमने प्रवेश सम्बंधी प्रार्थनापत्र में यह शर्त जोड़ी।

हमने २६ अक्टूबर के तीसरे पहर काश्मीर में सेनाएं भेजने का निश्चय किया। श्रीनगर खतरे में था और स्थिति गंभीर और नाजुक थी। हमारे कर्मचारियों ने दिन रात परिश्रम किया और २७ को पौ फटते ही हमारे सैनिक हवा के मार्ग से रवाना हो गए। शुरू में उनकी संख्या थोड़ी थी, लेकिन पहुँचते ही वे हमला करने वालों को रोकने में जुट गए। उनका साहसी कमांडर, जो कि हमारी सेना का एक बहादुर अफसर था, दूसरे ही दिन मारा गया।

तब से सेना और सामान हवाई जहाजों से बराबर वहाँ पहुँचाए गए हैं, और हमारे कर्मचारियों ने हमारे पाइलेटों और हवाबाजों ने जिस तरह इस काम में अपने को जी जान से लगा दिया है, उसकी मैं अपनी ओर से तथा अपनी सरकार की ओर से बड़ी तारीफ करूंगा। हवाई लाइनों ने हमसे पूरा सहयोग किया है और मैं उनका भी कृतज्ञ हूँ। हमारे नौजवानों ने यह दिखा दिया है कि वे किस प्रकार अवसर आने पर, जबकि स्थिति नाजुक हो, अपने देश की सेवा के लिए तत्पर हो सकते हैं।

श्रीनगर खतरे में था और आक्रमणकारी उसके दरवाजे तक आ गया था। वहाँ न कोई शासन रह गया था, न सैनिक थे, न पुलिस थी। रोशनी और बिजली की शक्ति भी वहाँ नहीं थी और वहाँ बहुत से शरणार्थी इकट्ठे हो गए थे। फिर भी श्रीनगर में कोई प्रत्यक्ष खलबली नहीं थी। दूकानें खुलीं हुई थीं और लोगों का गलियों में आना जाना जारी था। यह अद्भुत घटना कैसे घटी। शेख अब्दुल्ला और नेशनल कांफरेंस के उनके साथियों और उनके निहत्थे मुसलमान, हिन्दू और सिख स्वयंसेवकों ने स्थिति को हाथों में लिया, व्यवस्था बनाए रखी, और खलबली उत्पन्न होने से रोकी। एक ऐसे क्षण में जबकि ज्यादातर लोगों की हिम्मतें छूट गई होतीं, उन्होंने अद्भुत काम कर दिखाया। वे अपने संगठन की शक्ति के कारण ऐसा कर सके, लेकिन इससे भी बढ़कर इस कारण कि अपने देश की ऐसे निर्दय आक्रमणकारी से रक्षा करने पर वे तुले हुए थे जो कि उनके देश का विनाश कर रहा था और दहशत पैदा करके उन्हें पाकिस्तान में शरीक होने पर मजबूर करने की कोशिश कर रहा था। भविष्य में जो भी हो, काश्मीर की घाटी के लोगों ने इन पिछले कुछ दिनों में आश्चर्यजनक साहस, संगठन की योग्यता तथा एकता दिखाई है।

बहुत अच्छा हो कि सारा भारत जो कि साम्प्रदायिक झगड़ों के कारण विषाक्त हो गया है, इस से सबक सीखे। एक बड़े नेता शेख अब्दुल्ला की प्रेरणा से घाटी के लोग मुस्लिम, हिन्दू और सिख अपने देश की रक्षा के लिए, जो कि समान रूप से सबका है, आक्रमणकारी के विरुद्ध मिलकर एक हुए। जनता की इस सहायता और सहयोग के बिना हमारे सैनिक बहुत कम काम कर पाते।

इस नाजुक अवसर पर शेख अब्दुल्ला को शासन का प्रधान बनाने के निर्णय पर कश्मीर के महाराजा बधाई के पात्र हैं। अपनी जनता को स्वतंत्रता का संरक्षक और ट्रस्टी बनाना ही यह बड़ी बुद्धिमत्ता का काम था, जिसका कि और शासक अनुसरण कर सकते हैं।

इसलिए यह याद रखना चाहिए कि कश्मीर की लड़ाई एक लोकप्रिय नेता

के नेतृत्व में काश्मीर के लोगों की आक्रमणकारी के विरुद्ध लड़ाई है। हमारे सैनिक वहाँ इस युद्ध में सहायता देने के लिए गए हैं और जैसे ही काश्मीर आक्रमणकारियों से मुक्त हो जायगा, हम सैनिकों के वहाँ रहने की कोई आवश्यकता शेष नहीं रह जायगी और काश्मीर के भाग्य का निपटारा काश्मीर के लोगों पर छोड़ दिया जायगा।

हम ऐसे दिनों में से गुज़रे हैं जो न केवल काश्मीर के लिए बल्कि सारे भारत के लिए संकट का रहा है। यह संकट कम हुआ है, लेकिन इसे समाप्त नहीं कह सकते और अभी बहुत से और खतरे हमारे सामने हैं। वहाँ कुछ भी होगा उसके लिए हमें बहुत सतर्क और खूब तैयार रहना है। इस तैयारी की दिशा में पहला कदम तो यह हो सकता है कि हम भारत में सब प्रकार के सांप्रदायिक झगड़ों को समाप्त कर दें, और किसी एकतापूर्ण राष्ट्र की भांति अपनी स्वतंत्रता के प्रति हर एक खतरे का सामना करने के लिए तत्पर हो जायं। बाहरी खतरे का अच्छी तरह सामना हम तभी कर सकते हैं जबकि हमारे यहां भीतरी शांति और व्यवस्था हो और एक संगठित राष्ट्र हो।

हम काश्मीर पर धावा करने वालों और आक्रमणकारियों की बात करते हैं, लेकिन ये लोग न केवल पूरी तरह से हथियारबन्द और सुशिक्षित हैं बल्कि कुशल नेतृत्व में हैं। ये सभी पाकिस्तान के इलाके से होकर आए हैं। पाकिस्तान सरकार से यह पूछने का हमें अधिकार है कि ये लोग सीमाप्रांन्त या पश्चिमी पंजाब पार कर वहाँ कैसे पहुंचे और कैसे ये पर्याप्त रूप से हथियारबन्द हैं? क्या यह अन्तर्राष्ट्रीय विधान को भंग करना और एक पड़ोसी राष्ट्र के प्रति अमित्रता का व्यवहार करना नहीं है? क्या पाकिस्तान सरकार इतनी कमजोर है कि उसके इलाके को पार कर दूसरे देश पर आक्रमण करने वाली फौजों को वह रोक नहीं सकती, या वह चाहती है कि ऐसा आक्रमण हो? इसके सिवा दूसरी बात नहीं हो सकती।

हमने पाकिस्तान सरकार से बार बार कहा है कि वह इन आक्रमणकारियों को आने से रोके और जो आ गए हैं उन्हें लौटा दे। इनका रोकना पाकिस्तान सरकार के लिए आसान है, क्योंकि काश्मीर में पहुंचने वाली सड़कें बहुत नहीं हैं और वे पुलों को पार करके आती हैं। अपनी ओर से हम कह सकते हैं कि जब आक्रमण का खतरा पूरी तरह दूर हो जायगा तो अपनी सेना का काश्मीर में उपयोग करने की हमारी कोई इच्छा नहीं है।

हमने यह घोषणा की है कि काश्मीर के भाग्य का अंतिम निर्णय वहां के लोगों के हाथ रहेगा। हमने यह प्रतिज्ञा न केवल काश्मीर के लोगों से बल्कि सारे संसार

से कर रक्खी है और महाराजा ने इसका समर्थन किया है। हम इससे पीछे न हटेंगे और न हट सकते हैं। हम इसके लिए तैयार हैं कि जब काश्मीर में शान्ति और व्यवस्था और कानून स्थापित हो जाय तो संयुक्त राष्ट्र जैसे अन्तर्राष्ट्रीय निरीक्षण में जनमत लिया जाय। हम चाहते हैं कि जनता को न्याय और उचित ढंग से मत देने का अवसर मिले और हम उसके निर्णय को स्वीकार करेंगे। इससे अधिक न्यायपूर्ण और उचित प्रस्ताव की मैं कल्पना नहीं करता।

इस बीच हमने काश्मीर के लोगों को यह वचन दे रक्खा है कि हम उनकी आक्रमणकारियों से रक्षा करेंगे और हम इस प्रतिज्ञा का पालन करेंगे।

काश्मीर की अग्नि-परीक्षा

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मैं इस सभा को वे घटनाएं, जिन्होंने हमें काश्मीर में अपनी फौजें भेजकर हस्तक्षेप करने के लिए विवश किया और जो गंभीर प्रश्न उस रियासत में उठ खड़े हुए, उनके सम्बन्ध में भारत सरकार का रुख बता सकूंगा।

इस सभा को मालूम है कि इस वर्ष १५ अगस्त को सम्राट के आधिपत्य का अन्त होने पर, काश्मीर ने किसी भी राज्य के साथ अपने को सम्मिलित नहीं किया था। यह सही है कि यह रियासत क्या निर्णय करेगी, इसमें हमारी गहरी दिलचस्पी थी। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण, काश्मीर, जिसकी सरहदें तीन देशों, अर्थात सोवियत संघ, चीन और अफगानिस्तान से लगी हुई हैं, भारत की रक्षा और अन्तर्जातीय संपर्क के प्रश्नों से घनिष्ट रूप से संबद्ध है। आर्थिक दृष्टि से भी काश्मीर का भारत से गहरा संबंध है। मध्य एशिया से भारत आने वाले व्यापारी दलों का रास्ता काश्मीर से होकर आता है।

फिर भी रियासत पर, भारतीय राज्य में सम्मिलित होने के लिए, हमने जरा भी दबाव नहीं डाला, क्योंकि हमने अनुभव किया कि काश्मीर एक बड़ी कठिन परिस्थिति में है। हम शासन की ओर से केवल समायोग नहीं चाहते थे, बल्कि काश्मीर जनता की इच्छा के अनुसार यह काम करना चाहते थे। वास्तव में हमने जल्दी में निश्चय कराने का कोई प्रोत्साहन नहीं दिया। यहाँ तक कि यथावत् स्थिर रहने के सम्बंन्ध में भी कोई करार करने के विषय में हमने जल्दी नहीं की, यद्यपि १५ अगस्त के बाद ही काश्मीर का पाकिस्तान से इस प्रकार का समझौता हुआ था।

हमको बाद में मालूम हुआ कि पाकिस्तान के अधिकारियों द्वारा जनता की आवश्यकताओं के लिए आवश्यक सामान जैसे अनाज, नमक, शक्कर और पेट्रोल आदि का काश्मीर प्रवेश रोक कर, काश्मीर पर बाहरी दबाव डाला जा रहा है। इस प्रकार काश्मीर पर आर्थिक फांसी लगाने का और उसे पाकिस्तान में सम्मिलित होने के लिए मजबूर करने का यत्न चल रहा था। यह दबाव संगीन था, क्योंकि काश्मीर के लिए इस सामान को यातायात की कठिनाइयों के कारण भारत से प्राप्त करना आसान नहीं था।

संविधान परिषद् (व्यवस्थापिका), नई दिल्ली में २५ नवम्बर, १९४७ को दिया गया वक्तव्य।

सितम्बर में हमें समाचार मिला कि पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के कबायली इकट्ठा करके काश्मीर की सरहद पर भेजे जा रहे हैं। अक्तूबर के आरंभ में घटनाओं ने एक गंभीर पलटा लिया। पश्चिमी पंजाब के पड़ोसी जिलों से हथियारबन्द दल जम्मू प्रान्त में पहुंच गए और स्थानीय निवासियों पर भयानक लूट-मार करने लगें। उन्होंने गाँवों और कस्बों को जलाया, और बहुत से लोगों को कत्ल कर दिया। इन हिस्सों से बड़ी संख्या में शरणार्थी जम्मू में पहुंचने लगे।

जम्मूकी सरहद के स्थानीय निवासियों ने, जो कि मुख्यतया हिन्दू और राजपूत हैं, बदला लेना शुरू किया और इन सरहदी गाँवों के मुसलमानों को निकाल भगाया। इन सरहदी झगड़ों में दोनों ही दलों के लोगों ने सरहद के दोनों तरफ के गाँवों को बहुत बड़ी संख्या में नष्ट कर दिया या जला दिया।

जम्मू प्रान्त पर पश्चिमी पंजाब के आक्रमण करने वालों की संख्या बढ़ी और वे उस प्रान्त में फैल गए। काश्मीर सरकार की सेना जिसे कि इन हमलों का कई जगहों पर मुकाबला करना पड़ता था, शीघ्र ही छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट गई और धीरे-धीरे उसकी युद्ध करने की शक्ति जाती रही। आक्रमण करने वाले खूब संगठित थे, उनके पास कुशल अफसर थे और आधुनिक हथियार थे। जम्मू प्रान्त के एक बड़े हिस्से पर अधिकार करने में वे सफल हुए, खासतौर से पुंच्छ इलाके में। पुंच्छ का कस्बा, मीरपुर, कोटली और कुछ और जगहें मुकाबले में डटी रहीं।

लगभग इसी समय रियासत के अधिकारियों ने हमसे हथियार और लड़ाई का सामान माँगा। हमने सामान्य क्रम में उन्हें लड़ाई का सामान देना स्वीकार किया। लेकिन वास्तव में हमने कोई सामान उस समय तक नहीं भेजा, जब तक कि घटनाओं ने एक और नाजुक परिस्थिति नहीं पैदा कर दी। इस दर्जे पर भी भारत में सम्मिलित होने की चर्चा नहीं उठी।

इस समय काश्मीर की जनता के संगठन के नेता, काश्मीर नेशनल कान्फ्रेंस के सभापति शेख मुहम्मद अब्दुल्ला, जेल से मुक्त किए गए और हम लोगों ने उनसे और काश्मीर के महाराजा के प्रतिनिधियों से काश्मीर की स्थिति के संबंध में परामर्श किया। हमने उन दोनों से यह स्पष्ट कर दिया कि यद्यपि हम काश्मीर के भारत प्रवेश का स्वागत करेंगे, तथापि हम यह नहीं कि यह प्रवेश जल्दी में या दबाववश हो। बल्कि हम उस समय तक रुकना पसन्द करेंगे, जब तक कि जनता निर्णय न करे। शेख अब्दुल्ला की भी यही राय थी।

२४ अक्तूबर को हमने सुना कि बड़े-बड़े हथियारबन्द दल, जिनमें कि सीमा प्रान्त के कबायली और अवकाशप्राप्त सैनिक दोनों ही थे, मुजफ्फराबाद के नाके को तोड़

कर श्रीनगर की ओर कूच कर रहे थे। ये आक्रमणकारी पाकिस्तान का इलाका पार करके आए थे और उनके पास ब्रेन तोपें, मशीनगनें, मार्टर बन्दूकें और अग्निक्षेपक यंत्र थे। उनके साथ यातायात की सैकड़ों गाड़ियाँ भी थीं। वे लूट-मार करते और आग लगाते हुए तेजी से घाटी में उतर रहे थे।

इस स्थिति पर २५ और २६ अक्तूबर को हमने अपनी रक्षा-समिति में बड़ी गंभीरता से विचार किया। २६ के सबेरे स्थिति यह थी कि धावा करने वाले श्रीनगर की ओर कूच कर रहे थे, और कोई फौजी दस्ता ऐसा नहीं था जो उनका सामना कर सके। दो दिन तक उड़ी के पास रियासती सेना ने अपने बहादुर कमांडर के नेतृत्व में, जो कि मरते दम तक इस हमले को रोके रहा, इनका सामना किया। इस तरह जो दो दिन हासिल हुए, वे बड़े मूल्यवान थे।

इन हालतों में महाराजा और शेख अब्दुल्ला दोनों की तरफ से हम से यह कहा गया कि हम भारतीय संघ में रियासत का प्रवेश स्वीकार करें और भारत की फौजी शक्ति से काश्मीर की सहायता करें। तुरन्त निर्णय करना आवश्यक था, और अब तो यह स्पष्ट हो गया है कि यदि हमने निर्णय करने में २४ घंटे की भी देर की होती तो श्रीनगर चला गया होता, और उसकी वही दशा हुई होती जो कि मुजफ्फराबाद, बारामूला और दूसरी जगहों की हुई। हमारे लिए यह स्पष्ट था कि हम किसी भी सूरत में निर्दयी और गैरजिम्मेदार हमलावरों के जरिये काश्मीर की बरबादी देख नहीं सकते थे। ऐसा करना, सबसे खराब किस्म की कट्टरता और आतंक के सामने सिर झुकाना होता और सारे भारत पर उसके बहुत बुरे परिणाम होते। इस स्थिति में बीच में दखल देना कोई आसान काम नहीं था और इसमें पूरा जोखिम और खतरा था। फिर भी हमने जोखिम उठा कर दखल देने का निश्चय किया, क्योंकि ऐसा न करने का नतीजा काश्मीर की बरबादी और भारत के लिए और भी ज्यादा खतरा होता।

लेकिन, प्रवेश को स्वीकार करते हुए, हमने महाराजा से यह पूरी तरह स्पष्ट कर दिया कि अब से उनकी सरकार को जनता की इच्छा पर चलना होगा और शेख अब्दुल्ला को, मैसूर में स्वीकृत नए नमूने पर, एक अन्तरकालीन सरकार बनाने का काम सौंप देना होगा। शेख अब्दुल्ला को, निश्चित रूप से, काश्मीर के लोगों का, वे चाहे मुस्लिम हों या हिन्दू हों या सिख हों, बहुत बड़ा बहुमत प्राप्त था। इसके अतिरिक्त हमने यह भी स्पष्ट कर दिया कि जैसे ही काश्मीर में कानून और व्यवस्था स्थापित हो जायगी, और उसकी भूमि हमलावरों से साफ हो जायगी, रियासत के भारत प्रवेश का प्रश्न जनमत से हल किया जाय।

बाद की फौजी कार्यवाही बताने में मैं इस सभा का समय नहीं लूंगा। जो घटनाएँ

हुईं, वे अच्छी तरह मालूम हैं और उनसे हमारे सैनिक संगठन का, हमारे सैनिकों और उड़ाकों का गौरव बढ़ता है। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि हमारी कार्यवाही कठिन परिस्थितियों में अधिकांश हवाई यातायात पर ही निर्भर रही है। हमारी नागरिक यात्रा-लाइनों ने और उनके उड़ाकों ने भी वहाँ बड़ी सफलता से काम किया है।

एक बात जिसने कि हमारी सफलता में बड़ी मदद दी, कम से कम उतनी ही मदद दी, जितनी कि हमारी फौजी कार्यवाही ने, वह थी शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में नागरिक शासन का कायम रहना, और नागरिकों के संयम का बना रहना। नागरिक जनता ने बिल्कुल निहत्थी होते हुए और दुश्मन के शहर से चन्द मीलों पर होते हुए भी जैसा आचरण किया, वह उसके साहस और स्थिरता का साक्षी है। वह ऐसा कर सकी क्यों कि उनका एक बड़ा नेता था, और क्योंकि हिन्दू, मुसलमान, और सिख सब ने अपने नेता के नेतृत्व में मिलजुल कर दुश्मन को भगाने और अपनी जन्मभूमि काश्मीर को बचाने का निश्चय कर लिया था। यह बात भारत की आधुनिक समय की घटनाओं में बड़े मार्के की है और ऐसी है, जिससे देश के और हिस्सों को उपयोगी शिक्षा मिल सकती है। श्रीनगर की रक्षा में निश्चय ही इस बात का बहुत ही बड़ा महत्व है।

इस समय स्थिति यह है कि हमारे सैनिकों ने पुंच्छ की रक्षा कर ली है, और कोटली से वे ८ मील पर हैं। जिस जमीन पर वे लड़ रहे हैं, वह बड़ी ऊबड़ और पहाड़ी है, और सड़कों तथा निकासों को हमला करने वालों ने नष्ट कर दिया है। इसलिए प्रगति मन्द है। पुंच्छ इलाके में, जहाँ कि आक्रमणकारियों ने अधिकार कर लिया था, बहुत से गैर मुस्लिम निवासी कत्ल कर दिए गए हैं।

यहाँ पर मैं यह कहना चाहूँगा कि जम्मू के निकट शुरू नवम्बर १९४७ में कुछ घटनाएँ घटीं जिनका मुझे बहुत अफससोस है। मुस्लिम शरणार्थियों के दल जम्मू से बाहर पहुँचाए जा रहे थे, जबकि उन पर गैर मुस्लिम शरणार्थियों ने तथा औरों ने हमला कर दिया और एक बड़ी संख्या में जानें गईं। जो सैनिक उन्हें साथ ले जा रहे थे उन्होंने प्रशंसा योग्य काम नहीं किया। मैं यह बता दूं कि हमारे कोई सैनिक वहाँ मौजूद न थे और न उनका इसमें कोई भाग था। हमने अपने सैनिकों को लोगों की रक्षा करने की और निष्पक्ष व्यवहार की, तथा स्थानीय निवासियों से मेल मिलाप बढ़ाने की कड़ी आज्ञाएँ दे रखी हैं। मुझे यह बताते हुए प्रसन्नता होती है कि उन्होंने इन आदेशों का पालन किया है।

इस सभा को मालूम है कि पाकिस्तान सरकार ने काश्मीर में की गई हमारी कार्यवाही के विरुद्ध प्रतिवाद किया है। ऐसा करने में उसने जिस भाषा का प्रयोग

किया है, वह किसी भी सरकार को शोभा नहीं देती। उन्होंने हम पर धोखा देने और षड्यंत्र करने का इलजाम लगाया है। मैं केवल यह कहूँगा कि मुझे पूरा विश्वास है कि काश्मीर के संबंध में भारत सरकार का प्रत्येक कार्य सीधा और खुला हुआ रहा है, और मैं किसी भी समय संसार के सामने उसकी वकालत कर सकता हूँ। सच बात तो यह है कि हम लोग इस मामले में अत्यधिक सतर्क रहे हैं, जिससे कि क्षणिक उद्वेग में कोई गलत बात न हो जाय। हमारे सैनिकों का आचरण बराबर अच्छा और हमारी परम्पराओं के योग्य रहा है।

यही बात मैं पाकिस्तान सरकार के विषय में नहीं कह सकता। उसका कहना है कि झगड़े का आरंभ पूर्वी पंजाब और काश्मीर में मुसलमानों की भारी हत्या से हुआ है और काश्मीर पर आक्रमण कबायलियों पर उस सब की एक सहज प्रतिक्रिया थी। मेरे विचार में यह बिल्कुल झूठ है। मुझे बहुत अफसोस है कि जम्मू प्रान्त के कुछ हिस्सों के मुसल्मान मारे गए या निकाल भगाए गए। परन्तु हमारी सरकार या हमारे सैनिकों का इस सब में कोई हाथ नहीं था। पिछले चन्द महीनों में पंजाब में यह आपस की मारकाट एक बड़ी दुखदायी बात रही है और जम्मू पर इसका गहरा असर पड़ा। हमारे पास यह सिद्ध करने के काफी प्रमाण हैं कि काश्मीर पर ये सारे हमले क्या जम्मू प्रान्त में और क्या काश्मीर में, पाकिस्तान सरकार के ऊँचे पदाधिकारियों द्वारा जानबूझ कर संगठित किए गए हैं। उन्होंने कबाइलियों और अवकाशप्राप्त सैनिकों को इकट्ठा करने में मदद दी, उन्होंने इन्हें युद्ध के साधन, लारियाँ, पेट्रोल और अफसर दिए। वे अब भी ऐसा कर रहे हैं। यही नहीं, उनके बड़े पदाधिकारी इस सबका खुल्लमखुल्ला ऐलान कर रहे हैं। यह स्पष्ट है कि आदमियों का कोई बड़ा गिरोह हथियारबन्द दस्ते बनाकर, बिना वहाँ के अधिकारियों की सदिच्छा, चश्मपोशी या सक्रिय सहायता के पाकिस्तान इलाके को पार नहीं कर सकता था। बरबस यही नतीजा निकलता है कि काश्मीर के धावों की पाकिस्तान के अधिकारियों ने होशियारी से योजना की और इस निश्चित उद्देश्य से उनका संगठन किया, कि रियासत पर बलपूर्वक अधिकार कर उसे पाकिस्तान में सम्मिलित होने को विवश कर दिया जाय। यह न केवल कश्मीर के प्रति बल्कि भारतीय संघ के प्रति एक दुश्मनी का काम था। पाकिस्तान की सरकार का रुख जानने के लिए उसके तथा मुस्लिमलीग के अर्ध सरकारी पत्रों को देखना पर्याप्त है। यदि हमने इस योजना को सफल होने दिया होता तो हमलोग काश्मीर के लोगों से दगा करने के अपराधी होते और भारत के प्रति अपने कर्त्तव्य से घोर रूप में विमुख होते। इसका परिणाम भारत की सांप्रदायिक और राजनैतिक स्थिति पर सर्वत्र भयावह होता। पाकिस्तान सरकार ने यह प्रस्ताव किया है कि हमारे सैनिकों और आक्रमणकारी काश्मीर से एक साथ हट जाएँ। यह एक अजीब सा प्रस्ताव है और इसके यही माने हो सकते हैं कि आक्रमण करने वाले वहाँ पाकिस्तान सरकार के कहने

से पहुंचे हैं। हम लुटेरों से, जिन्होंने बहुत बड़ी संख्या में हत्याएं की हैं और जिन्होंने काश्मीर को बरबाद करने की कोशिश की है, कोई बातचीत नहीं कर सकते। उनकी हैसियत एक राज्य की हैसियत नहीं है, चाहे उनके पीछे एक राज्य का सहारा हो। हम काश्मीर में लोगों की रक्षा करने के लिये वहाँ गए हैं और जैसे ही यह कर्त्तव्य पूरा हो जायगा, हमारे सैनिकों की वहाँ ठहरने की आवश्यकता नहीं रहेगी और तब हम अपनी फौजें वापस बुला लेंगे। जब तक यह खतरा दूर नहीं होता तब तक हम काश्मीर के लोगों का साथ नहीं छोड़ सकते। अगर पाकिस्तान सरकार वास्तव में शान्ति चाहती है, तो वह इन हमला करने वालों का आना रोक सकती है, और इस तरह शांति और व्यवस्था की स्थापना में शीघ्रता करा सकती है। इसके बाद काश्मीर के लोग अपना निर्णय कर लें और हम उनके निर्णय को स्वीकार करेंगे। लेकिन अगर यह हथियारों की लड़ाई जारी रहती है तो लोगों को शांतिपूर्वक निर्णय करने का कोई अवसर नहीं मिलेगा; तब इस युद्ध में लगे हुए लोगों के त्याग और शक्ति द्वारा ही क्रमश: अंतिम निर्णय हो सकेगा।

अपनी नेकनीयती स्थापित करने के लिए हमने यह सुझाव दिया है कि जब लोगों के अपने भविष्य के निर्णय का अवसर आवे तो उसे एक निष्पक्ष न्याय-मंडल के निरीक्षण में, जैसा कि संयुक्त राष्ट्रों का संगठन है, होना चाहिए।

काश्मीर के विषय में विचारणीय यह है कि उसके भविष्य का निर्णय जनता के मत के अनुसार होगा या हिंसा और नंगी शक्ति द्वारा। पाकिस्तान से प्रोत्साहन पाकर आक्रमणकारियों ने तलवार के जोर से और प्रत्यक्ष रूप में काश्मीर के लोगों की बड़ी संख्या की इच्छा के विरुद्ध उसे पाकिस्तान में सम्मिलित होने के लिये मजबूर करने का प्रयत्न किया है। राजनैतिक उद्देश्यों की सिद्धि के लिए हम ऐसे तरीकों की कामयाबी नहीं देख सकते। यह एक दु:खद बात है कि पाकिस्तान आर्थिक और सामाजिक पुनर्संगठन के आवश्यक कार्यों पर ध्यान देने की बजाय ऐसे उपायों में भाग ले रहा है।

काश्मीर अग्निपरीक्षा से गुजरा है और मुझे विश्वास है कि यह सभा चाहेगी कि मैं काश्मीर के लोगों तक, पिछले हफ्तों में उनपर जो कुछ बीती है, उसके लिए इस सभा की सहानुभूति पहुंचा दूं। यह सुन्दर देश, जिसे कि प्रकृति ने ऐसी रमणीयता प्रदान की है, ऐसे लोगों द्वारा बरबाद किया गया है, जिन्होंने हत्याएं, आतिशजनी लूट-मार और स्त्रियों और बच्चों पर गंदे हमले किए हैं। काश्मीर के लोगों ने जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं की कमी के कारण बड़ी मुसीबतें उठाई हैं, फिर भी शेख अब्दुल्ला के प्रभावशाली नेतृत्व में वे मुसीबत की घड़ी में एक साथ मिलकर डटे रहे हैं और उन्होंने सारे भारत के लिए इस बात की एक मिसाल पेश की है कि

साम्प्रदायिक एकता द्वारा क्या-क्या हासिल किया जा सकता है। भविष्य में चाहे जो कुछ भी हो काश्मीर के इतिहास का यह अध्याय पढ़ने योग्य होगा और हम इस बात का कभी खेद न करेंगे कि मुसीबत के समय हम उन बहादुर लोगों की सहायता कर सके। काश्मीर और भारत अनेक प्रकार से युगों से एक साथ बँधे रहे हैं। इन पिछले चन्द हफ्तों ने हमारे पुराने सम्बन्धों में एक नई कड़ी जोड़ दी है, जिसे कोई काट नहीं सकता।

काश्मीर सम्बन्धी तथ्य

जैसा कि अब भली भांति मालूम है, भारत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् के सामने पाकिस्तान से या वहाँ होकर आने वाले लोगों के द्वारा काश्मीर पर हमले का मामला रख दिया है।

सरकार चाहती है कि अन्तर्राष्ट्रीय नीति और औचित्य को ध्यान में रखते हुए जहाँ तक उसके लिए संभव है, वह समाचार-पत्रों और जनता को पूरी-पूरी बातें बता दे। उसने अभी तक इसलिए प्रतीक्षा की कि सुरक्षा परिषद् इस विषय पर विचार कर ले, तब इसपर कुछ कहा जाय, लेकिन इस दृष्टि से कि पाकिस्तान के वैदेशिक मंत्री तथा औरों ने इसपर वक्तव्य दिये हैं, यह उचित ही है कि यथार्थ बातों को संक्षेप में बता दिया जाय।

मैंने इससे पहले कई अवसरों पर, जबसे कि २७ अक्तूबर १९४७ को हमने अपने सैनिक काश्मीर भेजे, वहाँ की यथार्थ बातों को देश के सामने रखा है। हमारे सैनिक काश्मीर की घाटी और श्रीनगर की रक्षा करने में और दुश्मन को झेलम घाटी की सड़क से उड़ी तक पीछे भगाने में सफल हुए।

तब से एक विस्तृत मोर्चे पर काश्मीर रियासत और पाकिस्तान की प्रायः पूरी सरहद पर लड़ाई जारी है। बहुत बड़ी संख्या में हथियारबन्द लोग व्यूह बनाकर, आधुनिक शस्त्रों से पूरी तरह सुसज्जित हो कर काश्मीर रियासत के इलाके में कई जगहों पर दाखिल हुए हैं, और इससे भी बड़ी तादाद में लोग सरहद पर पाकिस्तान की ओर इकट्ठा हुए हैं।

पाकिस्तान के ये सरहदी हिस्से, इन आक्रमणकारियों के कार्य के अड्डे बन गए हैं, और इन अड्डों की सुरक्षा प्राप्त करके वे बड़ी संख्या में सरहद पार करके आते हैं, और काश्मीर रियासत के इलाके में, जो कि भारतीय संघ का इलाका है, लूटमार और अग्निकाण्ड करते हैं।

आत्मरक्षा के आधार पर भारत सरकार के लिये यह उचित ही होता यदि वह इन अड्डों पर आक्रमण करने वालों के आधारों को समाप्त कर देती। लेकिन उसने लड़ाई के क्षेत्र को सीमित रखने के विचार से और इस आशा

नई दिल्ली में, पत्रकारों की एक कांफ्रेंस में २ जनवरी, १९४८ को दिया गया एक वक्तव्य।

से कि पाकिस्तान इन हमला करने वालों को उकसाना और मदद देना बन्द कर देगा, बड़ी विवेकशीलता से ऐसा नहीं किया।

पिछले दो महीनों में पाकिस्तान सरकार से बराबर यह अनुरोध किया गया है कि भारत पर हमला करने के लिये वह अपने इलाके का उपयोग किया जाना रोके। यही नहीं कि उसने ऐसा नहीं किया, बल्कि यह एक निश्चित बात है कि इन हमला करने वालों को, जिनमें कि बहुत-से पाकिस्तान राष्ट्र के व्यक्ति हैं, पाकिस्तान सरकार ने सब तरह की सहायता दी है।

पाकिस्तान के इलाके से उन्हें मोटरों और रेलगाड़ियों से आने-जाने दिया जाता है, उन्हें पेट्रोल, खाना और रहने का स्थान दिया जाता है, और जो हथियार उनके पास हैं वे साफ तौर पर पाकिस्तानी सेना के हथियार हैं। काश्मीर युद्ध में हमारे सैनिकों ने पाकिस्तानी सेना के आदमियों को पकड़ा है।

यही नहीं कि पाकिस्तान सरकार ने इस आक्रमण को रोकने के लिये कोई कारगर कदम नहीं उठाया, बल्कि उसने आक्रमणकारियों को सक्रिय हमले बन्द करने के लिये कहने से भी इन्कार किया।

भारत सरकार एक मित्र और पड़ोसी देश का भारतीय इलाके पर आक्रमण करने के लिये अड्डे के रूप में उपयोग होना सहन नहीं कर सकती। लेकिन जब तक कि परिस्थितियां मजबूर न कर दें, तब तक झगड़ा बचाने की इच्छा से, उसने यह निश्चय किया कि इस मामले को संयुक्त राष्ट्र संगठन की सुरक्षा परिषद् के सामने पेश कर दिया जाय।

२२ दिसम्बर, १९४७ को पाकिस्तान के प्रधान मंत्री के पास एक नियमित लिखित अनुरोध भेजा गया। इस पत्र में पाकिस्तान के आक्रमण करनेवाले कार्यों और पाकिस्तान द्वारा आक्रमणकारियों को विविध रूप में दी जाने वाली सहायता का संक्षेप में उल्लेख था, और पाकिस्तान सरकार से कहा गया था कि वह पाकिस्तानियों को जम्मू और काश्मीर रियासत पर किये जाने वाले हमलों में भाग लेने से रोके तथा आक्रमणकारियों द्वारा काश्मीर रियासत पर किये जाने वाले हमलों के लिये पाकिस्तानी इलाके के उपयोग को रोके, (२) उन्हें किसी प्रकार का फौजी या अन्य सामान न दे, (३) और ऐसी कोई सहायता न दे जिससे कि वर्तमान लड़ाई के अधिक समय तक खिंचने की संभावना हो।

भारत सरकार ने फिर अपनी यह उत्कट इच्छा प्रकट की कि वह पाकिस्तान के साथ मैत्रीभाव बनाये रखना चाहती है, और यह आशा प्रकट की कि उसका अनुरोध तुरंत बिना किसी प्रकार की मानसिक रुकावट के स्वीकार किया जायगा।

लेकिन उसने यह भी बताया कि यदि ऐसा न हुआ, तो वह अपने और जम्मू तथा काश्मीर रियासत की सरकार के हितों की रक्षा के लिये, संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य की हैसियत से अपने अधिकारों तथा उत्तरदायित्व का उचित ध्यान रखते हुए, जो भी उचित समझेगी करेगी।

चूंकि इस नियमित अनुरोध का कोई उत्तर न मिला, दो स्मरण-पत्र इसलिय भेजे गये। आखिरकार ३० दिसम्बर को संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् में संयुक्त राष्ट्र संघ के भारतीय प्रतिनिधि ने इस मामले को निर्णय के लिये पेश कर दिया। ३१ दिसम्बर को इस हवाले की एक प्रति तार द्वारा पाकिस्तान सरकार के पास भेज दी गई।

इस हवाले में इस विषय की यथार्थ बातों का बयान था, और कहा गया था कि उन बातों से निम्नलिखित निश्चित परिणाम निकलते हैं: –

(क) आक्रमणकारियों को पाकिस्तान के इलाके से होकर आने दिया जाता है;

(ख) उन्हें पाकिस्तान के इलाके को अपने हमलों का अड्डा बनाने दिया जाता है;

(ग) उनमें पाकिस्तानी नागरिक सम्मिलित हैं;

(घ) वे अपने फौजी सामान का बहुत सा हिस्सा, यातायात के साधन और सामान (जिसमें पेट्रोल भी है) पाकिस्तान से प्राप्त करते हैं; और

(ङ) पाकिस्तान के अफसर उन्हें प्रशिक्षण दे रहे हैं, उनका निर्देशन कर रहे हैं और अन्य प्रकार से उन्हें सहायता दे रहे हैं।

पाकिस्तान के अतिरिक्त और कोई जरिया नहीं था जिससे कि इतना आधुनिक फौजी सामान, प्रशिक्षण और निर्देश उन्हें प्राप्त होते। इसलिये भारत सरकार ने सुरक्षा परिषद् से यह अनुरोध किया कि वह पाकिस्तान सरकार से यह कहे कि:—

(१) पाकिस्तान सरकार अपने फौजियों तथा नागरिकों को जम्मू और काश्मीर रियासत पर होने वाले हमले में भाग लेने या उसमें मदद पहुंचाने से रोके;

(२) वह अन्य पाकिस्तानियों को जम्मू और काश्मीर रियासत में होने वाली लड़ाई में कोई भी भाग लेने से रोके।

(३) वह आक्रमणकारियों को (क) काश्मीर के विरुद्ध आक्रमण में अपने

इलाके के उपयोग से रोके; (ख) फौजी या और सामान न दे; (ग) न कोई ऐसी सहायता दे जिससे कि युद्ध के अधिक समय तक खिचने की संभावना हो।

इसलिये सुरक्षा परिषद् से किया गया हवाला ऊपर बताये हुए विषयों तक सीमित है। ये बहुत जरूरी बातें हैं, क्योंकि पहला कदम लड़ाई का रोकना होना चाहिये और यह तभी हो सकता है जब कि हमला करने वाले वापस चले जायं। यह याद रखना चाहिये कि जो भी लड़ाई हुई है वह भारतीय संघ के इलाके में हुई है, और भारतीय सरकार का यह प्रकृत अधिकार है कि वह आक्रमणकारियों को अपने इलाके से मार भगावे। जब तक कि काश्मीर रियासत से आक्रमणकारी निकल नहीं जाते, तब तक किसी और मामले पर विचार नहीं हो सकता।

भारत सरकार को बहुत खेद है कि यह भयंकर संकट उपस्थित हो गया है। इसे उत्पन्न करने में उसका कोई हाथ नहीं है। भयंकर बाहरी आक्रमणकारी सेनाओं ने जिन्होंने काश्मीर रियासत के निवासियों के साथ बर्बरतापूर्ण व्यवहार किया है और जिन्होंने बहुत से गाँवों और कस्बों को नष्ट कर दिया और जला दिया है, उनके कारण यह स्थिति भारत सरकार के सामने आई है। कोई भी सरकार इस तरह के आक्रमण को सहन नहीं कर सकती।

फिर भी, इस इच्छा से कि कोई काम ऐसा न हो जिससे और जटिलताएं उत्पन्न हों, इस सरकार ने जितनी सहिष्णुता संभव थी दिखाई है और पाकिस्तान सरकार से बार-बार अनुरोध किया है। पर इन अनुरोधों का कोई परिणाम नहीं हुआ। इसलिये भारत सरकार ने इस विशेष प्रश्न को सुरक्षा परिषद् में पेश करने का निश्चय किया। स्वभावतः उसने आत्म-रक्षा से प्रेरित होकर, आने वाली परिस्थिति में जैसा भी उचित हो वैसा कार्य करने की स्वतंत्रता सुरक्षित रक्खी है।

पाकिस्तान के वैदेशिक मंत्री ने, हाल में समाचारपत्रों के संवाददाताओं से बातचीत करते हुए भारत सरकार पर बहुत से अभियोग लगाये हैं। मैं इन अभियोगों के उत्तर न दूंगा, सिवा इसके कि उनका पूर्णतया प्रतिवाद करूं। पिछले वर्ष में जो कुछ हुआ है वह अच्छी तरह विदित है, और हम इस बात के लिये तैयार है कि उनकी पूरी छानबीन हो। जाहिर है कि ये सब अभियोग इसलिये लगाये गये हैं कि काश्मीर संबन्धी विषय ऐसी और बातों के जंगल में ढंक जाय जिनका कि उससे कोई संबंध नहीं।

यह सरासर झूठ है कि भारत सरकार ने विभाजन को रद्द करने या पाकिस्तान का गला घोटने का प्रयत्न किया है। केवल यह बात, जो कि सभी स्वीकार करते हैं कि हम बहुत उदारतापूर्ण आर्थिक शर्तों पर राजी हुए, इसका सबूत है कि

हम पाकिस्तान की मदद करना और उससे मित्रता का संबंध रखना चाहते हैं।

यह सरासर झूठ है कि हमने इन आर्थिक समझौतों को अस्वीकार कर दिया। हम उन पर कायम हैं और उन्हें पूरा करेंगे, लेकिन यह भी सही है कि हमने पाकिस्तान से कहा है कि हम ये रकमें इस वक्त नहीं दे सकते, जब कि हमारे दिये हुए धन के भारत के विरुद्ध युद्ध में उपयोग होने की संभावना है।

काश्मीर का मामला बिल्कुल अलग है। अगर एक बर्बर दुश्मन द्वारा एक मित्र इलाके पर किये गये हमलों को प्रोत्साहन मिलता है, और उन्हें सहन किया जाता है, तो इस ढंग से न भारत के लिये कोई भविष्य है न पाकिस्तान के लिये। इसलिये इनका मुकाबला करना है और हम पूरी ताकत से मुकाबला करेंगे। काश्मीर राज्य को उनसे पूरी तरह से मुक्त करना ही होगा। अपने हित की संकीर्ण दृष्टि से भी पाकिस्तान सरकार को अनुभव करना चाहिये कि इस तरह के हमले को प्रोत्साहन देना स्वयं उसके भविष्य के लिये भी भयावह है, क्योंकि एक बार जब उन्मुक्त हिंसा की शक्तियां खुलकर काम करने लगती हैं, तो वे किसी भी राज्य की सुरक्षा को खतरे में डाल देती हैं।

यह याद रखना चाहिये कि काश्मीर में कोई ऐसा झगड़ा नहीं है जो साम्प्रदायिक कहा जा सके। बहुत-से काश्मीरी मुसलमान, हिन्दू, और सिख आक्रमणकारियों से लड़ रहे हैं। उनके लिये अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करना एक राष्ट्रीय प्रश्न है, और हम वहाँ उनकी सहायता के लिये गये हैं। अपने पूरे सम्मान के साथ हम उनसे प्रतिज्ञाबद्ध हैं, और इस प्रतिज्ञा पर हम डटे रहेंगे।

समाचारपत्रों से मेरा अनुरोध है कि इस विषय पर इस नाजुक स्थिति में, वे संयम से काम लें, और कोई अनधिकृत बात न प्रकाशित करें। जब भी संभव होगा हम समाचारपत्रों को पूरी सूचना देने का प्रयत्न करेंगे। अनधिकृत समाचारों के प्रकाशन से राष्ट्र को और जिस पक्ष को हमने उठाया है, उसे हानि पहुँचने की संभावना है।

काश्मीर से प्रतिज्ञा

पाकिस्तान को शेष नकद रुपयों की अदायगी के संबन्ध में सरकार का निश्चय बहुत सोच विचार के अनन्तर और गांधी जी की सलाह के बाद किया गया है। मैं इसे स्पष्ट करना चाहूंगा कि इसका मतलब यह न समझना चाहिये कि सरकार की पूर्व स्थिति की दृढ़ता या समीचीनता के विषय में, जो मेरे साथियों के विविध वक्तव्यों में व्यक्त हुई है, हमारी सर्वसम्मति में कोई अन्तर आया है। न हम उन तर्कों या तथ्यों को स्वीकार करते हैं, जिन्हें कि पाकिस्तान के वैदेशिक मंत्री ने अपने सब से हाल के वक्तव्य में सामने रखा है।

---

१५ जनवरी, १९४८ को नई दिल्ली से दिया गया वक्तव्य।

भारत ने हाथ के नकद रुपयों में से बड़ी उदारतापूर्वक ७५ करोड़ रुपये पाकिस्तान के लिये नियत करना स्वीकार किया, जिससे कि पाकिस्तान अपना काम ठीक से आरंभ कर सके। यह अनुभव किया गया कि निर्णायक पंचों को पाकिस्तान के लिये इतनी लम्बी रकम नहीं निर्धारित करनी चाहिये थी और यह आशा की जाती थी कि भारतीय संघ की इस उदारता की पारस्परिक प्रतिक्रिया होगी। उप-प्रधान मंत्री, सरदार पटेल ने इसे स्पष्ट कर दिया था कि यह आर्थिक सौदा सभी विचार्य विषयों के सामूहिक निर्णय से संबद्ध था। लेकिन इसी बीच काश्मीर में पाकिस्तान ने भारत के विरुद्ध वस्तुतः एक अघोषित युद्ध छेड़ दिया, और इस खयाल से कि ५५ करोड़ रुपये (७५ करोड़ में २० करोड़ रुपये पहले ही दिये जा चुके थे) काश्मीर में भारत के विरुद्ध न खर्च किये जायँ। वे तब तक के लिये जब तक काश्मीर का झगड़ा तय न हो जाय, रोक लिये गये थे। यह भारत और पाकिस्तान के बीच कड़ुएपन का एक और कारण बन गया। जब महात्मा गांधी ने १३ जनवरी, को अपना उपवास आरंभ किया, और राष्ट्र से दुर्भावना, पक्षपात और उद्वेगों को जो भारत और पाकिस्तान के परस्पर के संबंध को विषाक्त कर रहे थे, दूर करने का अनुरोध किया, तब भारत सरकार ने नियत रकम अर्थात् ५५ करोड़ रुपये पाकिस्तान सरकार को अपनी सद्भावना के संकेत के रूप में और "गांधी जी के अहिंसात्मक और उच्च उद्योग" के प्रति अपनी श्रद्धांजलि के रूप में, तुरंत देना निश्चय किया। १८ जनवरी को महात्मा गांधी ने अपना उपवास तोड़ा, जब कि दिल्ली के नागरिकों ने अपनी शांति-समितियों द्वारा यह प्रतिज्ञा की कि वे अपने हृदयों

६—फा०

हम इस आशा में इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि यह उदार इंगित, जो कि भारत के उच्च आदर्शों और गांधी जी के उच्च मापदंड के अनुकूल है, संसार को हमारी शांति की इच्छा और सद्भावना के प्रति विश्वास दिलायेगा। हमारा यह भी दृढ़ विश्वास है कि यह एक ऐसी स्थिति के उत्पन्न करने में सहायक होगा जिससे प्रेरित होकर गांधी जी अपना उपवास तोड़ सकेंगे। यह निश्चित है कि उस उपवास का इस विशेष मामले से कोई संबंध नहीं है, और हमने इसके संबंध में यों विचार किया कि हमारी इच्छा थी कि वर्तमान खिंचाव को हर तरह से कम करने का प्रयत्न किया जाय।

छः महीने पहिले हमने कलकत्ते में एक अलौकिक घटना घटते देखी जहाँ कि ऐसे ही एक उपवास की किमियागरी के द्वारा रातों रात दुर्भावना सद्भावना में बदल गई। जिस किमियागरी ने यह परिवर्तन किया उसे हमारे गवर्नर-जनरल ने 'एक व्यक्ति का सरहदी दल' बताया। जब कि पश्चिमी पंजाब में ५०,००० आदमी शांति नहीं स्थापित कर सके, यह अहिंसा का निहत्था सैनिक फिर काम कर रहा है। यह प्रार्थना है कि वही भारत में और दूसरी जगह भी अपना प्रभाव डाले।

हमने भारत और पाकिस्तान के बीच झगड़े और तर्क के एक प्रधान कारण को दूर करने का प्रयत्न किया है और हम आशा करते हैं कि और प्रश्न भी हल हो जायंगे। लेकिन यह स्मरण रखना चाहिये कि काश्मीर के लोग एक भीषण और अकारण हमले से पीड़ित हैं, और हमने इस बात की प्रतिज्ञा की है कि उन्हें स्वतंत्रता दिलाने में हम उनकी सहायता करेंगे। हम उनकी स्वतंत्रता अपने किसी लाभ के लिये नहीं चाहते, बल्कि इसलिये कि एक सुन्दर देश और एक शांत जनता बरबादी से बच जाय।

और देश से साम्प्रदायिकता को दूर करेंगे।

इतिहास का प्रवाह

महोदय, काश्मीर के संबंध में एक वक्तव्य देने के लिए मैं आपकी अनुमति और इस भवन का अनुग्रह चाहता हूँ। मैं इस भवन से अनुरोध करूँगा कि वह कुछ समय के लिए इसे धैर्य से सुने. क्योंकि मुझे बहुत कुछ कहना है, चाहे जितने संक्षेप में मैं कहूँ—यह नहीं कि मैं कोई सनसनीपूर्ण बातें प्रकट करने जा रहा हूँ, सच तो यह है कि जो कुछ मुझे कहना है उसके विषय में कोई विशेष गोपनीयता नहीं है ; और ये बातें पिछले कुछ महीनों में बहुत-से समाचारपत्रों में और दूसरी जगह प्रकाशित हो चुकी हैं। फिर भी यह उचित होगा कि मैं इस भवन के सामने, जो कुछ हुआ है, उसका एक प्रकार से सिलसिलेवार हाल रखूं। अपना काम हल्का करने के लिए, और इस भवन के सदस्यों के सुभीते के लिए, हमने काश्मीर विषय पर एक सरकारी पत्रक तैयार कराया है, जो सदस्यों में वितरण किया जायगा। इस सरकारी पत्र में ठीक आज तक की बातें नहीं आ गई हैं। इसमें प्रायः उस समय तक की बातें हैं जबकि यह मामला सुरक्षा परिषद् में पेश हुआ था। इसमें बिल्कुल पूर्ण सामग्री नहीं है, इस मानी में कि प्रत्येक तार या प्रत्येक पत्र आ गया हो, लेकिन सब मिलाकर, हमारे और पाकिस्तान सरकार के बीच संवादों का जो विनिमय हुआ है या संबद्ध संवाद इस सरकारी पत्र में आ गए हैं।

अब, इससे पूर्व कि मैं काश्मीर के इस विशेष प्रश्न पर कुछ कहूँ, मैं आपकी अनुमति से, एक और बड़े प्रश्न के संबन्ध में कुछ शब्द कहना चाहूँगा, जिसका कि काश्मीर का यह प्रश्न एक अंगमात्र है। हम लोग बहुत कठिन समय में रह रहे हैं; हम भारत में इतिहास के एक बड़े गतिशील काल से गुजर रहे हैं। पिछले छः महीनों में बहुत कुछ हुआ है, बहुत कुछ जो कि अच्छा था, और बहुत कुछ जो कि बहुत बुरा था। लेकिन शायद, जब कि भारत का इतिहास लिखा जायगा, जबकि आज का भय कष्ट बहुत कुछ भुलाया जा चुका होगा, उस समय जो सबसे बड़ी बातें बताई जायँगी उनमें एक उस परिवर्त्तन के विषय में होगी जो कि भारत में देशी रियासतों के संबंध में हुआ है। हम कुछ बहुत मार्के की घटना घटते देख रहे हैं। हम लोगों के लिए जो कि इस परिवर्त्तन काल के बीच में रह रहे हैं, जो कुछ हुआ है उसके महत्व का पूरा पूरा अनुमान लगाना कठिन है। लेकिन एक विचित्र ढंग से-शांतिपूर्ण ढंग से एक ऐसी इमारत ढह रही है जो कि भारत में १३० या

संविधान परिषद् (व्यवस्थापिका), नई दिल्ली में, ५ मार्च, १९४८ को दिया गया वक्तव्य।

१४० वर्षों से करीब-करीब उन्नीसवीं सदी के आरंभ से, कायम रही है।

हम अचानक इतिहास के प्रवाह को, इतिहास के लम्बे झाड़ू को चलते और इस १३० वर्ष पुराने ढांचे को बुहार कर उसके स्थान पर कुछ और ही कायम करते देखते हैं। हम निश्चित और पक्के तरीके से नहीं बता सकते कि इसका अन्तिम और ठीक-ठीक परिणाम क्या होगा यद्यपि तस्वीर काफी तेजी से स्पष्ट होती जा रही है। कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें भाग्य का हाथ है। जो कुछ हो रहा है वह ऐसा नहीं कि हम उसकी आशा न करते रहे हों। वास्तव में, हम में से बहुतों के, बहुत सालों से, भारतीय रियासतों के संबंध में कुछ निश्चित ध्येय रहे हैं और उनके लिए भारत में अपने राजनैतिक तथा अन्य संगठनों द्वारा रियासतों की जनता द्वारा, प्रान्तों की जनता द्वारा और दूसरे प्रकार से हमने काम किया है। और सब कुछ लेकर जो आज हो रहा है वह उन्हीं ध्येयों के अनुकूल हो रहा है जिन्हें हमने निर्द्धारित किया था। इसलिए आश्चर्य की कोई बात नहीं है। फिर भी, महोदय, क्या मैं यह स्वीकार करूँ, कि मैं भी, जो कि अनेक वर्षों से रियासती जनता के आन्दोलन के निकट सम्पर्क में रहा हूँ, अगर मुझसे छः महीने पहले पूछा जाता कि आने वाले छः महीनों में विकास का क्रम क्या होगा, तो यह कहने म संकोच करता कि इतने वेग से परिवर्तन होंगे। कई कारणों से इतने द्रुत परिवर्त्तन हुए हैं। अन्त में मेरा अनुमान है, कि ये इतिहास की शक्तियां हैं जो काम कर रही हैं—यह उन बहुत सी शक्तियों का, जो इतने दीर्घकाल से दबी रही हैं, उभार है। क्योंकि इन १३० वर्षों में एक अजीब हाल रहा है। उन्नीसवीं सदी के प्रारंभिक दिनों में, चौथाई सदी के भीतर, ब्रिटिश सरकार ने रियासतों का एक ढांचा बनाया था। यह वस्तुतः भारत की उस समय की स्थिति में ठीक बैठता था या नहीं या यह कि ब्रिटिश सरकार न होती तो क्या होता। यह कहना कुछ कठिन है, जो भी हो, ब्रिटिशों की प्रमुख शक्ति ने इस प्रथा का सृजन किया और निस्संदेह वे अपने लाभ के लिये जैसा समझते थे, उस रूप में यह प्रथा चलती रही; इसलिए नहीं कि उसमें कोई दम था, जैसा कि आज जाहिर है, बल्कि इसलिए कि वह प्रमुख शक्ति या सर्वोपरि कहलाने वाली शक्ति चलती रही। भारत में और बाहर दुनिया में तरह तरह के परिवर्तन हो रहे थे, फिर भी भारतीय रियासतों का ढांचा बना रहा। हममें से बहुतों ने बताया कि यह दकियानूसी है, पुराना पड़ गया है, इसे बदलना चाहिए, यह बदल के रहेगा, आदि। लेकिन अब जबकि एक विदेशी शासन का वरद हस्त हट गया है, तो दबाव भी हट गया है। जो शक्तियां रोक रखी गई थीं अचानक काम करने लगीं और हम उन्हें काम करते हुए देखते हैं—बहुत तेजी से काम करते हुए देखते हैं। शक्तियां बेशक मौजूद हैं, हममें से किसी ने उन्हें दबाया नहीं, लेकिन मैं समझता हूँ कि स्थिति से, एक टेढ़ी और कठिन स्थिति से निबटने के विषय में, यह सभा मुझसे सहमत होगी, कि हम पर मेरे मित्र तथा सहयोगी, उपप्रधान मंत्री का आभार है।

अतएव रियासतों के विषय में एक परिवर्तनशील भारत के इस महान प्रसंग में ही हमें उसके किसी खास पहलू को देखना है। दुर्भाग्य से छः महीने पूर्व हमने भारत का विभाजन, उसके दो टुकड़े होना और एक टुकड़े का भारत से अलग होना देखा। इस विभाजन की क्रिया के ठीक बाद ही एक दूसरी क्रिया आरंभ हुई,—या यह कहें कि ये दोनों ही क्रियाएं बराबर चली आ रही थीं,—भारत की एकता आरंभ हुई। हमने भारत के इस एकीकरण का क्रम प्रान्तों मे, और विशेष रूप से रियासतों में, देखा है। इसलिए ये दोनों चीजें साथ साथ चलती रही हैं—पृथक होने का क्रम और एकता का क्रम और लेखा लगाने पर यह कहना कठिन है कि हमारा नफा क्या रहा और नुकसान क्या रहा है। यह एकता का क्रम कहाँ तक आगे जायगा, और हमें कहाँ ले जायगा, यह कहना कठिन है। फिर भी हम लोगों के लिए, जो कि भारत के इतिहास के इस अनोखे और गतिशील युग में रह रहे हैं, जो कुछ हुआ है उसे एक परिप्रेक्षित में देखना कौतूहलजनक है, बशर्ते कि हम इसे इस नाटक में भाग लेने वालों की भांति न देखें, बल्कि अलग हट कर एक इतिहास—कार की तरह पीछे मुड़कर देखें। जो इतिहासकार पीछे दृष्टि डालते हुए रियासतों के भारत में इस अनुकलन को देखेगा, वह निःसन्देह इसे भारतीय इतिहास की एक प्रमुख बात स्वीकार करेगा।

अच्छा, महोदय, यह प्रक्रिया अनेक रूप ग्रहण कर रही है। बहुत सी छोटी-छोटी रियासतें तो भारत के साथ मिला ली गई हैं, कुछ रियासतों को आपस में मिलाकर रियासती संघ बना दिये गए हैं, जो कि भारतीय संघ की इकाई के रूप में हैं, कुछ बड़ी रियासतें अलग बनी रहने दी गई हैं। लेकिन जो बात इतने ही महत्त्व की है—और, अगर मैं कह सकता हूँ, तो इससे भी अधिक महत्व की है—वह इस ऊपरी एकता की नहीं है, बल्कि भीतरी एकता की है, यानी रियासतों में प्रजातंत्री संस्थाओं तथा उत्तरदायित्वपूर्ण शासन के विकास की है, क्योंकि इससे वास्तविक एकता होती है, सरकार के ऊंचे स्तर पर नहीं बल्कि जनता के स्तर पर। ये दोनों प्रक्रियायें जारी रही हैं, और क्या मैं इस भवन को स्मरण दिलाऊं कि ये दोनों ही उन ध्येयों के अनुसार हैं, जिनके लिए बहुत वर्षों तक हमने परिश्रम किया है।

अब, रियासती पद्धति के परिवर्तनों के इसी प्रसंग में, मैं चाहूँगा कि यह सभा काश्मीर के विशेष मामले पर विचार करे, यद्यपि इसका मामला अलग ही है, और इसमें कई बातें पेश आती हैं। आज भारत की दो रियासतें हैं जो कि इस क्रम में और रियासतों से बिल्कुल अलग हैं। ये रियासतें हैं हैदराबाद और काश्मीर। इस समय में हैदराबाद के बारे में कुछ कहने नहीं जा रहा हूँ। जहाँ तक काश्मीर का मामला है, यह और रियासतों से कई कारणों से भिन्न है; कुछ तो इसलिए

कि इसका विदेशी राजनीति से उलझाव हो गया है, यानी भारत और पाकिस्तान के संबन्धों से इसका उलझाव हो गया है। इसलिए जो दो खास रियासती प्रश्न हैं वे कुछ दब गए हैं। यह एक अजीब बात है कि यह मामला इस प्रकार उलझ गया है। पर इसमें कोई अजीब बात नहीं, बल्कि जिस तरीके पर उलझाव हुआ है, वह अजीब है, क्योंकि पाकिस्तान सरकार हमें बराबर आश्वासन देती आई है कि काश्मीर की हाल की घटनाओं से—हमलों और आक्रमणों से—उनका कोई सरोकार नहीं; वे इस कथन को दुहराते चले जा रहे हैं, फिर भी वो इन घटनाओं से लाभ उठाना चाहते हैं। इसलिए एक तरफ तो जो कुछ हुआ है उसकी जिम्मेदारी से वे इनकार करते हैं, दूसरी तरफ वे जो भी हासिल करके उसमें हिस्सा बंटाना चाहते है। हर हालत में, काश्मीर की समस्या औरों से जुदा है।

लेकिन एक क्षण के लिए काश्मीर की समस्या की इस बाहरी पेचीदगी को छोड़ दिया जाय, और अगर आप विचार करें तो मूलतया यह भी वही समस्या है, यानी जनता की स्वतंत्रता के विकास की समस्या है और एक नवीन एकीकरण के विकास की भी। भारत सरकार का और रियासती सचिवालय का यह उद्देश्य रहा है कि सभी रियासतों के लोगों की इस भीतरी स्वतंत्रता का विकास हो; अगर बहुत सी रियासतों ने भारत में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया है तो इसका यह कारण नहीं कि रियासती सचिवालय ने एक बड़ी लाठी के बल पर ऐसा करा लिया। यह जनता से उत्पन्न होने वाली शक्तियों के कारण हुआ है और दूसरे प्रभावों के कारण भी, जिनमें से मुख्य यह है कि एक बाहरी शक्ति जो कि रियासतों को बल्कि रियासती प्रथा को कायम किए हुए थी अचानक अलग हो गई, ब्रिटिश सरकार की शक्ति और उसका समर्थन उसे प्राप्त न रहा। उसके हट जाने पर तुरन्त इमारत ढहने लगी, और यह एक अद्भुत बात है-अर्थात एक इमारत का, जो कि कुछ ही महीने या एक वर्ष पहले इतनी सुदृढ़ दिखाई पड़ती थी, अचानक ढहना-यह उन लोगों के लिए तो आश्चर्यजनक नहीं था जो कि वस्तु-स्थिति जानते थे, लेकिन निश्चय ही उन लोगों के लिए जो कि चीजों को सही ढंग से देखते हैं यह बात आश्चर्यजनक थी। इस लिए इस बात को जानते हुए और अनुभव करते हुए कि आखिरकार रियासती जनता ही अपने भविष्य का निर्णय करेगी, मूलतया हम लोग जनता की स्वतंत्रता का ध्येय रखते रहे हैं। हम उन्हें मजबूर करने नहीं जा रहे हैं, और वास्तव में आज की दुनिया को देखते हुए हम किसी रियासत में ऐसा कर भी नहीं सकते। दूसरी मजबूरियां हैं, जैसे भौगोलिक मजबूरियां। यह ठीक है; कोई इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। और भी मजबूरियां हैं। और स्वभावतः इस समस्या पर विचार करते हुए, हमें अर्थात् भारत सरकार को भारत के भीतरी और बाहरी सुरक्षा के हितों को भारत के व्यापक हितों की दृष्टि से देखना पड़ता है। लेकिन इसे छोड़ दिया जाय तो हम और किसी

तरह का दबाव स्वतंत्रता के विकास पर नहीं डालना चाहते। वास्तव में हम रियासत के लोगों को इसका प्रोत्साहन देना चाहते हैं। हम अच्छी तरह जानते हैं कि यदि ऐसी स्वतंत्रता का विकास हुआ, और रियासत के लोगों को अपने संबंध में निश्चय करने की स्वतंत्रता मिली, तो वह उन्हें हमारे निकट लाने का बलशाली कारण बनेगी, क्योंकि हम आशा करते हैं कि हम भारत में जो भी संविधान स्वीकार करें, वह जनता की इच्छा पर पूर्णतया आधारित होगा।

अब, काश्मीर के प्रश्न पर जाने से पहले क्या मैं कुछ शब्द कहूँ, और वे ये हैं: इस मामले में मैं कुछ कठिनाई का अनुभव करता हूँ, क्योंकि इस प्रश्न पर संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् में बहस हो रही है, या फिर होने जा रही है, और मैं कोई बात ऐसी न कहना चाहूँगा जिससे यह मतलब लगाया जाय कि मामले को निबटाने के मार्ग में, चाहे सुरक्षा परिषद् में हो चाहे दूसरी जगह, कठिनाइयां डाली जा रही है। क्योंकि हम हृदय से निबटारा चाहते हैं, हम उत्सुकता से यह चाहते हैं कि ये बड़ी शक्तियां साधारण रूप से कार्य करने का अवसर पायें और अपने परिणाम को प्राप्त करें; इसके अतिरिक्त कोई भी दूसरा परिणाम कृत्रिम परिणाम होगा। हम कोई भी परिणाम ऊपर से नहीं लाद सकते और निश्चय ही पाकिस्तान ऐसा नहीं कर सकता। अन्त में, मुझे तनिक भी संदेह नहीं कि और जगहों की तरह काश्मीर में भी वहां की जनता ही अन्तिम निर्णय करेगी और जो कुछ हम चाहते हैं वह यह है कि उन्हें बिना किसी बाहरी दबाव के ऐसा करने की स्वतंत्रता प्राप्त हो।

अब, एक बात काश्मीर के विषय में और है जिसे कि मैं इस सभा के सामने रखना चाहूँगा। भारत में हम लोग दुर्भाग्यवश हर एक समस्या को या बहुत सी समस्याओं को सांप्रदायिकता की दृष्टि से हिन्दू बनाम मुसलमान, या हिन्दू और सिख बनाम मुसलमान आदि, के रूप में देखने के अत्यधिक अभ्यस्त हो गए हैं। दुर्भाग्य से हमें उत्तराधिकार में यह चीज मिली है, और इसने हमें जिस हद तक नुकसान पहुंचाया है वह भुलाया नहीं जा सकता, न उन विपत्तियों को हम भूल सकते हैं जिनमें इसने हमें डाला है। मुझे आशा है कि हम इस सांप्रदायिक भावना को, कम-से-कम भारत में दूर करने का प्रयत्न कर रहे हैं। हम उसे खतम कर देने की आशा करते हैं—शायद आकस्मिक रूप से नहीं, फिर भी निश्चित रूप से बहुत तेजी से।

इस सांप्रदायिक संघर्ष के प्रसंग में, काश्मीर बिलकुल अलग ही है, क्योंकि काश्मीर सांप्रदायिक संघर्ष का क्षेत्र नहीं है। आप चाहें तो इसे राजनैतिक संघर्ष का मामला कह सकते हैं। या यह और किसी प्रकार का संघर्ष हो सकता है, लेकिन यह मूलतया

सांप्रदायिक संघर्ष नहीं है। इसलिए, काश्मीर की यह लड़ाई, अगर्चे इससे काश्मीर के लोगों को बड़ी तकलीफें पहुँची हैं और अगर्चे इसने भारत सरकार और भारत के लोगों पर एक बोझ डाला है, आशा के एक चिन्ह की भांति है, क्योंकि इसमें हम कुछ तत्वों का, हिन्दू, मुसलमान, सिख और दूसरों को एक ही स्तर पर और अपनी स्वतंत्रता के लिए राजनैतिक युद्ध में एक विशेष सहयोग, संगठन और मेलजोल देखते हैं। इस बात पर मैं जोर देना चाहता हूँ, क्योंकि दूसरी तरफ हमारे विरोधियों और आलोचकों द्वारा यह बराबर कहा जाता है कि यह सांप्रदायिक मामला है, और हम वहाँ पर हिन्दू या सिख अल्पसंख्यकों की काश्मीर की मुसलमान जनता के विरुद्ध, सहायता करने के लिए गए हैं। इस से ज्यादा ऊटपटांग झूठी बात हो ही नहीं सकती। अगर हमें जनता के बहुत बड़े दलों की, जिसके मानी होते हैं, काश्मीर के मुसलमानों की मदद हासिल न होती तो हम वहां अपनी सेनाएं नहीं भेज सकते थे, न वहाँ ठहर सकते थे। हम वहाँ महाराजा काश्मीर के निमंत्रण के बावजूद न जाते, अगर उसका समर्थन काश्मीर की जनता के प्रतिनिधियों द्वारा न हुआ होता, और क्या मैं इस सभा को बताऊं कि यद्यपि हमारी सेनाओं ने बड़ी बहादुरी से काम किया है, फिर भी अगर उन्हें काश्मीर की जनता का सहयोग प्राप्त न होता तो उन्हें यह सफलता नहीं मिल सकती थी? अब, बाहर के लोग, भारत की सरहद से बाहर के लोग, हम पर काश्मीर में एक स्वायत्त शासक की मदद करने के लिए जाने का दोषी ठहराते हैं। इस सभा को स्मरण होगा कि जब हमने उस नाजुक अवसर पर, जबकि हमें यह निर्णय करना पड़ा कि हम भारतीय सेना भेजें या न भेजें, काश्मीर का भारत में मिलना स्वीकार करें या न करें, तब उन शर्तों में से जो हमने लगाई थीं, एक यह थी कि वहाँ लोकप्रिय शासन स्थापित होना चाहिए, ध्येय या आदर्श के रूप में नहीं, बल्कि तुरन्त। यह हमने तत्काल चाहा था और जहाँ तक हो सकता था इसे तत्काल कार्यान्वित किया गया। इसलिए यह अजीब बात है कि हम पर इस तरह का इलजाम लगाया जा रहा है। इसी इलजाम को एक दूसरे प्रसंग में देखिए। काश्मीर के वे पुरुष और स्त्रियां जो हमारे साथ हैं, जो कि अपनी स्वतंत्रता और आजादी के लिए वहाँ लड़ रहे हैं, इस स्वतंत्रता के युद्ध में नवागन्तुक नहीं हैं बल्कि एक पीढ़ी से वे काश्मीर में, काश्मीर की स्वतंत्रता के लिए लड़ते रहे हैं। उन्होंने इसके लिए तकलीफें उठाई हैं और हममें से कुछ ने निरंकुश शासन के विरुद्ध काश्मीर की आजादी की लड़ाई में शरीक रहने में, अपना सौभाग्य समझा है। ये लोग आज हमारे साथ हैं। उनके विरोधी कौन हैं जो कि काश्मीर में तथा दूसरी जगह उनके खिलाफ हैं? यह एक दिलचस्प कल्पना है, और जांच का दिलचस्प विषय है क्योंकि ये शरीफ लोग जोकि काश्मीर के शासक के निरंकुश होने की और वहां निरंकुश शासन होने की बातचीत करते हैं, इन दस या बीस वर्षों के बीच क्या करते रहे हैं? उन्होंने काश्मीर के लोगों की आजादी

जम्मू (काश्मीर) तथा पठानकोट के राजपथ के बीच सब मौसमों में उपयुक्त माधोपुर पुल का ७ जुलाई

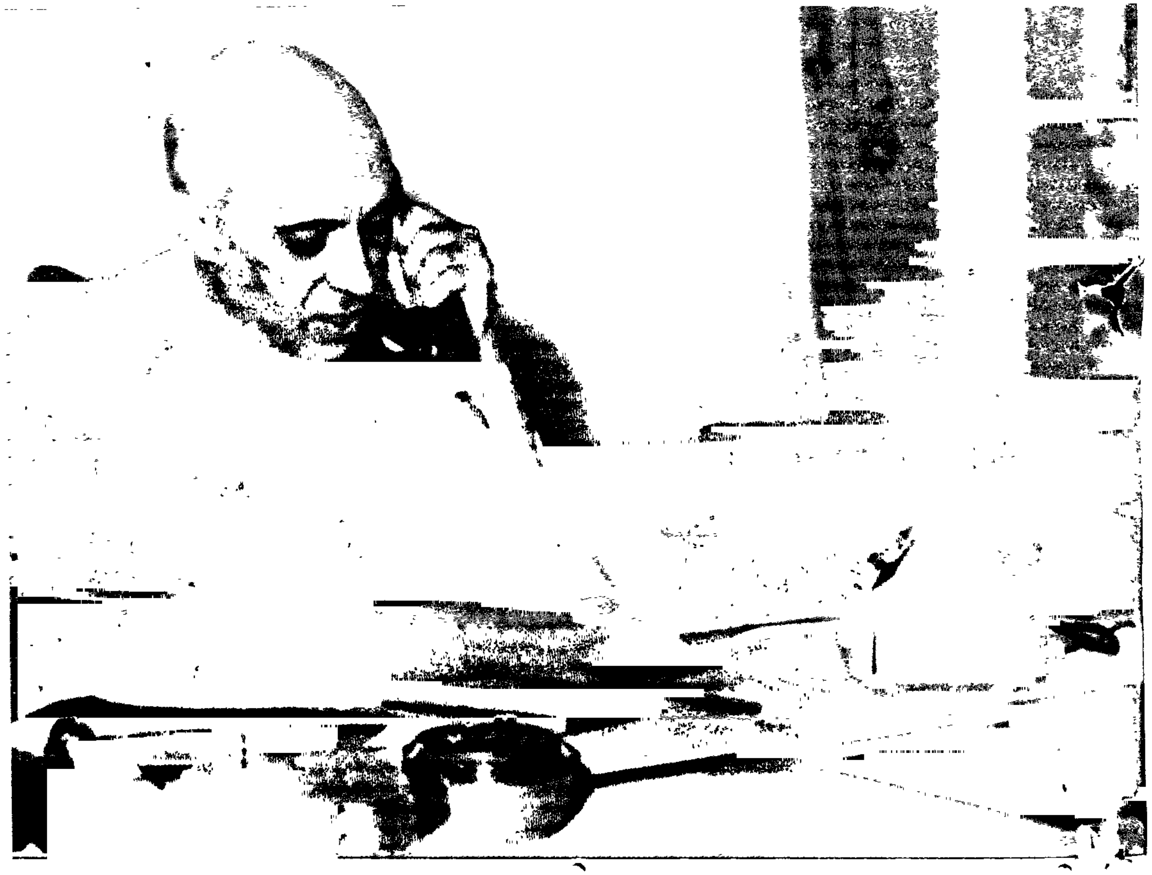

श्रीनगर में श्री नेहरू एक घायल सैनिक के लिये सैनिक अस्पताल में अपने हस्ताक्षर दे रहे हैं

ऊपर बायें :—काश्मीर मे पहली बार टेलीफोन द्वारा वार्त्ता कर रहे हैं

नीचे बायें :—श्रीनगर मे महिला सैन्यदल का निरीक्षण करते हुए

की लड़ाई कभी नहीं लड़ी; उनमें से ज्यादातर लोग इसी निरंकुश शासन की सहायता करते रहे; उनमें से ज्यादातर लोगों ने काश्मीर में आजादी के आन्दोलन का विरोध किया। अब, बिल्कुल दूसरे ही कारणों से वे काश्मीर की आजादी के हिमायती बने हुए हैं। और वह किस तरह की आजादी है, जिसे कि वे आज काश्मीर में लाए हैं? काश्मीर में वे जो तथाकथित आजादी आज लाए हैं, वह उस सुन्दर देश में लूटने, हत्या करने और आतिशजनी करने की आजादी है, और जम्मू और काश्मीर रियासत की सुन्दरी स्त्रियों को भगा ले जाने की आजादी है, और न केवल भगा ले जाने की बल्कि खुले बाजार बेंचने के लिए खड़ा करने की आजादी है। इसलिए जब हम काश्मीर की कहानी पर विचार करें तो हमें इस पृष्ठभूमि को अपने सामने रखना चाहिए। यह एक दहलाने वाली पृष्ठभूमि है और सुरक्षा परिषद् ने इसे जिस रूप में ग्रहण किया है उससे हममें से बहुत लोग व्यथित रहे हैं। सुरक्षा परिषद् में क्या हुआ और क्या नहीं हुआ इसके ब्यौरे में मैं नहीं जाना चाहता, लेकिन इतना मैं महसूस करता हूँ कि इस पृष्ठभूमि को समझने की आवश्यकता है। काश्मीर में हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न नहीं है, और हमारे निरंकुश शासन के या किसी और के पक्ष में होने का हरगिज प्रश्न नहीं है। हमने पिछले पन्द्रह-बीस वर्षों के बीच यह अच्छी तरह दिखा दिया है कि रियासती जनता और उसके शासकों के संबन्ध में हमारा क्या दृष्टिकोण है, विशेष कर काश्मीर के संबन्ध में। पहले दिन से जब से, हम वहाँ पहुंचे हैं, पिछली अर्थात् अक्तूबर से आज तक, हमने अपने अमल से उसे दिखा दिया है; और अपना भाषण समाप्त करने से पहले, काश्मीर की आजादी के बारे में हमारी क्या भावना है, इस पर मुझे कुछ और कहना होगा।

अब, महोदय, काश्मीर की घटनाओं के संबंध में, मैं कुछ विस्तार से कहूँगा।

इस भवन को मेरा २५ नवम्बर, १९४७ को दिया हुआ वक्तव्य स्मरण होगा। उस वक्तव्य में मैंने जम्मू और काश्मीर रियासत की उस तारीख तक की घटनाएं बयान की थीं, और बताया था कि पाकिस्तान की सरकार ने इन घटनाओं के विषय में क्या किया और हमारे ध्येय क्या हैं?

पाकिस्तान के खिलाफ हमारी शिकायत यह थी कि उसने बाहरी कबाइलियों को और अपने नागरिकों को जम्मू और काश्मीर रियासत के विरुद्ध युद्ध करने के लिए भड़काया और सहायता दी। दिसम्बर के महीने में रियासत पर फौजी दबाव ने जोर पकड़ा। करीब १९,००० हमला करने वाले उड़ी के क्षेत्र में और सम्मिलित हुए। रियासत की पश्चिमी और दक्षिण-पश्चिमी सरहदों पर १५,००० हमला करने वाले युद्ध में लगे थे। आक्रमणकारियों द्वारा रियासत की सरहद के भीतर धावे

जारी थे और इनमें हत्या, अग्निकाण्ड और स्त्रियों का भगाया जाना शामिल था। लूटमार का माल इकट्ठा करके कबायली क्षेत्रों में इसलिए पहुंचाया जा रहा था कि उसके लोभ में आकर कबायली आक्रमणकारियों के दल को बढ़ावें। हमलों में सक्रिय रूप से भाग लेनेवालों के अतिरिक्त बहुत से कबायली और दूसरे लोग, जिनकी संख्या अनुमानत १००,००० है, जम्मू और काश्मीर रियासत की सरहदों पर पश्चिमी पंजाब के जिलों में भिन्न-भिन्न जगहों पर इकट्ठा हो रहे थे; और उनमें से बहुत से पाकिस्तानी नागरिकों द्वारा, जिनमें कि पाकिस्तानी सेना के अफसर लोग भी थे, सैनिक शिक्षा पा रहे थे। पाकिस्तान के इलाके में उनकी देखभाल होती थी, उन्हें खाना, कपड़ा, हथियार और सामान दिया जाता था और वे जम्मू और काश्मीर की रियासत में, फौजी और नागरिक पाकिस्तानी अधिकारियों की प्रत्यक्ष या परोक्ष में की गई सहायता से पहुँचाए जाते थे। हमला करने वालों के साज-सामान में मोर्टर तोपों और मझोली मशीन गनों जैसे आधुनिक हथियार थे; आदमी बाकायदा सिपाहियों की पोशाकें पहनते थे, नियमित व्यूह बनाकर लड़ते थे, और आधुनिक युद्ध के ढंगों का उपयोग करते थे। नरवाहित बेतार के तार के सेटों और 'वी' चिन्हित सुरंगों का भी इस्तेमाल होता था।

कई बार भारत सरकार ने पाकिस्तान सरकार से कहा कि वह आक्रमणकारियों को सुविधाएं न प्रदान करे, क्योंकि यह उनकी ओर से आक्रामक का और भारत विरोधी कार्य होगा; लेकिन इसका कोई संतोषजनक उत्तर न मिला। २२ सितम्बर को, मैंने स्वयं पाकिस्तान के प्रधानमंत्री को नई दिल्ली में एक पत्र दिया जिसमें कि संक्षेप में सहायता देने के विभिन्न तरीकों को बताया गया था और उनकी सरकार से यह कहा गया था कि इस तरह की सहायता तुरन्त और निश्चित रूप से बन्द कर दी जाय।

चूंकि इस पत्र का कई दिनों तक कोई उत्तर नहीं मिला, मैंने २६ दिसम्बर को स्मरण दिलाने के लिए एक तार भेजा। ३१ दिसम्बर को भारत सरकार ने वाशिंगटन-स्थित अपने राजदूत को यह निर्देश दिया कि वह संयुक्त राष्ट्रों की सुरक्षा परिषद् के सभापति को एक संदेश दें। इस सन्देश द्वारा संयुक्त राष्ट्रों के अधिकार पत्र की ३५ वीं धारा के अनुसार सुरक्षा परिषद् में इस मामले का हवाला दिया गया और उसी दिन, इसका पूरा मजमून पाकिस्तान के प्रधानमंत्री के पास तार से भेज दिया गया।

पहली जनवरी को, पाकिस्तान के प्रधान मंत्री का ३२ दिसम्बर का उत्तर मुझे मिला। इस पत्र से काश्मीर की समस्या के हल के प्रति किसी सहायतापूर्ण दृष्टिकोण का पता नहीं चला। उसमें केवल भारत के विरुद्ध बेसिरपैर के इलजाम

लगाए गए थे, जैसे कि पाकिस्तान को कुचल डालने का निश्चय, भारत के मुसलमानों का संगठित विनाश और बल तथा छल द्वारा काश्मीर का भारतीय संघ में प्रवेश प्राप्त करना। यह पत्र इससे पहले भी प्राप्त हुआ होता तो भी हमारे संयुक्त राष्ट्रों की सुरक्षा परिषद् से किए गए इस अनुरोध में अन्तर न पड़ता कि वह पाकिस्तान सरकार से कहे कि:—

(१) पाकिस्तान सरकार के फौजी अथवा नागरिक कर्मचारियों को, जम्मू और काश्मीर रियासत पर आक्रमण में भाग लेने या सहायता करने से रोके;

(२) पाकिस्तानी नागरिकों को जम्मू और काश्मीर रियासत के भीतर युद्ध में भाग लेने से मना करे;

(३) आक्रमणकारियों को (क) काश्मीर के विरुद्ध फौजी कार्यवाही में अपने इलाके से होकर आने तथा उस के उपयोग से रोके; (ख) फौजी तथा अन्य सामान न दे; (ग) और अन्य प्रकार की कोई ऐसी सहायता न दे जिससे कि युद्ध के खिचने की संभावना हो।

इस सभा को उस स्थिति का स्मरण होगा जिसमें कि हमने काश्मीर में फौजें भेजीं। काश्मीर रियासत के इलाके पर अर्थात् उसके प्रवेश के बाद जो भारतीय संघ का इलाका बन गया है उस पर आक्रमण हो रहा था, और उसके साथ हत्या, अग्निकाण्ड, लूट और स्त्रियों का भगाया जाना चल रहा था। सारा देहाती प्रदेश तबाह किया जा रहा था। नए आक्रमणकारी पाकिस्तानी इलाके से होकर काश्मीर में बराबर आ रहे थे। जो भी लड़ाई हो रही थी, वह सब भारतीय संघ के इलाके के भीतर थी। आक्रमणकारियों के मुख्य अड्डे सरहद पर पार पाकिस्तानी इलाके में थे। वहाँ से वे रसद और सामान और आदमियों की सहायता प्राप्त करते थे, और वहाँ आराम करने और सुरक्षापूर्वक दम लेने के लिए भागकर जा सकते थे। हमारे सैनिकों को दृढ़ आज्ञा थी कि पाकिस्तानी इलाके में न जायं। भारतीय इलाके पर आक्रमण रोकने का साधारण उपाय यह होता कि पाकिस्तान में उन्हें अड्डे न बनाने दिया जाता। चूंकि पाकिस्तान इस मामले में हमसे सहयोग करने को तैयार नहीं था, इसलिए हमारे पास बस दो रास्ते रह गए थे, यानी या तो हम आक्रमणकारियों से ठीक-ठीक निबटने के लिए अपनी हथियारबन्द सेना पाकिस्तानी इलाके में भेजें या संयुक्त राष्ट्रों से यह अनुरोध करें कि वह पाकिस्तान से ऐसा करने को कहे। इनमें से पहला रास्ता ग्रहण करने में पाकिस्तान से सशस्त्र युद्ध की सभावना थी। इसे हम बचाना चाहते थे, और शांतिपूर्वक हल का प्रत्येक संभव उपाय कर लेना चाहते थे। इसलिए एक ही रास्ता जो हमारे लिए खुला रह गया था, वह था सुरक्षा परिषद् में इस विषय को पेश करना।

इस सभा का समय, मैं सरक्षा परिषद् की ब्यौरेवार कार्यवाही बताकर न लूंगा।

यह काफी पूरी तौर पर समाचार-पत्रों में आ चुकी है। मैं अवश्य स्वीकार करूंगा कि यह देखकर कि जो हवाला हमने दिया था उस पर अभी तक उचित ढंग से विचार नहीं हुआ है, और दूसरे मामलों को इसकी अपेक्षा विशेषता दी गई है, मुझे आश्चर्य और दुःख हुआ है। जो बातें हमने अपने हवाले में बयान कीं, अगर वे सही हैं, जैसा कि हम दावा करते हैं कि वे हैं, तो उसके कानूनी और शांति और व्यवस्था की स्थापना की दृष्टि से दोनों तरह के स्वभावतः कुछ परिणाम होते हैं।

पाकिस्तान की तरफ से भारत पर लगाये गये उन विलक्षण आरोपों को दुहराया गया था जो कि पाकिस्तान के प्रधान मंत्री के पत्र में जिसका मैंने हवाला दिया है, पहले लगाये गये थे। पाकिस्तान ने तुरंत कार्य करने से, जम्मू और काश्मीर में हमारे बैरियों को आदमी और सामान की सहायता देना बन्द करने से, रियासत पर पाकिस्तान से होकर आने वाले आक्रमणकारियों को रोकने से और जो कबायली अथवा पाकिस्तानी इस समय रियासत में है उन्हें वापस बुलाने से उस समय तक इनकार किया, जब तक कि एक ऐसा समझौता पहले न हो जाय और वह घोषित न कर दिया जाय कि भारतीय सशस्त्र सैनिक जम्मू और काश्मीर रियासत से बिलकुल वापस बुला लिये जायंगे, और रियासती शासन बदल कर एक दूसरा शासन स्थापित कर दिया जायगा। झगड़े की और भी बातें थीं, लेकिन मुख्य बातें वही दो थीं, जिन्हें कि मैंने अभी बताया है।

खुलासा यह है कि पाकिस्तान ने न केवल यह स्वीकार किया कि वह हमला करने वालों की सहायता कर रहा है, बल्कि यह स्पष्ट कर दिया कि जब तक उसके कुछ राजनैतिक ध्येय सिद्ध न होंगे वह ऐसा करता रहेगा। यह एक ऐसा प्रस्ताव था जिसे कि भारत सरकार स्वीकार नहीं कर सकती थी। क्योंकि ऐसी स्वीकृति न केवल काश्मीर की जनता के प्रति विश्वासघात होता, जिसे कि भारत-सरकार अपना वचन दे चुकी थी, बल्कि हिंसात्मक और आक्रमणकारी तरीकों के आगे सिर झुकाना होता, जिसके कि भारत और पाकिस्तान दोनों ही के लिये भयंकर परिणाम होते। रियासत को गहरे खतरे में डाले बिना, और रियासत के लोगों को, जो हममें विश्वास रखते थे, ऐसे अनाचारी और निर्दय आक्रमणकारी को सिपुर्द किये बिना, जो कि रियासत और उसके लोगों में इतनी तबाही फैला चुका था, हमारे लिये अपने सैनिकों को वापस बुलाना असंभव था। न हम काश्मीर के लोगों की रक्षा की जिम्मेदारी में किसी बाहरी शक्ति को शरीक कर सकते थे। शेख अब्दुल्ला के शासन के स्थान पर किसी दूसरे शासन को स्वीकार करना हमारे लिये उतना ही असंभव था। जम्मू और काश्मीर की सरकार अब निरंकुश सरकार नहीं रह गई है, यह सरकार रियासत के सब से बड़े लोकप्रिय दल का प्रतिनिधित्व करती है और ऐसे नेता के नेतृत्व में है जिसने कि अद्वितीय कठि-

नाइयों के इन कई महीनों में जनता के नैतिक स्तर को बनाये रखा है, रियासत के अधिकांश भाग पर समुचित शासन कायम रखा है, और आक्रमणकारियों द्वारा काश्मीर को ध्वस्त और तबाह करने के जो निर्दय प्रयत्न हो रहे हैं, उनके विरोध की प्रेरणा को साधारणतया जगाये रखा है। काश्मीर में अन्य कोई शासन तब तक संभव नहीं जब तक कि यह शासन बल पर आधारित न हो। अगर शेख अब्दुल्ला वहाँ पर जनता के समर्थन के बल पर नहीं हैं, तो वे बने नहीं रह सकते थे, और जो कुछ उन्होंने इन कठिन महीनों में कर दिखाया है, वह करना और भी कठिन होता। यह उन पर निर्भर करता है कि वे किसी काश्मीरी को अपनी सरकार में सहायता देने के लिये चुनें और इस विषय में हमारे लिये उनके विवेक में हस्तक्षेप करना अनुचित होगा।

मुझे इस बात का बड़ा खेद है कि पाकिस्तान के प्रतिनिधि ने सुरक्षा-परिषद् के सामने बहुत से ऐसे बयान दिये और भारत के खिलाफ इलजाम लगाये जो कि बिल्कुल बेबुनियाद हैं। भारत और पाकिस्तान में पिछले छः महीनों या इससे अधिक समय में बहुत सी ऐसी बातें हुई हैं, जिन्होंने हम सबको लज्जित किया है, और मैं किसी समय भी अपनी जनता की गलतियों को स्वीकार करने के लिये तैयार हूँ, क्योंकि इसे मैं अच्छा नहीं समझता कि कोई व्यक्ति या कोई राष्ट्र सत्य से डिगे। यही पाठ था जो कि हमारे गुरु ने हमें सिखाया था, और हम उसे अपनी शक्ति भर ग्रहण किये रहेंगे। इन पिछले महीनों में, भारत और पाकिस्तान में बहुत सी भयानक बातें हुई हैं, और जहाँ मैं इस सब भयानकता के लिये प्रारंभिक जिम्मेदारी के विषय में दृढ़ मत रखता हूँ, वहाँ मैं समझता हूँ कि अधिक या कम हद तक हमारी सब की कुछ जिम्मेदारी है। लेकिन जहाँ तक काश्मीर की घटनाओं का मामला है, मुझे अपने मन में विश्वास है कि भारत सरकार का हर एक कार्य सीधा, खुला हुआ और परिस्थितियों को देखते हुए अनिवार्य था। अक्टूबर के अन्त में हमारा वहाँ जाना, घटना-क्रम से विवश होकर हुआ। काश्मीर की जनता की रक्षा के लिये, जब कि वह एक भयानक खतरे में थी, हमारा दौड़ कर न पहुँचना सदा के लिये लज्जा की बात होती, एक बड़ी दगा होती, और उन्हें गहरी क्षति पहुँचाना होता। हमारी इस विषय में गहरी भावनाएं हैं, और यह केवल राजनैतिक लाभ या हानि का प्रश्न नहीं है। यह हमारे लिये एक नैतिक प्रश्न रहा है और है, चाहे इस मामले के और पहलुओं को अलग भी रक्खा जाय। और इसीलिये हर एक पग पर मैंने महात्मा गांधी से परामर्श किया और उनका समर्थन प्राप्त किया। जब कि अनेक इलजाम लगाये जा रहे हों और बढ़े-चढ़े बयान दिये जा रहे हों तो उनके उलझाव में बुनियादी बातें अक्सर भुला दी जाती हैं। चाहे कोई भी क्यों न हो, जिसने भी काश्मीर में हमारे काम से परिचय प्राप्त किया है, उससे मैं जानना चाहूँगा कि उस विनाशक तिथि से, जब कि मुजफ्फराबाद

में आक्रमणकारी टूटे और उन्होंने लूट-मार और आतिशजनी शुरू की, हमने कौन-सा बड़ा कदम उठाया जो कि नैतिक दृष्टि से या किसी प्रकार भी गलत था?

इस लड़ाई में, जिसमें कि मैं फिर कहूँगा कि हमें विवश होकर पड़ना पड़ा, भारतीय सेना का कार्य अनुशासन, निष्पक्षता, सहनशीलता और बहादुरी की दृष्टि से मर्के का रहा है। उसने रियासत की जनता के हर एक वर्ग की रक्षा की है। यह सुझाव देना कि पूरी शांति स्थापित होने से पहले वह वापस बुला ली जाय—न केवल अव्यावहारिक और अनुचित ही है, बल्कि काश्मीर में हमारी सेना के आदर्श आचरण पर लांछन लगाना भी है। काश्मीर में हम और हमारी सेना इसलिये हैं कि विधानतः हमारी स्थिति अकाट्य है। लेकिन विधान की बात अलग भी रखी जाय, तो भारतीय संघ का काश्मीर के विषय में नैतिक पक्ष भी उतना ही अकाट्य है। अगर हम वहाँ न गये होते और अगर हमारे सशस्त्र सैनिक बहुत जोखिम उठाकर काश्मीर म शीघ्रता से न भेजे गये होते तो वह सुन्दर देश लुट जाता और नष्ट-भ्रष्ट और तबाह कर दिया जाता और उसके पुरुष और स्त्री जो कि युगों से अपनी बुद्धि और अपनी सांस्कृतिक परम्परा के लिये प्रसिद्ध रहे हैं, एक बर्बर आक्रमणकारी के पैरों तले कुचल दिये गये होते। भारत की कोई भी सरकार, जब तक कि उसमें पूरे बल से मुकाबला करने की शक्ति होती, ऐसी घटना को सहन नहीं कर सकती थी, और अगर काश्मीर में ऐसी घटना घटे तो शेष भारत में क्या स्वतंत्रता या सुरक्षा हो सकती है?

जम्मू और काश्मीर रियासत में हमारे केवल दो ध्येय हैं—वहाँ के लोगों की स्वतंत्रता और उन्नति को पक्का करना, और ऐसी किसी भी घटना को घटन से रोकना जो कि भारत की सुरक्षा को खतरे में डालने वाली हो। काश्मीर से हमें कुछ और नहीं हासिल करना है, यद्यपि हमारी सहायता से काश्मीर का बहुत लाभ हो सकता है। यदि ये दो ध्येय पूरे होते हैं तो हमें संतोष है।

संयुक्त राष्ट्रों की सुरक्षा परिषद् के सामने इस मामले को ले जाना हमारा एक आस्था-सूचक कार्य था, क्योंकि क्रमशः एक विश्वव्यापी व्यवस्था और एक विश्वव्यापी शासन की सिद्धि में हमारा विश्वास है। अनेक आघातों के बावजूद हम उन आदर्शों पर दृढ़ रहे हैं, जिनका प्रतिनिधित्व संयुक्त राष्ट्रों और उनके अधिकार-पत्र द्वारा होता है। लेकिन वही आदर्श हमें यह भी सिखाते हैं कि अपनी जनता के प्रति और उन लोगों के प्रति जो हममें विश्वास करते हैं, हमारे कुछ कर्तव्य हैं, हमारी कुछ जिम्मेदारियां हैं। इन लोगों के साथ विश्वासघात करना उन बुनियादी आदर्शों से विश्वासघात करना होगा, जिनके पक्ष में संयुक्त राष्ट्र है या उसे होना चाहिये। प्रवेश के अवसर पर ही अप्रत्याशित ढंग से हमने एकतरफा घोषणा की कि हम काश्मीर के जनता के निर्देश, या उसके मतग्रहण

द्वारा प्राप्त निर्णय को स्वीकार करेंगे । हमने यह भी आग्रह किया कि काश्मीर सरकार को तत्काल लोकतांत्रिक सरकार हो जाना चाहिए। हम इस स्थिति पर बराबर दृढ़ रहे हैं। हम ऐसे जन-मतग्रहण के लिए तैयार हैं, जिसमें कि सबको स्वतंत्र मत देने के लिए सुरक्षा होगी, और हम काश्मीर के लोगों के निर्णय को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं।

हमारा प्रतिनिधि मंडल हमसे पूरी तरह परामर्श करके लेक सक्सेस वापस गया है। वह भारत सरकार की स्थिति और भारतीय जन-मत का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करके और इस ज्ञान के साथ कि उन्हें हमारा पूरा समर्थन प्राप्त है, गया है। मैं श्री गोपाल स्वामी आयंगार और उनके सहयोगियों के प्रति, सुरक्षा परिषद् के सामने हमारा पक्ष योग्यता और दृढ़ता से रखने के लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट करना चाहूंगा। शेख अब्दुल्ला वापस नहीं गए हैं, क्योंकि उनका काम इस नाजुक स्थिति में उनकी जनता के बीच है। उनको एक भारी जिम्मेदारी वहन करनी है। मुझे विश्वास है कि इस नई जिम्मेदारी का वे उस दृढ़ता और योग्यता से निर्वाह करेंगे, जिसने कि उन्हें काश्मीर के मुसलमानों, हिन्दुओं और सिखों में प्रिय बना दिया है। प्रतिनिधि-मंडल में उनकी जगह विदेशी मामलों के सचिवालय के सेक्रेटरी-जेनरल श्री गिरिजाशंकर वाजपेयी ने, ली है जिनसे कि मुझे इन कठिन महीनों में बड़ा बल मिला है।

जम्मू और काश्मीर की सैनिक स्थिति के संबंध में मैं अधिक न कहूंगा। हमारे लिए चिन्ता के क्षण आए हैं, लेकिन किसी समय भी मुझे शत्रु का मुकाबला करने और उसे हराने की अपनी शक्ति के संबंध में संदेह नहीं रहा है। हमारे अफसरों और जवानों में पूरा उत्साह है, और किसी की चुनौती को स्वीकार करने के लिए वे तैयार हैं। हमें अपनी सेना और हवाई दल, दोनों के अफसरों और जवानों पर गर्व करने का अच्छा कारण है। खास तौर पर मैं ब्रिगेडियर उस्मान की प्रशंसा करना चाहूंगा, जिनका नेतृत्व और जिनकी सफलता भारतीय सेना की उच्चतम परंपराओं के अनुकूल रही है।

सुरक्षा परिषद् के सामने पाकिस्तान के प्रतिनिधि ने हमारे खिलाफ अनेक ऐसे इलजाम लगाए हैं, जिनका कि काश्मीर के मामले से कोई वास्ता नहीं। उन्होंने उस बात की चर्चा की है, जिसे कि जूनागढ़ में उन्होंने हमारा हमला बताया है और नर हत्या और बहुत सी और बातों का जिक्र किया है। मैं इस भवन का समय इन बातों के विषय में नहीं लेना चाहता। हमें कुछ छिपाना नहीं है और अगर सुरक्षा परिषद् कुछ जांच करना चाहती है तो हम उसका स्वागत करेंगे।

अब मैं इस भवन को सूचना देना चाहूंगा कि काश्मीर के महाराजा साहब

आज एक घोषणा प्रकाशित करने जा रहे हैं और मैं संक्षेप में उनको बातों को इस भवन के सामने रखूंगा, या अच्छा हो कि मैं पूरी घोषणा ही पढ़कर सुना दूं :

जम्मू और काश्मीर के श्रीमान् महाराजा हरीसिंह इंदर महिंदर बहादुर

का

घोषणापत्र, आज सन् एक हजार नौ सौ अड़तालीस की पाँचवीं मार्च को प्रचारित

अपने वंश की परंपरा के अनुसार इस उद्देश्य से कि पूरे उत्तरदायित्वपूर्ण शासन का ध्येय जितना शीघ्र संभव हो सके सिद्ध हो, मैंने समय-समय पर रियासत के शासन में अपनी जनता के अधिकाधिक भाग लेने का प्रबंध किया है। उसी ध्येय के अनुसार मैंने जम्मू ऐण्ड काश्मीर कंस्टिट्यूशन ऐक्ट आफ १९९६ (१९९६ का १४ वाँ ऐक्ट) द्वारा एक वैधानिक शासन की स्थापना की है, जिसके अन्तर्गत एक मंत्रिपरिषद है, एक विधान सभा है, जिसमे कि चुने हुए सदस्यों की बहुसंख्या है, और एक स्वतंत्र न्यायाधिकारी-वर्ग है।

जो उन्नति अब तक हुई है, और मेरी जनता की जो वैध इच्छा है कि वयस्क मताधिकार पर आधारित एक पूर्ण रूप से जनसत्तात्मक संविधान तत्काल स्थापित हो, जिसमें कि धारा सभा के प्रति उत्तरदायी कार्यकारिणी समिति के प्रमुख के पद पर मेरे वंश का वंशगत शासक हो, उसे मैंने बड़े संतोष और गर्व के साथ अवगत किया है।

मैं अपनी जनता के लोकप्रिय नेता शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को संकटकालीन शासन का प्रधान नियुक्त कर चुका हूँ।

अब मेरी इच्छा संकटकालीन शासन के स्थान पर एक जनप्रिय अन्तःकालीन सरकार निर्माण करने की, और उसके अधिकारों, कर्त्तव्यों, और कार्यों को उस समय तक के लिए निर्धारित करने की है, जब तक एक पूर्णतया जनसत्तात्मक विधान का निर्माण न हो जाय।

अतएव मैं इस पत्र द्वारा निर्देश करता हूँ कि :

१—मेरी मंत्रिपरिषद में प्रधान मंत्री और अन्य मंत्रिगण प्रधान मंत्री के

परामर्श से नियुक्त होंगे, मैंने राजकीय आज्ञापत्र द्वारा शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को पहली मार्च, १९४८ से प्रधान मंत्री नियुक्त किया है।

२—प्रधान मंत्री और अन्य मंत्रीगण मंत्रिमंडल (कैबिनेट) के रूप में और संयुक्त उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर कार्य करेंगे। मेरे नियुक्त किए हुए एक दीवान भी मंत्रिमंडल के सदस्य होंगे।

३—मैं इस अवसर पर एक बार फिर यह गंभीर आश्वासन दिलाना चाहता हूँ कि मेरी जनता के सभी वर्गों को नागरिक तथा सैनिक दोनों प्रकार की सेवा के अवसर एकमात्र योग्यता के आधार पर, बिना किसी धर्म या संप्रदाय के भेद-भाव के प्राप्त होंगे।

४—जैसे ही साधारण स्थितियों की स्थापना पूरी हो जाय, एक राष्ट्रीय विधान सभा (नेशनल असेंबली) की संयोजना के लिए, जोकि वयस्क मताधिकार पर आधारित हो, इस सिद्धान्त का ध्यान रखते हुए कि प्रत्येक निर्वाचनक्षेत्र के प्रतिनिधि जहाँ तक संभव हो उस क्षेत्र की जन-संख्या के सानुपात हों, मेरी मंत्रिपरिषद उचित प्रबंध करेगी।

५—जिस विधान का राष्ट्रीय सभा निर्माण करेगी, उसमें अल्पसंख्यकों की सुरक्षा का पर्याप्त प्रबंध होगा और धर्म की स्वतंत्रता, भाषण की स्वतंत्रता और सभा करने की स्वतंत्रता की प्रत्याभूति करने वाली धाराओं का उचित समावेश होगा।

६—जैसे ही नये विधान का कार्य समाप्त हो, राष्ट्रीय सभा उसे मंत्रिपरिषद द्वारा मेरी स्वीकृति के लिए उपस्थित करेगी।

७—अन्त में मैं इस आशा को दुहराता हूँ कि एक लोकप्रिय अन्तःकालीन सरकार का निर्माण और निकट भविष्य में एक पूर्णतया जनसत्तात्मक विधान की स्थापना मेरी प्रिय जनता के संतोष, सुख और नैतिक तथा भौतिक उन्नति को पुष्ट करेगी।

यह घोषणा मैं इस सभा की मेज पर रख रहा हूँ।

भारत को कुछ छिपाना नहीं है

सुरक्षा परिषद् के अध्यक्ष के नाम भेजे गए मेरे ५ जून, १९४८ के पत्र के संबंध में पाकिस्तान के प्रधान मंत्री मि० लियाकत अली खां के एक वक्तव्य का समाचार मैंने समाचार-पत्रों में देखा है। मैं भारत के विरुद्ध पाकिस्तान के अभियोगों अर्थात् जातिविनाश और करार पूरा न करने अथवा जूनागढ़ के भारत में सम्मिलित होने की वास्तविकता के तर्क-वितर्क में न पड़ूंगा। हमारे विचार अनेक बार सुरक्षा परिषद् के सामने और मेरे तथा मेरे साथियों के वक्तव्यों में प्रकट किए जा चुके हैं। जाति-विनाश और करार पूरा न करने के अभियोगों को हम निराधार समझते हैं। अगर हमने सुरक्षा परिषद् के इस निर्णय का प्रतिवाद किया है कि इन अभियोगों को परिषद् के कमीशन के कार्यक्षेत्र की सीमा में रक्खा जाय, तो निश्चय ही इसका कारण यह नहीं है कि हम कुछ छिपाना चाहते हैं। भारत को कुछ छिपाना नहीं है, इससे यह दलील नहीं की जा सकती कि भारत को एक बाहरी संगठन द्वारा, एक ऐसे विषय की जाँच पड़-ताल के लिए जो उसकी सीमा के बाहर है, और जो वस्तुतः निराधार है, राजी हो जाना चाहिए।

पाकिस्तान के प्रधान मंत्री ने भारत के, काश्मीर के झगड़े को सुरक्षा परिषद् में पेश करने के निश्चय को, समय प्राप्त करने और फिर फौजी बल से निर्णय करने की इच्छा से प्रेरित बताया है। सुरक्षा परिषद् में भेजी गई भारत की शिकायत से पता लगेगा कि मि० लियाकत अली खां ने जो सुझाव दिया है उसके प्रतिकूल, भारत ने बराबर इस बात पर जोर दिया है कि परिषद् द्वारा उसके द्वारा की गई पाकिस्तान के विरुद्ध शिकायत पर अविलंब कार्य होना चाहिए। सुरक्षा परिषद् के सामने काश्मीर का झगड़ा उपस्थित करके भारत का यह तात्पर्य नहीं रहा है कि जम्मू और काश्मीर रियासत से फौजी कार्यवाही द्वारा, सभी आक्रमणकारियों को निकाल बाहर करने और शांति स्थापित करने की अपनी स्वतंत्रता का परित्याग करे। एक ऐसी रियासत के संबंध में जो उसमें सम्मिलित हुई, उसे ऐसा करने का अधिकार भी है और उस पर यह जिम्मेदारी भी है। यह आश्चर्य की बात है कि मि० लियाकत अली खां को भारत द्वारा, अपने साधनों का उपयोग करते हुए इस वैध और न्याय-संगत उद्देश्य की पूर्ति के लिए किये गये प्रयत्नों के खिलाफ शिकायत हो।

---

१० जून, १९४८ को नई दिल्ली से दिया गया वक्तव्य।

फिर इस प्रकार के अभियोग लगाए गए हैं, कि भारतीय सैनिकों ने 'उन इलाकों में जहाँ वे हैं, असहाय बुड्ढे आदमियों, स्त्रियों और बच्चों के साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार किये हैं। मैं पूरे जोर के साथ इस बेबुनियादी इलजाम का प्रतिवाद करता हूँ।

इन बे बुनियाद और झूठे अभियोगों को बार-बार दुहराने का एक मात्र उद्देश्य संसार का ध्यान उन बर्बर अत्याचारों से हटाना है जो आक्रमणकारी पाकिस्तान की सक्रिय सहायता से, निर्दोष नागरिकों, मर्द, औरत, बच्चे, बूढ़ों पर उन इलाकों में करते रहे हैं, जिन पर उन्होंने कब्जा का लिया है या जहाँ-जहाँ से वे गुजरे है। मानवता के विरुद्ध किए गए ऐसे अत्याचार कभी छिप नहीं सकते। बारामूला, भीम्बर, मीरपुर, रजौरी अपने आक्रमणकारियों के बुरे कार्यों की घोषणा करते रहेंगे।

मि० लियाकत अली खां ने शिकायत की है कि भारतीय सैनिकों ने पाकिस्तान की सरहद में प्रवेश किया है और भारतीय उड़ाकों ने उन गाँवों पर गोलावारी की है जो पर्याप्त रूप से पाकिस्तान की सरहद के भीतर हैं। हमारे द्वारा पाकिस्तान की सरहद में प्रवेश करने की हर एक शिकायत की, जिसकी जांच हो सकती थी, जांच की गई है। इनमें से अधिकतर शिकायतें, जांच करने पर निराधार सिद्ध हुई हैं। जैसा कि अच्छी तरह मालूम है, आक्रमणकारी रियासत के इलाके से खदेड़े जाने पर अक्सर पाकिस्तान में, भाग कर पहुंचते हैं। हमारे सैनिक रियासत की हद तक उनका पीछा करते है। यह उनका कर्त्तव्य है और उनके अधिकार की बात है। हमारे उड़ाकों के संबंध में भी पाकिस्तान की हर एक शिकायत की जांच हुई है। गढ़ी हबीबुल्ला के खास मामले में, जिसका कि पाकिस्तान के प्रधान मंत्री ने हवाला दिया है, वस्तु-स्थिति का पता लगाने के लिए दोहरी जांच की गई और भारत-सरकार की ओर से पाकिस्तान-सरकार के प्रति घटना के लिए खेदप्रकाश किया जा चुका है। दो संसारव्यापी युद्धों का इतिहास बताता है कि निरीक्षण में हुई स्वाभाविक भूल के कारण तटस्थ लोगों को हानि से बचाना कितना असंभव रहा है। पाकिस्तान पर आक्रमण करने का कोई उद्देश्य नहीं रहा है।

मि० लियाकत अली खां ने, पाकिस्तान-सरकार के, "उत्तेजना के बावजूद बे-मिसाल सब्र" दिखाने की बात कही है। वे सहज ही इस बात को भूल गए हैं कि पिछली अक्टूबर में काश्मीर की घाटी पर कबाइलियों द्वारा आक्रमण से, जिसकी उन्हें प्रेरणा और सहायता पाकिस्तान से मिली, भारत सरकार को किस प्रकार उत्तेजित किया गया और अब भी किया जा रहा है। अभी उड़ी के युद्धक्षेत्र में भी पाकिस्तानी सैनिक भारतीय सैनिकों का अपने पूरे बल से मुकाबला कर रहे हैं। इन परिस्थितियों में पाकिस्तान सरकार के लिए यह कहना व्यर्थ है कि वह "भारत से

शांति और मैत्री के संबंध बनाए रहने को उत्सुक है" या यह कि भारत काश्मीर में जो कुछ कर रहा है उससे "पाकिस्तान की रक्षा को भीषण खतरा है" या यह कि जम्मू और काश्मीर के मुसलमानों के विरुद्ध "हत्या और विनाश" का कार्य हो रहा है ।

रियासत के मुसलमानों की हत्या और विनाश की बात तो बहुत दूर है, भारतीय सेना का उपयोग तो पाकिस्तान द्वारा छोड़े हुए लुटेरों से उनकी रक्षा के लिए हुआ है । एक अन्तःकालीन सरकार, जो कि जनता की प्रतिनिधि है, जिसके नेता एक मुस्लिम हैं जो कि जम्मू और काश्मीर में लोकप्रिय और प्रगतिशील शक्तियों के वर्षों से सर्वप्रमुख नेता रहे हैं, रियासत में कायम की गई है। भारतीय संघ में सम्मिलित होने के प्रश्न पर भारत ने बार-बार कहा है कि जम्मू और काश्मीर के लोगों का स्वतंत्रतापूर्वक दिया गया जनमत उसे मान्य होगा। पाकिस्तान ने यद्यपि युद्ध की घोषणा किए बिना, आक्रमणकारियों और रियासत के भीतर उपद्रवियों की सहायता के लिए सब कुछ किया है, भारत सरकार ने शांति के हित में अद्वितीय संयम से काम लिया है। वह अभी भी के पड़ोसी राज्य पाकिस्तान के साथ अत्यन्त मैत्रीपूर्ण ढंग से रहना चाहती है । लेकिन उसकी इस इच्छा की पूर्ति में, ऐसा वक्तव्य जिस तरह का कल मि० लियाकत अली खां द्वारा दिया गया बताया जाता है, बाधक हो सकता है, सहायक नहीं ।

काश्मीर की कहानी आगे चलती है

महोदय, में इस भवन की मेज पर कुछ कागजात रखना चाहता हूँ और उनके संबन्ध में एक वक्तव्य देना चाहता हूँ। ये पत्र काश्मीर के संबन्ध में बिठाए गए संयक्त राष्ट्र कमीशन के विषय में हैं, जो कि अब लगभग दो मास से भारत और पाकिस्तान में आया हुआ है। इस भवन के माननीय सदस्यों ने आज सबेरे के समाचारपत्रों में इस कमीशन और भारत-सरकार के बीच होने वाले कुछ पत्र-व्यवहार को, करीब तीन सप्ताह पहले कमीशन द्वारा स्वीकृत एक प्रस्ताव को, भारत-सरकार द्वारा उस पर दिए गए उत्तर को, पढ़ा होगा और पाकिस्तान के उत्तर के कुछ झलक भी उसे मिली होगी। पूरे पत्र अभी समाचार-पत्रों में प्रकाशित नहीं हुए हैं और वास्तव में हमें आज ही सवेरे, कराची से भेजे गए एक विशेष दूत द्वारा प्राप्त हुए हैं। निश्चय ही ये पत्र समाचार-पत्रों में प्रकाशित होंगे। इस बीच में इस सभा की मेज पर में इनमें से कुछ पत्र रखूंगा और शेष पत्रों को भी, जैसे ही वे टाइप हो जायंगे आज मेज पर रख दिया जायगा।

अब, यह भवन जानता है कि यह कमीशन यहाँ पिछले दो महीनों या कुछ अधिक से आया हुआ है और सभा ने इस प्रकाशित पत्र-व्यवहार से यह जाना होगा कि उसका प्रस्ताव क्या था और उस के प्रति हमारी प्रतिक्रिया क्या थी। वास्तव में सभा को मालूम हो गया होगा कि हमने विराम संधि और युद्ध स्थगित किए जाने के संबंध में कुछ शर्तें स्वीकार कर ली हैं। लेकिन पाकिस्तान ने उन्हें अस्वीकार कर दिया है। अब, में इस समय इस मामले पर बहुत विशेष बातें न कहना चाहूँगा। कुछ तो इसलिए कि मुझे सवेरे इन पत्रों को पढ़ने का समय न मिल सका और में उन्हें अधिक ध्यान से पढ़ना चाहूँगा। कुछ इसलिए कि कमीशन विचार कर रहा है कि आगे वह क्या कदम उठाये या न उठाये, और मेरे लिए यह बहुत उचित न होगा कि कोई ऐसी बात कहूँ जिससे कि कमीशन असमंजस में पड़ जाय।

जैसा कि यह भवन शायद जानता है, कमीशन की यह इच्छा थी कि हम इन पत्रों का प्रकाशन और उनके संबन्ध में इस भवन में कुछ वक्तव्य देना आज की तिथि तक स्थगित रक्खें। कमीशन से परामर्श के आरंभ से ही हम चाहते रहे

संविधान परिषद् (व्यवस्थापिका), नई दिल्ली, में ७ सितंबर, १९४८ को दिया गया भाषण।

हूं कि इस भवन को और देश को पूरी तरह से विश्वास में लें और जानकारी दें क्योंकि हम ऐसे जरूरी और महत्त्वपूर्ण विषय में इस भवन की जानकारी और अनुमति के बिना कोई कदम नहीं उठाना चाहते थे लेकिन वर्त्तमान परिस्थितियों में बहुत इच्छा रखते हुए भी हमारे लिए यह कठिन हो गया कि जब कमीशन इस नाजुक बातचीत में लगा हो तब इस भवन में, हम कोई वक्तव्य दें। इसलिए उनके अनुरोध पर हमें इस प्रकार के प्रकाशन को समय-समय पर टालना पड़ा। आखिर उन्होंने अपना वक्तव्य कल कराची में ४ बजे प्रकाशित किया। अब यद्यपि इस विषय पर मैं अधिक नहीं कहना चाहता फिर भी कुछ बातें हैं जिन पर मैं इस भवन का ध्यान दिलाना चाहूँगा। ये बातें खूब जानी हुई हैं--न केवल इस सभा बल्कि सारे देश द्वारा। फिर भी कभी-कभी जानी हुई और मानी हुई बातों से इन्कार किया जाता है, और जब उन्हें स्वीकार किया जाता है तो दूसरी बात हो जाती है।

काश्मीर की प्रस्तुत कहानी और विपत्ति करीब दस महीने पहले आरंभ हुई; पिछले साल, अक्टूबर के अन्त के करीब पाकिस्तान के इलाके से होकर आने वाले लोगों द्वारा काश्मीर पर आक्रमण हुआ, और भारत सरकार को एक बड़ी कठिन समस्या का सामना करना पड़ा, जिसका निर्णय किसी भी सरकार के लिए बहुत कठिन होता, और हमें यह निर्णय चन्द घंटों के भीतर करना पड़ा। हम लोगों ने निर्णय किया, और तबसे हम उसी निर्णय का अनुसरण कर रहे हैं। हमें उस समय यह स्पष्ट हो गया था और यह बात अब सारी दुनिया को, जो इस विषय में कुछ जानना चाहती है, विदित हो गई है कि इस आक्रमण को पाकिस्तान सरकार ने न केवल उकसाया और प्रश्रय दिया बल्कि उसे सक्रिय रूप से सहायता भी दी। इसके बाद यह स्पष्ट हो गया कि मदद देने के अतिरिक्त पाकिस्तान की सेना इसमें सक्रिय भाग ले रही थी। अब इन दस महीनों से बराबर पाकिस्तान सरकार इस बात से इनकार करती रही है। उसने इससे जोरों के साथ और बार-बार इन्कार किया। हमने इसे संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद को बताया।

वास्तव में हम सुरक्षा परिषद् के सामने बहुत सीधा-सा बयान लेकर गए, वह यह कि काश्मीर की शांति को पाकिस्तान के इलाके से होकर आने वाले इन आक्रमणकारियों ने भंग किया है; और हमने अपना पक्ष जितना हो सकता था उतने संयम से रखा, यद्यपि हम उसे और जोरों से रख सकते थे। हमने कहा कि यह निश्चित है कि पाकिस्तान से होकर आने वाले लोग पाकिस्तान की सहायता और सदिच्छा से ही आयेंगे और इसलिए हमने सुरक्षा परिषद् से यह अनुरोध किया कि वह पाकिस्तान से कहे कि वह उनकी सहायता न करे और न उन्हें इस प्रकार आने दे। मेरे विचार में यह एक बहुत ही

संयत अनुरोध था और बहुत ही संयत भाषा में किया गया था। पाकिस्तान ने इस वाकये से इनकार किया और सुरक्षा परिषद् के सामने जो लम्बे वाद-विवाद हुए उनमें भी वह न केवल इन्कार करता गया बल्कि इस बात पर उसकी तरफ से झुंझलाहट और गुस्सा दिखाया गया कि कोई भी उसके विरुद्ध ऐसा इलजाम लगा सके। खैर, आज मैं उसके इन्कार की इस लम्बी दास्तान में नहीं पड़ना चाहता, लेकिन जो बात है वह यह है कि आज उसने ही यह स्वीकार किया है कि वह इनकार झूठा था । अब यह एक महत्त्वपूर्ण मामला बन गया है ।

यह न केवल व्यावहारिक राजनीति और जो स्थिति हमारे सामने है उसके दृष्टिकोण से, बल्कि नैतिकता परस्पर, सदाचार और राष्ट्रों के बीच परस्पर की शिष्टता के दृष्टिकोण से भी यह महत्त्वपूर्ण है । मैं यह जानता हूँ कि सार्वजनिक नैतिकता और अन्तर्राष्ट्रीयता का दर्जा दुर्भाग्य से इस दुनिया में बहुत ऊंचा नहीं है । फिर भी, कुछ दिखावा बनाए रखा जाता है, कुछ शिष्टताएं बरती जाती हैं, और किसी मापदंड को माना जाता है। मैं इस भवन से और देश से निवेदन करूँगा कि इन दस महीनों या इससे कुछ अधिक की कहानी और उसके विषय में जो कुछ कहा गया है, उस पर पाकिस्तान-सरकार की जिस रूप में प्रतिक्रिया हुई है वह इतनी अजीब है कि एक राष्ट्र के लिए शोभा नहीं देती। कल तक, और जहाँ तक दुनिया जानती है, कल ४ बजे शाम तक, पाकिस्तान ने यह नहीं माना था कि वह किसी भी रूप में काश्मीर के आक्रमणों में भाग ले रहा है। हमें अवश्य मालूम था। इस बात का बिल्कुल निश्चित और प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे पास था। आखिरकार आप बड़ी फौजों पर परदा नहीं डाल सकते। फिर भी कल ४ बजे शाम तक, जबकि वे पत्र जनता के लिए प्रकाशित किए गए, सार्वजनिक रूप से इसे स्वीकार नहीं किया गया। वास्तव में पिछले कई सप्ताहों से इससे बराबर इन्कार होता रहा, जबकि यह बड़ी पाकिस्तानी सेना काश्मीर में सक्रिय थी, और भारतीय संघ के प्रदेश में भारतीय सेना के विरुद्ध युद्ध में लगी हुई थी।

कृपया इसे याद रखिए कि पिछले दस महीनों में काश्मीर में जो भी लड़ाई हुई है वह भारत के इलाके में हुई है। पाकिस्तान के इलाके में कोई लड़ाई नहीं हुई, न उस पर कोई आक्रमण ही हुआ और पाकिस्तान के इलाके में कहीं भी भारतीय सेना नहीं गई । यह एक खास और बुनियादी बात है, जो किसी जांच और दूसरी बातों को अलग रखते हुए, यह सिद्ध करती है कि यदि कोई बाहरी लोग भारतीय संघ के इलाके में लड़ रहे हैं तो वही बाहरी लोग झगड़ा करने वाले हैं। वे वहाँ हैं क्यों? पिछले लगभग छः सप्ताह के बीच हमने फिर पाकिस्तान-सरकार को और पाकिस्तान के प्रधान मंत्री को काश्मीर रियासत में पाकिस्तानी सैनिकों का होना बहुत स्पष्ट शब्दों में बताया था।

फिर भी, या तो इस बात से इनकार किया गया, या उसे टाला गया। मुझे यह एक गैरमामूली बात मालूम हुई। मैं और आदमियों से भिन्न होने का दावा नहीं करता। मैं उम्मीद करता हूँ कि मेरे मापदंड दूसरों के मापदंड की अपेक्षा घटिया नहीं हैं। मुझे यह देखकर बड़ा धक्का पहुँचा है कि कोई देश, किसी भी सरकार का जिम्मेदार मंत्री इस तरह के सरासर झूठे बयान दे और उसके जरिये दुनिया को धोखा देने की कोशिश करे। आपको स्मरण होगा कि लेक सक्सेस में सुरक्षा परिषद् के सामने इस विषय पर लम्बे वाद-विवाद हुए थे। पाकिस्तान सरकार के विदेश मंत्री ने, जो कि उस सरकार के वहाँ पर मुख्य प्रतिनिधि थे, पाकिस्तान का पक्ष सुरक्षा परिषद् के सामने रखा था।

मैं आप से इस देश से और सारे संसार से इस बात पर विचार करने का अनुरोध करूँगा कि उस मामले का आधार अब क्या रह गया। क्योंकि वह सारा मामला एक मुख्य बात पर आधारित था, यानी काश्मीर में पाकिस्तान की साजिश से इन्कार पर। उन्होंने बराबर इसमें सक्रिय भाग लेने से इन्कार किया है। अगर यह बात झूठी साबित होती है, जैसा कि अब खुद उनके मुंह से झूठी साबित हुई है, तब वह मामला जिसे कि सुरक्षा परिषद् के सामने इतने परिश्रम से पाकिस्तान सरकार ने खड़ा किया था, क्या ठहर सकता है? अब उस अभियोग का क्या होता है जो कि हमने उनके विरुद्ध लगाया था और जिस पर कि सुरक्षा परिषद् ने विचार ही नहीं किया, जिस पर हमें बड़ा खेद और आश्चर्य रहा? इसलिए हमें जिस मुख्य बात का ध्यान रखना है वह यह है कि एक यथार्थ बात को, जिससे दस महीने से ज्यादा तक इन्कार किया गया, अब पाकिस्तान सरकार ने खुली तौर पर स्वीकार किया है। हाँ, इस स्वीकार का उनका अपना ढंग है। मैं अब कमीशन के पास भेजे गए उसके पत्र के कुछ अंश पढ़कर सुनाऊंगा। उसमें कहा है:—

"भारत बरावर जम्मू और काश्मीर में अपनी सशस्त्र सेना का निर्माण कर रहा था। यह निर्माणक्रम २१ अप्रैल १९४८ को बन्द नहीं हुआ बल्कि और पुष्ट किया गया। अप्रैल के आरंभ में भारतीय सेना ने एक जोर का हमला किया जिससे कि स्थिति में मुख्य परिवर्तन हुआ। यह हमले की कार्यवाही बराबर जारी है। भारत सरकार का सर्व विदित उद्देश्य यह था कि जम्मू और काश्मीर में एक फौजी निर्णय कर लें और इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र संगठन के सामने एक सिद्ध तथ्य प्रस्तुत करें। इस स्थिति ने न केवल आजाद काश्मीर सरकार के अधिकार की सारी आबादी को ही खतरे में डाला, और इसके परिणाम स्वरूप बड़ी संख्या में शरणार्थी पाकिस्तान में आने लगे, बल्कि पाकिस्तान की सुरक्षा के लिए एक सीधा खतरा भी पैदा हो गया। इस बात ने पाकिस्तान सरकार को मजबूर किया कि अपनी सेना को खास-खास रक्षा के मोर्चों पर भेजे।"

इस बात पर भी ध्यान दीजिए कि वे इसे स्पष्ट रूप में नहीं कहते कि रक्षा के ये मोर्चे दूसरे देश में थे।

युद्ध स्थगित करने के और दूसरे प्रस्तावों पर उनके निर्णय को अलग रखिये। जो देश एक पड़ोसी देश के विरुद्ध, चाहे सुरक्षा, या अपने बचाव के नाम पर ही क्यों न हो, आक्रमण में भाग लेता है, ऐसा करने से कई महीने तक इन्कार करता रहता है, और जब वह अपने अपराध को साबित हुआ देखता है जिसे वह जब और किसी तरह नहीं छिपा सकता, तब जैसे-तैसे उसे स्वीकार करता है और उसके लिए कोई भी वजह बता देता है—ऐसे देश की राजनीति का औचित्य किसी अन्तर्राष्ट्रीय या राष्ट्रीय या नैतिक दृष्टिकोण से कैसे सिद्ध किया जा सकता है? इस पर भी विचार कीजिए कि इस बयान के अनुसार उन्होंने अप्रैल में यह कार्यवाही की, यानी चार-साढ़े चार महीने हुए। अगर उन्होंने यह अनुभव किया था कि उनकी सुरक्षा खतरे में थी, या कोई बात ऐसी हो रही थी जो उनके लिए भयावह थी, और इसलिए उन्हें अपनी सेना भेजनी पड़ी, तो उन्हें क्या करना चाहिए था? जाहिर है कि उन्हें भारत सरकार को सूचना दे देनी थी और संयुक्त राष्ट्र संगठन को यह सूचना दे देनी थी कि ऐसी बातें हो रही हैं और, जैसा वे कहते हैं, स्थिति में एक मुख्य परिवर्तन हुआ है और इसलिए वे ऐसा करने पर विवश हुए हैं।

इस विस्तृत संसार में मैं किसी भी ऐसे देश की कल्पना नहीं कर सकता जिसने ऐसा न किया होता। मन्शा का सवाल अलग रहा, यह एक स्पष्ट और अनिवार्य कर्त्तव्य था। उन्होंने यह सेना, अपने बयान के अनुसार, पिछली अप्रैल में या उसके आसपास भेजी, और हमें यह नहीं बताया गया कि किसके इलाके में वह आ रही है, और संयुक्त राष्ट्र संगठन को भी, जिसके सामने यह प्रश्न था और जो वास्तव में उस समय भारत में एक कमीशन भेजने का विचार कर रहा था, इसकी कोई जानकारी न कराई गई। आपको स्मरण होगा कि सुरक्षा परिषद् की कार्यवाही के शुरू में, भारत और पास्कितान से इन फौजी कार्यवाहियों के संबंध में और दोनों देशों के बीच कोई ऐसी स्थिति उत्पन्न न होने देने के विषय में अनुरोध किया गया था। जो कुछ पंक्तियाँ मैंने पाकिस्तान के उत्तर से पढ़ कर सुनाई हैं उनमें भारत पर आक्रमण करने का अभियोग लगाया गया है। हम आक्रमणकारी को भारतीय संघ के इलाके से निकाल बाहर करने का प्रयत्न कर रहे हैं। यह हमारी घोषित नीति रही है, जिसे कि हमने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के सामने दुहराया है और जो कि हमारे लिए अनिवार्य रही है, और जो वास्तव में किसी भी देश के लिए, जिसमें अणुमात्र भी आत्म-सम्मान है, अनिवार्य होती।

दूसरी ओर पाकिस्तान सरकार ने क्या किया? हमने आरम्भ से ही जो भी कदम उठाया है खुले तौर पर उठाया है; उसके संबध में कुछ लुका-छिपी नहीं रही है। यह भवन काश्मीर के मामले में बहुत दिलचस्पी लेता रहा है। भारतीय जनता ने इसमें बहुत ही दिलचस्पी ली है और ठीक ही है क्यों कि हमारी सरकार ने अपने ऊपर इसका बोझ लिया है। यह एक भारी बोझ रहा है। मैं आपको साफ बताऊंगा कि यह मेरे लिए और खासकर मेरी सरकार के लिए क्यों एक भारी बोझ रहा है? इसलिए नहीं कि इसमें फौजी कार्यवाही करनी पड़ी है, यद्यपि वह भी सदा एक बोझ होती है, बल्कि इसलिए यह एक बोझ रहा है कि हम इस विषय में निश्चित रहना चाहते थे कि किसी समय भी हम उन सिद्धान्तों के प्रतिकूल कुछ न करें, जिनकी कि हमने इतने दिनों से घोषणा की थी।

क्या मैं इस भवन को अपनी बात बताऊं? प्रारंभिक अवस्था में, अक्टूबर के अन्त में और नवम्बर में, और वास्तव में बाद में भी, काश्मीर के विषय में मैं इतना चिन्तित था कि यदि कोई ऐसी बात हुई होती या उसका होना संभावित होता, जो कि मेरी दृष्टि में काश्मीर के लिए भयवाह होती, तो मेरा हृदय टूट जाता। सरकारी कानूनों के अतिरिक्त व्यक्तिगत कारणों और भावुकतावश मुझे इस मामले में बेहद दिलचस्पी थी। इसे मैं छिपाना नहीं चाहता, कि काश्मीर में मेरी दिलचस्पी है। फिर भी मैंने निजी और भावुकता के पहलू को दबा रखने और इस पर भारत की भलाई और काश्मीर की भलाई के वृहत्तर दृष्टिकोण से विचार करने की कोशिश की। मैंने इस प्रश्न पर इस दृष्टि से विचार करने की कोशिश की कि हम उन सिद्धान्तों से, जिन्हें हमने अतीत में घोषित किया है, विचलित न हों या भटकें नहीं।

जब यह प्रश्न पहले उठा तब मैंने महात्माजी से मार्ग-प्रदर्शन चाहा जैसा कि मैं और मामलों पर प्राप्त करता था, और मैंने उनके पास बार बार जाकर उनके सामने अपनी कठिनाइयां रखीं। यह सदन जानता है कि अहिंसा का वह प्रचारक फौजी मामलों में उचित सलाहकार नहीं था और यही उन्होंने कहा; लेकिन वे निश्चय ही नैतिक प्रश्न पर मार्ग-प्रदर्शक थे। इसलिए मैंने अपनी कठिनाइयां और अपनी सरकार की कठिनाइयाँ उनके सामने रखीं। और यद्यपि इस अवसर पर मैं अपनी या अपनी सरकार की जिम्मेदारी कम करने के लिए उनका नाम घसीटना ठीक नहीं समझता, फिर भी मैं इस मामले का जिक्र यह दिखाने के लिए करता हूँ कि इसके नैतिक पहलू की मुझे बराबर चिन्ता रही है। और खासकर जब मैंने देखा कि भारत में वैसी घटनाएँ घटीं जैसी कि पिछले महीनों में घटी हैं जिन्होंने भारत के नाम को बदनाम किया है, तो मैं बहुत विचलित और चिन्तित हुआ और इसके लिए फिक्रमद था कि हमें जहां तक संभव हो वहाँ तक सीधे पथ पर कायम रहना चाहिए।

तो यह मेरा रुख रहा है और कई अवसरों पर मैंने खुले तौर पर इसकी घोषणा की है। अत्युक्ति और गोल-मोल आरोपों को छोड़कर मैं किसी भी व्यक्ति से यह जानना चाहूँगा, चाहे वह मित्र हो चाहे दुश्मन, कि अक्तूबर के अन्तिम सप्ताह के उस दिन से लेकर जबकि हमने काश्मीर में आकाशमार्ग से फौजें भेजने का महत्त्वपूर्ण निर्णय किया, आज तक हमने काश्मीर में ऐसी कौन-सी बात की है, जो किसी भी दृष्टिकोण या मापदंड से गलत हो ?

मैं इस प्रश्न का उत्तर चाहता हूँ। हो सकता है कि व्यक्तियों ने यत्र-तत्र भूलें की हों, लेकिन मैं कहता हूँ कि भारत सरकार ने और भारतीय सेना ने समग्र रूप से जो कुछ किया है वह अनिवार्य था और प्रत्येक कदम जो हमने उठाया है वह अनिवार्य कदम था, और यदि हमने वैसा न किया होता तो हम अपने को कलंकित कर लेते। इस रूप में मैंने काश्मीर के प्रश्न को देखने का साहस किया है और जब मैं देखता हूँ कि दूसरी तरफ सारा मामला जिसके विषय में यदि मैं कड़ी भाषा का प्रयोग करूँ तो कह सकता हूँ कि झूठ और दगा पर खड़ा किया गया है, तो क्या मैं गलत कहता हूँ ? यह बात है जिस पर मैं चाहूंगा कि यह भवन और मुल्क और दुनिया विचार करे।

इसलिए, पहली बात याद रखने की यह है कि यह सब मामला, जो कि पाकिस्तान ने सुरक्षा परिषद् के सामने खड़ा किया, खुद उनके इकरार के अनुसार और इस साबित हुई बात के सामने कि उसकी बड़ी सेनाएं काश्मीर में सक्रिय रही हैं, अब ढह जाता है और निश्चय ही ऐसी ही सेनाएं हैं, तथा आप कहना चाहें तो अन्य जो उनसे संबद्ध रही हैं, काश्मीर में भारतीय संघ के इलाके में इन दस महीनों से या लगभग इतने समय से कार्य करती रही हैं। बाद की हर एक कार्यवाही पर इस पहलू से दृष्टि डालनी चाहिए।

अब हम वर्त्तमान काल पर आते हैं, और यहाँ मुझे एक बात और कहनी है। यह एक आक्रमण रहा है; और यदि इसे-जैसा कि खुद उनका इकरार है—एक आक्रमण कहा जाय, तो उसके कुछ परिणाम होते हैं। अब मेरी कठिनाई यह रही है कि यदि किसी प्रश्न पर विचार करते हुए, आप अपने को विस्तार की बातों के जंगल में खो देते हैं, तो आप मुख्य बात से अलग बहक जाते हैं। काश्मीर के मसले पर लम्बे विवाद हुए हैं और पिछले और वर्त्तमान इतिहास के हर पहलू पर विचार हुआ है। लेकिन मुख्य विचार्य बात क्या रही है ? मैं इसे दुहराऊँगा, क्योंकि मैं समझता हूँ कि मुख्य बात पाकिस्तान का भारतीय प्रदेश पर आक्रमण है; दूसरी बात इस आक्रमण के वाकये से इन्कार है; और तीसरी उस वाकये का मौजूदा इकरार है। इस परिस्थिति की मुख्य बातें ये हैं। बहस इतने लंबे समय से इसलिए चल रही है कि इन मुख्य बातों को नजरअंदाज कर दिया गया

था या उन पर जोर नहीं दिया गया था। हमने बेशक उन पर जोर दिया और इस प्रश्न पर बारीकी के साथ विस्तृत विचार हुआ ।

यदि आप कोई बहस एक गलत बयान को लेकर आरंभ करते हैं तो सारी बहस गलत हो जाती है और आप कठिनाइयों में पड़ जाते हैं। यदि आप किसी समस्या को बिना उसका विश्लेषण किए या यथार्थ रूप समझे हल करना चाहते हैं तो आप उसे कैसे हल कर सकेंगे ? और यही मूल कठिनाई इस काश्मीर के मामले में रही है। मुख्य विचारणीय बात को या तो नजरअन्दाज कर दिया गया है, या टाल दिया गया है, या छोड़ ही दिया गया है। इसलिए हम और मामलों में फँस गए जिनसे हमें कोई हल हासिल नहीं हो सकता। अब बुनियादी बात पाकिस्तान के इस इकरार से ही जाहिर हो गई है।

भारत में आए संयुक्त राष्ट्र के कमीशन के युद्ध स्थगित करने और विराम संधि आदि के प्रस्ताव के संबंध में मैं अधिक बहस न करूँगा, क्योंकि इस समय मैं कोई ऐसी बात नहीं कहना चाहता जो कि कमीशन को असमंजस में डाले। लेकिन कुछ कागज़ात आपके सामने हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उनके प्रस्ताव का हमने बड़ी प्रसन्नता और उत्साह के साथ स्वागत नहीं किया; उसकी बहुत-सी बातें इच्छा के प्रतिकूल पड़ने वाली थीं। लेकिन हमने इस मामले पर, जहाँ तक संभव हुआ, ठंडे दिल से और बिना उद्वेग के विचार करने का प्रयत्न किया, ताकि बहुत्रस्त काश्मीर रियासत में शांति स्थापित हो सके और अनावश्यक कष्ट और रक्त-पात न हो। जब कमीशन ने कुछ और बातों को, जिन्हें हमने उनके सामने रखा, स्पष्ट करने का सौजन्य दिखाया तो हमने उनके युद्ध स्थगित करने के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। हमने बहुत से विषय उनके सामने नहीं रखे, बल्कि कुछ सीधी और मोटी बातें काश्मीर की सुरक्षा के संबंध में रखीं। हमने ये बातें उनके सामने रखीं और उन्होंने उनके विषय में अपना आशय स्पष्ट करने का सौजन्य दिखाया। इसके बाद हमने युद्ध स्थगित करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उसकी अनेक ऐसी बातों को भी हमने स्वीकार किया जो कि हमें पसन्द नहीं थीं, क्योंकि हमने अनुभव किया कि शांति और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के हित में यह हमारे लिये अच्छा होगा कि हम कुछ कदम आगे बढ़ें, भले ही कुछ कदम अनिच्छा से बढ़ाये, जायें। हमने शांति स्थापित करने के उद्देश्य से ऐसा किया और यह दिखाने के उद्देश्य से किया कि हम संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की इच्छा की पूर्ति के लिए, जहाँ तक हमारे लिए बढ़ना संभव है, बढ़ने के लिए तैयार हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ का मूल प्रस्ताव हमें १४ अगस्त को मिला। १५ अगस्त को हमारा स्वतंत्रता-दिवस था। उसके ठीक बाद १६ ता० को हम कमीशन के सदस्यों से मिले और हमने उनका ठीक-ठीक आशय समझने की दृष्टि से विचार-विनिमय किया, और उनको अपने ठीक-ठीक विचार बताए; और चार दिन के भीतर, यानी २० अगस्त

को हमने उनके पास अपना उत्तर भेज दिया। हमने इस मामले में देर लगानी नहीं चाही, क्योंकि वे उत्सुक थे कि इसमें देर न लगाई जाय।

पाकिस्तान सरकार को भी ये प्रस्ताव उसी समय अर्थात् १४ अगस्त को ३ या ४ बजे शाम को मिल गए थे। उनके पास भी उतना ही समय था। लेकिन कमीशन के पाकिस्तान वापस जाने पर भी—और कमीशन के कुछ सदस्य इस बीच में भी कराची गए थे, उनका उत्तर तैयार नहीं था। वास्तव में घटनाओं के दबाव से या कमीशन के दबाव से आखिरकार किसी प्रकार का जवाब उन्होंने कल दिया। इस बीच में स्पष्टीकरण प्राप्त करने के लिये लंबे-लंबे खत उन्होंने भेजे। मुझे खेद है कि अभी में पूरा उत्तर नहीं पढ़ सका हूँ, क्यं कि यहां आने से जरा पहले ही मुझे वह मिला है। लेकिन उसके खास-खास हिस्से मैंने पढ़ लिए हैं और नतीजा यह निकलता है कि वे उन प्रस्तावों को अस्वीकार करते हैं।

कमीशन ने हमें यह बताया कि ये प्रस्ताव समग्र रूप से किए गए हैं। और यद्यपि वे खुशी से किसी भी विषय पर बहस करने के लिए तैयार थे, उनके लिए यह कठिन था, दरअसल संभव न था कि उन्हें शर्त्त के साथ स्वीकृति मान्य हो, क्योंकि यदि हमने कुछ शर्त्तें लगाईं और पाकिस्तान ने भी शर्त्तें लगाईं तो किसने क्या स्वीकार किया इसका क्या पता चल सकता था? इसलिए उन्होंने कहा कि इन प्रस्तावों को ज्यों-का-त्यों स्वीकार करना चाहिए, और यदि उनकी स्वीकृति में शर्तें लगाई गईं तो वह स्वीकृति न कहलायेगी बल्कि उसका अर्थ उन्हें अस्वीकृत करना होगा। इसलिए जो कुछ पाकिस्तान-सरकार ने किया है वह प्रस्तावों को अस्वीकार करने के बराबर है। यह कमीशन के निश्चय करने और बताने की बात है कि अब वह क्या करेगा। उसे सलाह देना मेरा काम नहीं। इस तरह हम एक अजीब परिस्थिति में पहुँच जाते हैं यानी यह कि वह मुल्क, जो कि अपने ही कहे के अनुसार एक आक्रमणकारी राष्ट्र था, अब युद्ध स्थगित करने के प्रस्ताव को अस्वीकार करता है, या ऐसी शर्तें पेश करता है, जो उसके इन्कार करने के बराबर है।

इन सब बातों के कुछ अन्तर्राष्ट्रीय परिणाम होने चाहिए। वे क्या हैं? यह कि एक किंचित सीमित क्षेत्र में, वे सभी अफसर और व्यक्ति, जो काश्मीर के इलाके में, भारत के विरुद्ध एक युद्ध में हिस्सा ले रहे हैं — जाहिर है इनमें पाकिस्तानी हैं, और दूसरे राष्ट्रीय भी हैं——केवल एक छेड़-छाड़ के युद्ध में ही नहीं लगे हैं, बल्कि ऐसे युद्ध में लगे हैं जिसके विषय में संयुक्त राष्ट्र कमीशन ने युद्ध स्थगित करने का प्रस्ताव रखा है। उनकी यह स्थिति विचारणीय हो जाती है।

काश्मीर के प्रश्न पर बस में इतना ही कहना चाहता हूँ। स्वभावतः काश्मीर की कहानी अभी चल रही है। लगभग इन दस महीनों में यह एक दास्तान बन गया है, और इस के साथ बहुत कुछ वेदना, रक्त पात और आँसू मिले हुए हैं। इस में बहादुरी के क्षण भी आए हैं। लेकिन भारत वासियों के लिए और भारत सरकार के लिए कई प्रकार से यह एक परीक्षा और कठिनाइयों का समय रहा है, फिर भी कोई ऐसा समय नहीं आया, जबकि हमने समझा हो कि हम गलती पर हैं, या हमने कोई ऐसा कदम उठाया है जिसके औचित्य का हम पूरा-पूरा समर्थन नहीं कर सकते। इसी विश्वास के साथ हम आगे बढ़ेंगे और क्या मैं कहूँ कि संयुक्त राष्ट्र कमीशन के साथ परामर्श में और काश्मीर संबंधी और मामलों में हमने शेख अब्दुल्ला की काश्मीर सरकार से निकट संपर्क रखा है और जो भी कदम हमने बढ़ाए हैं उनके बारे में सलाह ली है? यह स्वाभाविक था और वर्त्तमान परिस्थिति में अनिवार्य कि हमलोग आपस में एक दूसरे से सलाह लेते हुए आगे बढ़ते, इसी आधार पर हम आगे बढ़ेंगे, चाहे वह फौजी क्षेत्र में हो चाहे दूसरे क्षेत्र में, और मुझे पूरा विश्वास है कि यदि हम ठीक मार्ग पर रहे और तात्कालिक लाभ उठाने के लिये ही क्यों न हो, उससे डिगे नहीं, तो हमारी जीत होगी। कोई भी मुल्क जो अपने पक्ष को सरासर झूठ पर आधारित करता है, अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता।

हैदराबाद

यह हैदराबाद का प्रश्न

महोदय, अब मैं इस भवन से एक दूसरे ही विषय पर निवेदन करूँगा जो कि एक बिल्कुल भिन्न विषय है, लेकिन किसी देश के संगठित जीवन में चीजों को अलग-अलग करके देखना सचमुच कठिन है। इसलिये एक का असर दूसरी चीज पर पड़ता है। लेकिन वस्तुतः जो कुछ मैं हैदराबाद के संबंध में कहने जा रहा हूं, वह उससे जुदा है जो मैंने काश्मीर के विषय में कहा है, और उसका उससे कोई संबंध भी नहीं है।

एक साल से अधिक हो गया कि हम हैदराबाद की सरकार से शांतिपूर्ण और संतोषजनक समझौते के लिये तत्परता से कोशिश कर रहे हैं। पिछले नवम्बर म हमारी कोशिशों का नतीजा यह हुआ कि हम एक साल के लिये तात्कालिक समझौता कर सके। हमने यह आशा की थी कि जल्द ही इसके बाद एक अंतिम और संतोषजनक समझौता हो सकेगा। हमारे विचार में इस समझौते का आधार रियासत में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की स्थापना और भारत में उसका सम्मिलित होना ही हो सकता था। इस प्रवेश का अर्थ यह होता कि रियासत भारतीय संघ की एक स्वायत्त इकाई बन जाती और दूसरी स्वायत्त इकाइयों के अधिकार और हक उसे प्राप्त होते। वास्तव में, हमने हैदराबाद से जो प्रस्ताव किया वह भारतीय संघ की बड़ी बिरादरी में उसका एक सम्मानित साझीदार बनने का प्रस्ताव है।

हैदराबाद में या किसी भी दूसरी रियासत या प्रान्त में उत्तरदायित्व पूर्ण लोकप्रिय शासन हमारा ध्येय रहा है, और हमें यह बताने में बड़ी प्रसन्नता है कि हैदराबाद रियासत को छोड़कर सारे भारत में यह पूर्ति के बहुत निकट पहुँच गया है। हमारे लिये यह कल्पना से बाहर की बात थी कि आधुनिक युग में, और नई स्वतंत्रता से अनुप्राणित भारत के बीचोबीच एक ऐसा प्रदेश हो जिसे यह स्वतंत्रता प्राप्त न हो और जहां अनिश्चित काल के लिये निरंकुश शासन रह सके।

जहां तक भारत में प्रवेश होने का प्रश्न था, यह बात भी स्पष्ट थी कि हैदराबाद जैसे प्रदेश को, जो चारों ओर से भारतीय संघ से घिरा हुआ हो और शेष दुनिया के साथ जिसका प्रत्यक्ष संबंध न हो, निश्चय ही भारतीय संघ का अंग

संविधान परिषद् (व्यवस्थापिका), नई दिल्ली में ७ सितम्बर, १९४८ को दिया गया वक्तव्य।

होना चाहिये। ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से तो इसे एक अंग होना ही चाहिये था, लेकिन भौगोलिक और आर्थिक कारणों से तो यह और भी आवश्यक था। और उन कारणों की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी—विशेष व्यक्तियों या दलों की जो भी इच्छाएं हों। हैदराबाद और शेष भारत के बीच कोई भी दूसरा संबंध संदेहात्मक स्थिति को कायम रखने वाला होता और इसलिये संघर्ष का भय सदा उपस्थित रहता। केवल अपने को स्वतंत्र घोषित कर देने से कोई रियासत स्वतंत्र नहीं हो जाती। स्वतंत्रता का अर्थ दूसरे स्वतंत्र राज्यों से विशेष प्रकार का संबंध और उनके द्वारा इस स्थिति की मान्यता होता है। भारत इसे कभी स्वीकार नहीं कर सकता कि हैदराबाद का किसी दूसरी शक्ति से स्वतंत्र संबंध हों, क्योंकि इससे भारत की सुरक्षा संकट में पड़ती है। ऐतिहासिक दृष्टि से हैदराबाद कभी स्वतंत्र नहीं रहा है। व्यवहारतः, आज की परिस्थिति में, यह स्वतंत्र नहीं हो सकता।

इसके अतिरिक्त, उन सिद्धांतों के अनुसार, जिनकी कि हमने बार-बार घोषणा की है, हम इस बात पर राजी थे कि हैदराबाद का भविष्य वहां के जनमत के आधार पर निश्चित हो। शर्त यह थी कि जनमत स्वतंत्र वातावरण में प्राप्त किया जाय। जो आतंक की स्थिति आज हैदराबाद में फैली हुई है उसमें ऐसा संभव नहीं है।

समझौते के लिये हमारी बार-बार की गई कोशिशें, जो एक या दो अवसरों पर प्रायः सफल होती जान पड़ी थीं, दुर्भाग्यवश असफल रहीं। इसके कारण हमें स्पष्ट जान पड़े, हैदराबाद रियासत में कुछ शक्तियां काम कर रही थीं, जिन्होंने यह निश्चय कर रखा था कि भारतीय संघ से कोई समझौता न होने पाये। बिल्कुल गैर-जिम्मेदार लोगों के नेतृत्व में ये शक्तियां अधिकाधिक शक्ति प्राप्त करती रहीं और अब सरकार पर पूरा काबू पाये हुए हैं। रियासत के साधन हर तरह से युद्ध की तैयारी में लगाये जा रहे हैं। रियासत की सेना बढ़ा ली गई है और अनियमित सेना तेजी से बढ़ने दी गई है। हथियार और गोला-बारूद विदेशों से छिपाकर लाये गये हैं। यह क्रम, जिसमें कि कई विदेशी दुःसाहसी स्पष्टतः लगे हुए हैं, बराबर जारी है। भारत की स्थिति में कोई भी देश अपने बीचोबीच स्थित रियासत द्वारा की जाने वाली इन युद्ध की तैयारियों को सहन नहीं कर सकता। फिर भी वर्तमान भारत सरकार ने किसी समझौते की आशा से धैर्यपूर्वक बातचीत जारी रखी। एकमात्र दूसरा कदम जो उसने उठाया वह यह था कि जहां तक संभव हो हैदराबाद में युद्ध-सामग्री का बाहर से आना रुके।

हैदराबाद में जो निजी सेनाएं तैयार हुईं, खासकर रजाकारों की, वे रियासत

के भीतर और कभी कभी सरहद को पार करके भारत में भी अधिकाधिक क्रूर हो रही हैं। इसका हाल विस्तार से देने का मेरा विचार नहीं है इसलिये कि पूरा हाल कुछ तो उपप्रधान मंत्री द्वारा इस अधिवेशन में पूर्व प्रस्तुत हैदराबाद संबंधी सरकारी श्वेत-पत्र में और कुछ अन्य प्रकाशित पत्रों में मिल जायगा। हैदराबाद रियासत के भीतर, उन लोगों के विरुद्ध—चाहे वे मुसलमान हों चाहे गैर-मुसलमान, चाहे सरकारी कर्मचारी हों चाहे अन्य ऐसे कर्मचारी जो कि रजाकारों और उनके साथियों के विरुद्ध हैं—बढ़ते हुए आतंक और भीषणता ने, एक गंभीर परिस्थिति पैदा कर दी है, और इसकी प्रतिक्रिया संघ के सरहदी भागों और साधारणतः भारत में हुई है। इस समय हमारी तात्कालिक और सब से बड़ी चिन्ता हैदराबाद रियासत में फैलती हुई हिंसा और अराजकता की लहर के संबंध में है।

रजाकारों के कार्यों का पूरा हाल बयान करने में समय लगेगा। मैं केवल कुछ हाल की घटनाएं बताऊंगा और कुछ आंकड़े दूंगा। रियासत के भीतर एक गांव के निवासियों ने अपने उत्साही मुखिया के नेतृत्व में, इन डाकुओं से मुकाबला किया। गोला-बारूद खत्म हो जाने के कारण जब उनके लिये और मुकाबला करना असंभव हो गया, तब वे सब-के-सब तलवार के घाट उतार दिये गये, और गांव जला कर खाक कर दिया गया। बहादुर मुखिया का सिर काट डाला गया और उसे एक लट्ठे के सिरे पर लगाकर फिराया गया। एक दूसरे गांव में पुरुष, स्त्रियां और बच्चे सब एक जगह इकट्ठा किये गये और रजाकारों और निजाम की पुलिस द्वारा गोली से मार दिये गये।

गांववालों के एक बड़े दल पर, जो कि बैलगाड़ियों पर भारत की किसी सुरक्षित जगह में रक्षा पाने के लिये जा रहा था, बेरहमी से आक्रमण किया गया, पुरुष पीटे गये और स्त्रियां भगा ले जाई गईं।

एक रेलगाड़ी रोक ली गई, मुसाफिरों को लूट लिया गया और कई डिब्बे जला दिये गये। इस भवन को मालूम है कि हैदराबाद रियासत में स्थित हमारे इलाकों में प्रवेश करने वाले हमारे ही सैनिकों पर आक्रमण हुए हैं, और रजाकारों ने हमारे सरहदी गाँवों पर धावे किये हैं।

जो समाचार हमें कल मिले हैं, उनके अनुसार रजाकारों ने और नियमित हैदराबाद सेना की एक इकाई ने, जिसके साथ बख्तरबन्द मोटरें भी थीं, भारतीय इलाके में भारतीय सैनिकों से मुठभेड़ की। वे भगा दिये गये, एक बख्तरबन्द मोटर नष्ट कर दी गई और एक अफसर तथा ८५ और ओहदों के लोग, कैद कर लिये गये। यह घटना भारत के विरुद्ध बढ़ती अग्रसरता की और भी मिसाल है।

जब से यह उत्तेजक हिंसा पूर्ण लड़ाई आरंभ हुई, तब से अब तक प्राप्त सूचना के अनुसार, रियासत के भीतर ७० गांवों पर धावे हुए हैं और हमारे इलाके पर कोई डेढ़ सौ अतिक्रमण हुए हैं, सैकड़ों आदमी मारे गये हैं और बहुत सी स्त्रियों के साथ बलात्कार हुआ है या वे भगाई गई हैं, १२ रेलगाड़ियों पर हमले हुए हैं और एक करोड़ से ऊपर की जायदाद लूटी गई है। लाखों आदमी रियासत से भाग कर भारत के पड़ोसी प्रांतों में शरणार्थी हुए हैं।

यह सदन स्वीकार करेगा कि कोई भी सभ्य सरकार इस तरह के अत्याचारों को भारत के भौगोलिक अंतस्थल में ही बेधड़क जारी रहने नहीं दे सकती, क्योंकि यह न केवल हैदराबाद के शान्तिप्रिय निवासियों की सुरक्षा, इज्जत, जिन्दगी और जायदाद का मामला है, बल्कि भारत की व्यवस्था और आंतरिक शांति का भी है। हैदराबाद में हत्याकांड, अग्निकांड, बलात्कार और लूटमार होती रहे, और उनसे भारत में साम्प्रदायिकता की भावना को उत्तेजना न मिले, और संघ की शांति न भंग हो, ऐसा नहीं हो सकता। इस भवन को विचार करना चाहिये कि भारत में जो हमसे पहले हुकूमत थी, वह इस परिस्थिति में क्या करती। इससे बहुत कम उत्पात होने पर भी उसने जोरदार हस्तक्षेप किया होता। ब्रिटिश राज्य की सार्वभौम सत्ता के उठ जाने से हैदराबाद और उस शक्ति के, जिस पर कि व्यापक रूप से भारत की संरक्षा का भार है और निर्विवाद रूप से बना रहेगा, पारस्परिक सम्बन्ध या एक के दूसरे के प्रति उत्तरदायित्व नहीं बदल सकते। हमने धैर्य रखा है और बर्दाश्त दिखाई है, इस आशा से कि समझ आ जाएगी और दूसरे पक्ष को एक शांतिपूर्ण हल प्राप्त हो सकेगा। यह आशा व्यर्थ गई और न केवल रियासत के भीतर या उसकी सरहदों पर अशांति के लक्षण दिखायी देते हैं बल्कि भारत की शांति और जगह भी खतरे में है।

हमारी आलोचना इसलिये हुई है कि हमने जरूरत से ज्यादा धैर्य और सब्र दिखाया है। इस आलोचना का कुछ समर्थन हो सकता है, लेकिन हमने इस सिद्धांत पर कार्य करने का प्रयत्न किया है कि संघर्ष टालने और शांतिपूर्ण ढंग से समझौता करने के लिये जो प्रयत्न हो सकता है उससे विमुख न होना चाहिये। जब तक बिल्कुल मजबूरी न हो जाय तब तक इसके अतिरिक्त कोई भी कार्यक्रम उन आदर्शों और सिद्धांतों के प्रतिकूल होगा, जिनके प्रति विदेशी शासन से मुक्ति पाने के लिये अपने युद्ध के आरंभ से अन्त तक हमने बार-बार आस्था प्रकट की है। लेकिन क्रूर घटनाओं के आगे हम अपनी आंखें नहीं मूंद सकते, न उस कड़े उत्तरदायित्व को टाल सकते हैं जिसे कि ये घटनाएं हमारे ऊपर डालें। वर्तमान समय में, मैं दुहराना चाहूंगा, जो बात सब से पहले विचारणीय हो जाती है वह हैदराबाद में जीवन की सुरक्षा और इज्जत का प्रश्न है और यह कि उस रियासत

में जो बर्बर आतंक छाया हुआ है उसे कैसे रोका जाय। और प्रश्न बाद में उठाये जा सकते हैं, क्योंकि वास्तव में अन्य प्रश्नों को विचारने के लिये शांति और व्यवस्था परम आवश्यक हैं।

हैदराबाद सरकार ने, उस आतंक को दबाने के मामले में, जिसने कि वहां के शांतिप्रिय और कानून की हद में रहने वाले नागरिकों के जीवन को इतना अरक्षित बना दिया है कि वे बड़ी संख्या में भाग कर पड़ोसी प्रांतों और रियासतों में जा रहे हैं, अपनी अनिच्छा और असमर्थता दोनों ही दिखाई हैं। हम अनुभव करते हैं कि इस हालत में हैदराबाद में तब तक आंतरिक सुरक्षा स्थापित न होगी जब तक कि हम सिकंदराबाद में अपने सैनिकों को फिर से तैनात नहीं करते हैं—जैसा कि इस वर्ष के आरंभ तक, जब तक भारत ने उन्हें वहां से हटाया नहीं था, वे वहां थे। निजाम के एक हाल के पत्र के उत्तर में श्रीमान् गवर्नर जनरल ने उन्हें यह सुझाव दिया था, लेकिन आला हजरत ने यह उत्तर दिया कि इस प्रकार की कार्यवाही आवश्यक नहीं है, क्योंकि हैदराबाद की परिस्थिति बिल्कुल साधारण है। यह बात वास्तव में हर एक जाने हुए वाकये के खिलाफ पड़ती है और हमने अब निजाम से अंतिम बार कहा है कि वह रजाकारों को तुरंत छिन्न-भिन्न करें, और जैसा कि श्रीमान् गवर्नर जनरल ने सुझाव दिया था, सिकंदर बाद में उतनी संख्या में जितनी कि हैदराबाद में शांति स्थापित करने के लिये आवश्यक हो, हमारी सेना की वापसी के लिये सुगमता उत्पन्न करें। जब वह वहां स्थापित हो जायगी, तो लोगों में सुरक्षा की भावना उत्पन्न होगी और निजी फौजों के आतंक समाप्त हो जायंगे।

क्या मैं कुछ शब्द और कहूं? सब से पहले मैं इस भवन से यह कहना चाहूंगा और देश के सामने यह रखना चाहूंगा कि हमने हैदराबाद के प्रश्न को, जहां तक संभव हो सका, साम्प्रदायिकता के दृष्टिकोण से बिल्कुल हट कर देखने का प्रयत्न किया है, और मैं चाहूंगा कि देश भी इसे इसी असाम्प्रदायिक रूप से देखे। मैं जानता हूं जैसा कि मैंने अभी कहा है कि सांप्रदायिक भावनाएं उकसाई गई हैं। लेकिन हम सभी का यह कर्तव्य है, हम चाहे हम किसी धर्म या सम्प्रदाय के हों, कि इस प्रश्न को साम्प्रदायिकता के स्तर से ऊपर उठ कर, और मैं समझता हूं कि अधिक वास्तविक तथा बुनियादी दृष्टिकोण से देखें।

हम अपनी सेना सिकंदराबाद में हैदराबाद के सभी लोगों की सुरक्षा के लिये—चाहे वे हिन्दू हों, चाहे मुसलमान, या कोई और, भेजना चाहते हैं। अगर बाद में हैदराबाद में स्वतंत्रता स्थापित होती है तो वह सभी के लिये समान रूप से होगी, किसी एक वर्ग के लिये नहीं। इसलिये मैं इस बात पर जोर दूंगा, और चाहूंगा

कि जन-मत पर प्रभाव डालने वाली वे शक्तियां जो कि जनता पर सदा, विशेषकर कठिनाई और तनाव के समय, इतना प्रभाव डाल सकती हैं, इस असाम्प्रदायिक पहलू पर जोर दें। हमें भी पुलिस की कार्यवाही के रूप में जो कुछ भी करना पड़े, हमारे निश्चित और स्पष्ट आदेश होंगे कि यदि कोई पक्ष साम्प्रदायिक उपद्रव उठाये तो उससे बड़ी सख्ती से पेश आया जाय।

जैसा कि मैंने इस भवन को बताया है, भय से आतंकित होकर बहुत से लोग हैदराबाद से बाहर आये हैं। मैं नहीं कह सकता कि कितने लोग बाहर आये हैं, लेकिन मध्य प्रांत में इस समय भी दसियों हजार के पड़ाव पड़े हैं—संभवतः कई लाख आदमी पिछले दो महीनों में बाहर आये होंगे। अब, यदि मैं सलाह दूं—यद्यपि यह सलाह देना एक हद तक जिम्मेदारी उठाना है—तो यह सलाह दूंगा, और मैं इस सलाह देने की जिम्मेदारी भी लेने को तैयार हूं, कि लोग हैदराबाद से या किसी भाग से जहां वे हों, बाहर न आवें।

(एक माननीय सदस्य : और कत्ल हो जायं!)

किसी ने कहा कि कत्ल हो जायं। मैं अपने ही विचारों के अनुसार कह सकता हूं। अगर मैं वहां होऊं तो मैं बाहर न आऊं, चाहे जो हो—कत्ल हो या न हो। मैं समझता हूं कि जब कभी हमें एक गंभीर स्थिति का सामना करना पड़े, उससे भागने से बुरी दूसरी बात नहीं हो सकती, और विशेषकर मौजूदा हालत में, मैं ऐसा करने में कोई लाभ नहीं देखता। क्योंकि वह आदमी जो भागता है साधारणतः अपने को उस दूसरे के मुकाबले में ज्यादा खतरे में डालता है, जो कि अपने स्थान पर डटा रहता है। यह सही है कि मैं अपवाद स्वरूप दशाओं पर विचार नहीं कर रहा हूं और संभव है कि कहीं-कहीं असाधारण स्थिति हो जायगी। लेकिन जो कुछ मैं कह रहा हूं वह यह है कि संभव है कि देश में शीघ्र गंभीर घटनाएं घटने वाली हों, इसलिये हमारी सरकार ने इन बातों पर पूरा और गहरा विचार किया है। हमने इन पर आपस में ही नहीं बल्कि अपने सलाहकारों से परामर्श किया है। हमने अनेक संभावित परिणामों पर विचार किया है। हम हवा में कोई कार्रवाई नहीं कर सकते। इसलिये हमने ऐसा किया है। और यह करने के बाद हम कुछ नतीजों पर पहुंचे हैं, जो कि मैं आपके सामने रख रहा हूं। चाहे जैसा वक्त होता, मैं मुल्क को यही सलाह देता कि लोग शांत और अविचलित रहें। मैं घबड़ाने से और कठिन स्थिति से भागने से इन्कार करता हूं। इस समय खास तौर पर, मैं सभी लोगों से, अपनी पूरी सामर्थ्य से यह कहूंगा कि हमें शांति और स्थिरता बनाये रखनी चाहिये और जो भी स्थिति उपस्थित हो उसका शांति के साथ, बिना विचलित हुए और अनुशासनपूर्वक सामना करना चाहिये। साथ ही हमें उन बुनियादी सिद्धांतों और पाठों को, जो कि हमारे गुरु ने पढ़ाए हैं, स्मरण रखना चाहिये।

हम शांतिप्रिय लोग हैं

साथियो और दोस्तो, मैं आपसे हैदराबाद के विषय में कुछ कहना चाहता हूं। आपको मालूम ही है कि वहां पिछले पांच दिनों में तेजी के साथ क्या घटनाएँ घटी हैं। आप जानते हैं कि हैदराबाद में हमारी सरकार ने जो कार्यवाही की है, उससे उसका उद्देश्य पूरा हुआ है। रजाकारों को, जिन्होंने पिछले चन्द महीनों में इतनी शरारतें की हैं, गैर कानूनी करार दिया गया है, और उनके दल को तितर-बितर किया जा रहा है। अब हमारे सामने नई समस्याएं हैं और भारत तथा हैदराबाद के लोगों की भलाई का ध्यान रखते हुए हमें उनसे बुद्धिमानी के साथ निबटना होगा।

यह स्वाभाविक है कि लंबे विचार और परामर्श तथा दुःखद निर्णय के बाद हमने जो कार्यवाही की उसके शीघ्र ही समाप्त होने पर हमें प्रसन्नता है। जैसा कि मैंने बार-बार कहा है, हम लोग शांतिप्रिय हैं, युद्ध से नफरत करते हैं, और किसी के साथ सशस्त्र युद्ध में पड़ने की अंत तक इच्छा नहीं करते। फिर भी, परिस्थितियों ने, जिन्हें आप भली भांति जानते हैं, हमें हैदराबाद में यह कार्यवाही करने के लिये मजबूर किया। सौभाग्य से, यह कार्यवाही थोड़े वक्त की थी और शांति के मार्ग पर फिर लौट आने पर हमें संतोष हुआ है।

जिस उत्तम ढंग से हमारी सशस्त्र सेना के अफसरों और जवानों ने सच्चे सैनिकों की भांति, कौशल से, शीघ्रता और धैर्य से, और सभी मर्यादाओं का पालन करते हुए, यह काम पूरा किया है, उस पर हमें प्रसन्नता है। पिछले छः दिनों में जिस बात से मुझे सब से अधिक प्रसन्नता हुई है वह यह है कि हमारी जनता ने, वह मुस्लिम हो या गैरमुस्लिम, संयम और अनुशासन की मांग को पूरा किया है और एकता की कसौटी पर वह खरी उतरी है। यह एक खास बात है और ऐसी है जोकि भविष्य के लिये शुभसूचक है कि इस विशाल देश में कहीं भी कोई साम्प्रदायिक घटना नहीं घटी। मैं इसके लिये बहुत कृतज्ञ हूं। मैं हैदराबाद के लोगों को भी बधाई दूंगा, जिन्होंने कि परीक्षा के इन दिनों में शांति रक्खी है और शांति स्थापना में मदद दी है। बहुत से लोगों ने हमें आगाह किया था कि हम जोखिम और खतरे का सामना कर रहे हैं और साम्प्रदायिक दंगे

हैदराबाद के संबंध में नई दिल्ली से १८ सितम्बर, १९४८ को प्रसारित वार्ता।

हमारे देश को झुलसा देंगे। लेकिन हमारी जनता ने इन भविष्यवाणी के ठेकेदारों को गलत सिद्ध कर दिया है, और यह दिखा दिया है कि संकट का सामना करते समय वह उसका साहस, मर्यादा और शांति से सामना कर सकती हैं।

इसे आगे के लिये एक उदाहरण और एक प्रण बनाना चाहिये। अब से साम्प्रदायिक वैमनस्य की कोई बात चीत या संकेत न होना चाहिये। हमें झूठे सिद्धांत और अनुदार प्रेरणाओं को, जिन्होंने इस वैमनस्य को जन्म दिया है, दफन कर देना चाहिये, और उस संयुक्त भारत का निर्माण करना चाहिये, जिसके लिये हमने बीते दिनों में परिश्रम किया है, और जिसमें कि हर भारतीय को बराबर अधिकार और अवसर मिलेंगे, वह चाहे जिस धर्म का हो।

हमें आज खुशी है, और ठीक ही है, लेकिन हमें यह याद रखना चाहिये कि एक बड़ा राष्ट्र और एक बड़ी जाति, चाहे वह मुसीबत में हो चाहे कामयाबी की दशा में, अपना संतुलन नहीं खो बैठती। हमने बहुत सी मुसीबतों का सामना किया है और उन पर काबू पाया है। हमें इस सफलता का भी बिना मतवाला बने सामना करना चाहिये।

हमें अपने वास्तविक लाभों को इस अवसर पर स्थायी बनाना चाहिये– एकता सद्भावना और पारस्परिक सहनशीलता सम्बन्धी सभी लाभों को। मैं इस अवसर पर पाकिस्तान के लोगों से, जो कल तक हमारे देशवासी थे और अब भी हमा उतनेही निकट हैं, यह अनुरोध करूंगा कि अपना भय और संदेह त्याग कर हमारे साथ मिलकर शांति के कार्यों में लगें।

हैदराबाद के लोगों को, मुसलमानों और गैर मुसलमानों दोनों ही को, मैं अपना अभिवादन भेजना चाहूंगा। यह हमारे लिये एक रंज की बात रही कि इस देश के निवासियों के बीच सशस्त्र संघर्ष का अवसर आया। प्रसन्नता की बात है, कि वह मौका बीत गया। हैदराबाद के शासक-गुट ने यह बुरा रास्ता पकड़ा था जिससे कि यह दुखद संघर्ष उपस्थित हुआ। मुझे प्रसन्नता है कि आला हजरत निजाम ने यह अनुभव किया कि उन्होंने गलत काम किया था, और वह बहकाये गये, और अब उन्होंने कदम पलटे हैं। इतनी देर बाद भी, ठीक कार्य करने के लिये, वह बधाई के पात्र हैं। अगर यही ठीक कार्य कुछ पहले हुआ होता तो हम बहुत कुछ मुसीबत और उलझनों से बच जाते।

लेकिन बीती हुई बात के संबंध में अब मैं कुछ नहीं कहना चाहता और मैं नहीं चाहता कि अब कोई आगे अपने मन में दुर्भावना को बनाये रहे। हमने स्पष्ट

रूप से कह दिया है कि हैदराबाद का भविष्य उसकी जनता की इच्छा के अनुसार निर्धारित होगा। हम इस घोषणा पर दृढ़ रहेंगे। वह भविष्य, मुझे विश्वास है, भारत से निकटतम संबंध का होगा। इतिहास, भूगोल और सांस्कृतिक परम्पराएं इस बात की साक्षी होती हैं।

अभी हमारे सैनिक कमाण्डर हैदराबाद का प्रबंध करेंगे , क्योंकि साधारण स्थिति स्थापित करने के लिये बहुत कुछ कार्य करना शेष है। हमने उन्हें निर्देश दे रक्खा है कि रियासत के लोगों के साधारण जीवन में, क्या शहर में क्या गांव में, जहां तक हो कम हस्तक्षेप किया जाय, और उसे पूर्ववत् चलाना चाहिये।

जैसे ही यह तात्कालिक कार्य पूरा होता है, दूसरे प्रबंध किये जायंगे, और फिर एक विधान परिषद् के चुनाव का प्रबंध होगा जो कि हैदराबाद के वैधानिक संगठन का निश्चय करेगी।

मैं फिर कहूँगा कि हम हैदराबाद को अपने से भिन्न या गैर नहीं समझते, जैसा कि पहले भी नहीं समझा है। उसके निवासी, चाहे हिन्दू हों चाहे मुसलमान, हमारे भाई-बन्द हैं और भारत की महान विरासत में हमारी तरह हिस्सेदार हैं। जय हिन्द!

शिक्षा

विश्वविद्यालयों को बहुत कुछ सिखाना है

बहुत दिनों बाद मैं इलाहाबाद शहर में जो मेरा घर है और जिसके लिए मैं प्रायः अजनबी हो गया हूँ, आया हूँ। पिछले पन्द्रह महीनों में मैं नई दिल्ली में रहा हूँ, जो कि पुराने दिल्ली शहर से लगी हुई है। यह दो नगर हम पर क्या प्रकट करते हैं, हमारे मन में कैसे चित्र और विचार उत्पन्न करते हैं ? जब मैं उनके विषय में सोचता हूँ, तब भारत के इतिहास की लम्बी अदृश्य परम्परा मेरे सामने फैल जाती है; यह राजाओं और बादशाहों का सिलसिला उतना नहीं होता जितना कि राष्ट्र के आन्तरिक जीवन, विविध क्षेत्रों में उसकी सांस्कृतिक कृतियों, उसके आत्मिक प्रयासों और विचार तथा कार्य के क्षेत्र में उसकी यात्रा के विषय में होता है। एक राष्ट्र का जीवन, विशेषकर भारत जैसे राष्ट्र का जीवन मुख्यतया गांवों में बीतता है। फिर भी यह शहर ही हैं जो कि युग की सर्वोच्च सांस्कृतिक सिद्धि का, जैसा कि वह कभी-कभी मनुष्य जीवन के नागवार पहलुओं का भी, प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए ये शहर मुझे भारत के सांस्कृतिक विकास की, उस भीतरी शक्ति और संतुलन की, जो कि युगों की सभ्यता और संस्कृति के परिणाम हैं, याद दिलाते हैं। हमें भारत में अपने इस उत्तराधिकार का बड़ा गर्व रहा है, और यह ठीक ही है। लेकिन फिर भी आज हम कहां खड़े हैं ?

यह अच्छा ही है कि हम अपने-आपसे यह प्रश्न इलाहाबाद के इस प्राचीन नगर में और इस विद्यापीठ में करते हैं। विश्वविद्यालयों को आधुनिक संसार में बहुत कुछ सिखाना है और उनके कार्य का क्षेत्र बराबर बढ़ता जाता है। मैं स्वयं विज्ञान का भक्त हूँ, और मैं विश्वास करता हूँ कि संसार की रक्षा हुई तो अन्ततः विज्ञान के तरीकों और उसके मार्ग से ही होगी। लेकिन विद्या के जिस भी मार्ग हम अनुसरण करें, और वह हमें चाहे जितना उपयोगी जान पड़े, फिर भी यदि एक विशेष आधार और बुनियाद के बिना विद्या का भवन निर्माण किया जाय तो वह खिसकते हुए बालू पर बना हुआ होगा। विश्वविद्यालयों का यह काम है कि इस मूल आधार और बुनियाद को, और विचार और कार्य के उस मापदंड को समझें और उनपर जोर दें। विशेष-कर आज बहुत तेज़ी से बदलते हुए इस ज़माने में, जब कि पुराने मूल्य हम से छूट

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के विशेष कन्वोकेशन पर १३ दिसम्बर, १९४७ को दिया गया भाषण।

गए हैं और हमने नये मूल्यों को अपना लिया है, यह जरूरी हो गया है। हमें स्वतंत्रता मिली, वह स्वतंत्रता जिसे हम बहुत समय से खोज रहे थे, और यह हमें कम-से-कम हिंसा द्वारा मिली। लेकिन उसके तुरन्त बाद ही हमें खून और आंसू के समुद्र को पार करना पड़ा। खून और आँसू से भी बुरी, उसके साथ आने वाली लज्जाजनक बातें थीं। उस समय हमारे मूल्य और आदर्श, हमारी पुरानी संस्कृति, हमारी मानवता और अध्यात्म और वह सब कुछ जिसका कि बीते युग में भारत प्रतीक रहा है, कहाँ थे? यकायक इस भूमि पर अन्धकार उतर आया और लोगों पर पागलपन छा गया। भय और घृणा ने हमारे मनों को अन्धा कर दिया और वे सारे संयम, जो हमें सभ्यता सिखाती है, बह गए। दहशत पर दहशत टूटी और मनुष्यों की निर्दय बर्बरता पर हम अचानक सन्नाटे में आ गए। जान पड़ा कि सभी प्रकाश बुझ गए हैं; सब नहीं, क्योंकि कुछ अब भी इस गर्जते हुए तूफ़ान में टिमटिमाते रहे। हमने मरों और मरते हुओं के लिए रंज किया, और उन लोगों के लिए जिनकी तकलीफ मौत से बढ़ कर थी। इससे भी ज्यादा, हमने भारत माता के लिए रंज किया जो सबकी माँ है, और जिसकी आज़ादी के लिए हमने इतने वर्षों से परिश्रम किया है।

जान पड़ा कि प्रकाश बुझ गए हैं। लेकिन एक ज्योतिर्मय शिखा जलती रही और अपना प्रकाश फैले हुए अन्धकार पर डालती रही। और उस विशुद्ध शिखा को देख कर हम में शक्ति और आशा लौटी और हमने अनुभव किया कि जो भी क्षणिक दुर्घटना हमारे लोगों पर आ पड़े, भारत की आत्मा, शक्तिशाली और अकलुष है, वर्तमान कोलाहल से ऊपर उठी हुई है, और प्रतिदिन की तुच्छ आकस्मिक बातों की चिन्ता नहीं करती। आप लोगों में से कितने इस बात का अनुभव करते हैं कि इन महीनों में भारत के लिए महात्मा गान्धी की उपस्थिति का क्या महत्त्व रहा है? हम सभी भारत के प्रति और स्वतंत्रता के लिए पिछली आधी सदी या उससे अधिक समय की उनकी महान सेवाओं को जानते है। लेकिन कोई भी सेवा उतनी महान नहीं हो सकती, जितनी कि उन्होंने पिछले चार महीनों में की हैं, जब कि एक मिटती पिघलती दुनिया के बीच वह उद्देश्य की चट्टान और सत्य के प्रकाश स्तम्भ की भाँति बने रहे हैं और उनका दृढ़ मन्द स्वर जनता के कोलाहल से ऊपर उठकर, उचित पुरुषार्थ का मार्ग दिखाता रहा है।

और इस उज्वल शिखा के कारण हम भारत और उसके लोगों में अपना विश्वास नहीं खो सके। फिर भी जो अन्धकार छाया हुआ था, वह स्वयं एक आशंका की बात थी। जब कि स्वतंत्रता का सूर्य उदित हो गया हो, तब हम अन्धकार की स्थिति में क्यों लौटें? हम सब के लिए और विशेष कर उन नवयुवकों और नवयुवतियों के लिए जो कि विश्वविद्यालयों में पढ़ रही हैं, यह आवश्यक है कि ठहर कर इन बुनियादी बातों पर एक क्षण के लिए विचार करें, क्योंकि भारत के भविष्य का निर्माण वर्तमानकाल

नागपुर विश्वविद्यालय में १ जनवरी १९५० को दीक्षान्त समारोह के अवसर पर भाषण देते हुए

में हो रहा है, और भविष्य वैसा ही होगा जैसा कि उसे करोड़ों नवयुवक और नवयुवतियां बनाना चाहेंगी। आज वातावरण में संकीर्णता, असहिष्णुता और अचेतनता है, साथ ही सजगता की कमी है, जिससे मैं ज़रा भयभीत होता हूँ। हम अभी एक विश्वव्यापी महायुद्ध से गुज़रे हैं। वह युद्ध शान्ति और स्वतंत्रता नहीं लाया, फिर भी उससे हमें बहुत से सबक सीखने चाहिए। इस युद्ध के द्वारा फ़ासिस्ट और नात्सी कहलाने वाले मतों का पतन हुआ, ये दोनों ही मत संकीर्ण और उद्धत थे, और घृणा तथा हिंसा पर आधारित थे। मैंने उन देशों में, जहां ये उत्पन्न हुए और अन्यत्र भी इनका विकास देखा। उनके कारण वहां के लोगों को कुछ काल के लिए प्रतिष्ठा मिली, लेकिन उन्होंने आत्मा का हनन किया, और उन्होंने सभी मूल्यों और विचार तथा आचरण के मापदंडों को नष्ट कर दिया। अन्त में उन्होंने उन राष्ट्रों का ही सत्यानाश कर दिया जिन्हें कि उन्होंने उठाना चाहा था।

मैं उसी से मिलती-जुलती कुछ चीज आज भारत में पनपते देखता हूँ। यह कभी राष्ट्रवाद के नाम पर, कभी धर्म और संस्कृति के नाम पर अपने को प्रकट करती है, लेकिन यह असल में राष्ट्रवाद, सच्ची नैतिकता और सच्ची संस्कृति की विरोधी है। यदि इसमें कोई संदेह था, तो पिछले कुछ महीनों ने हमें वास्तविक चित्र दिखा दिया है। कुछ सालों से हमें घृणा, हिंसा और जनता के एक वर्ग की संकीर्ण साम्प्रदायिकता की नीति का विरोध करना पड़ा है। अब वह वर्ग भारत के कुछ भागों को अलग करके एक राज्य बनाने में सफल हुआ है। मुस्लिम साम्प्रदायिकता, भारतीय स्वतंत्रता के लिए इतनी बाधा और खतरा रही है, अब वह अपने को एक राष्ट्र कहती है। यह खास भारत में आज एक जीवित शक्ति नहीं रह गयी, क्योंकि यह अब दूसरे हिस्सों में केन्द्रित है। लेकिन इसका परिणाम समाज के और वर्गों के लोगों को गिरानेवाला हुआ है, जो उसकी नकल करना चाहते हैं बल्कि उससे आगे बढ़ जाना चाहते हैं। हमें भारत में अब इस प्रतिक्रिया का मुकाबला करना है, क्योंकि साम्प्रदायिक राष्ट्र के पक्ष में स्वर उठाया जा रहा है, शब्द जो भी व्यवहार में लाए जाते हों। और न केवल एक साम्प्रदायिक राष्ट्र की मांग की जाती है, बल्कि राजनैतिक और सांस्कृतिक कार्यों के प्रत्येक क्षेत्र में वही संकीर्ण और वही गला घोंटने वाली मांग की जा रही है।

हम लौट कर भारत के लम्बे इतिहास को देखें तो हम देखते हैं कि हमारे पूर्वजों ने जब कभी संसार को स्पष्ट और भयहीन नेत्रों से देखा और अपने मन की खिड़कियों को आदान-प्रदान के लिए खुली रक्खा, तब उन्होंने अद्भुत उन्नति की। और बाद के कालों में, जब वह अपने दृष्टिकोण में संकीर्ण बने, और बाहरी प्रभावों से झिझके, भारत की राजनैतिक और सांस्कृतिक अधोगति हुई। हमारा उत्तराधिकार कितना गौरवशाली है, यद्यपि हमने उसका अकसर दुरुपयोग किया

है। सभी विपदाओं और मुसीबतों के बावजूद भारत एक जीवित राष्ट्र रहा है और है। निर्माणकारी और रचनात्मक उद्योगों के क्षेत्र में यह जीवनी-शक्ति एशियायी संसार के अनेक हिस्सों में और अन्यत्र फैली, और उसकी शानदार विजय हुई। यह विजय तलवार की विजय उतनी नहीं थी जितनी कि मन और हृदय की थी, जो आरोग्य प्रदान करती हैं और जो उस समय भी कायम रहती है जब कि तलवार के धनी लोग और उनके कारनामे भुला दिए जाते हैं। लेकिन यही जीवनी-शक्ति, अगर उसका उचित और रचनात्मक निर्देशन नहीं होता तो पलट कर हमारा विनाश कर सकती है, और हमें नीचे गिरा सकती है।

अपने जीवन के स्वल्प काल में भी हमने इन दो शक्तियों को भारत में और सारे संसार में अपना काम करते देखा है—निर्माण करने वाले और रचनात्मक उद्योग की शक्तियों को और विनाश की शक्तियों को। इन में से अन्त में किसकी विजय होगी? और हम किसके पक्ष में खड़े हैं? यह हम में से सब के लिए, और विशेषकर उनके लिए, जिनमें से राष्ट्र के नेता उत्पन्न होंगे, और जिन पर भविष्य का भार पड़ेगा, एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। हम अनिश्चित रहकर इस प्रश्न का सामना करने से हरगिज़ इंकार नहीं कर सकते। जब स्पष्ट विचार और प्रभाव उत्पन्न करने वाले कार्य की आवश्यकता हो उस समय हम अपने मन को घृणा और उद्वेग से उन्मत्त नहीं होने दे सकते।

किस प्रकार के भारत और किस प्रकार के संसार के लिए हम उद्योग कर रहे हैं? क्या घृणा और हिंसा और भय और साम्प्रदायिकता और संकीर्ण प्रान्तीयता हमारे भविष्य का निर्माण करेंगी? कदापि नहीं, यदि हममें और हमारे कथनों में कुछ भी सचाई है। यहाँ, इस इलाहाबाद नगर में, जो मुझे केवल अपने निकट सम्पर्कों के कारण ही नहीं, बल्कि भारत के इतिहास में अपना महत्व रखने के कारण भी प्रिय रहा है, मेरा बचपन और मेरी युवावस्था, भारत के भविष्य के स्वप्न देखने और उसकी कल्पना करने में बीती है। क्या उन स्वप्नों में कुछ वास्तविक तत्त्व भी रहा है, या वह केवल एक ज्वर-ग्रस्त मस्तिष्क के कल्पनाचित्र मात्र रहे हैं? उन स्वप्नों का कुछ थोड़ा हिस्सा सत्य उतरा है, लेकिन जिस रूप में मैंने कल्पना की थी उस रूप में नहीं, और अभी बहुत अधिक का सत्य होना शेष रह जाता है। जो कुछ हासिल हुआ है उस पर विजय का अनुभव तो क्या हो—हमारे आगे एक सूनापन है और हमारे चारों ओर जो कुछ है, वह वेदनामय है, और हमें करोड़ों नेत्रों के आंसू पोंछने हैं।

एक विश्वविद्यालय का अस्तित्व मानवता, सहिष्णुता, बुद्धि, प्रगति, विचारों के साहसपूर्ण अभियान और सत्य की खोज के लिए होता है। उसका अस्तित्व इसलिए

है कि मानव जाति और भी ऊंचे उद्देश्यों की सिद्धि के लिए आगे बढ़े। यदि विश्वविद्यालय अपने कर्तव्य का ठीक-ठीक पालन करें, तो राष्ट्र और जनता का कल्याण होता है। लेकिन यदि विद्या का मन्दिर ही संकीर्ण कट्टरता और क्षुद्र उद्देश्यों का घर बन जाता है, तो राष्ट्र कैसे उन्नति करेगा और जनता कैसे ऊँचे उठेगी ?

इसलिये हमारे विश्वविद्यालयों और शिक्षा संस्थाओं और उनके संचालकों पर एक महान उत्तरदायित्व है। उन्हें अपनी दीपशिखा को जलाये रहना चाहिये और सही मार्ग से विचलित न होना चाहिये, चाहे आवेग जनता को आंदोलित कर रहा हो और उनमें से बहुतों को—जिनका कर्तव्य दूसरों के लिये मिसालें पेश करना है—अंधा बना रहा हो। हम टेढ़ेपन से या इस आशा से कि इसका अच्छा नतीजा निकल सकता है, बुराई के साथ खेल करते हुए, अपने उद्देश्य पर न पहुंचेंगे। सही उद्देश्य की गलत तरीकों से कभी पूरी सिद्धि नहीं होती।

हमें अपने राष्ट्रीय ध्येय के संबंध में स्पष्ट हो जाना चाहिये। हमारा ध्येय एक शक्तिशाली, स्वतंत्र और जन-सत्तात्मक भारत के निर्माण का है, जहां प्रत्येक नागरिक को बराबर का स्थान प्राप्त हो, और विकास और सेवा के पूरे अवसर हों, जहां आजकल प्रचलित धन और हैसियत की विषमताएं न रह गई हों, जहां हमारी मार्मिक प्रेरणाएं रचनात्मक और सहकारितापूर्ण उद्योग की तरफ केंद्रित हों। ऐसे भारत में साम्प्रदायिकता, पार्थक्य, अलहदगी, अस्पृश्यता, कट्टरता और मनुष्य द्वारा मनुष्य से अनुचित लाभ उठाने के लिये कोई स्थान नहीं है, और यद्यपि धर्म के लिये स्वतंत्रता है फिर भी उसे राष्ट्र के जीवन के राजनैतिक और आर्थिक पहलुओं से हस्तक्षेप न करने दिया जायगा। यदि ऐसा है तो जहां तक हमार राजनैतिक जीवन का संबंध है,—यह सब हिन्दू और मुसलमान और ईसाई और सिख के टंटे दूर होने चाहिये और हमें एक संयुक्त लेकिन मिला-जुला राष्ट्र बनाना चाहिये जहां व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय दोनों प्रकार की स्वतंत्रताएं सुरक्षित हों।

हम लोग कठिन परीक्षाओं से गुजरे हैं। हम उन्हें पार कर सके हैं, लेकिन इसका भीषण मूल्य चुकाना पड़ा है और पीड़ित मस्तिष्कों और अवरुद्ध आत्माओं के रूप में बहुत समय तक इसके परिणाम हमारा पीछा करेंगे। हमारी परीक्षाएं समाप्त नहीं हुई। आइये हम अपने को इनके लिये स्वतंत्र और संयमी पुरुषों और स्त्रियों की भांति, हृदय और उद्देश्य की दृढ़ता के साथ तैयार करें, जिसमें कि हम सही मार्ग से न डिगें और न अपने आदर्शों और उद्देश्यों को भूलें। हमें घावों को भरने का काम आरंभ करना है और हमें निर्माण और रचना ही करनी हैं। भारत के विक्षत शरीर और आत्मा हमारा आवाहन कर रहे हैं कि हम अपने को इस महान कार्य के लिये समर्पित करें। हम इस कार्य और भारत के योग्य सिद्ध हों, यह मेरी कामना है।

शिक्षा मानव-मन की मुक्ति के लिये है

मैं अलीगढ़ और इस विश्वविद्यालय में बहुत अरसे के बाद फिर आया हूँ। हम लोगों के बीच न केवल समय का अंतर रहा है, बल्कि भाव और दृष्टिकोण का भी। मैं नहीं जानता कि आज आप और वस्तुतः हममें से बहुत से लोग कहां खड़े हैं, क्योंकि हम लोग विक्षोभों और हृदयविदारक अवस्थाओं से गुजरे हैं, जिन्होंने निःसंदेह हममें से बहुतों में शंकाएँ उत्पन्न की हैं और हमारा मनोभंग हुआ है। वर्तमान अनिश्चितताओं से पूर्ण है, भविष्य तो और भी ढँका हुआ है और उसको भेद कर देख सकना कठिन है। फिर भी हमें वर्तमान का सामना करना है और भविष्य के निर्माण का उद्योग करना है। हमें—हममें से हर एक को—यह देखना है कि हम कहाँ खड़े हैं और किस पक्ष को लेकर खड़े हैं। अगर भविष्य में विश्वास के रूप में एक दृढ़ लंगर हमारे पास नहीं तो वर्तमान में हम भटक जायँगे, और स्वयं जीवन के सम्मुख कोई प्रयत्न करने योग्य ध्येय न रह जायगा।

मैंने आपके वाइस चांसलर का आमंत्रण बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार किया है, क्योंकि मैं आप सबसे मिलना चाहता था और आपके मन की थोड़ी-बहुत थाह लेना चाहता था, और आपको अपने मन की एक झलक देना चाहता था। हमें एक दूसरे को समझना है, और अगर हम हर एक बात के बारे में सहमत नहीं हो सकते तो कम-से-कम हमें अलग-अलग रायें रखने के विषय में सहमत होना है और यह जानना है कि हम किन बातों में सहमत हैं और किन बातों में हमारा मतभेद है।

भारत के हर एक संवेदनशील आदमी के लिये पिछले छः मास दुःख और वेदना के रहे हैं, और जो इन सब से बुरी बात है—निराशा के रहे हैं। जो लोग अवस्था में बड़े और अनुभवी हैं, उनके लिये यह स्थिति काफी बुरी रही है, लेकिन मुझे कभी-कभी कुतूहल हुआ है उन नवयुवकों पर, जिन्होंने अपने जीवन की देहली पर ही घोर संकट और दुर्घटना का प्रत्यक्ष अनुभव किया है, इन सब का क्या असर हुआ है। इसमें संदेह नहीं कि वे इसे पार कर ले जायँगे, क्योंकि युवा-

---

अलीगढ़ (उ० प्र०) मे मुस्लिम युनिवर्सिटी के वार्षिक समावर्तन के अवसर पर २४ जनवरी, १९४९ को दिया गया भाषण।

वस्था लचीली होती है; लेकिन यह भी हो सकता है कि वे अपने जीवनों के अंतिम दिनों तक इसका निशान लिये रहें। हममें सही विचार और काम करने की काफी बुद्धि और शक्ति हो तो शायद अब भी हम उस निशान को मिटाने में सफल हो जायँ।

जहाँ तक मेरी बात है, मैं कहना चाहता हूँ कि बावजूद सब बातों के मुझे भारत के भविष्य में दृढ़ विश्वास है। वास्तव में अगर मुझमें यह न होता, तो मेरे लिये कारगर ढंग से काम करना असंभव हो जाता। यद्यपि हाल की घटनाओं ने मेरे बहुत से पुराने स्वप्न चूर चूर कर दिये हैं, फिर भी बुनियादी ध्येय बना हुआ है और उसे बदलने का मैं कोई कारण नहीं देखता। वह ध्येय ऊँचे आदर्शों और उन्नत प्रयत्नों वाले एक स्वतंत्र भारत का निर्माण करना है जहाँ कि अनेक और विविध प्रकार की विचार और संस्कृति की धाराएं आपस में मिलकर उसके निवासियों की उन्नति और उत्कर्ष की एक बड़ी नदी तैयार करें।

मुझे भारत पर गर्व है, न केवल उसकी प्राचीन शानदार विरासत के कारण बल्कि इस कारण भी कि उसमें, अपने मन और आत्मा के द्वारों और खिड़कियों को दूर देशों से आने वाली ताजी और शक्तिदायिनी हवाओं के प्रति खुला रखने की आश्चर्यजनक सामर्थ्य है। भारत की शक्ति दोहरी रही है : एक तो उसकी अपनी आंतरिक संस्कृति है जो कि युगों में पुष्पित हुई है, दूसरे, और स्रोतों से शिक्षा प्राप्त करके उसे अपना बनाने की सामर्थ्य है। उसकी अपनी धारा इतनी प्रबल है कि वह अन्य धाराओं में डूब नहीं सकती, और उसमें इतनी बुद्धिमत्ता है कि वह अपने को उनसे अलग अलग नहीं होने देती, इसलिये भारत के सच्चे इतिहास में निरंतर समन्वय दिखाई देता है, और जो अनेक राजनैतिक परिवर्तन हुए हैं, उन्होंने इस विभिन्न परन्तु मूलतः संयुक्त संस्कृति के विकास पर विशेष असर नहीं डाला है।

मैंने कहा है कि मुझे भारत की विरासत पर गर्व है, और अपने पूर्वजों पर जिन्होंने भारत को बौद्धिक और सांस्कृतिक प्रधानता दिलाई। आप इस विषय में क्या अनुभव करते हैं? क्या आप यह अनुभव करते हैं कि आप भी इसमें साझीदार हैं और इसके उत्तराधिकारी हैं और आपको भी इसी चीज का गर्व है जो समान रूप से आपकी और हमारी है? या आप अपने को गैर अनुभव करते हैं, और इसे बिना समझे और बिना उस पुलक का अनुभव किये हुए, जो उस अनुभव से उत्पन्न होती है कि हम एक महान खजाने के ट्रस्टी और उत्तराधिकारी हैं, उससे गुजर जाते हैं? मैं यह प्रश्न इसलिये पूछता हूँ कि हाल के वर्षों में बहुत-सी शक्तियाँ काम करती रही हैं, जिन्होंने लोगों के मन को अनुचित मार्गों में

खींचा है और इतिहास के क्रम को उलटने का प्रयत्न किया है। आप मुसलमान हैं और मैं एक हिन्दू हूं। हम भिन्न भिन्न धर्मों का अनुसरण करें हां तक कि किसी धर्म का अनुसरण न करें, लेकिन इससे उस सांस्कृतिक विरासत में, जो आपकी भी है और मेरी भी, कोई अन्तर नहीं आता। अतीत हमें एक साथ पकड़े हुए है: फिर वर्तमान या भविष्य हमारे मन को क्यों विलग करे?

राजनैतिक परिवर्तन कुछ नतीजे उत्पन्न करते हैं, लेकिन मुख्य परिवर्तन तो वे हैं जो राष्ट्र की आत्मा और दृष्टिकोण में होते हैं। जिस बात ने मुझे इन पिछले महीनों और वर्षों में बहुत चिन्तित किया है, वह राजनैतिक परिवर्तन नहीं हैं, बल्कि क्रमशः आत्मा में होने वाले उस परिवर्तन की अनुभूति है, जिसने कि हमारे बीच बहुत बड़ी रुकावटें खड़ी कर दी हैं। भारत की आत्मा को बदलने का प्रयत्न एक ऐतिहासिक क्रम को, जिससे हम युगों से गुजर रहे थे, उलटना है, और चूंकि हमने इतिहास की धारा को पलटने की कोशिश की, इसलिये हम पर आफतों का पहाड़ टूटा। हम सहज में भूगोल या उन शक्तिशाली प्रवृत्तियों से, जो इतिहास का निर्माण करती हैं, खिलवाड़ नहीं कर सकते। और यदि हम घृणा और हिंसा को अपने कार्यों का आधार बनाते हैं, तो यह उससे भी कहीं बुरी बात है।

मैं समझता हूँ पाकिस्तान का जन्म कुछ अस्वाभाविक ढंग से हुआ है। फिर भी वह बहुत से लोगों की प्रेरणा का प्रतिनिधित्व करता है। मेरा विश्वास है कि विकास का यह एक उलटा क्रम है, लेकिन हमने इसे ईमानदारी से स्वीकार किया है। मैं चाहता हूँ कि आप हमारे वर्तमान विचारों को साफ-साफ समझ लें। हम पर यह आरोप लगाया गया है कि हम पाकिस्तान को कुचलना और उसका गला घोंटना चाहते हैं, और उसे भारत से मिलने के लिये मजबूर करना चाहते हैं। यह आरोप, दूसरे अनेक आरोपों की तरह भय और हमारे रुख की नितान्त नासमझी पर आधारित है। मेरा विश्वास है कि विभिन्न का णों से यह अनिवार्य है कि भारत और पाकिस्तान एक दूसरे के करीब आवें, नहीं तो उनमें आपस में संघर्ष उत्पन्न होगा। कोई मध्यम मार्ग नहीं है, इसलिये कि हम एक दूसरे को बहुत समय से जानने के कारण एक दूसरे के प्रति उदासीन पड़ोसी की तरह नहीं रह सकते। वास्तव में मुझे विश्वास तो यह है कि संसार के वर्तमान प्रसंग में भारत के और बहुत से पड़ोसी देशों से निकट संपर्क बढ़ेंगे। लेकिन इन सब का यह अर्थ नहीं कि पाकिस्तान को मजबूर करने या उसका गला घोंटने का कोई विचार है। अगर हम प.किस्तान को तोड़ना चाहते होते, तो हम विभाजन को स्वीकार ही क्यों करते? उस समय इसका रोकना ज्यादा आसान था, बनिस्बत अब के, जब कि इतना सब कुछ हो चुका है। इतिहास में लौटने का सवाल नहीं होता। वास्तव में यह भारत की भलाई की ही बात होगी कि पाकिस्तान एक सुरक्षित और समृद्ध राष्ट्र

बने, और हम उससे नजदीकी दोस्ती बढ़ा सकें। यदि आज किसी प्रकार भारत और पाकिस्तान के पुर्नमिलन का प्रस्ताव मुझ से किया जाय तो मैं स्पष्ट कारणों से इसे अस्वीकार कर दूंगा। मै पाकिस्तान की महान समस्याओं का बोझ नहीं उठाना चाहता। हमारी अपनी ही समस्याएं क्या कम हैं? निकट का कोई भी संपर्क, साधारण क्रम में और मित्रता की भावना द्वारा ही उत्पन्न हो सकता है, जिससे कि पाकिस्तान एक राज्य के रूप में समाप्त नहीं होता बल्कि बराबरी का साझीदार बनाकर ऐसे विशाल संघ का, जिसमें और देश भी सम्मिलित हों, एक अंग बनता है।

मैंने पाकिस्तान के विषय में इसलिये कहा है कि यह विषय आप लोगों के मन में होगा और आप उसके प्रति हमारा रुख जानना चाहेंगे। आपके मन इस समय कदाचित अनिश्चित अवस्था में हों, और आप शायद यह न जानते होंगे कि किधर देखें और क्या करें। हममें से हर एक को कुछ विचारों के प्रति बुनियादी निष्ठा के विषय में स्पष्ट होना चाहिये। क्या हमारा विश्वास एक ऐसे राष्ट्रीय शासन में है, जिसके अन्तर्गत सभी धर्म और सभी प्रकार के मत हों और जो मूल में एक असाम्प्रदायिक राष्ट्र हो, या हमारा विश्वास एक धार्मिक या धर्म-सत्तात्मक राष्ट्र में है जो कि दूसरे धर्म वालों को बिरादरी से बाहर समझता है? यह कुछ बेतुका-सा सवाल है, क्योंकि धार्मिक या धर्म-सत्तामक राष्ट्र का विचार संसार ने सदियों पहले त्याग दिया था, और आधुनिक मनुष्य के मस्तिष्क में उसके लिये कोई जगह नहीं। फिर भी, भारत में आज यह प्रश्न करना पड़ता है, क्योंकि हममें से बहुतों ने कूद कर एक पुराने युग में पहुँच जाने की कोशिश की है। हमारे व्यक्तिगत उत्तर जो भी हों, हमें संदेह नहीं कि उन विचारों पर लौटना जिन्हें कि दुनिया पीछे छोड़ चुकी है, और जो आधुनिक विचारों से कोई भी मेल नहीं रखते, संभव नहीं। जहाँ तक भारत का संबंध है मैं कुछ निश्चय के साथ कह सकता हूँ। हम उस असाम्प्रदायिक और राष्ट्रीय लीक पर चलेंगे जो अन्तर्राष्ट्रीयता अभिमुखी महान प्रवृत्तियों के अनुकूल पड़ती है। इस समय विचारों में जो भी उलझाव हों, भविष्य में भारत अतीत की तरह ऐसा देश होगा जिसमें कि बहुत से समान रूप से प्रतिष्ठित धर्मों का अस्तित्व हो, लेकिन जिसका राष्ट्रीय दृष्टिकोण एक हो, और मैं आशा करता हूँ कि यह राष्ट्रीयता संकीर्ण प्रकार की न होगी, जो कि अपने ही आवरण के भीतर रहना चाहती है, बल्कि एक सहिष्णु और रचनात्मक राष्ट्रीयता होगी, जो अपनी और अपनी जनता की प्रतिभा में विश्वास रखते हुए एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की स्थापना में पूरा भाग लेगी। हमारा एकमात्र अंतिम उद्देश्य जो हो सकता है वह 'एक संसार' का है। यह आज एक दूर की बात मालूम पड़ती है, जब कि दलों में विरोध चल रहे हैं, और तीसरे लोक व्यापी युद्ध की तैयारियाँ हो रही हैं, और उसके नारे बुलंद हो रहे हैं; फिर भी, इन नारों के बावजूद, यही उद्देश्य है, जिसे कि हम अपने सामने रख सकते हैं, क्योंकि संसार व्यापी सहयोग न हुआ तो संसार व्यापी तबाही होकर रहेगी।

हमें ऐसा उदार दृष्टिकोण बनाना चाहिये और दूसरों की संकीर्णताओं से प्रभावित होकर अपने भावों तथा दृष्टिकोण में संकीर्णता नहीं लानी चाहिये। जिसे साम्प्रदायिकता कहते हैं, उसे हम इस देश में काफी देख चुके, और हमने उसके कड़ए और जहरीले फल को भी चखा। समय आ गया है कि हम उसका अंत करें। जहाँ तक मेरा संबंध है मैं इस साम्प्रदायिक भावना को कहीं भी प्रवेश पाते नहीं देखना चाहता, और शिक्षा संस्थाओं में तो हरगिज नहीं। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के मन को मुक्त करना है न कि उसे बाँधे हुए चौखटों में बन्द करना है। मैं इस विश्वविद्यालय को मुस्लिम युनिवर्सिटी के नाम से पुकारा जाना पसन्द नहीं करता, उसी तरह जिस तरह कि मैं बनारस युनिवर्सिटी का हिन्दू युनिवर्सिटी कहलाना नहीं पसन्द करता। इसका यह अर्थ नहीं है कि कोई विश्वविद्यालय विशिष्ट सांस्कृतिक विषयों और अध्ययनों का प्रबंध न करे। मैं समझता हूँ कि यह उचित है कि यह विश्वविद्यालय इस्लामी विचार-धारा तथा संस्कृति के कुछ पहलुओं के अध्ययन पर खास जोर दे।

मैं चाहता हूँ कि आप इन समस्याओं पर विचार करें और स्वतंत्र निर्णय पर पहुँचें। इन निष्कर्षों को आप पर हठात लादा नहीं जा सकता, यह दूसरी बात है कि कुछ हद तक इनके संबंध में घटनाओं की ऐसी प्रेरणा हो कि उसकी उपेक्षा न हो सके। यह न समझिये कि आप यहाँ परदेसी के रूप में हैं, क्योंकि आप भारत के उसी प्रकार रक्त और मांस है जिस तरह कि और लोग हैं, और भारत को जो भी पेश करना है, उसमें भाग लेने का आपको पूरा हक है। लेकिन जो हकदार बनना चाहते हैं, उन्हें जिम्मेदारियों में भी हाथ बँटाना चाहिये। वास्तव में यदि कर्तव्य और जिम्मेदारियाँ स्वीकार कर ली जायँ तो अधिकार तो उन्हीं से पैदा होते हैं। स्वतंत्र भारत के स्वतंत्र नागरिकों की भाँति इस महान देश के निर्माण में और दूसरों की भाँति, जो भी जीत या हार हमारे सामने आवे, उसमें भाग लेने के लिये मैं आपको आमंत्रित करता हूँ। वर्तमान काल के दुःख और उसकी विपत्तियां दूर होंगी। भविष्य ही विचारणीय है, विशेषकर नवयुवकों के लिये, और वह भविष्य आपका आवाहन कर रहा है। इस पुकार का आप क्या उत्तर देंगे?

काम का समय

तत्रभवान्, श्री प्रधान मंत्री, कुलपति जी, विश्वविद्यालय के सदस्यो और मित्रो,

आज आपने बहुत से ओजस्वी भाषण सुने, और आपने बहुत से सम्मानित व्यक्तियों को देखा, और मैं नहीं जानता कि एक और भाषण सुनने पर विवश होना आप पर बोझ होगा या और कुछ। मुझे बताया गया कि कल आपने डा० राधाकृष्णन का एक अत्यन्त वाग्मितापूर्ण भाषण सुना। दुर्भाग्य से मैं मौजूद न था। और शायद बहुत से भाषणों का और बहुत सी भली सलाह का दिया जाना देनेवाले अथवा सुननेवाले के लिये बहुत अच्छा न हो। फिर भी, मुझे एक कार्य-विशेष और कर्तव्य को निभाना है और मैं अनुमान करता हूं कि आपका काम और कर्तव्य इस समय जो मैं कहूँ उसे सुनना है।

मुझे आपको याने इस विश्वविद्यालय को, उस सम्मान के लिये धन्यवाद देना है जो आपने मुझे दिया है। सच तो यह है कि अपने देशवासियों से मुझे इतना सम्मान और प्रेम मिला है कि उसमें थोड़ी सी वृद्धि होने से विशेष अन्तर नहीं आता। आपने मुझे इतना प्रेम प्रदान किया है कि मुझे संदेह है कि किसी दूसरे को कभी ऐसा सौभाग्य मिला हो। और जहाँ इस बात ने स्वभावतः मेरे हृदय में उत्साह उत्पन्न किया है और मुझ पर बहुत असर डाला है, इसने मुझे उलझन में भी डाला है, और कभी कभी कुछ भयभीत किया है। इसलिये यद्यपि लखनऊ युनिवर्सिटी द्वारा 'डाक्टर' की पदवी का दान—यदि मैं ऐसा कह सकूं—मुझ में कोई विशेष अन्तर नहीं ले आता, फिर भी लखनऊ से, इस विश्वविद्यालय से और मेरे प्रिय मित्र और साथी, श्री कुलपति से निमंत्रण पाना मेरे लिये विशेष प्रिय रहा है, और मैंने इसका आदर किया और मेरे दिल में गर्मी आई, और मैंने यहाँ आना चाहा, और मैं यहाँ आया। क्योंकि और और जगहों में और कामों में चाहे मैं जितना फँसा होऊँ, मैं उन दिनों को—शायद मेरे सब से क्रियाशील दिनों को—नहीं भूल सका हूं, जो मैंने लखनऊ या इलाहाबाद के आस पास या इस प्रांत के और हिस्सों में बिताये हैं। मेरे काम के, सरगर्मियों के, और मजबूरी की बेकारी के बहुत से दिन लखनऊ और इलाहाबाद में बीते हैं। इसलिये नई दिल्ली में रहते हुए उन पुरानी जगहों में, जिनका बीते दिनों से संबंध है, पहुँचने की घर पहुँचने जैसी आतुरता होती है। और मैं यहाँ कभी-कभी, बहुत कम आता हूँ और पुरानी सूरतें

लखनऊ विश्वविद्यालय के विशेष (रजत जयन्ती) दीक्षांत समारोह पर लखनऊ में, २८ जनवरी, १९४९ को दिया गया अभिभाषण।

देखता हूँ और फिर मुझे उन पुराने दिनों की याद आती है। और मैं देखता हूँ कि उन पुरानी सूरतों में कुछ तब्दीलियाँ आ गई हैं, और तब मुझे खयाल आता है कि मुझमें भी बहुत तब्दीली आई है, इसलिये यहाँ मित्रों के बीच आने में मुझे प्रसन्नता है, और मैं आपको, न केवल इस अतिरिक्त सम्मान के लिये जो आपने मुझे दिया है, धन्यवाद देता हूँ बल्कि इतने बीते हुए वर्षों में जो सब सम्मान और प्रेम मुझे आपने प्रदान किया है उसके लिये धन्यवाद देता हूँ।

मैं सोचता रहा हूँ कि मैं आप से किस विषय पर बोलूँ। मैं आपको क्या सलाह दे सकता हूँ? लेकिन आप इसे चाहे सलाह समझें या और कुछ, मैं आपसे उस बात पर कुछ कहना अवश्य चाहता हूँ, जो मेरे मन में है और जो मुझे अकसर परेशान करती है, और जिसके सम्बन्ध में मैं समझता हूँ आप सबको परेशान होना चाहिए, क्योंकि हम कठिनाई और हलचल के जमाने से गुजर रहे हैं। और हममें से हर एक का यह कर्त्तव्य है, विह इस जिन्दगी में चाहे जिस जगह पर हों, और उसका चाहे जो धंधा हो, कि वह इन बड़ी समस्याओं के विषय में, जिनका हमें सामना करना है, विचार करे और, उनके प्रति अपना कर्त्तव्य सोचे, और यह सोचे कि उसे क्या करना है, और क्या नहीं करना है। जब मैं भारत की इन बड़ी समस्याओं को देखता हूँ, जब मैं उस अपार प्रेम और आस्था को देखता हूँ जो भारत के लोगों ने मेरे प्रति दिखाई है, तो मेरा मन अपनी अनुपयुक्तता की भावना से भर जाता है। कोई भी आदमी ऐसी समस्याओं को निबटाने के लिए कैसे पर्याप्त हो सकता है? समस्यायें तो निबटानी ही हैं, उन्हें एक न निबटाएगा तो दूसरा निबटाएगा, लेकिन कोई भी व्यक्ति इतने विश्वास और प्रेम का पात्र कैसे हो सकता है। मैं यह अनुभव करता हूँ। लेकिन एक बात के बारे में मेरा विश्वास कभी डिगा नहीं है, वह है भारत की उपयुक्तता के विषय में। और चूँकि मुझ में यह विश्वास है, (मैं व्यक्तिगत और निजी रूप से उपयुक्त होऊं या नहीं; मेरी समझ में इसका महत्व नहीं, जब तक कि मैं अपनी सारी शक्ति अपने कार्य और कर्त्तव्य में लगा रहा हूँ, मैं अपने भरसक इतना ही कर सकता हूँ, और इतना ही आप भी कर सकते हैं)—इसलिए उस विश्वास और यकीन के साथ मैं चला जा रहा हूँ, यद्यपि कभी कभी आत्मा थकी हुई सी जान पड़ती है, और कभी कभी यह खेद होता है कि हमारे बड़े-बड़े सपने वैसे नहीं उतर रहे हैं जैसा कि हम चाहते थे कि वे उतरें। किसी प्रकार हो यह रहा है कि जब काम करना है, जब ठोस काम, महान कार्य हमें पुकार रहा है, उस समय हमारा ध्यान तुच्छ झगड़ों के कारण और होने वाली तरह-तरह की गलत बातों के कारण, दूसरी तरफ खिंचता है। जबकि नई पीढ़ी के लोग, जिनके कंधों पर कि भारत को, उसकी लंबी यात्रा में एक मंजिल आगे बढ़ाने का काम आने वाला है—

ऐसे ढंग से पेश आते हैं जिसे कि मैं समझ नहीं पाता, तो मुझे आश्चर्य होता है; और वे राजनीति में भाग लेने की और इधर-उधर की बातें करते हैं। मुझे ताज्जुब होता है कि जब सारा भारत काम की पुकार कर रहा है, श्रम की पुकार कर रहा है, निर्माण की पुकार कर रहा है, तब उनका ध्यान दूसरी ही दिशा में जा रहा है, वे दूसरी ही दिशा में काम कर रहे हैं और ऐसी भाषा बोलते हैं जो मेरी समझ में नहीं आती। तब मैं सोचता हूँ और आश्चर्य करता हूँ, "क्या मैं इस पीढ़ी से जुदा हो गया हूँ? मैं सही मार्ग पर हूँ या वे ठीक मार्ग पर हैं?" कौन गलती पर है और कौन सही रास्ते पर, यह मैं नहीं जानता। हो सकता है मैं गलत रास्ते पर हूँ। जो भी हो, मैं अपनी ही बुद्धि के अनुसार कार्य कर सकता हूँ।

यह ऐसा समय है जब काम करने की जरूरत है, जब परिश्रम करने की जरूरत है, शांति की जरूरत है, साथ मिलकर उद्योग करने की जरूरत है, जबकि राष्ट्र की सारी केंद्रित शक्तियों की राष्ट्र के महान कार्य में जरूरत है। पर हम कर क्या रहे हैं? इसमें सन्देह नहीं कि हममें से बहुत-से लोग, इसी उद्देश्य से कार्य रहे हैं, और इस उद्देश्य में अपनी पूरी शक्ति लगा रहे हैं। इसमें संदेह नहीं कि राष्ट्र आगे बढ़ रहा है और तरक्की कर रहा है। फिर भी जब मैं अपने चारों तरफ देखता हूँ तो मैं काम का वातावरण नहीं देखता, काम की मनोवृत्ति नहीं पाता। केवल बात, केवल अलोचना, दूसरे की बुराई और नुक्ताचीनी, तुच्छ दलबंदियाँ और इसी तरह की बातें मिलती हैं। मैं इसे सभी वर्ग में, ऊपर, नीचे, नई पीढ़ी के और पुरानी पीढ़ी के लोगों में पाता हूँ। और तब जैसा मैंने कहा है, अपनी अवस्था का ध्यान करके मैं किंचित् विचलित होता हूँ, क्योंकि आखिर मुझे अब कुछ ही वर्ष जीना है और मेरी एकमात्र अभिलाषा यह है कि अपने अन्तिम दिनों तक अपनी पूरी शक्ति से काम करूँ और जब मेरा काम पूरा हो जाय तो मैं कूड़ा-करकट में फेंक दिया जाऊँ। जब मेरा काम पूरा हो जाय, तब मेरे बारे में आगे चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। काम और धंधे का तो महत्व है, पर जिनका काम समाप्त हो गया है और जो उठ गये हैं उनकी सोच का और उनके विषय में चिल्ल-पों मचाने का समय नहीं है। इसलिए सब से अच्छी तरह जो मैं कर सकता हूँ, अपना काम करता जाऊँगा।

लेकिन फिर उसके बाद क्या होगा? जबकि मैं और मेरे साथी जिन्होंने अच्छा हो या बुरा, भारतीय मंच पर, या इस प्रान्त में पिछले बीस, तीस या अधिक वर्षों तक काम किया है उठ जायँगे तो निश्चय ही दूसरे लोग हमारी जगह लेंगे क्योंकि राष्ट्र तो चलता ही रहता है, चलता ही रहता है। राष्ट्र की मृत्यु नहीं होती। पुरुष और स्त्रियाँ आते और जाते हैं,

लेकिन राष्ट्र चलता ही रहता है। इसमें कुछ सनातन गुण है। और निश्चय ही भारत ऐसे राष्ट्रों में है जिसके विचारों में, विकास में और ह्रास में एक सनातनता है। इसलिए हम लोग चले जायँगे, और जिस बोझ को अच्छी तरह हो या बुरी तरह, जैसे भी हो, हमने वहन किया है, वह दूसरों के कंधों पर पड़ेगा। वे कंधे कौन-से हैं? क्या मैं. यहाँ आपकी प्रशंसा करने आया हूँ या आपसे प्रशंसा सुनने? यह हम बार-बार कर चुके हैं—आपने मेरी प्रशंसा की है और हो सकता है मैंने आपकी प्रशंसा की हो। यह काफी नहीं, हमें अपना समय एक दूसरे की तारीफ में और गले मिलने में नहीं नष्ट करना चाहिए, जबकि आगे पूरा करने के लिए काम पड़ा हुआ हो। काम करने का समय होता है, और खेल-कूद का भी, उसी तरह जैसे कि हँसी का और आँसू बहाने का समय होता है। और आज राष्ट्र के लिए काम करने का समय है, क्योंकि अगर मैं कहूँ तो इस पीढ़ी को कठोर परिश्रम का दंड मिला है आप चाहे जितना हाथ पैर मारें, इससे बच नहीं सकते। हम सब को कठिन परिश्रम का दंड मिला है। लेकिन हम क्या काम करते हैं, और उसे किस भावना से करते हैं, इसमें बड़ा अन्तर आ जाता है। यदि यह अच्छा और परिश्रमपूर्ण काम है, तो यह एक ऊपर उठाने वाली, उल्लास और शक्ति देने वाली चीज है। आपको कितना कठिन परिश्रम करना पड़ता है, इसकी परवाह नहीं। लोग आकर मुझसे कहते हैं कि इतनी मेहनत न करो, तुम काफी सोते नहीं हो। इसकी क्या चिन्ता? जिसकी चिन्ता होनी चाहिए वह बिल्कुल दूसरी ही चीज है। कठिन परिश्रम करने से कोई मरा नहीं है, बशर्ते कि वह अच्छे उद्देश्य के लिए काम कर रहा हो, और जी लगाकर काम कर रहा हो। इसके विपरीत लोग मानसिक थकावट और दूसरे कारणों से मर जाते हैं। इसलिए आपको और मुझे काम में लगना है। पर किस तरह के काम में? काम के विषय में आपकी कैसी कल्पना है?

आज लोग यह कल्पना करते हुए जान पड़ते हैं कि प्रदर्शन के नाम पर इधर-उधर सड़कों पर चक्कर लगाना काम है; या काम रोक देना-चाहे वह पुतलीघर में हों चाहे स्कूल में या और कहीं और उसे हड़ताल बताना, या कोई दूसरे ही प्रकार का प्रदर्शन काम है। अब हो सकता है कि इसका कहीं-कहीं उपयोग हो; निश्चय ही है। लेकिन मैं यह आप से कहता हूँ, और पूरी सचाई से कहता हूँ कि जिस तरह की बातें आज भारत में हो रही हैं, उससे बड़े अपराध की मैं कल्पना नहीं कर सकता। मैं आपसे हँसी नहीं कर रहा हूँ। मुझे चन्द साल और काम. करना है और मैं भारत को महान और शक्तिशाली और संपन्न राष्ट्र देखना चाहता हूँ, जो न केवल अपने निवासियों के प्रति बल्कि इस विस्तृत संसार के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करता हो। और जब मैं अपने नवयुवकों को उस प्रकार का व्यवहार करते देखता हूँ, जैसा कि वे करते

है जब मैं नवयुवकों को और मिरगी की मरीज लड़कियों को गलत रास्ते पर देखता हूँ तो मैं आपसे कहता हूँ मुझे गुस्सा आता है। क्या वह सब काम जो हमने किया है बिल्कुल इस कारण नष्ट हो जायगा, कि कुछ पागल लोग इस तरह की फिजूल बातें करते हैं और बेहूदे तरीके से पेश आते हैं? यहाँ हो क्या रहा है? क्या आजादी और जन-सत्ता और स्वतंत्रता के विषय में यही आपकी धारणा है? मैं इस मामले से आश्चर्य में हूँ। मैं आपसे इसके बारे में साफ-साफ कहना चाहता हूँ, इस तरीके पर हम अपने राष्ट्र का निर्माण न कर सकेंगे। हमारे देश के सामने जो कठिनाइयाँ हैं, क्या आपको उनकी कल्पना है? हमलोग जो सरकार के अंग हैं, गलतियाँ कर सकते हैं, बहुत-सी गलतियाँ कर सकते हैं। मुझे सरकार से अलग हो जाने में कोई संकोच न होगा और मुझे पूरा यकीन है कि यू० पी० सरकार के लोगों को भी अपने-अपने पदों से अलग हो जाने में संकोच न होगा। आप कल्पना करते हैं कि जिन लोगों को आप ने अधिकार के पदों पर बिठाया है, उन पर आपने कितना बोझ डाल दिया है? उनकी आलोचना आप जरूर कीजिए। लेकिन जो सबसे बड़ी सजा आप भारत में किसी व्यक्ति को दे सकते हैं, वह उसे किसी अधिकार के पद पर बिठाना है।

लेकिन समस्यायें क्या हैं? आपको उनका सामना करना है, उन पर विचार करना है, और न केवल भारत के संबंध में बल्कि सारी दुनिया के संबंध में, और ऐसी दुनिया के संबंध में जिसका कुछ अजब रवैया है। जो दृश्य आज आप संसार में देख रहे हैं, वह आश्चर्य में डालनेवाला है। आप देखेंगे भावना की सुन्दर उठान को, अच्छे रचनात्मक उद्योगों को, साथ ही आप पायेंगे कि इस समय सारे संसार में कदाचित इतने सदाशय लोग है जितने कि संसार के इतिहास में पहले कभी नहीं थे। इसके साथ आप बुरी शक्तियों को भी देखेंगे, विच्छेदकारक शक्तियों को, लड़ाकू शक्तियों को, और तरह तरह के प्रभावों को काम करते पावेंगे। इन सब चीजों में आपस का संघर्ष है और मैं नहीं जानता, न आप ही जानते हैं कि इस संघर्ष का परिणाम क्या होगा। लेकिन मैं इतना जानता हूँ कि जब तक हममें जीवन और शक्ति है, तब तक हम भारत में, और अन्यत्र बुरी शक्तियों का मुकाबला करेंगे। हम भली शक्तियों के पक्ष में हैं, उन शक्तियों के पक्ष में हैं जो मनुष्य की आत्मा को मुक्त करती हैं, उसका दमन नहीं करतीं।

समस्या है क्या? आप समस्या का जवाब अपनी वाद-विवाद सभाओं मे और अपने प्रदर्शनों द्वारा देने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन क्या आपने समस्या को कोई रूप भी दिया है, प्रश्न का निर्माण भी किया है? बहुत से लोग बिना जाने हुए कि प्रश्न क्या है उसका उत्तर पाना चाहते हैं। यह एक अजीब-सी बात है। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि हम उत्तर की बातचीत करते हैं और

बिना जाने हुए कि प्रश्न क्या है–संसार के सामने जो प्रश्न या समस्या है उसे समझे बिना उसका उतर देते हैं।

हां, तो संसार एक बड़ी जगह है। फिर भी आप भारत की समस्या को संसार की समस्या से अलग नहीं कर सकते। आप युक्त प्रान्त या लखनऊ की समस्या को इस बृहत्तर समस्या से अलग नहीं कर सकते। इसलिये आपको इस बड़ी समस्या की कम-से-कम एक अस्पष्ट कल्पना तो होनी ही चाहिए।

और यदि मानव इतिहास के इस महान परिवर्तन काल में मुझे कुछ कहना है तो वह यह है कि यदि आप किसी समस्या को समझना चाहते हैं तो उसे आपको इतिहास के प्रसंग में समझना पड़ेगा, उसके अतीत पक्ष को जानना पड़ेगा, यह देखना पड़ेगा कि इसका विकास किस रूप में हुआ है और इसकी जड़ें कहाँ हैं। यह आपके और मेरे लिए अच्छा न होगा कि हम इस समय चन्द नारे लगाएँ और उसे समस्या का ज्ञान या समस्या का हल समझें। नारे अच्छे हो सकते हैं क्योंकि कभी-कभी वे एक विचार को थोड़े शब्दों में केंद्रित कर देते हैं; नारों का उपयोग किया जा सकता है। लेकिन किसी नारे को एक समस्या या किसी समस्या का हल समझ बैठना अपने को धोखा देना है।

मैं आपसे कहना चाहूँगा कि संसार की समस्याओं, भारत की समस्याओं, और जिन समस्याओं का हमें सामना करना पड़ता है उनके विविध पहलुओं के बारे में मेरे क्या विचार हैं, क्योंकि मुझे इन समस्याओं से बराबर निबटना पड़ता है यद्यपि मैं अपनी अनुपयुक्ता जानता हूँ। फिर भी मुझे इनसे निबटना पड़ता है, इसलिए कि यह मेरा काम है। इसलिए मैं उनके बारे में बराबर विचार करता रहता हूँ, उनकी चिन्ता में रहता हूँ, उनके विषय में बातें करता रहता हूँ, विचार विनिमय करता रहता हूँ, और मेरा दिमाग उनके विविध पहलुओं से हैरान हो गया है, और यदि समय हो तो मैं इन पहलुओं को आपसे बताना चाहता हूँ। मैं उनके बारे में आपसे कहना चाहता हूँ, क्योंकि मेरा विश्वास है कि इस देश में अगर आपको जनसत्तात्मक ढंग पर चलना है और इसके अतिरिक्त मुझे दूसरा तरीका मालूम नहीं, तो हमें एक दूसरे से अपनी कठिनाइयाँ बतानी होंगी, हमें एक दूसरे को समझना होगा, अपने विचारों को एक दूसरे पर प्रकट करना होगा और अपनी आपत्तियाँ और कठिनाइयाँ एक दूसरे से जतानी होंगी। इस लिए मैं इन सब बातों को आपसे बताना चाहूँगा, लेकिन मेरी जिन्दगी बहुत छोटी है और मैं यहाँ, वहाँ सब जगह नहीं पहुँच सकता। लेकिन मैं कम से कम आपके सामने कुछ संकेत रखना चाहता हूँ।

इस समस्या को देखिए। क्षण भर के लिये भारत को भूल जाइये; इस समस्या

के मोटे पहलुओं को इतिहास के प्रवाह में देखिए, हम कहाँ पर पहुँचे हैं? मैं बहुत पीछे नहीं जा रहा हूँ बल्कि यही डेढ़ सौ वर्ष पहले, जबकि पश्चिमी दुनियाँ में औद्योगिक क्रांति आरंभ हुई और वह सौ या अधिक वर्षों तक चलती रही। वह एक विशेष विकास पर आधारित थी, समाज के पूँजीवादी ढांचे के एक नए रूप पर, औद्योगिक पूँजीवाद पर आधारित थी। अब, औद्योगिक पूँजीवाद ने क्या करना चाहा, उसका उद्देश्य क्या था? उसका उद्देश्य था संपत्ति का और अधिक उत्पादन, अधिकतर उत्पादन। उससे पहले दुनिया बहुत गरीब थी, उत्पादन सीमित था। वह दरिद्रता के स्तर पर टिक-सी गई थी। औद्योगिक पूँजीवाद ने संसार की संपत्ति को उत्पादन के एक नए साधन द्वारा बढ़ाना चाहा। इसके भीतर कुछ कठिनाइयों और असंगतियों के बीज हैं। हम उनसे कैसे बच सकते हैं? औद्योगिक पूँजीवाद ने विविध कारणों से तरक्की की, और अपने आगे की समस्याओं को हल किया। यह याद रखिये कि यह पूँजीवाद अतीत युग की महत्तम सफलताओं में रहा है। इसने उत्पादन की समस्या का हल किया। लेकिन उसे हल करने में उसने और असंगतियाँ तथा कठिनाइयाँ पैदा कीं। जब लोग एक या दूसरे प्रकार के नारे लगाते हैं—बिना यह समझे हुए कि एक विशेष क्रम एक युग के लिए तो अच्छा हो सकता है और वही दूसरे युग के लिए बुरा हो सकता है, तो उनकी समझदारी का मैं कायल नहीं हो पाता। इससे केवल उनके मस्तिष्क की अस्पष्टता का पता चलता है। अब, आप आज के प्रश्नों को, इस प्रकार अपने मस्तिष्क को अस्पष्ट अवस्था में रखकर हल नहीं कर सकते। अब, जो हुआ वह यह था कि उत्पादन की समस्या केवल सिद्धान्त रूप में हल हुई-व्यवहारतः कुछ ही देशों में और सिद्धान्त रूप में दुनिया में सर्वत्र। लेकिन ज्योंही आप उत्पादन की समस्या को हल करते हैं, मूलतः तत्काल एक दूसरी समस्या अपना सिर उठाती है, अर्थात् जो कुछ उत्पादन हुआ है उसके वितरण की समस्या। इस प्रकार एक संघर्ष उत्पन्न हुआ और यह संघर्ष बहुत समय तक उग्र इसलिए नहीं हुआ कि यह औद्योगिक पूंजीवाद, एक मानी में, संसार के केवल एक भाग में पनपा, अर्थात, यूरोप और अमरीका के कुछ भागों में, और इसके सामने शेष सारी दुनिया खेल खेलने, फैलने और यों कहना चाहें तो शोषण करने को पड़ी थी। इसलिए एक प्रकार का संतुलन बना रहा, क्योंकि वह इस प्रकार फैल सकते थे। नहीं तो पश्चिमी दुनिया में और भी पहले संकट उपस्थित हो जाता। लेकिन क्रमशः पश्चिमी दुनिया में संकट आया, एक बड़ा संकट आया, जिसके परिणाम स्वरूप तीस-चालीस साल पहले पहला विश्वव्यापी युद्ध हुआ। यह पहला युद्ध था, जिसने कि कमोबेश स्थिर या अस्थिर दिखने वाली संसार की अर्थ-व्यवस्था को उलटा। तबसे, पहले महायुद्ध के बाद से, यह व्यवस्था स्थिर नहीं हो सकी है, और शायद अभी बहुत समय तक स्थिर न हो सकेगी, जब तक कि बहुत सी बातें ठीक न हो जायं। और मूलतः स्थिरता का प्रश्न उत्पादन की वृद्धि का, उन सब देशों में

जहाँ यह उत्पादन हो रहा है और उसका विकास हुआ है, वहां उत्पादन की बड़ी मात्रा में वृद्धि का ही प्रश्न नहीं है, बल्कि न्यायपूर्वक वितरण की समस्या के हल करने का भी है।

अब मैं जानबूझकर उन शब्दों का प्रयोग नहीं कर रहा हूँ जिनके विशेष अर्थ आपके मस्तिष्क में हैं, अर्थात् समाजवाद, पूँजीवाद, साम्यवाद आदि का। हमें वास्तविक समस्या पर विचार करना चाहिए और अस्पष्ट शब्दों में, जिनके सौ अर्थ हो सकते हैं, समस्या के हल को नहीं खोजना चाहिए।

तो इस सन्तुलनहीनता और अव्यवस्था के फलस्वरूप आपने एक के बाद दूसरा विश्वव्यापी युद्ध देखा। और मैं नहीं जानता, आप तीसरा युद्ध भी देख सकते हैं, यद्यपि एक अजीब बात यह है कि इन युद्धों से समस्या का हल नहीं निकलता बल्कि वह कहीं और जटिल बन जाती है। मैंने एक तीसरे संभावित युद्ध की चर्चा की है। व्यक्तिगत रूप से मैं समझता हूँ कि निकट भविष्य में या दो तीन वर्षों में यह नहीं होने जा रहा है। मैं युद्ध की कोई संभावना, कोई गुमान नहीं देखता। इस बात से न डरिये कि लड़ाई सामने आ गई है। फिर भी कोई नहीं कह सकता कि युद्ध उठ गया, या पुराना पड़ गया या होगा ही नहीं।

अब, आप जरा अपने मस्तिष्क में, इस युद्ध के धंधे को, नए युद्ध के चित्र को लाइए। यदि युद्ध होता है, तो इसमें संदेह नहीं कि इसके परिणामस्वरूप बड़े से-बड़े पैमाने पर महत्तम विनाश होगा, जितना किसी भी पुराने युद्ध में हुआ है, उससे कहीं अधिक। इसका अर्थ मानवता तथा नगरों के विनाश के अतिरिक्त, मानव-जाति ने युगों में जो कुछ निर्माण किया है उसका विनाश होगा; एक बात यह तो साफ है कि इसका अर्थ खाद्य के उत्पादन का सीमित हो जाना होगा। पिछली लड़ाई के समय से ही खाद्य का प्रश्न संसार में एक बड़ा प्रश्न बन गया है। जैसा आप जानते हैं भारत में यह हमारी एक प्रमुख समस्या रही है। अगर दूसरा युद्ध हुआ तो खाद्य का उत्पादन इतना सीमित हो जायगा कि संभवतः सारी दुनिया में करोड़ों आदमी भूख के मारे मर जायंगे। लोग युद्ध के बारे में जरा हल्के ढंग से सोचते हैं। दूसरा विश्व यापी युद्ध इतना अनर्थकारी होगा कि ऐसी स्थिति का मानवता ने कभी अनुभव नहीं किया है और यह न समझिये कि भारत या संसार का कोई भाग इस तबाही से बच सकता है। कुछ ज्यादा तबाह हो सकते हैं, कुछ कम; लेकिन युद्ध में कौन विजयी होता है इससे तबाही में कोई अन्तर न पड़ेगा, क्योंकि विनाश सभी का होगा, घोर तबाही समान रूप से सारे संसार पर आवेगी। इस युद्ध के विजेता के सामने एक तबाह दुनिया होगी, और उसे सामने देखना सुखकर न होगा।

तो ये हैं हमारी समस्याएँ। अगर हम समझते हैं कि हम उनका हल युद्ध द्वारा कर सकते हैं– व्यक्तिगत रूप से मैं समझता हूँ कि ऐसा नहीं हो सकता –तो यह गलत धारणा है। यह सही है कि दुनिया अपनी समस्याओं का हल करती है, उसी तरह जिस तरह कि हर एक व्यक्ति अपनी समस्याओं का हल करता है, जीते-जी नहीं तो मरकर, । मरने पर तो समस्या हल हो ही जाती है। इस तरह दुनिया की समस्या भी हल होगी, हो सकता है कि करोड़ों की मौत के बाद या कुछ ऐसी ही घटना के अनन्तर, हल हो, लेकिन यह हल प्राप्त करने का सही दिमागी तरीका नहीं है।

इस तरह इन समस्याओं के हल करने में, एक ओर यदि हम युद्ध की लहर और बढ़ती हुई हिंसा को देखते हैं, तो हम पाते हैं कि इससे समस्या हल नहीं होती बल्कि और उलझ जाती है और हल और भी जटिल बन जाता है। दूसरी ओर, समस्या का हल निकालना ही है। यदि हम इसका हल नहीं निकालते, तो और समस्यायें हमें दबा कर मार डालेंगी। तो हम इस विषय में किस तरह आगे बढ़ें?

अगर लोग समझते हैं कि हम जहाँ के तहाँ बने रहेंगे और चीजें अपने आप ठीक हो जायंगी तो वे गलती करते हैं। अगर वे समझते हैं कि हम इस तरह उनको हल कर लेंगे और एक बड़ी विपत्ति को बचाते हुए हल पा लेंगे, तो उनकी स्थिति का विश्लेषण बिल्कुल गलत है।

अब इतना कहने के बाद मैं आपका ध्यान एक दूसरी दिशा में लौटाना चाहता हूँ। विज्ञान के विकास ने इस संसार में जो परिवर्तन किए हैं, उनके फलस्वरूप ज्ञान में बहुत प्रचुर वृद्धि हुई है, इतनी प्रचुर कि बहुत कम लोग, शायद ही कोई, उसे पूरी तरह हृदयंगम कर सकते हैं। वह इतनी अधिक है कि आदमी का मस्तिष्क उस सबको अवगत नहीं कर सकता। मैं नहीं कह सकता, कोई असाधारण प्रतिभावाले भले ही उसे हृदयंगम कर लें, लेकिन साधारण बुद्धि के लोगों की शक्ति से यह बाहर है। मानव ज्ञान का सारा क्षेत्र अति विस्तृत है। वैज्ञानिक ज्ञान का क्षेत्र लीजिए, विज्ञान की एक विशेष शाखा के क्षेत्र को ही ले लीजिए—उतना अंश जिसकी पूरी जानकारी के लिए उसे विशेषज्ञ होना पड़ता है वह अपने विषय में विशेषज्ञ तो हो जाता है, लेकिन शायद जीवन के और विभागों की ज्यादा जानकारी उसे नहीं होती। इसलिए एक उच्च कोटि के विशेषज्ञ के बारे में, वह वैज्ञानिक हो चाहे यंत्रशिल्पी, बहुत करके ऐसा होगा कि वह जीवन के अनेक महत्वपूर्ण पहलुओं से अनजान होगा। दूसरे शब्दों में एक अच्छा वैज्ञानिक होते हुए भी वह बुरा नागरिक हो सकता है। पर वह अच्छा नागरिक भी हो सकता है। विज्ञान

तथा औद्योगिक सभ्यता की वृद्धि के साथ ज्ञान-भंडार इतना बढ़ गया है कि उसे अवगत करना कठिन है, इसलिए विशेषज्ञता की वृद्धि हुई। विशेषज्ञता की वृद्धि के साथ मानव-जीवन का समन्वयात्मक दृष्टिकोण, जिसे मानव-जीवन का दार्शनिक दृष्टिकोण भी कह सकते हैं, और उससे संबंधित समस्याएँ पृष्ठभूमि में पड़ गईं। और हमारे राजनीतिज्ञ भी पीछे रह गये। वे विशेषज्ञ हो सकते हैं-चुनाव जीतने के विषय में या तात्कालिक समस्याओं से निबटने के विषय में, पर उनके पास न तो समय ही है न अवकाश कि वे इन समस्याओं के बृहत्तर पहलुओं पर ध्यान दें। हम इस कठिनाई को कैसे पार करें? मैं नहीं जानता, मैं इसको आपके सामने रख रहा हूँ।

संयुक्त राज्य अमरीका जैसे देश को ले लीजिए, जो यंत्रशिल्प की दृष्टि से सबसे उन्नत देश है, और इसलिए भौतिक साधनों की दृष्टि से सबसे शक्तिशाली। वह संपत्ति का, जो शक्ति है, उत्पादन कर सकता है। लेकिन इसे देखते हुए मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि इस वृद्धि ने ही अमरीक के लोगों के लिए—हाँ कुछ व्यक्तियों की बात छोड़िए-यह कठिन कर दिया है कि साधारण व्यक्ति अपने क्षेत्र में विशेषज्ञ होने के अतिरिक्त कुछ और रह जाय। वह व्यक्ति बहुत अच्छा होता है: एक अमरीकी इंजीनियर, एक अमरीकी डाक्टर को ले लीजिए। वह अपने क्षेत्र में इतना अच्छा होता है कि उसके पास किसी दूसरी दिशा में अच्छा होने का समय नहीं रहता। अमरीका को समझ लेना बहुत अच्छा होगा, क्योंकि अमरीका एक विशेष प्रकार के विकास का, जिस ओर कि संसार बढ़ रहा है, सर्वोच्च प्रतीक है। दूसरे भी इस दिशा में गए हैं, लेकिन उतनी दूर तक नहीं।

अब भारत में औद्योगीकरण अवश्यंभावी है, हम औद्योगीकरण की कोशिश कर रहे हैं, हम औद्योगीकरण करना चाहते हैं, औद्योगीकरण होना भी चाहिए-और अधिक संपत्ति, और अधिक उत्पादन-यह सब ठीक है। लेकिन, क्या हम कुछ विशेषज्ञों या विशेष संगठनों को ही स्थापित करके यह समझने जा रहे हैं कि समस्या हल हो गई? हमें विशेषज्ञ तो उत्पन्न करने हैं, लेकिन हमें इस समस्या की जानकारी न केवल आज के अत्यन्त विस्तृत प्रसंग में, बल्कि इतिहास के विस्तृत प्रवाह के प्रसंग में होनी चाहिए।

तब, शायद हम उसे समझने की कोशिश तो करेंगे; फिर, बाद में, हम उसका उत्तर देने की भी कोशिश कर सकते हैं। यह जाहिर है कि ऐसी जटिल समस्या किसी नारे द्वारा या लखनऊ की सड़कों पर प्रदर्शन करके नहीं हल हो सकती, मैं आपके मनन के लिए कुछ विचार दे रहा हूँ, क्योंकि इस समस्या पर अनन्त

विवाद हो सकता है, और वह भी ऐसा कि कोई नतीजा न निकले। लेकिन मैं केवल यह चाहता हूँ कि आप अनुभव करें कि समस्या कितनी कठिन और जटिल है और आज के तथा इतिहास के प्रसंग में, वह काफी व्यापक और पुरानी है। अब जिस संसार में हम रह रहे हैं उसका और इन संघर्षों का कुछ मोटे ढंग से परिचय प्राप्त कर, भारत पर आइए।

भारत में डेढ़ साल हुए हमने राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त की। एक मानी में राजनैतिक दृष्टि से हमारा ध्येय प्राप्त हुआ। इसकी कसौटी यही हो सकती है कि आपकी सरकार को घरेलू या विदेशी क्षेत्र में किसी काम के करने की स्वतंत्रता है या नहीं? मैं तो यहाँ पर किसी ऐसे कानून के होने की बात नहीं कहता जिससे आपके संविधान को बलि प्राप्त हो वह तो स्वतंत्रता का दिखावा मात्र हो सकता है। मैं समझता हूँ कि यह बिल्कुल साफ है कि युद्ध या शांति में, हम जो कुछ करना चाहें उसमें कोई बात हमें रोकने या बाधा डालने वाली नहीं है-सिवाय इस के कि जिस तरह और देशों को परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, हमें भी करना पड़ेगा। उससे हम बच भी नहीं सकते। बहुत से देश हैं, जिनके मैं यहाँ नाम ले सकता हूँ जो नाम के लिए सौ फी सदी स्वतंत्र हैं और व्यवहार में सौ फी-सदी स्वतंत्र नहीं हैं, क्योंकि वे इतने कमजोर हैं कि जो चाहें नहीं कर सकते, और वे राजनैतिक या आर्थिक या किसी और रूप में किसी दूसरे देश की सदिच्छाओं पर निर्भर रहते हैं।

अब, साधारण रूप में, हमें अनेकानेक समस्याओं का सामना करना पड़ता जो पिछले १५० वर्ष के अंग्रेजी शासन में इकट्ठी हो गईं, क्योंकि अंग्रेजी शासन एक बाहर से लादी गई चीज थी, और इसने साधारण क्रम में सामाजिक संबंधों के सुलझाने और हमारी समस्याओं के हल में, जो शांति-पूर्वक हो, चाहे हिंसात्मक ढंग से, बाधा डाली, नहीं तो कुछ-न-कुछ हो गया होता। लेकिन बाहरी दबाव ने उस समन्वय के क्रम को रोका जो देश में समय समय पर होते रहते हैं। फल यह हुआ कि ज्यों ही ब्रिटिश सत्ता उठ गई सब समस्याएं भी उठ खड़ी हुईं चाहे वे रियासतों की समस्यायें हों, चाहे कोई और। उन्हें हल करने की माँग होती है और हमें उनका सामना करना पड़ता है। साथ ही साथ, यह उस समय होता है, जबकि दुनिया एक भयंकर विश्व-व्यापी युद्ध के परिणामों से संभल भी नहीं पाई है। आर्थिक और वित्त संबंधी क्षेत्रों में हमारे यहाँ विश्वव्यापी युद्ध से उत्पन्न सभी समस्याएँ मौजूद हैं। और फिर भारत स्वतंत्र होता है, पर उसका विभाजन हो जाता है: पर एक जीवित वस्तु के दो टुकड़े हो जाते हैं, जिससे भयंकर खून-खराबा होता है और अनेक

प्रकार की वस्तुओं की हानि होती है। सभी चीजों के टुकड़े हो जाते हैं, हमारी सेना, हमारी डाक संबंधी नौकरियां, तार संबंधी नौकरियां, टेलीफोन संबंधी नौकरियां सभी बट जाती हैं; सारी सरकारी मशीन के यकायक दो टुकड़े हो जाते हैं, यह एक आश्चर्यजनक क्रिया थी, और इसका परिणाम अन्य बातों के अतिरिक्त एक विराट पैमाने पर लोगों का घर छोड़कर दूसरी जगह जाना और हत्याकांड आदि भी था। अब, हमारे सामने शरणार्थियों की एक बहुत बड़ी समस्या है, सभी वर्गों के साठ लाख लोगों की देखभाल का भार अपने ऊपर है। इसमें मध्य वर्ग के लोग हैं, श्रमिक वर्ग के लोग हैं, व्यवसायी हैं और ऐसे लोग हैं जिन्होंने आजन्म कोई काम ही नहीं किया है। जरा इन सब समस्याओं को देखिए। जब आप बैठकर भारत सरकार की या उत्तर प्रदेश की सरकार की आलोचना करते हैं, तब इन समस्याओं पर विचार करने की कोशिश कीजिए।

कल जब मैं हवाई अड्डे से आ रहा था तो कुछ शरणार्थियों ने मेरी मोटरगाड़ी रोकने की कोशिश की। मुझसे कहा गया कि वे हमसे आज मिलना चाहते हैं। मैं जहां तक होगा उनसे मिलूंगा। लेकिन जब ये शरणार्थी--जिनसे कि हमारी सबकी हमदर्दी है--यह कहते हैं कि हमें यह सहायता नहीं मिली या वह सहायता नहीं मिली तब कभी आपने यह विचार करने की कोशिश की है कि इन साठ लाख शरणार्थियों में से कितने बसाये जा चुके हैं? जिस काम को हम लोगों ने कर लिया है, उसे भी विचार करने की कोशिश कीजिए। मैं आपसे कहता हूँ कि शरणार्थियों के बसाने का जो काम हमने कर लिया है वह आश्चर्यजनक है। मैं आपसे कहता हूँ कि इतना बड़ा काम इतिहास के बड़े-से-बड़े कामों में अपनी जगह रखता है। लेकिन जो कुछ आप हमेशा सुनते हैं वह यह है कि हमने अमुक कार्य नहीं किया। मैं इसकी चिन्ता नहीं करता। जो काम हमने नहीं किया, उसे मैं सुनना चाहता हूँ, जिसमें कि हम उसे भूल न जायें। हमें उसकी याद बनी रहे। यह बिल्कुल ठीक है। लेकिन इस पर भी विचार करने की कोशिश कीजिए कि कितना काम हो चुका है, और राष्ट्रीय जीवन के इस क्षेत्र में कितना काम हो रहा है, और हमेशा यही न सोचिए कि क्या नहीं हो पाया है। सबसे पहले उन समस्याओं का खयाल करने की कोशिश कीजिए जिनका कि सरकार को सामना करना पड़ा है, वे सभी बातें जो मैंने अभी बताई हैं, और उसके बाद देखिए कि कितना काम हो गया है, और कितना होना बाकी है फिर हम आप उसे पूरा करने की पूरी कोशिश करें। उसके बाद फिर क्या हुआ है और क्या नहीं हुआ उसकी बात चलावें।

आखिरकार आपको समझना चाहिये कि खास कर एक जनसत्तात्मक देश में, आप सरकार से यह आशा नहीं कर सकते कि वह कानून बना दे और आपके

सभी काम हो जायँ। यह एक आश्चर्य की बात है कि आप और मैं और हममें से बहुतेरे विचार करने की उस आदत को नहीं छोड़ सकते, जिसे हमने ब्रिटिश शासन में सीखा था। आधे दर्जन झंडे लेकर इधर से उधर चक्कर लगाने का यह धंधा ब्रिटिश श.स.न में उपयुक्त हो सकता था। आज इसकी उपयुक्तता बहुत कम है—मैं यह न कहूँगा कि बिल्कुल ही नहीं है। मैं विचार की उस आदत की बात कर रहा हूँ जिसे ब्रिटिश सरकार ने अपने को माँ-बाप सरकार जताकर हममें पैदा करने की कोशिश की, अर्थात् सरकार ही सब कुछ करेगी, लोगों को केवल किसी सरकारी पदाधिकारी के पास प्रार्थनापत्र भेजने की जरूरत है और वह उस पर आज्ञा दे देगा। जन.सत्तात्मक सरकार में इस तरीके पर काम नहीं होता।

एक ऐसी सरकार, जिसे महत्त्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं से निबटना होता है, उस सरकार से, जो मुख्यतः पुलिस राज्य है बहुत भिन्न तरीके पर काम करना होता है। पुलिस राज्य को केवल शांति बनाए रखना, कर वसूल करना और कुछ और छोटे-मोटे काम करना होता है। आज हमें टेढ़ी सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को निबटाना है। ये समस्याएँ सरकारी फरमान या आज्ञापत्र या हुक्मनामे से नहीं निबट सकतीं। इनको निबटाने के लिए सही कानून होने चाहिए। मैं मानता हूँ कि सरकारी काम ठीक ढंग से हो उसका ठीक ढंग से तो होना ही उचित है। लेकिन ऐसे आर्थिक मामलों में सरकारी उद्योग की एक सीमा होती है। यह तो जनता का काम है, उसकी मनोवृत्ति और उनसे प्राप्त सहयोग ही इन समस्याओं को इस पार या उस पार लगावेंगे। मैं आपसे कहता हूँ कि हमारे अच्छे-से-अच्छे कानून और सरकारी काम बेकार होंगे नहीं तो कम-से-कम उनका असर कम हो जायगा यदि जनता में काम करने की इच्छा न हो और वह इस उद्देश्य में सहयोग न दे। और मैं यह भी कहता हूँ कि एक कमजोर सरकार, यहाँ तक कि एक बुरी राजनैतिक सरकार भी ज्यादा बड़े नतीजे दिखा सकती है अगर उस उद्देश्य में जनता सहयोग देती है।

तो मुख्य बात यह है कि काम और सहयोग की मनोवृत्ति का जनता में कैसे विकास किया जाय। और आज यदि हम भारत में किसी व्याधि में पड़े हैं तो वह है सही मनोवृत्ति का अभाव—चाहे वह श्रमिक में हो, चाहे मिल मालिक में हो और चाहे नई पीढ़ी के लोगों में। लोग हड़तालों और प्रदर्शनों और इसी प्रकार के उपायों से अपना उद्देश्य सिद्ध कर सकेंगे यह मनोवृत्ति बिल्कुल गलत है, और मुझे यह कहते हुए खेद होता है कि वे लोग भी जिन्हें कि ये बातें अच्छी तरह समझनी चाहिए, किसी तरह इसके फेर में पड़ जाते हैं और किसी तरह इस प्रकार की चीजों को प्रोत्साहन देते हैं। मैं आपसे कहता

हूँ कि भारत के वर्त्तमान और भारत के भविष्य के लिए, इस मनोवृत्ति के कायम रहने से खतरनाक कोई दूसरी बात नहीं ।

मुझे भारत के भविष्य में असीम विश्वास है । यदि मुझमें यह विश्वास न होता तो शायद जो काम मैंने किया है वह न कर पाता। लेकिन यह असीम विश्वास रखते हुए मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि आज हमें काफी मुश्किल समस्याओं का सामना करना है। हमें आपस में एक दूसरे को धोखे में न डालना चाहिए। हमें बहुत कठिन समस्याओं का सामना करना है, हमें अपने को ऊंचे उठाना है, अनेक प्रकार से अपने बंधनों से ऊपर उठना है। आपको दूसरे देशों से सोना, चाँदी और धन न मिल जायगा। हमें स्वयं इनका उत्पादन करना है। आप कैसे पैदा करेंगे—हड़तालों तथा इसी तरह की बातों से ? आप मजदूरी और तनखाहें वगैरा कैसे बढ़ावेंगे, जैसा कि हम चाहते हैं? रुपया कहां से आएगा, रुपया आता कहां से है? यह कर द्वारा आता है, आप ही की जेबों से, दूसरे की जेबों से नहीं । यह बहुत सीधी-सी बात है । इस पर विचार कीजिए । आप माँगें करते हैं। कुछ विद्यार्थी मेरे पास आते हैं और बिना झेंपे हुए यह कहते हैं कि उनके खयाल में उन्हें युनिवर्सिटी कमीशन का सदस्य होना चाहिये था जिससे कि वे अपनी माँगें उसके सामने रख सकते, तो मुझे हैरत होती है । वे बराबर मांगों की बातें करते है। अब, भारत की भी आपसे कुछ मांगें हो सकती हैं। आप इसे भूल गए ऐसा जान पड़ता है। और मैं समझता हूँ कि समय आ गया है कि आपसे जो मांगें हो सकती हैं– आपकी कृतज्ञता की, आपके कर्त्तव्य और काम और कठिन श्रम की– उन्हें आप याद रक्खें। भारत में बहुत कम लोग हैं, जो इसका खयाल करते हैं और इसे पूरा करने के लिए मेहनत करते हैं। हर एक व्यक्ति मांगें पेश करता है, हर एक एतराज करता है, हर एक आलोचना करता है और हर एक यह समझता है कि अगर उसकी मांगों का पूरा होना मुमकिन हो, तो सब कुछ ठीक हो जायगा । वह इसे भूल जाता है कि उसकी मांगों के पूरा होने के मानी यह हैं कि कोई दूसरा अपनी मांगों से बाज आवे, क्योंकि मांगें एक दूसरे के खिलाफ पड़ती हैं।

इन सब समस्याओं पर विचार कीजिए। जो कुछ मैं देखता हूँ वह एक अजीब-गरीब चीज है। यह जाहिर है कि उत्तराधिकार में हमें एक खास ढाँचा मिला हुआ है, एक खास राजनीतिक ढांचा, शासन संबंधी ढांचा, न्याय संबंधी ढांचा आर्थिक ढांचा आदि; हमें उसे बदलना है। पर हम उसे कैसे बदलने जा रहे हैं ? बदलने के दो तरीके हो सकते है। एक है, उसे टुकड़े-टुकड़े कर डालना और फिर से निर्माण करना; आप चाहें तो उसे तोड़ डालिए और एक नई स्लेट लेकर उस पर नए सिरे से लिखिए। पर वास्तविकता यह है कि जीवन में नई स्लेट नहीं

मिला करती, न कभी मिली है और न मिलेगी। आप अतीत से बिल्कुल मुक्त कभी नहीं हो सकते। फिर भी आप कमोबेश नई स्लेट पर लिख सकते हैं। मौजूदा सरकारी संगठन या आर्थिक सामाजिक ढांचे के नाश के परिणाम-स्वरूप होने वाली कुछ वस्तु तो आप पा सकते हैं। अगर हम यह निश्चय करते हैं कि राष्ट्र की उन्नति के लिये यह आवश्यक है कि हमारा जो वर्तमान ढांचा है उसे तोड़ डालें, तो आइए यहीं करें और परिणाम को समझते हुए उसे समाप्त कर डालें। चूंकि मैं निजी रूप से इससे सहमत नहीं हूँ, मैं चाहता हूँ आप यह अनुभव करें कि इस विषय में स्पष्ट होने की आवश्यकता है। न हम आज तोड़-फोड़ कर नया निर्माण करने की—बुनियाद से लेकर निर्माण करने की—कोशिश कर रहे हैं, न हम अधिक, से अधिक तेजी से मौजूदा ढांचे को बदल कर, उसे इच्छानुसार रूप दे रहे हैं। हमें दोनों में से एक बात चुननी है, क्योंकि यहाँ बीच का मार्ग भयावह है। न आप पुराने ढाँचे को समाप्त ही कर डालते हैं जिससे कि पुन-र्निर्माण आरंभ कर सकें और न आप परिवर्तन के क्रम को ही चलने देते हैं। इनमें से एक भी नहीं हो पाता, और दशा बराबर बिगड़ती जाती है और हम क्रमशः खातमे की ओर जा रहे हैं। यदि आप प्राचीन के विनाश के मार्ग को अपनाते हैं और कुछ लोगों के कथनानुसार, नए सिरे से निर्माण करते हैं तो इसके परिणाम क्या है? परिणाम साफ-साफ ये हैं कि अगर आप सफल होते हैं तो पहले तो एक महान संघर्ष होता है, क्योंकि कुछ लोग इसका विरोध भले ही न करें, पर कुछ तो करेंगे ही। मतलबय यह कि तुरन्त, जैसा हम चाहते हैं, वैसा विनाश संभव नहीं और निरंतर संघर्ष चलता है। धीरे-धीरे प्रचीन का विनाश हुआ तो बहुत ही समय लग जाता है और दूसरे काम नहीं हो पाते।

इसका यह तात्पर्य है कि अगर आप प्राचीन के विनाश में सफल हुए तो शायद आप को साफ स्लेट मिल जाय, लेकिन बिल्कुल साफ स्लेट, जैसा मैंने बताया, मिलना असंभव है। विनाश का क्रम, राष्ट्र को हर एक मानी में—फौजी, आर्थिक, रुपये-पैसे की दृष्टि से—कमजोर भी कर देता है। इसलिए विनाश करने के पथ को अपनाने पर भारत, अचानक, स्वतंत्र देश के रूप में अपने नवीन जीवन की एक नाजुक घड़ी में कमजोर हो जाता है। मैं नहीं कह सकता कि इसके क्या नतीजे होंगे। एक ऐसे व्यक्ति की हैसियत से जो भारत के राज्य के लिए जिम्मेदार है, मैं अपने राष्ट्र को कमजोर करने का और बुरी नीयत वाले देशों और बुरी नीयत वाली शक्तियों को आकर अपने देश को तबाह करने देने का साहस नहीं कर सकता। इससे मैं अपनी स्वतंत्रता भी जोखिम में डाल सकता हूँ। स्वतंत्रता न केवल राजनैतिक दृष्टिकोण से और फौजी दृष्टिकोण से बल्कि आर्थिक दृष्टिकोण से जोखिम में पड़ जायगी। अगर हम कमजोर और असहाय हो गये, और हमारी फाके की हालत हो गई, और हम बेकार हो गए तो हम क्या करेंगे? हम जलूस भले ही निकालें और नारे

भले ही लगाएँ ; हम इन लाखों आदमियों के पेट कैसे भरेंगे जो क्रमशः इतने नीचे स्तर पर पहुँच चुके हैं और जो इतने कमजोर हैं कि दुनिया के सामने खड़े नहीं हो सकते ?

मैं आपसे कहता हूँ कि यही है अनिवार्य परिणाम, तात्कालिक परिणाम अन्तिम नतीजा, या जो भी कहिये किसी भी ऐसे क्रम का, जो आधुनिक ढांचे को पूरी तरह नष्ट कर देना चाहता है, कि राष्ट्र कमजोर हो जाता है, हमारी स्वतंत्रता खतरे में पड़ती है, और बुरी शक्तियाँ, बुरे देश परिस्थिति से अपना लाभ उठाते हैं। मैं नहीं चाहता कि ऐसा हो। यदि यह नाश हुआ तो यह पीढ़ी—और जब मैं यह पीढ़ी कहता हूँ तो मेरा मतलब अपनी पीढ़ी से नहीं बल्कि नई पीढ़ी से है, नवयुवकों और नवयुवतियों की पीढ़ी से है, जिन्होंने अपनी उपाधियाँ प्राप्त की हैं और कल या परसों नागरिक बनेंगे–मैं दुहराऊँगा कि यदि नाश हुआ तो यह पीढ़ी बरबाद हो जायगी। जैसा मैंने अभी कहा, हमें कठिन परिश्रम का दंड मिला है, यह सच है। लेकिन यदि आपने भारत में जो कुछ संगठन है, उसका नाश आरंभ किया तो आपको कोई कल्पना नहीं कि आपको क्या दंड मिलेगा। यह संभव है कि इस पीढ़ी के खतम होते-होते भारत की भीतरी शक्ति के अन्दर से कुछ और रूप विकसित होकर सामने आवे।

लेकिन तत्काल आपको यह विचार छोड़ देना चाहिए। इसलिए यदि आप यह विचार छोड़ देते हैं तो आपको सतर्क रहना चाहिए, तब आपको ऐसे सभी कामों से बचना चाहिए जो स्थिति को बिगाड़ सकते हैं, और जो वर्तमान में है उसे ध्वस्त कर सकते हैं। बुराई को अवश्य नष्ट कर डालिए–बुराई से लड़िए। इसलिए आपको वर्तमान ढांचे को नष्ट कर देने की दिशा में नहीं, बल्कि उसे जितनी जल्दी संभव हो बदलने की दिशा में प्रयत्न करना है।

इसका एक दूसरा पहलू भी सामने रखना चाहता हूँ। हिंसा और अहिंसा, शांतिपूर्ण तरीकों और हिंसात्मक तरीकों की कसौटी एक अच्छी कसौटी है, क्योंकि यदि आप शांतिपूर्ण तरीकों को उपयोग करते हैं, तो मेरी समझ में आप बहुत गलत मार्ग पर नहीं जा सकते; चाहे आप उन तरीकों का गलत ध्येयों के लिए ही उपयोग क्यों न करें फिर भी आप सुरक्षित हैं और रोक-थाम रहती है। शांतिपूर्ण ढंग स्वतः गलत कामों पर रोक की भांति है, अगर आप हिंसात्मक तरीके का उपयोग करते हैं, तो हिंसात्मक तरीका एक विदेशी वैरी और किसी देश के विदेशी प्रभुत्व के विरुद्ध चाहे जितना उचित हो, वह एक अलग ही बात है (वस्तुतः विदेशियों के विरुद्ध भी जहां तक हुआ हमने शांतिपूर्ण तरीकों

का ही उपयोग किया) लेकिन एक ऐसे प्रश्न पर जिस पर जनता को निर्णय करना चाहिए, हिंसात्मक तरीकों का उपयोग, वह भी विदेशी के विरुद्ध नहीं बल्कि कुछ अपने ही लोगों के विरुद्ध, एक महा भयानक चीज है। मैं इस समय इस प्रश्न के दार्शनिक या सिद्धान्त संबंधी पहलू पर बहस नहीं करना चाहता, न हर देश के लिए इसे अनावश्यक बताना चाहता हूँ। लेकिन यह अवश्य कहूँगा कि भारत की जैसी स्थिति है उसमें हिंसात्मक तरीकों का उपयोग, सबसे बड़ा देशद्रोह है, जिसका कि कोई भारतीय अपराधी हो सकता है। हममें एकता उत्पन्न करनेवाली मजबूत शक्ति है, साथ ही हममें सभी तरह की विच्छेदक और जुदा करनेवाली प्रवृत्तियां भी हैं। हमने सांप्रदायिकता के विरुद्ध लड़ाई की है और हमने सांप्रदायिकता से हानि भी उठाई है। हमारे यहां प्रांतीयता और ऐसी अनेक प्रवृत्तियां हैं, जो जुदा करने वाली हैं और अब, इस क्षेत्र में यदि हिंसा किसी भी रूप में किसी भी प्रकार से होती है, और लोग हिंसात्मक तरीके ग्रहण करते हैं तो परिणाम निश्चय ही यह होगा कि हिंसा का दमन किया जायगा और शीघ्र ही उसे रोका जायगा, क्योंकि हर एक सरकार को हिंसा का दमन करना ही पड़ता है। कोई भी सरकार हिंसा को न रोकने का जोखिम नहीं उठा सकती। जो कुछ मैंने सुना है, उसके आधार पर मैं आप से कहूँगा कि उत्तर प्रदेशीय सरकार ने परिस्थिति को देखते हुए यहां बड़ी कमजोरी बरती है। जो कुछ हुआ है उसके बारे में बहुत नारे बुलन्द हुए हैं। यदि मैं यहां अधिकार में होता तो उन लोगों के खिलाफ, जो लखनऊ की सड़कों पर अशिष्टताएं कर रहे हैं, ज्यादा सख्त कार्रवाई करता। नौजवानों और नवयुवतियों का आखिर यह क्या धंधा है कि पुलिस पर हमले करें और उन्हें थप्पड़ मारें और बम फेंकें और लाठियों से खिलवाड़ करें? क्या हमारे नवयुवक और नवयुवतियां शिष्टता और अनुशासन के स्तर से इतना गिर गए हैं, इतने बेसमझ हो गए हैं कि उनका ऐसा दर्ताव हो? और इसे आप स्वतंत्रता कहते हैं! स्वतंत्रता की ऐसी कल्पना मेरी नहीं है, स्वतंत्रता की यह कल्पना मेरी कभी नहीं रही है। अगर आप इस तरह पेश आते हैं, तो यह समझिए आप अपने देश, शहर और राष्ट्र का अहित कर रहे हैं। जो कुछ मैंने सुना है वह एक हैरत की बात है। और मुझे आश्चर्य है कि समझदार नवयुवक और युवतियां इन कृत्यों की मूर्खता—मूर्खता ही नहीं, इसके अपराध को नहीं देख पाते। क्या हमलोग नासमझ और पागल लोगों का एक गिरोह बन जायेंगे, और ऐसे नारे लगाएंगे जिनके मानी हम नहीं समझते कि क्या हैं? यही स्वतंत्रता की कल्पना है? मैं चाहता हूँ कि आप इस पर गौर करें कि हम कहां जा रहे हैं? क्योंकि इतनी बड़ी दुनिया में कोई भी सरकार इस तरह की बातें बर्दाश्त नहीं कर सकती; एक सरकार उठ सकती है और उसकी जगह दूसरी सरकार आ सकती है, लेकिन अगर कोई सरकार अपनी आंखों के सामने हिंसा होते देखती है, तो उसको उसे दमन करना होगा, और जब तक कि शासन

उसके हाथ में है वह हिंसा का दमन करेगी। इसके बारे में कोई संदेह न होना चाहिए, मर्द, औरत, बच्चे जो भी ऐसा करें उनके विरुद्ध हमें कार्रवाई करनी पड़ेगी। औरतें चुन ली जायंगी, बच्चे चुन लिए जायंगे, आप इस तरह की बातों की किसी तरह इजाजत नहीं दे सकते। मैं लखनऊ की पुलिस की प्रशंसा करता हूँ और इसे मैं सार्वजनिक रूप से कहूँगा कि वह अच्छी तरह पेश आई, और इतने संयम से काम लिया। मेरे पास आइए, और मुझसे बात कीजिए और मुझसे पूछिए कि कोई आपके मुंह में थप्पड़ लगाए तो आपको क्या करना चाहिए? क्या आपको ईसामसीह की तरह दूसरा गाल उसके सामने कर देना चाहिए? हम सब ऐसा कर सकें तो यह रहने लायक एक दूसरी दुनिया ही हो जाय। लेकिन यह जाहिर है कि पुलिस के वर्ग से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह दूसरा गाल भी आपके सामने कर देगा। इसलिए, इन महान समस्याओं को समझिए जिनका कि हमें यहां सामना करना पड़ रहा है, और जिन्हें हल करने के लिए कठिन परिश्रम चाहिए।

अब एक दूसरी बात लीजिए। भारत सरकार या प्रांतीय सरकार के पास रुपयों की एक खास निश्चित रकम है। हम इससे बहुत काम लेना चाहते हैं। वही रुपया हम दो बार या तीन या चार बार नहीं खर्च कर सकते। सभी तरह की मांगें आती हैं। हो सकता है कि कभी-कभी हम गलत खर्च कर देते हैं, लेकिन हमने एक रकम को खर्च कर दिया तो हम उसे फिर खर्च नहीं कर सकते। जब रुपया हो ही नहीं तो आप लायेंगे कहाँ से? आप कठिन परिश्रम से रुपया पैदा कर सकते हैं। इसलिए समस्या कठिन परिश्रम और उचित वितरण की हो जाती है। इन सभी समस्याओं, सभी पहलुओं पर ध्यान देना पड़ता है: मैं चाहता हूँ कि विद्यार्थी अवस्था में ही इन बातों पर आप पूरी वस्तुस्थिति और पूरे तथ्यों को सामने रखते हुए विचार करें। कम से कम आप खास बातों पर विचार कर सकते हैं और ऐसा करना चाहिए। आपके अध्यापक आपकी मदद कर सकते हैं। इसके बाद आप अपने को वह भार वहन करने के लिए तैयार कीजिए जो कल आपके कंधों पर पड़ेगा। विद्यार्थी मेरे पास आते हैं, और पूछते हैं कि 'हम लोग राजनीति में भाग लें या न लें?' मैं बराबर कहता हूँ, जरूर भाग लें। लेकिन राजनीति है क्या? राजनीति की यह आश्चर्यजनक कल्पना है कि आप सड़कों पर जुलूस के साथ घूमते फिरें। आप ब्रिटिश शासन के दिनों की आदतों को छोड़ ही नहीं पाते। जब किसी देश के जीवन में संकट आता है, जैसे कि पश्चिमी देशों के जीवन में महायुद्ध के रूप में आया था, तब एक खास उम्र से ऊपर का प्रायः प्रत्येक विद्यार्थी, वह चाहे आक्सफोर्ड का हो चाहे कैंब्रिज या लन्दन या अन्य युनिवर्सिटियों का, या तो स्वयं सेना में भरती हुआ या भरती किया गया, और उसे युद्ध में जाना पड़ा। उसे कालिज छोड़ना पड़ा। अपने देश और अपने लोगों के लिए लड़ना पड़ा। चाहे वह अंग्रेज हों या फ्रांसीसी या जर्मन, सभी अपने देश की रक्षा के लिए लड़ने के

लिए सेना में भरती किए गए। अब भारत के स्वतंत्रता की लड़ाई में लगने पर मैं एक ऐसे संकट काल की कल्पना कर सकता हूँ, जब कालिज वन्द हो जायँ और विद्यार्थी बाहर आ जायें, और इस तरह की बातें हों, लेकिन ऐसा राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए संकट और खतरे के समय के लिए है। यदि इसी तरह का व्यवहार रोज की बात हो जावे—मानो यह कोई आदर्श है जिसे कि लोगों को नकल करना है—तो बेशक इस काम का नतीजा जो कुछ भी हो, जो लोग इसमें लगते हैं यह तो साफ है कि वे अपने को आगे के किसी उपयोगी धंधे के लिए शिक्षा द्वारा नहीं तैयार कर रहे हैं। बात यह है कि भारत का कारबार आगे चल कर जैसा और जगहों में है, प्रशिक्षित लोगों के हाथों में होगा, और अन्त में अपेक्षाकृत अल्पसंख्यक लोगों के हाथों में होगा जिन्होंने प्रौद्योगिक विज्ञान और विज्ञान में प्रथम कोटि की शिक्षा पाई है। संसार में किसी देश का दर्जा इस बात पर निर्भर नहीं करता कि वहाँ की जनसंख्या कितनी है, या वहाँ करोड़ों लोग बसते हैं, बल्कि इस बात पर है कि वहाँ चोटी के कितने आदमी और औरतें हैं, जो कुछ करके दिखा सकते हैं और उचित नेतृत्व कर सकते हैं, और कितने और प्रमुख लोग हैं जो किसी बड़े देश का काम चला सकते हैं। अन्त में यह विशेष योग्यता है जिसकी गिनती होती है, अगर्चे संख्या भी कुछ अंशों में आवश्यक है। क्या आप इसका अनुभव करते हैं कि आपही लोगों में से ये चोटी के लोग, पुरुष और स्त्रियाँ आवेंगे या आना चाहिए? लेकिन यदि शिक्षाकाल को प्रदर्शन करने का समय समझा जाय—सिवाय उस समय के जब कि जैसा मैंने कहा कि राष्ट्र संकट में हो, जबकि सभी बातों को छोड़कर ऐसा करना पड़ता है—तब आप भविष्य के लिए अपने को तैयार नहीं कर रहे हैं। और फिर जिस समस्या का मुझे सामना करना पड़ता है वह आगे आती है। मैं आपसे बताता हूँ कि मेरा सबसे बड़ा सिरदर्द यह है कि भारत में सर्वोच्च कोटि के लोग पर्याप्त संख्या में कैसे मिलें? उनकी संख्या बहुत ही कम है।

जब मैं यह कहता हूँ, तो मैं जानता हूँ कि भारत में सबसे अच्छी और बहुत ही उपयुक्त सामग्री है, और जो कुछ भी है बहुत अच्छा है। मैं आपसे तीन विभागों की बात बताना चाहता हूँ जिनका कि मुझे निजी अनुभव है। भारतीय सेना, नौसेना और हवाई सेना से मुझे बहुत काम पड़ा है। और यह मेरी राय है, जिसका कि विदेशी विशेषज्ञों ने समर्थन किया है, कि हमारी रक्षा संबंधी सेवाओं के नवयुवक भारतीय अफसर प्रथम कोटि के अफसर हैं, न केवल अनुशासन की दृष्टि से, बल्कि मानसिक योग्यता की दृष्टि से भी। मानसिक योग्यता हो, इसका महत्व है, क्योंकि युद्ध अब कसरत और कवायद की वस्तु नहीं रह गया है, इस धंधे में मानसिक योग्यता का मूल्य है, और इस विषय के बड़े योग्य निर्णायकों ने हमें बताया है कि वे युवक भारतीय

अफ़सर की मानसिक योग्यता देखकर दंग रह गए हैं। अब यह एक संतोष की बात है। मैंने साहस और बहादुरी जैसे गुणों की चर्चा नहीं की। ये गुण अच्छे और बहुत जरूरी हैं। लेकिन अन्त में साहस और बहादुरी रहते हुए भी मानसिक योग्यता का महत्व है।

एक दूसरी बात लीजिए। भारत सरकार के वैज्ञानिक अनुसंधानविभाग से भी मेरा सम्बन्ध है, और कुछ हद तक परोक्ष रूप से और ऐसे ही कभी प्रत्यक्ष रूप से, मैं युवक वैज्ञानिकों से मिलता हूँ या उनके विषय में सुनता हूँ। मेरा अपना खयाल है, और इसका विशेषज्ञों ने समर्थन किया है, कि हमारे यहाँ प्रथम कोटि के युवक वैज्ञानिकों का एक बहुत अच्छा दल है, और यह कि उन्हें हमारी प्रयोगशालाओं और विश्वविद्यालयों में आगे की शिक्षा और उचित प्रेरणा का सुयोग मिले, तो हमारे यहाँ और बहुत से प्रथम कोटि के आदमी हो सकते हैं; तात्पर्य यह कि प्रतिभा है, उसके विकास की आवश्यकता है। यदि अवसर मिले तो एक ओर तो यह प्रच्छन्न प्रतिभा है, जो प्रकट हो सकती है, दूसरी ओर लोगों के दिमाग ऐसे कामों की ओर खिंच रहे हैं जो उनके जो भी गुण हैं उन्हें विकसित नहीं होने देते। यह एक बड़ी बात है, और भारत के लोगो के मस्तिष्क में यह कशमकश चल रही है।

इसलिए मैं चाहता हू कि आप इस समस्या पर उसकी समग्रता में दृष्टि डालें और केवल यही न देखें कि क्या ठीक है और क्या गलत है, बल्कि यह देखें कि कहां पर आपको अपनी पूरी शक्ति लगानी है।

अन्त में इस समस्या के एक और पहलू को मैं यहाँ रखना चाहता हूं, अगर्चे वास्तव में इसके अनेक पहलू और दिशायें हैं। यदि मै कहूं तो यह नैतिक पहलू है। यह मेरा विश्वास और यकीन है कि आज की ये संसार-व्यापी समस्यायें केवल रुपये-पैसे या आर्थिक साधनों से या केवल जिसे हम राजनीतिक साधन कह सकते हैं उनसे हल न हो सकेंगी। उनके पीछे आत्मा का महान संघर्ष है जो और संघर्षों में—आर्थिक या राजनीतिक संघर्षों में लक्षित होता है, और यह चाहे आज हल हो चाहे कल, जब तक आत्मा का यह संघर्ष दूर नहीं होता, तब तक किसी भी देश में किसी प्रकार शांति की संभावना नहीं। और अच्छा होगा कि हम इस बात को सदा, और विशेष कर आज स्मरण रक्खें।

परसों महात्मा गांधी के निधन की पहली वर्षी है। उनको दिवंगत हुए एक साल बीत गया। हम सबके लिए और देश के लिए यह कठिन वर्ष रहा है, और फिर भी मैं अनुमान करता हूं कि उनकी मृत्यु ने, उनके जीवन से भी

अधिक हमें उन बातों पर विचार करने का अवसर दिया है जिन के लिए वे दृढ़ता से खड़े थे। और मेरा विश्वास है कि मूलतः वे जिस आदर्श के लिए दृढ़ थे, जब तक हम उसे समझते नहीं, और उस पर आचरण नहीं करते, तब तक हमें सफलता न मिलेगी, या यदि इसी बात को सकारात्मक रूप में कहूं तो यह होगा कि यदि हम उसे समझते हैं और उस पर अमल-करते हैं तो हमारी सफलता निश्चित है। अतएव मैं इस नैतिक पहलू पर, उसके संसार-व्यापी प्रसंग में, और भारत के निकटतर प्रसंग में जोर देना चाहता हूं। आखिर हमें इसी क्षेत्र में काम करना है और भारत काफी वड़ा क्षेत्र है।

जहाँ-तहाँ भारत के नेतृत्व के संबंध में वहुत कुछ बातचीत होती है। मैं ऐसी बातचीत को प्रोत्साहन नहीं देता। जानबूझ कर नेतृत्व के विषय में बातें करना केवल आडंबरपूर्ण मूर्खता है। हमें अपनी ओर देखना चाहिए, और अगर हम अपनी ठीक-ठीक देख-भाल कर सके तो हमें और देशों की सेवा करने के अवसर मिलेंगे, नेता बनकर और उन पर रोब जमा कर नहीं; बल्कि इस लिए कि वह खुद आकर हमारी सेवाओं की इच्छा करेंगे। लेकिन इससे पहले कि हम औरों की सेवा करना चाहें या दूसरों का पथ-प्रदर्शन करना चाहें, हमें ऐसा कर सकने की योग्यता प्राप्त करनी चाहिए।

भारत ने आज संसार में कई कारणों से वड़ा नाम पाया है। लेकिन सबसे मुख्य कारण महात्मा गांधी हैं। उन्होंने ही भारत को इतनी प्रतिष्ठा दी है, और यह प्रतिष्ठा भारत की सेना या नौसेना या संपत्ति के कारण नहीं मिली है, बल्कि इस कारण कि हम में से जो सबसे महान थे, उन्होंने नैतिक क्षेत्र में संसार की, संसार के राजनीतिज्ञों की क्षुद्रता दिखा दी। इसलिए भारत को यह प्रतिष्ठा यों मिली कि लोगों ने भारत की एक विशेष नैतिकता के सिलसिले में कल्पना की। और वे ठीक थे, इस मानी में कि भारत ने गांधी को उत्पन्न किया, यद्यपि हम में से अधिकतर छोटे लोग हैं, और उनका अनुसरण करने के अधिकारी भी नहीं हैं। इसलिए हमें इस समस्या पर नैतिकता के प्रसंग में विचार करना चाहिए। और फिर मैं इस बात पर लौट कर आता हूं कि हममें आपस में चाहे जितना मतभेद हो और मैं मतभेद से घबड़ाता नहीं—लेकिन चाहे हममें मतभेद हो या नहीं हमें अपने मन में साफ समझ लेना चाहिए कि हम गिरे हुए साधनों को न ग्रहण करेंगे, हम हिंसात्मक साधनों को न अपनाएँगे और हम अशिष्ट साधनों का उपभोग नहीं करेंगे। हम अपने देश को अशिष्टता के प्रदर्शन द्वारा, गिरे हुए कामों द्वारा या जहाँ-तहाँ हुई हिंसा द्वारा बड़ा नहीं बना सकते। जब राष्ट्र युद्ध के समय आपस में हिंसात्मक उपायों का प्रयोग करते हैं, तो वही क्या कम बुरा है? लेकिन एक संकीर्ण घरेलू क्षेत्र में,

जैसे सड़कों पर और इसी प्रकार से हिंसा कहीं अधिक कुत्सित हो जाती है। इसलिए मैं आप से अनुरोध करूँगा कि आप इन सब बातों पर विचार करें और यह अनुभव करें कि हम अपने देश और संसार के लिए एक बहुत महत्वपूर्ण समय में रह रहे हैं। हम पर इस समस्या और इस प्रश्न को समझने की एक बड़ी जिम्मेदारी है, जिसमें हम विचार कर सकें कि वह कैसे हल हो सकता है और इस प्रसंग में हमारे लिये उचित कार्य क्या होगा।

उद्योग

उत्पादन हमारी पहली आवश्यकता है

डा० मुकर्जी, मित्रो और साथियो, मैं विशेषकर इस अवसर पर, आपको इस प्रकार संबोधन करने का साहस करता हूँ, क्योंकि कदाचित् हमारी कोई भी दूसरी बड़ी समस्या ऐसी नहीं, जिसमें कि मैत्रीपूर्ण सहयोग की भावना की इतनी आवश्यकता हो, जितनी कि उद्योग, श्रम और देश के साधारण आर्थिक संगठन की समस्या है। यह मेरी कुछ ढिठाई है कि इस सम्मेलन में और उन समितियों में जो आप पिछले कई दिनों से कर रहे हैं, पहले हिस्सा न लेकर, इस करीब-करीब आखिरी दर्जे पर आकर और वह भी मानो कुछ उपदेश देने के लिए, शरीक हुआ हूँ। आप लोगों में से बहुत-से अपने-अपने क्षेत्र में विशेषज्ञ हैं, चाहे वह श्रम का क्षेत्र हो और चाहे उद्योग का। यद्यपि मेरी इन मामलों में बड़ी दिलचस्पी है और शायद कभी-कभी विशेषज्ञों की अपेक्षा भी इस मानी में अधिक अच्छी स्थिति में हूँ, कि एक साधारण आदमी सारी तस्वीर को अपने कार्यक्षेत्र के एक विशेषज्ञ की अपेक्षा ज्यादा अच्छे ढंग से देख सकता है। फिर भी मैं पसंद करता कि पिछले कुछ दिनों के आपके विचार-विनिमय में भाग लेने का अवसर मुझे प्राप्त होता और मैं इस सभा के विचार और जो लोग इस विचार-विनिमय में भाग ले रहे हैं, उनके विचारों की प्रगति से परिचित हो सकता।

यह स्पष्ट है कि इन बहुत महत्वपूर्ण मामलों में मतभेद हैं। और लोगों के दृष्टिकोणों के गहरे भेद हैं। एक ओर आदर्श कहलाने वाली चीजें है, दूसरी ओर जिसे व्यावहारिक दृष्टिकोण कहते हैं वह है। मैंने पाया है कि यह व्यावहारिक कहलाने वाला दृष्टिकोण प्रायः कम से कम व्यावहारिक होता है। व्यावहारिक दृष्टिकोण के लिए यह आवश्यक नहीं कि जहाँ आप हैं उससे एक गज से आगे आप देख ही न सकें, बल्कि इसके लिए तो आवश्यक है कि आप और आगे भी देख सकें। तो, इस तरह के भेद हैं और यह समझना कि इन्हें जादू से दूर किया जा सकता है और यह समझना कि केवल सदभावना से या अच्छे परामर्श द्वारा पूरा मतैक्य पैदा हो सकता है, एक फिजूल सी बात होगी। फिर भी मैं समझता हूं कि दृष्टिकोण के भेदों को दूर किए बिना भी अगर हम यह समझ जायँ कि घटनाओं के विशेष प्रसंग में यह आवश्यक और बहुत वांछनीय है कि लोग मिल-जुल कर काम करें, तो हम एक वातावरण तैयार करते हैं जो हमें कुछ

नई दिल्ली में औद्योगिक सम्मेलन के अवसर पर, १८ दिसम्बर, १९४७ को दिया गया भाषण।

स्थायी न सही, कम-से-कम अर्द्धस्थायी या स्वल्पकालिक परिणामों पर पहुँचा सकने में सहायक होता है।

अब, यह दृष्टिकोण भिन्न क्यों है? मैं अनुमान करता हूँ कि कुछ तो इस कारण कि जीवन के प्रति, जीवन के ध्येयों के प्रति, सामाजिक व्यवस्था आदि के प्रति आदमी के दृष्टिकोण में कुछ अन्तर होता ही है; लेकिन इन बड़ी बातों को छोड़ कर बहुत मोटे ढंग से कहा जाय तो भेद इसलिए उत्पन्न होते हैं कि विविध वर्गों का उद्देश्य कोई-न-कोई लाभ प्राप्त करना होता है। पूँजीपति कुछ लाभ विशेष चाहेंगे, श्रमिक कुछ और चाहेंगे और भोक्ता, उत्पादक, सभी स्वभावतया अपने अपने वर्ग के लिए कुछ न कुछ लाभ चाहते हैं।

लेकिन एक समय आता है, जब कि विरोधी वर्ग आपस में लड़ते जाते है और पुरस्कार गायब हो जाता है और वह किसी के लिए भी बच नहीं रहता। इसलिए ऐसे समयों में यह आवश्यक होता है कि अपने उत्साह को या पुरस्कार जीतने की विशेष इच्छा को आदमी संयत करे और इस तरह पुरस्कार को बचा ले। यह आवश्यक नहीं कि पुरस्कार पाने की आशा ही छोड़ दी जाय, बल्कि यह कि प्रथम वस्तुओं को प्रथम स्थान दिया जाय। अर्थात् पुरस्कार को बचा लिया जाय; फिर या तो मैत्रीपूर्ण ढंग से भविष्य के लिए निर्णय पर पहुँचा जाय, और अगर यही ठीक मालूम हो तो उसके लिए लड़ लिया जाय; लेकिन जब कि लड़ाई से स्वयं पुरस्कार खतरे में पड़ रहा हो, तब स्पष्ट है कि लड़ाई द्वारा उसे प्राप्त करने का उपाय बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण और मूर्खतापूर्ण सिद्ध होगा।

आप सभी जानते हैं कि पिछले कुछ महीनों के भीतर भारत सभी तरह के घोर संकटों में से होकर गुजरा है और हमें बहुत बड़ी-बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ा है। कई तरह के बड़े चीर-फाड़ के बाद भी हम जीवित हैं, और संभवतः इस तरह की चीर-फाड़ में हमें अब न पड़ना होगा। लेकिन इस चीर-फाड़ के परिणाम इतने भयानक हुए है कि हममें से किसी ने नहीं समझा था कि वह इतने बुरे होंगे। हम जानते थे कि परिणाम बुरे होंगे। इसी से हमने चीर-फाड़ का विरोध किया और जिसे कठवैद्यों का इलाज कहेंगे, उसका विरोध किया, लेकिन दुर्भाग्यवश कभी कभी सुनियंत्रित घरों में भी कठवैद्यों की चल जाती है। परिणाम यह हुआ कि चीर-फाड़ हुई, और आपने देखा कि कितन और कैसे-कैसे उलटे-पलटे इसके परिणाम हुए। हम उन परिणामों के असर को अभी दूर नहीं कर सके हैं, और हमें उनसे भी बड़ी समस्याओं का सामना करना है।

जब कि एक ओर हमें इनका सामना करना पड़ा, दूसरी ओर हमने

देखा कि क्रमशः अधिकाधिक बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति उत्पन्न हो गई है। हम वितरण की समस्याओं की बात करते हैं, और वह ठीक भी है। वास्तव में हमारी अधिकांश कठिनाइयाँ, संघर्ष और मुख्य विचार-धाराएं वितरण से ही संबद्ध हैं। वितरण निस्सन्देह महत्वपूर्ण है, फिर भी वितरण की क्रिया तो स्पष्टतः यह है, कि वितरण के योग्य कुछ ठोस वस्तु भी हो। इस तरह हम पुनः उत्पादन की समस्या पर पहुँचते हैं। उत्पादन पहली आवश्यकता हो जाती है, लेकिन इसके साथ वितरण का बहुत निकट संबंध है। वास्तव में आप दोनों को अलग नहीं कर सकते। उत्पादन कई बातों पर निर्भर है, और इन में से एक सबसे महत्व की बात है उत्पादन की मनोवृत्ति। यंत्रादि के रूप में जो भी साधन हमारे पास हों, उनके अतिरिक्त, कौशल होना चाहिए, क्षमता होनी चाहिए और उत्पादन की मनोवृत्ति होनी चाहिए। यदि इस मनोवृत्ति की कमी है, तो अनिवार्य रूप से उत्पादन गिरेगा, जैसा कि वह गिर गया है।

अब, आप पिछले कुछ महीनों का या कुछ वर्षों का चाहे जिस प्रकार विश्लेषण कीजिए। बहुत सी बातें हैं। एक तो युद्ध के परिणाम हैं—कठिन श्रम के बाद एक थकान की-सी भावना। राजनैतिक उथल-पथल के परिणाम हैं; इसी तरह देश के विभाजन के, सांप्रदायिक झगड़ों के और इसी तरह की और बातों के। लेकिन कहना चाहिए कि शायद एक प्रमुख बात जिस का कि औद्योगिक संबंधों में हमें सामना करना पड़ रहा है, वह मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि है, जो कि श्रमिक को अनुभव कराती है कि उसको उसके श्रम का उचित बदला नहीं मिल रहा है, और यह कि हर किसी प्रकार से उसे बराबर दबाया जा रहा है। इससे मालिक वर्ग में यह भावना पैदा होती है कि उनके सामने तरह तरह के खतरे हैं,-श्रमिक पूरा उद्योग नहीं कर रहा है, वह केवल हड़ताल की धमकियां देता है और काम ढीला करता है, इत्यादि इत्यादि। इस तरह वे एक दूसरे के समीप विश्वास के साथ नहीं आते, बल्कि एक चरम विरोध भाव से आते हैं।

हम इस स्थिति से कैसे पार पावें? एक तरफ तो मैं समझता हूँ कि यह कहना बिल्कुल सच है कि श्रमिकों या श्रमिकों के कुछ वर्गों की प्रवृत्ति यह है कि वे राष्ट्र के सामने आई हुई कुछ कठिनाइयों से लाभ उठाएं, हड़ताल करें, काम बन्द करें या ऐसे वक्त में काम ढीला करें जब इस की गहरी क्षति होती है। अगर इस तरह की बात श्रमिकों की तरफ से होती रही—जिनके पक्ष में निस्संदेह देश के बहुसंख्यक लोगों की सहानुभूति है—तो एक बड़े श्रमिक दल और शेष देश के बीच एक दीवार खड़ी होना शुरू हो जायगी। और इस प्रकार की दीवार को बढ़ने देना बहुत अच्छा नहीं है।

इतनी बात तो हुई श्रमिकों के विषय में। जहां तक कि मालिकों का पक्ष

है, मैं आशा करता हूँ कि मेरे इस बयान पर कोई आपत्ति न करेगा कि पिछले युद्ध के समय में, मालिकों के एक वर्ग ने ठीक आचरण नहीं किया। वास्तव में उनका आचरण बहुत ही बुरा और बहुत ही स्वार्थपूर्ण रहा है। और किसी से उचित सौदा करने की बात तो बहुत दूर, वह अधिकतर अपने नफे की बात ही सोचते रहे हैं और कुछ नहीं। मुझे अब भी यह समझ में नहीं आया कि भारत में इतने बड़े और भारी टैक्सों के बावजूद कुछ व्यक्तियों या वर्गों ने इतनी बड़ी संपत्ति कैसे जुटा ली ? कुछ उपाय और संगठन ऐसा करना है कि मनुष्यों के साथ ऐसा शर्मनाक व्यवहार न हो और राष्ट्र को हानि पहुँचाने वाली ऐसी नफाखोरी रोकी जा सके।

इस तरह श्रमिकों के विशेष वर्ग या मालिकों के विशेष वर्ग के दोष ढूंढ़ निकालना सहज है। लेकिन हमें केवल दोष नहीं ढूंढ़ना है, बल्कि उन्हें दूर करने के उपाय ढूंढ़ने हैं। आप हर एक आदमी को देवदूत नहीं बना सकते। अगर लोग इतने उन्नत हो जाएं और उस तरह आचरण करने लगें, तो हमारे सामने समस्याएँ ही न रह जायँगी। एक इलाज यह है कि हम ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न कर दें जिनमें कि उन लोगों के लिए जो देवदूत नहीं है, रहना कठिन हो जाय और वे अपने रास्ते में कठिनाइयां पावें। अर्थात आप न्याय्य व्यवहार और ईमानदारी के प्रति आकर्षण पैदा कर दें और उससे भिन्न आचरण करने वाले यह पाएं कि उन्हें असुविधाओं का सामना करना पड़ता है।

उन लोगों की बात छोड़ दी जाय जो कि व्यवहार और ईमानदारी में कसौटी पर ठीक नहीं उतरते। वास्तविक कठिनाई तब होती है, जब कि ईमानदार लोगों में आपस में संघर्ष होता है। अगर वह पूरी तरह से ईमानदार हैं, उनकी भिन्न भिन्न रायें हैं, तो वह संघर्ष में आयेंगे। साधारणत: वह लोग, जो ईमानदार नहीं हैं, वह आपस के मतभेदों को जल्दी दूर कर लेते हैं, क्योंकि कोई मजबूत चीज नहीं होती जिसे कि वे पकड़े रह सकें। उनके साथ कोई लंगर नहीं होता, जो उन्हें स्थिर रक्खे। वे बस तिरते रहते हैं, और इस तरह घटनाओं के दबाव में, वे समझौता कर लेते हैं। लेकिन ईमानदार लोग जो अपने मन्तव्यों में खूब दृढ़ होते हैं, समझौता नहीं करते क्योंकि वे समझते हैं कि उनके मत से भिन्न तरीका गलत है। अब, मैं मान लेता हूँ कि हममें से जो लोग यहां अधिकतर विद्यमान हैं, वे ईमानदार हैं और ऐसे हैं जिन्होंने इन विषयों पर विचार किया है, और इन पर अपने दृढ़ मत रखते हैं; इसी कारण वे दूसरे व्यक्ति का मत स्वीकार करने में जरा कठिनाई अनुभव करते हैं।

फिर भी एक बड़ी बात हमारे सामने है: वह यह कि आज भारत में हमारे सामने अनेक तरह के संकट उपस्थित हैं। यद्यपि इनमें से कुछ अगली

पंक्ति में आ गए हैं, तथापि वास्तव में हमारी सब से बड़ी समस्या यह है कि क्रमशः राष्ट्र की उत्पादन शक्ति शुष्क हो रही है। इसके हम पर राजनैतिक, आर्थिक और सभी प्रकार के असर पड़ते हैं और इसी से क्रमशः खतरों का मुकाबला करने की हमारी शक्ति क्षीण होती जाती है। इसलिए अपनी उत्पादन शक्ति जब को शुष्क हो जाने से आपको बचाना है।

मुझे विश्वास है, आप इन बातों पर विचार करते हैं, और आपने इन विषयों पर कई प्रस्ताव स्वीकार किए हैं। हमें अपना उत्पादन बढ़ाना है; हमें अपनी राष्ट्रीय संपत्ति और राष्ट्रीय आय की वृद्धि करनी है, और तभी यह संभव होगा जब कि हम अपनी जनता के रहन-सहन के स्तर को ऊंचा कर सकें।

जहाँ-तहाँ मौजूदा सम्पत्ति का अधिक न्यायसंगत वितरण करके, हम स्थिति को कुछ हद तक ठीक कर सकते हैं। इसे करना चाहिए परन्तु मैं इसलिए नहीं कि इससे रहन-सहन का स्तर ऊँचा करने में विशेष अन्तर आवेगा—अन्तर तो आवेगा लेकिन कुछ विशेष नहीं— लेकिन इसे करना चाहिए, चूंकि यह उन्नति के अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है और यदि ऐसा नहीं होता तो यह भावना बराबर बनी रहती है कि लोगों के साथ न्याय नहीं हो रहा है, और तब वे जो काम करते हैं, जी लगाकर नहीं करते। इसलिए, यह सबसे पहले आवश्यक हो जाता है कि जहाँ कहीं भी घोर विषमताएँ हों, वहाँ इन विषमताओं को कम करने के उद्योग में हम लगें। लेकिन अन्त में, अधिक सम्पत्ति सभी प्रकार और ढंग के माल के अधिक उत्पादन से ही आवेगी।

अनुमानतः, आप लोगों में से बहुत से बड़े उद्योगों के प्रतिनिधि हैं, और मुझे संदेह नहीं कि बड़े उद्योगों द्वारा उत्पादन आवश्यक है। लेकिन वर्तमान घटनाओं के प्रसंग में मैं कहना चाहूँगा कि जब हम उत्पादन की वृद्धि के विषय में बात करते हैं—वह चाहे अन्न का हो, चाहे किसी दूसरी वस्तु का—तब यह आवश्यक है कि हम छोटे पैमाने पर होने वाले उत्पादन को भी खूब प्रोत्साहन दें। इस विषय पर अक्सर इस तरह विचार किया जाता है, जैसे बड़े और छोटे पैमाने पर होने वाले उत्पादनों के बीच कोई स्वाभाविक संघर्ष हो। शायद, इस तरह इस सवाल को और तरीके से सोचा जा सके। लेकिन संघर्ष के इस खयाल को अलग रख कर यह मुझे स्पष्ट जान पड़ता है कि विशेषकर आजकल और संभव है आगे भी, छोटे और बड़े दोनों को साथ ही साथ चलना पड़े। और खासकर स्वल्पकालीन योजना के अन्तर्गत आज सभी प्रकार की चीजों के छोटे पैमाने पर होने वाले उत्पादन को बहुत अधिक बढ़ाने की आवश्यकता है, क्यों कि सभी तरह की चीजों की कमी है। इस समय हमारी वास्तविक आवश्यकता यह है कि एक ऐसा मनोवैज्ञानिक वातावरण उप-

स्थित किया जाय, और एक इस प्रकार का संगठन हो कि जिससे दोनों तरह के उत्पादनों के पारस्परिक संघर्षों का निपटारा हो सके।

अब, जब कि हम और दुनिया के साथ साथ कुछ संकटों का सामना कर रहे हैं, और साथ ही हमारी कुछ अपनी खास मुसीबतें भी हैं, तो हमें कैसे आगे बढ़ना चाहिए ? जो पहला विचार किसी के मन में उठता है वह यह है कि इस टूटती हुई दुनिया में जो कि फिर एक विशाल संघर्ष की ओर बढ़ रही है, जितनी जल्दी हम भारत को अपने पैरों के सहारे खड़ा करते हैं, उतना ही अच्छा है। यदि इस समय हम अपना पूरा जोर लगा सकेंगे और जीवित रह सकेंगे तभी निकट भविष्य में प्रभाव रहेगा। कोई भी, बड़े से बड़ा विशेषज्ञ भी यह नहीं कह सकता कि कब तक यह अनिश्चित शांति दुनिया में बनी रहेगी। हम आशा करते हैं कि यह बहुत वर्षों तक बनी रहेगी, लेकिन यह किसी समय भी भंग हो सकती ह। और यदि ऐसा होता है, तो आप अनुभव करेंगे कि सभी तरह की अप्रत्याशित बातें हो सकती हैं। और अगर...शांति भंग हुई तो वह हमें ऐसा हिला देगा जैसा कि आज तक किसी अन्य बात हमें नहीं हिलाया है।

सवाल यह है कि इस आकस्मिक संकट का सामना हम कैसे करें ? यह कभी हो सकता है कि हम कोई घटना घटने से पहले आर्थिक व्यवस्था की दृष्टि से एक दृढ़, संतुलित भारत का निर्माण कर लें जिसका अपना काफी मजबूत रक्षा संगठन हो। याद रखिए कि आज रक्षा संगठन के क्या अर्थ होते हैं। लोग फौज और नौ-सेना और हवाई शक्ति की बात करते हैं। स्पष्ट है कि रक्षा का तात्पर्य इन से ही है। लेकिन फौज और नौ-सेना और हवाई शक्ति से कहीं अधिक रक्षा का अर्थ उद्योग और उत्पादन है। नहीं तो सारे संसार के सिपाही भी भारत का कुछ भला न कर सकेंगे। लोग अनिवार्य फौजी सेवा की बात करते हैं। एक दृष्टि से, मैं, साधारणतः अनिवार्य फौजी सेवा के पक्ष में नहीं हूँ। लेकिन मैं इस मानी में इसके पक्ष में हूँ कि यह जनता को कुछ अधिक अनुशासन सिखावेगी। शारीरिक उन्नति की दृष्टि से भी मैं इसके पक्ष में हूँ।

लेकिन अनिवार्य सैनिक शिक्षा की बात, रक्षा की दृष्टि से, कोई विशेष महत्व नहीं रखती। क्योंकि वास्तविक समस्या यह नहीं है कि लोगों में युद्ध की मनोवृत्ति पैदा की जाय, बल्कि वह यह है कि उन्हें लड़ाई के साधन प्राप्त हों। अगर आपके यहाँ करोड़ों आदमी दकियानूसी हथियार और लाठियाँ लिए हुए हों, तो उससे बहुत लाभ नहीं होगा। आपको युद्ध के सभी मुख्य साधनों का उत्पादन कर सकना चाहिए। वास्तव में युद्ध में हथियार और सभी तरह की चीजें आवश्यक हैं। अगर आप औद्योगिक दृष्टि से मजबूत हैं तो आप अपनी फ़ौज, नौ-सेना और हवाई शक्ति थोड़े

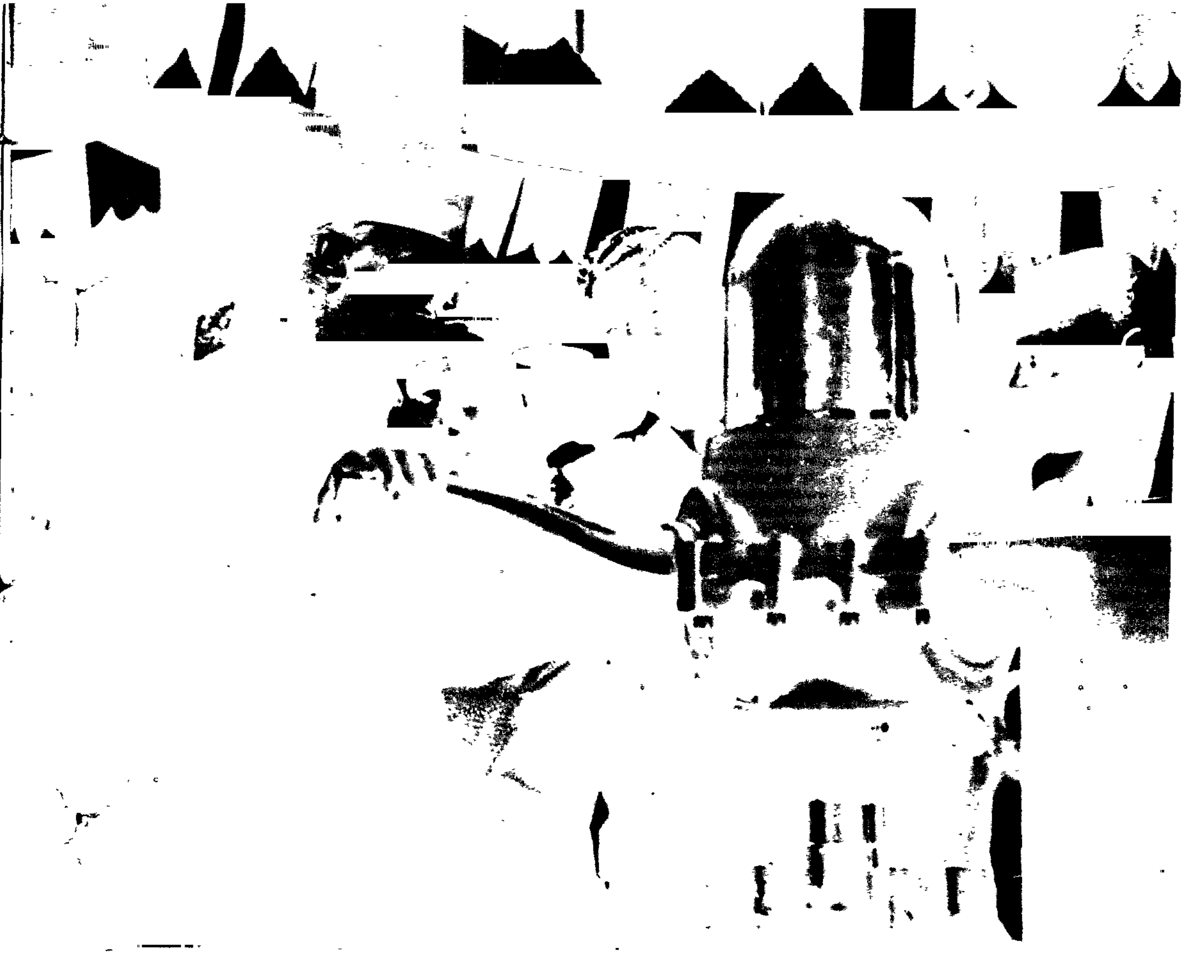

हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट फैक्टरी, बंगलोर में श्री नेहरू

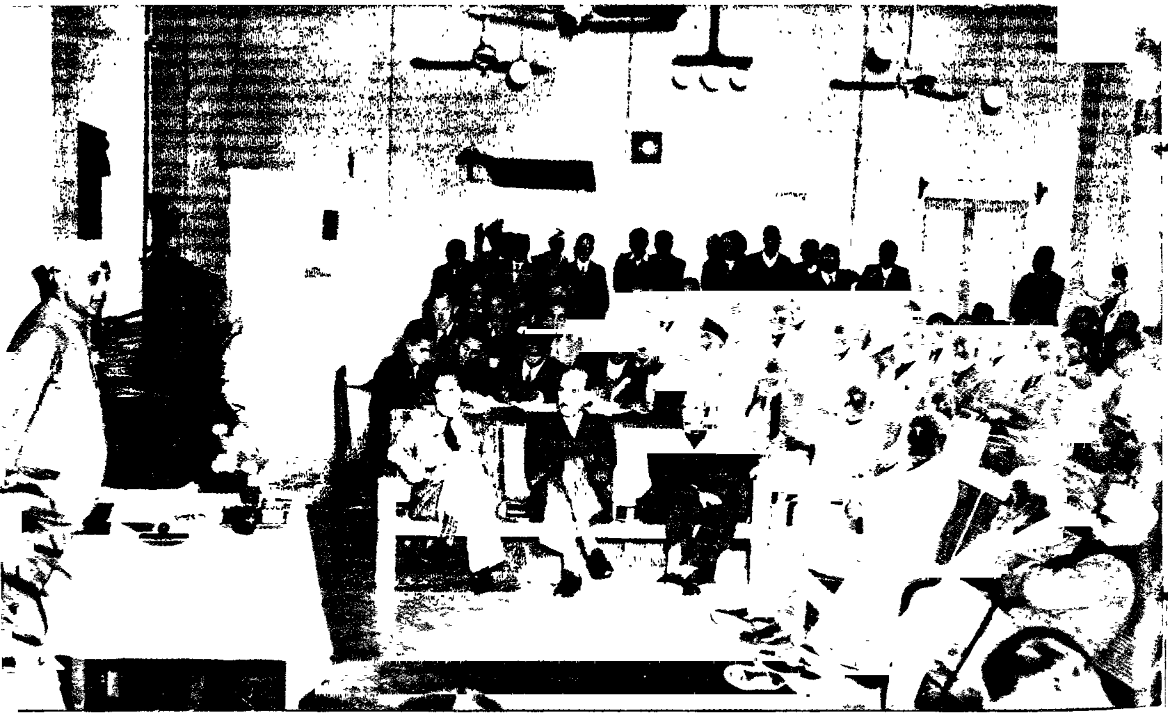

नई दिल्ली में सिंचाई के केन्द्रीय बोर्ड के उन्नीसवें वार्षिक अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए

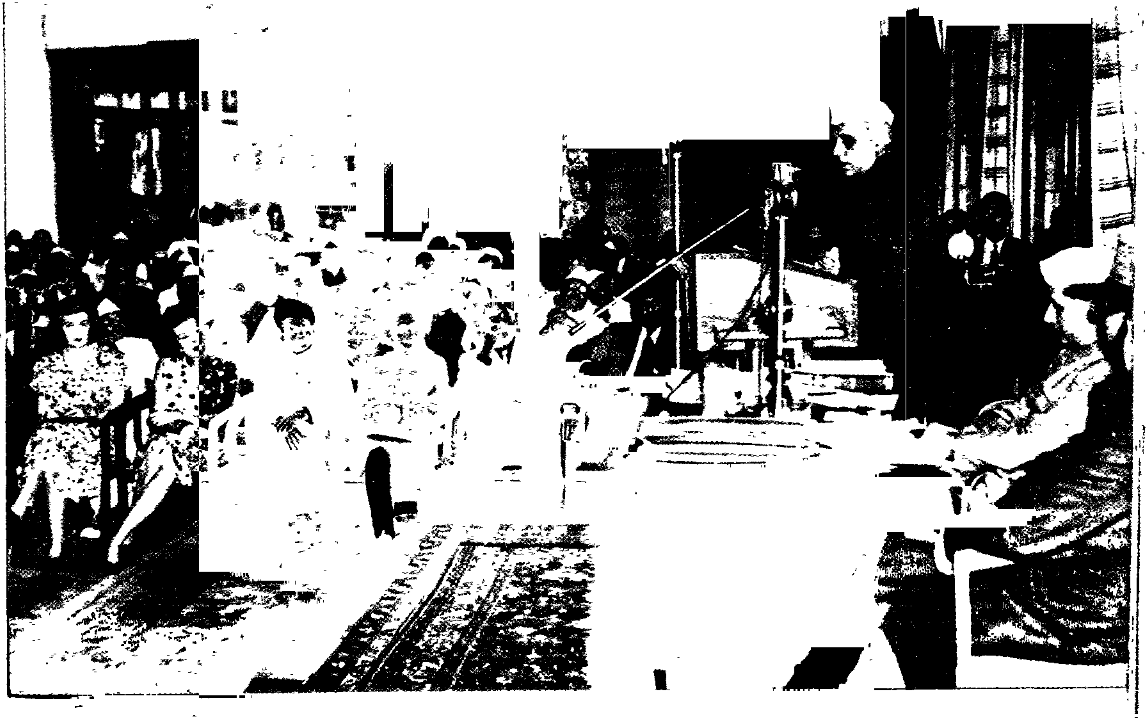

नई दिल्ली में फेडरेशन आफ इंडियन चेम्बर्स आफ कामर्स एण्ड इन्डस्ट्री के वार्षिक अधिवेशन में भाषण

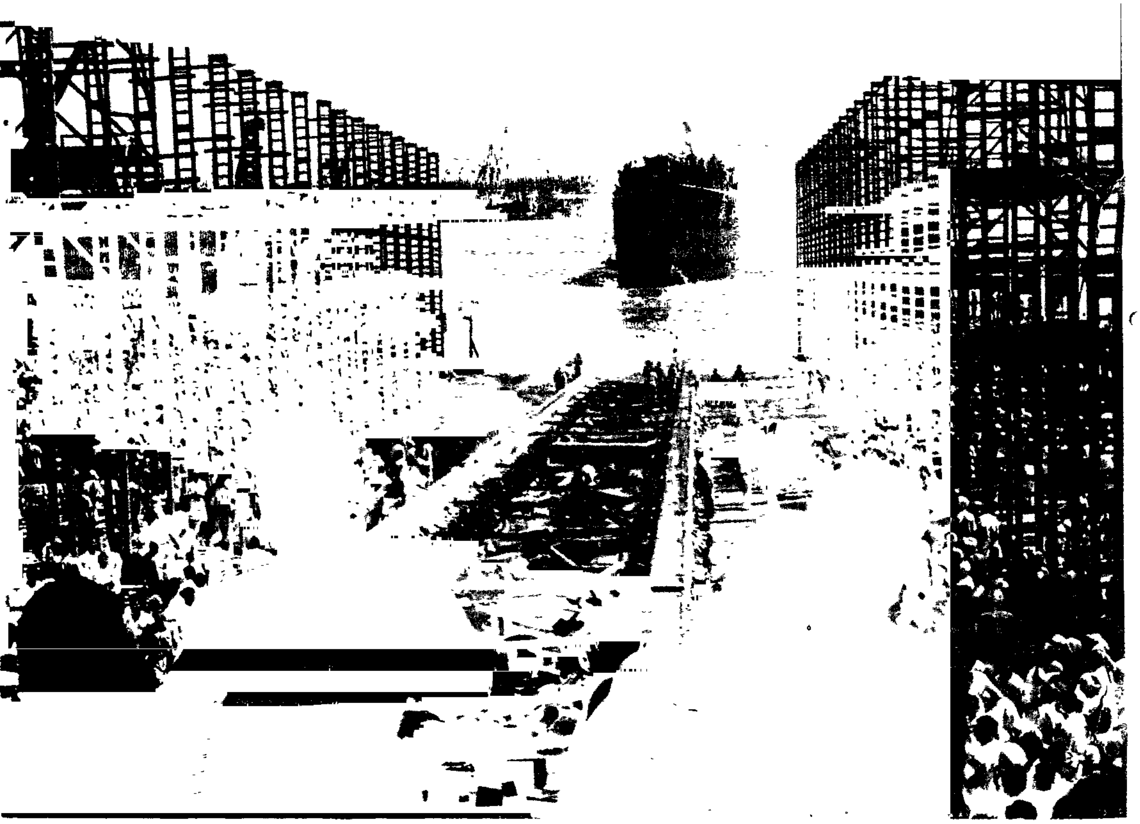

'जल उषा' को समुद्र में उतारते समय

समय में तैयार कर सकते हैं। अगर आप अपने जंगी जहाज़, और सब कुछ विदेश से खरीदने पर निर्भर करते हैं और वह स्रोत शुष्क हो जाता है, और कुछ हज़ार आदमी 'युद्ध, युद्ध' चिल्लाते रहते हैं, तो वह बिल्कुल बेकार है। इसलिए, अन्तिम विश्लेषण करने पर यह लड़ाई का मामला भी आपको उत्पादन, और बड़े-छोटे उद्योगों की उन्नति की आवश्यकता पर पहुँचाता है।

पिछले युद्ध के जीतने में कई बातों ने मदद दी थी। लेकिन मेरी समझ में अन्तिम कारण दो ही थे : अमेरिकी उद्योग की आश्चर्यजनक क्षमता और वैज्ञानिक अनुसन्धान। इन्हीं दो चीजों ने युद्ध जीतने में जैसी मदद थी उतना सिपाहियों तथा औरों चीज़ों ने नहीं। इसलिए बाहरी और भीतरी, हर एक दृष्टि से उत्पादन के ढीले पड़ने को रोकना चाहिए और नए व्यवसायों के निर्माण द्वारा इसे तेजी से आगे बढ़ाना चाहिए। हमें बेकारी की, और रहन सहन के स्तर को उठाने की समस्याओं के हल करने में लगना चाहिए। यह तभी हो सकता है जबकि उद्योग के क्षेत्र में शान्ति हो। वहाँ शान्ति हुए बिना यह करना असम्भव होगा। और मैं यह मानता हूँ कि इस सम्मेलन का उद्देश्य यह है कि कम से कम कुछ काल तक उद्योग के क्षेत्र में शान्ति रहे, जिसमें कि हमें दम लेने का अवसर मिले।

मैं अभी एक प्रस्ताव पढ़ रहा था, जिसके मसविदे में तीन साल की अवधि बताई गई है। किसी विशेष अवधि में मेरी दिलचस्पी नहीं, और कुछ समय से मेरे मन में दीर्घ-कालीन उद्देश्यों की बात—सिवाय एक आदर्शवादी रूप में—उठी ही नहीं है। मैं अपने लिए कुछ दिन या कुछ सप्ताह आगे का कार्यक्रम नहीं बना सकता। मैं नही जानता कि मैं कहाँ रहूँगा। इसलिए मेरी इसमें ज्यादा दिलचस्पी नहीं है कि यह अवधि दो साल की हो या तीन साल की।

तात्पर्य यह है कि भारत के लिए यह बहुत बड़ी बात होगी, अगर आप सब, और वह लोग जिनके आप प्रतिनिधि हैं, इस परिणाम पर पहुँचे कि इस प्रस्ताव को अवसर देना चाहिए और कुछ काल के लिए ऐसा समझौता होना चाहिए कि कोई हड़तालें न हों और कोई बहिष्कार न हों। और ऐसा आप किस तरह कर सकते हैं? स्पष्ट है कि जब तक कि कोई ऐसी संस्था या संगठन न हो, जो कि झगड़ों का संबंधित लोगों के लिए सन्तोषप्रद या कमोबेश सन्तोषप्रद—क्योंकि जब दो पक्षों में झगड़ा हो तो १०० प्रतिशत किसी का सन्तोष नहीं हो पाता—निबटारा न कर सके, तब तक यह आशा रखना बहुत कठिन है। मैं अनुमान करता हूँ कि इस तरह का संगठन या योजना तैयार करना आदमी की बुद्धि या इस सरकार की बुद्धि के भी बाहर की बात नहीं होनी चाहिए। जब भी ऐसी योजनाएँ पेश होती हैं, तो यह एक अजीब बात है कि दोनों तरफ़ से आपत्तियाँ की जाती हैं।

अभी उस दिन मैं कलकत्ते में था। वहाँ असोसिएटेड चेंबर्स आफ कामर्स के सभापति श्रोताओं से बार बार कहते रहे कि सरकार को किसी प्रकार से बीच में पड़ना या हस्तक्षेप करना न चाहिए। उन्होंने समझा कि अगर सरकार अलग खड़ी रही तो उद्योग की उन्नति होगी। मुझे यह सुनकर बहुत कुतूहल हुआ, क्योंकि मैंने समझ रखा था कि यह विशेष दृष्टिकोण अब धरती से उठ गया है। लेकिन कलकत्ते में यह अब भी मौजूद है। कम से कम, श्रमिक वर्ग सरकार का हस्तक्षेप साफ साफ चाहता है। जब श्रमिकों से पंचायती या अदालती फैसले के लिए कहा जाता है, तो वे उसका स्वागत करते हैं। लेकिन इस विषय में उनकी कल्पना यह है कि यदि वे सफल होते हैं तब तो ठीक है। नहीं तो वे जो चाहें करने के लिए स्वतंत्र हैं। ऐसी मनोवृत्ति को मैं समझ सकता हूँ। यह पुराने समय का एक अवशेष है। लेकिन व्यवहारतः अगर आप फैसलों को इस दृष्टि से देखते हैं तो पंचायती या अदालती फैसला असंभव हो जाता है। इसलिए यदि हम एक नियमित निष्पक्ष संगठन बना सकते हैं, और मैं समझता हूँ कि बना सकते हैं यद्यपि यह मानी हुई बात है कि आधुनिक संसार में यह संगठन श्रमिकों के पक्ष में झुकेगा—तो हम इन कठिनाइयों को, या जो कठिनाइयाँ समय समय पर उठें, उन्हें दूर कर सकते हैं।

मैं इस समय भविष्य की आर्थिक नीति और राष्ट्रीयकरण के गुण-दोष के विषय में अन्तिम निर्णय के सम्बन्ध में नहीं कह रहा हूँ, यद्यपि ये प्रश्न भी अनिवार्य रूप से उठते हैं। इस समय तो मेरी समझ में पहला कदम यह होना चाहिए कि छोटे छोटे भेदों का आपस में निबटारा हो जाय, और हम नीति सम्बन्धी बड़े ध्येयों पर विचार करते रहें। नीति सम्बन्धी बड़े ध्येयों के विषय में मैंने अभी कुछ कलकत्ते में तथा कुछ और जगहों पर कहा है। उसे मैं यहाँ न दुहराऊँगा।

एक ऐसे व्यक्ति की हैसियत से बोलते हुए, जिसका कि उद्योग के समाजीकरण में विश्वास है, मैं यह कहना चाहूँगा कि आजकल अकसर वर्तमान उद्योगों को ही सरकार के अधिकार में लाने की बात पर ध्यान दिया जाता है, न कि राज्य-द्वारा या राज्य के अंकुश में नए उद्योगों के निर्माण पर। बहुत से मामलों में, यह जरूरत पड़ सकती है कि बुनियादी किस्म के मौजूदा उद्योगों को, राज्य अपने हाथ में ले ले। लेकिन मेरी राय से इस समस्या के विषय में यह बहुत अच्छा रहेगा कि राज्य अपना अधिक से अधिक ध्यान मौजूदा ढंग के नए उद्योगों पर दे, और उन पर पूरा नियन्त्रण रखे, क्योंकि तब राज्य के साधन, आगे की ओर संयमित उन्नति के लिए उपयोग में आवेंगे, न कि केवल एक मौजूदा चीज पर अधिकार करने के लिए। यह जरूर है कि कभी कभी ऐसा भी करना पड़ता है।

अगर मुझसे पूछा जाय तो मैं यह कहना चाहूँगा कि कुछ हद तक मेरा चिन्तन

एक वैज्ञानिक झुकाव लिए हुए होता है, और मैं स्थिर की अपेक्षा गतिशील ढंग से विचार करने की कोशिश करता हूँ। मौजूदा उद्योग, जिसके विषय में अधिकतर लोग क्या पूंजीवादी, क्या समाजवादी और क्या साम्यवादी, एक दम गतिहीन ढंग से विचार करते हैं, मानो सदा इसी रूप में चलता जायगा; जब कि वस्तुस्थिति यह है कि वह बिल्कुल दकियानूसी हो गया है, और उसके अधिकांश भाग को नष्ट कर देने की आवश्यकता है।

यदि आप किंचित् गतिशील ढंग से विचार करें, तो आप देखेंगे कि हम परिवर्तन के एक बड़े युग में से गुजर रहे हैं, जब कि शक्ति के बिल्कुल नए स्रोतों को उपयोग में लाया जा रहा है। आज न सिर्फ औद्योगिक क्रान्ति या विद्युत् क्रान्ति के ढंग की चेष्टाएं हो रही हैं, बल्कि उससे भी दूर के परिणाम रखने वाली बातें हो रही हैं। अगर औद्योगिक क्रान्ति के समय कोई उससे पूर्वकाल की स्थिति को ही ध्यान में रखते हुए यह सोचता कि हमें अमुक चीज़ें प्राप्त करनी हैं, तो कुछ समय बाद, जब कि नया युग आ गया और शक्ति के नए साधन अस्तित्व में आ गए, तब नई व्यवस्थाओं में उसे अपने लिए कोई जगह न दिखाई दी होती। इसी तरह हम एक नए व्यावसायिक युग के सन्निकट हैं और चाहे दस या पन्द्रह या बीस वर्ष लगें—इस से अधिक समय तो मेरी समझ में क्या लगेगा—उत्पादन के हमारे बहुत से तरीके बिल्कुल दकियानूसी हो जायँगे, और जिस चीज़ पर आप अधिकार करने की सोच रहे हैं उसका, सम्भव है, तब कोई मूल्य ही न रह जाय। इसे चेतावनी समझिए। मैं उम्मीद करता हूँ कि ऐसा कहने से लोग इतना न डरेंगे, कि वे किसी व्यवसाय में पूंजी लगाने का खयाल छोड़ दें। लेकिन आज आदमी को इन परिवर्तनों के बारे में बहुत सतर्क रहना पड़ता है, और उसे बीते हुए समय की न सोचकर आगे की सोचना चाहिए, क्योंकि अतीत मर चुका और बीत चला, हम उसके पास लौट कर नहीं जा सकते, और वर्तमान भी बहुत तेजी से बदल रहा है। यदि आप भविष्य की दृष्टि से देखें, तो हमारे आज के बहुत से संघर्ष अनावश्यक जान पड़ेंगे। तब कम से कम, एक नया पहलू आप को दिखाई देगा, जिससे पुराने ढंग की लीक से आप बाहर आ जायँगे।

मैं नहीं कहता कि आप अपने विचारों और विश्वासों को छोड़ दीजिए। आप उन पर टिके रहिए। केवल यह अनुभव कीजिए कि आपको विशेष विचारधारा के लिए भी पनपने का अधिक अवसर उस समय मिलेगा, जब कि शान्ति स्थापित हो और अगले साल दो साल के लिए हम इसी समय कुछ इकट्ठा कर लें, और इस बीच में हम अपनी उन दूसरी नीतियों का विकास करें। अगर आप लड़ लेना चाहते हैं, तो उसके बाद लड़ भी लीजिए। लेकिन कम से कम कुछ ऐसी चीज़ भी सामने हो जिसके लिए लड़ाई की जा सके। नहीं तो जिस चीज़ के लिए हम लड़ें, वही गायब हो जाय; तो यह बात न तो अच्छी ही होगी और न अक्लमन्दी की ही।

कल रात मैंने सुना--इसे अखबारों में मैंने खुद नहीं देखा है--कि बम्बई में यह घोषणा हुई है कि निर्णायक व्यवस्था की स्थापना के और कंट्रोल उठाने के विरुद्ध एक दिन की हड़ताल होगी जिसे सांकेतिक हड़ताल कहा गया है, और मैं इन दो बातों के विषय में यहाँ कुछ न कहूँगा। लेकिन मुझे किसी भी संगठन के लिए, चाहे उसके जैसे भी विचार हों, यह एक आश्चर्यजनक रूप से गैरजिम्मेदारी की बात जान पड़ती है, कि वह इस समय और इस ढंग से हड़ताल संगठित करे, चाहे वह एक ही दिन भी तथा सांकेतिक ही क्यों न हो। इससे यह दिखाई देता है कि राजनैतिक, अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय आर्थिक, मानवी और वास्तव में किसी भी स्थिति को समझने का ज़रा भी प्रयत्न नहीं किया गया। मैं किन्हीं लोगों की, उनसे हर मामले पर बात किए बिना आलोचना नहीं करूंगा लेकिन मैं मानता हूँ कि मेरी समझ में यह नहीं आता कि किस तरह कोई जिम्मेदार आदमी इस तरह की सांकेतिक हड़ताल की बात कर सकता है, जब कि बराबर इसकी सम्भावना है कि इससे और बड़ी समस्यायें, और बड़े संघर्ष उठ खड़े हों। और जब कि हम सब इस कठिन स्थिति में एक मार्ग निकालने की कोशिश में लगे हुए हैं, चाहे वह अल्पकालिक रास्ता ही क्यों न हो, इस तरह की सांकेतिक हड़ताल में पड़ना मुझे बहुत अनुचित और बड़े दुर्भाग्य की बात जान पड़ती है।

अब यह हड़ताल, जैसा मैंने अभी सुना है, बाध्य निर्णय और कंट्रोल के उठाने के विरुद्ध है। इन मामलों पर मतभेद हो सकता है। लेकिन जहाँ तक कंट्रोल उठाने का विषय है, हमने एक नीति की घोषणा की है, जोकि बहुत ही सतर्क नीति है। कंट्रोल का विषय बहुत ही जटिल और कठिनाई का है, और उसके बारे में रायें अलग-अलग हैं। जिस निर्णय पर सरकार पहुँची है, वह निर्णय बहुत विचार के बाद किया गया है। तिस पर भी, हमने इस का प्रबन्ध कर रक्खा है कि यदि कोई बात ठीक न बैठी, तो हम पुरानी स्थिति पर लौट जायँ, या अपनी परिस्थिति पर फिर से विचार करें। कंट्रोल उठा लेने पर भी हमने कंट्रोल का पूरा यंत्र बना रक्खा है। अब हम सही मार्ग पर हैं या गलत मार्ग पर, यह एक अलग बात है। हो सकता है हम गलत मार्ग पर हों। लेकिन इन मामलों में आगे बढ़ने का एक ही तरीका है, वह यह कि जैसे भी भूल जान पड़े उसे सुधारने के लिए तैयार रहें। हम इसके लिए तैयार हैं। लेकिन जो बात मैं आपके सामने रखना चाहता हूँ वह यह है: यह समझा जाता है कि यह सरकार लोकप्रिय सरकार है, और जनता के एक बहुसंख्यक भाग की प्रतिनिधि है। यदि ऐसा है, और यदि सरकार इस तरह का कोई काम करती है, तो उन लोगों को जोकि इस काम का विरोध करते हैं, किस ढंग से अपना काम करना चाहिए? या तो वे बहुसंख्यक हैं या अल्पसंख्यक। यदि वे बहुसंख्यक हैं तो उनके लिए सरकार को खतम कर देना बहुत आसान है। अगर वह स्वल्पसंख्यक हैं तो वे जो कुछ भी करना चाहें उसका यह अर्थ होता है कि वे बहुसंख्यकों पर बल प्रयोग करने की कोशिश कर रहे

हैं। और अल्पसंख्यकों को कुछ समय के लिए सफलता भी मिल जाय तो इसका अनिवार्य परिणाम यह हो सकता है कि बहुसंख्यकों को क्रोध आ जाय और वे अल्पसंख्यकों के पीछे पड़ जाएँ।

आखिर अगर आप झगड़ा शुरू करते हैं और समाज का एक वर्ग दूसरे के खिलाफ बल प्रयोग करना चाहता है, तो दूसरा वर्ग भी वैसा कर सकता है। अर्थात् वर्ग के संकीर्णतम दृष्टिकोण से भी यह धंधा बुद्धिमानी का नहीं है और न इससे कुछ लाभ ही है। बल्कि इससे समाज की बड़ी हानि होती है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि इस तरह की सांकेतिक हड़ताल न की जायगी, क्योंकि एक दिन के उत्पादन की इससे हानि ही नहीं होती, बल्कि इससे अनेक छोटे-छोटे संघर्ष हो सकते हैं। अगर्चे हड़ताल चाहने वालों का अपनी इच्छाओं को किसी दूसरे ढंग से प्रकट करना उचित हो सकता है, जैसे सभाएँ करके या शान्तिपूर्वक प्रदर्शन द्वारा यह दिखाना कि वह कंट्रोल का उठना या बाध्य निर्णय नापसन्द करते हैं।

जिन लोगों के ऐसे विचार हों, उनसे मैं प्रार्थना करूँगा कि वे अपने निश्चयों पर पुर्नविचार करें और एक उदार ढंग से, या मैं कहूँ कि एक अधिक विवेकयुक्त ढंग से यह सोचने का प्रयत्न करें कि उनके कामों के क्या परिणाम होंगे। यह हो सकता है कि बहुत सी बातें ऐसे कारणों से होती हैं, जोकि सतह पर दिखाई नही देते। जैसे कोई चुनाव होने जा रहा हो और लोग समझते हों कि यदि वह एक विशेष प्रकार से आचरण करेंगे तो इन चुनावों में—वह चाहे म्यूनिसिपैलिटियों के हों चाहे कार्पोरेशन के और चाहे प्रान्तों के—उन्हें मदद मिलेगी।

अन्त में, यह हम सब के विचार करने की बात हो जाती है कि क्या हम किसी छोटे चुनावों का ध्यान रक्खें, या किन्हीं स्थायी और बड़े हितों का। हाँ, अगर हमारी दिलचस्पी इनमें से पहले में, यानी चुनावों तथा छोटी छोटी बातों में है, तो बड़ी बातों के विषय में कुछ कहना फिजूल है। हम उन्हें न समझ सकेंगे। मुझे विश्वास है कि इस देश में, पर्याप्त मात्रा में, इस बात के पक्ष में निश्चय और बुद्धि है कि इन छोटी कठिनाइयों को दूर कर बड़े प्रश्नों का सामना किया जाय। इसलिए, मैं दुबारा यही कहूँगा कि मैं आशा करता हूँ कि इस सम्मेलन से बहुत ठोस नतीजा निकलेगा, यानी हम लोग दोस्ती के ढंग से आगे बढ़ेंगे, हम लोग उद्योग के क्षेत्र में एक काल के लिए किसी प्रकार का शान्ति-समझौता करेंगे, हम इस बात का उपाय करेंगे कि हर एक के साथ जहाँ तक संभव हो न्याय हो, और इस बीच हम लोग बैठ कर बड़ी नीतियों के सम्बन्ध में विचार करेंगे।

उत्पादन बढ़ाओ या खत्म हो जाओ

मित्रो और साथियो, आज उत्पादन सम्बन्धी संकट के बारे में कुछ कहने की मुझसे अपेक्षा की जाती है। लेकिन मेरे दिमाग में और बातें और दूसरे संकटों के विचार भरे हुए हैं। हम बहुत सी वस्तुओं के उत्पादन की बात करते हैं, लेकिन शायद सबसे महत्व की चीज जो कि कोई राष्ट्र पैदा कर सकता है, वह है भले और सच्चे मनुष्य और स्त्रियां। भारत में ऐसा एक व्यक्ति है जो कि अपनी भलाई, सचाई और आत्म-शक्ति से इस प्राचीन देश को आलोकित करता है, और हम निर्बल, भूल करने वाले नश्वरों पर अपना प्रकाश डालता है, और हमें भटकने से रोकता है। हम सही मार्ग से काफी भटक गए हैं, और अपने उत्तराधिकार को और अपने भले नाम को हमने नष्ट किया है। अब यह सब बातें बहुत हो चुकीं। हमें अब रचना, निर्माण, सहयोग और अपने बंधु मनुष्यों के प्रति सद्भावना के पथ पर आगे बढ़ना चाहिए।

उत्पादन का अर्थ है सम्पत्ति। यदि हम उत्पादन नहीं करते तो हमारे पास काफी सम्पत्ति नहीं होगी। वितरण भी उतने ही महत्व का प्रश्न है, जिसमें कि कुछ थोड़े व्यक्तियों के हाथों में सम्पत्ति एकत्र न हो जाय। फिर भी, वितरण की बात सोचने के पहले उत्पादन होना चाहिए।

आप जानते हैं कि हमें आज बहुत सी समस्याओं का—आर्थिक समस्याओं का और दूसरी समस्याओं का—सामना करना है। नियंत्रण और मुद्रास्फीति के, और इसी तरह के अन्य भी बहुत-से प्रश्न हैं। युद्धकालीन अर्थव्यवस्था से शान्तिकालीन अर्थव्यवस्था पर लौटने का क्रम बहुत मन्द रहा है। और वास्तव में उन्नति के बजाय बहुत बार अवनति हुई है। अब, यह बहुत ही गम्भीर विषय है, जिस पर कि हमें विचार करना है, क्योंकि जैसे जैसे इस तरह की बातें होती रहती हैं, वैसे-वैसे हमारी अर्थव्यवस्था में एक व्यापक ह्रास आता है। उससे सारे भारत, सारे राष्ट्र की हानि होती है। इसी के साथ, आज हमें एक बहुत बड़े पैमाने पर लोगों के एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर बसने की और विशालसंख्यक शरणार्थियों की महान समस्यांओं का सामना करना है। शरणार्थी उत्पादन नहीं कर रहे हैं। पूर्वी पंजाब बहुत उत्पादन नहीं कर रहा है, और दुर्भाग्य से ये लोग देश के लिए एक बोझ बने हुए

---

१८ जनवरी, १९४८ को नई दिल्ली से प्रसारित एक बातचीत।

हैं। यह बात नहीं कि वे बोझ बनना चाहते हैं, यह बात भी नहीं कि वे उत्पादन के अयोग्य हैं, लेकिन स्थितियों ने उन्हें इस दुःखद अवस्था में बरबस डाल दिया है। इसलिए हमें उत्पादन के बारे में, अब तक उस पर जो विचार किया गया है उससे भी अधिक गहराई से विचार करना है।

हम चाहते हैं कि हमारे खेतों से, पुतली घरों से और कारखानों से सम्पत्ति का एक प्रवाह निकले, जो देश के करोड़ों व्यक्तियों तक पहुँचता रहे, जिससे कि हम आखिरकार भारत के सम्बन्ध के अपने स्वप्नों को पूरा हुआ देख सकें।

हम स्वतंत्रता की बात करते हैं, लेकिन जब तक आर्थिक स्वतंत्रता न हो, तब तक राजनैतिक स्वतंत्रता हमें बहुत आगे नहीं ले जा सकती। वास्तव में, एक भूखे आदमी के लिए या एक बहुत गरीब देश के लिए स्वतंत्रता का कोई मतलब नहीं रहता। गरीबों के लिए, चाहे वह राष्ट्र हों, चाहे व्यक्ति हों, संसार में जगह नहीं है। इसलिए हमें अपना उत्पादन बढ़ाना चाहिए, जिसमें कि हमारे पास काफ़ी सम्पत्ति हो जाय और उचित आर्थिक योजना द्वारा हम उसका ऐसा वितरण करें कि वह करोड़ों व्यक्यियों तक, विशेषकर सर्वसाधारण मनुष्यों तक पहुँच सके। तब न केवल करोड़ों व्यक्ति समृद्ध होंगे, बल्कि देश सम्पत्तिशाली, समृद्ध और शक्तिशाली होगा। बहुत से लोग तरह तरह के खतरों से डरते हैं और ऐसे भी लोग हैं जोकि दूसरे देशों से लड़ाई की बात, असंयत ढंग से, कर बैठते हैं। मैं आशा करता हूँ कि ऐसी कोई लड़ाई न होगी।

फिर भी, एक नए देश को, एक नए राज्य को, जिसने कि अभी हाल में अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की हो—अपनी स्वतंत्रता और आज़ादी की रक्षा पूरी सावधानी से करनी चाहिए। यह ठीक ही कहा जाता है कि स्वतंत्रता के लिए निरन्तर चौकसी का मूल्य चुकाना होता है। हम इसे किस तरह कार्यान्वित करें? जब तक हमारे पास लगाने को धन न हो हम सुधार की या निर्माण और विकास सम्बन्धी योजनाओं को किस तरह कार्यान्वित करें? हम उधार से प्राप्त रुपयों पर अधिक समय तक नहीं रह सकते, उसके लिए साख होनी चाहिए। हम में वह शक्ति होनी चाहिए कि उस धन को उचित दिशाओं में लगा सकें। इन सब के लिए उत्पादन, वह भी तात्कालिक वर्तमान में उत्पादन, की आवश्यकता है, जिसमें हम अपनी सब से बड़ी आवश्यकताओं को पूरा कर सकें, जिससे हम विकास सम्बन्धी उत्पादक योजनाओं में लगाने के लिए कुछ बचा सकें। इसलिए हम उत्पादन की बुनियादी आवश्यकता पर लौट कर आते हैं। अब, उत्पादन के लिए कठिन और निरन्तर मेहनत की आवश्यकता है। उत्पादन के लिए यह आवश्यक है कि काम न रोका जाय, हड़तालें न हों, और न मज़दूरों का बहिष्करण हो।

में आखिरी व्यक्ति होऊँगा जो कि श्रमिकों के हड़ताल के अधिकार से इन्कार करे। क्योंकि मैं जानता हूं कि हड़ताल का अस्त्र एक बहुत मूल्यवान् अस्त्र रहा है, जिसके द्वारा श्रमिकों ने अधिकतर देशों में क्रमशः शक्तिशाली और प्रमुख स्थान बना लिया है। फिर भी ऐसे समय होते हैं जब कि हड़तालें खतरनाक हो जाती हैं, जब कि वे न केवल देश के हित को हानि पहुंचाती हैं, बल्कि स्वयं मजदूरों के हितों के लिये भी नुकसानदेह साबित होती हैं। आज भी एक ऐसा ही समय है, और इसी कारण कुछ समय हुए, दिल्ली के एक सम्मेलन में सरकार, मजदूरों और उद्योगपतियों के प्रतिनिधियों ने प्रायः एकमत से यह निश्चय किया था कि हम सब के बीच तीन वर्षों की विराम-सन्धि होनी चाहिए, जिसके बीच हड़तालें बन्द रहें। यह स्पष्ट है कि यदि हमने ऐसा करने का निश्चय किया है तो हमारे पास इसे कार्यान्वित करने के लिए संगठन होना चाहिए, नहीं तो कुछ इस निर्णय से लाभ उठाना चाहेंगे। इसीलिए उस सम्मेलन में यह भी निश्चय किया गया था कि एक ऐसा संगठन बनाया जाय जिसमें कि श्रमिक, मजदूर या किसान को उसके हक मिलें, उनके साथ वाजिब व्यवहार हो और वे प्रबन्ध में भी कुछ भाग ले सकें; विशेषकर जहां तक उनकी अपनी आवश्यकताओं का सम्बन्ध है। यदि हम कोई ऐसा उचित और निष्पक्ष संगठन बना सकें तो हड़तालों की कोई आवश्यकता ही न रह जायगी।

बेशक, एक सुव्यवस्थित राज्य में, जहां के हर एक को उसका हक प्राप्त हो, हड़तालों और बहिष्करणों की कोई आवश्यकता न रहेगी। हड़ताल और बहिष्करण आर्थिक व्यवस्था के किसी मूलवर्ती दोष के सूचक हैं। सच यह है कि हमारी आर्थिक व्यवस्था में आज बहुत से दोष हैं, न केवल भारत में बल्कि दुनिया के और भागों में भी। हमें इस सबको बदलना है, लेकिन बदलने की क्रिया में हमें इस बात के लिए सावधान रहना है कि जो कुछ अभी हमारे पास है उसे भी नष्ट न कर दें। इस बात का भय है कि जल्दी में कुछ कर डालने से कहीं हम अपने ध्येय से और भी दूर न पहुँच जायं। इसलिए, वर्तमान समय में, जब कि यह सब संकट हमारे सामने हैं, हमारे लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि हमारे व्यवसाय में एक उपद्रवहीन शान्ति की स्थिति कायम रक्खी जाय, जिसमें सब लोग मिलजुल कर देश के उत्पादन-कार्य में और विकास की महान योजनाओं द्वारा देश के निर्माण में, सहयोग दें।

आप जानते हैं कि हमारे सामने यह योजनाएं बहुत समय से रही हैं। दुर्भाग्य से, उनमें से अनेक अभी तक कागजी योजनाएं ही बनी हुई हैं। समय आ गया है कि हम उन्हें कार्यान्वित करें। उनमें नदी घाटी की महान योजनाएँ भी हैं जो कि न केवल देश में आबपाशी करेंगी, नदियों की बाढ़ों को रोकेंगी, जल-विद्युत् शक्ति का उत्पादन करेंगी, मलेरिया तथा अन्य बीमारियों को रोकेंगी, बल्कि साधारणतया ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न करेंगी, जिनमें वेग के साथ उद्योगों का विकास हो, और जिससे हमारी कृषि में आधुनिकता आवे। क्या आप जानते हैं कि भारत की इतनी बड़ी जन-

संख्या होते हुए भी यहाँ बहुत-से बड़े बड़े भू खण्ड हैं, जहां कि आदमी नहीं बसते, क्योंकि इन भू-खण्डों में या तो पानी की कमी है या धरती को सुधारने की आवश्यकता है ?

हमारी वर्तमान संपूर्ण आबादी को पूरा पूरा काम मिल सकता है, बेकारी दूर हो सकती है और उसके साथ ही देश की संपत्ति में वृद्धि हो सकती है। जिस देश में सब के पास धंधे हों तो उसे आवश्यकता से अधिक आबादी वाला देश नहीं कहा जा सकता। हम इस प्रयत्न में हैं कि सब को काम मिले। अगर हम अपनी कोशिश सफल होना चाहते है तो हमें आर्थिक और श्रमिक क्षेत्रों में निरन्तर संघर्ष के विचार को छोड़ देना पड़ेगा। लेकिन, जैसा कि मैंने बताया, यह तभी हो सकता है जब कि श्रमिक को उसका हक प्राप्त हो, और उस का शोषण न किया जाय।

हमें इस उद्देश्य से कुछ उपाय शीघ्र ही करना है। कुछ हद तक यह हो भी चुका है, लेकिन अभी बहुत कुछ करना बाकी है। इस बीच हमें इस तीन साल की विराम-सन्धि को पूरी तरह अमल में लाने का निश्चय करना चाहिए।

इसलिए, आइए, हम काम में, इस कठिन काम में लग जाएं। हमें उत्पादन करना चाहिए। लेकिन जो कुछ उत्पादन हम कर रहे हैं, वह व्यक्तिगत जेबों के लिए नहीं बल्कि राष्ट्र के लिए, जनता के रहन-सहन के स्तर को उठाने के लिए और साधारण मनुष्य के हित के लिए करना है। अगर हम ऐसा करेंगे तो हम भारत को तेजी से उन्नति करता हुआ देखेंगे, और इस तरह हमारी बहुत सी समस्यायें हल हो जायेंगी। भारत के पुनर्निर्माण का काम हमारे लिए कोई सहज काम नहीं है। यह बहुत बड़ी समस्या है। यद्यपि हम बहुत से लोग हैं और हमारे देश में साधनों की कमी भी नहीं है; योग्य, समझदार और परिश्रमी व्यक्तियों की भी कमी नहीं है। हमें इन साधनों का, और भारत के इस जन-बल का उपयोग करना है।

यह सब शान्ति पर भी निर्भर करता है, अन्तरराष्ट्रीय शान्ति पर, राष्ट्रीय शान्ति पर, आर्थिक शान्ति पर, श्रमिक वर्ग की शान्ति पर और औद्योगिक शान्ति पर। हमें यह शान्ति प्राप्त करनी चाहिए। इस समय में आप से विशेषकर औद्योगिक शान्ति के विषय में कह रहा हूँ, और आइए हम सब इस उत्पादन के उद्योग में लगें और यह स्मरण रक्खें कि यह उत्पादन केवल व्यक्तियों को अमीर बनाने के लिए नहीं, बल्कि राष्ट्र को सम्पन्न करने के लिए है। क्योंकि यदि भारत जीवित रहता है, तभी हम भी जीवित रहते हैं। जय हिन्द।

हमारी आर्थिक नीति

श्रीमान्, इस वाद-विवाद के आरंभ में ही मैं कुछ शब्द कहना चाहूंगा, जिससे कि सरकार की इस सम्बन्ध की साधारण नीति मालूम हो जाय। माननीय प्रस्तावक ने राष्ट्रीय कांग्रेस के, स्वयं मेरे, और दूसरों के पहले दिये गये अनेक वक्तव्यों के हवाले दिये हैं, और फिर उन्होंने सरकार के सदस्यों के अन्य वक्तव्यों की ओर ध्यान आकर्षित किया है, और दोनों के बीच की कुछ विषमताओं को गिनाया है। यदि विभिन्न वक्तव्यों का मिलान किया जाय तो हो सकता है कि जुदा जुदा दृष्टिकोण और कुछ विषमताएं मिलें, लेकिन मेरी समझ में वस्तुस्थिति यह है (और इसके लिये मैं अपने को दोषी स्वीकार करता हूं) कि सरकार ने, सरकार की हैसियत से, इस सभा या देश के सामने इन मामलों पर कोई पूर्ण रूप से व्यवस्थित नीति पेश नहीं की है। यह नहीं कि सरकार इनको बहुत महत्वपूर्ण नहीं समझती। लेकिन सीधा कारण यह है कि अनेक प्रकार की घटनाओं ने हमें किंचित् व्यस्त कर रखा था, और, अगर मैं बहुत आदर पूर्वक कहूं, तो इनका निबटारा, जिस रूप में कि माननीय प्रस्तावक ने सुझाव दिया है, एक प्रस्ताव द्वारा नहीं हो सकता। इस प्रस्ताव में तो गोलमोल ढंग से राष्ट्रीयकरण की और सभी बातों पर इसी समय से अमल की बात कही गई है। यह अपेक्षाकृत कहीं जटिल प्रश्न है। हम अपने को चाहे जिस नाम से पुकारें—साम्यवादी नाम या किसी और नाम से—लेकिन यदि हमें इन समस्याओं को हल करना है तो यह अस्पष्ट भाषा में नहीं हो सकता। हमें इनको निश्चय के साथ हल करना चाहिये। सरकार का काम दूरकालीन नीतियों पर विचार करना अवश्य है, लेकिन उससे भी अधिक उसका कर्तव्य तात्कालिक बातों को देखना है। साथ ही यह देरी इसलिये भी हुई

संविधान परिषद् (व्यवस्थापिका), नई दिल्ली में १७ फरवरी, १९४८ को दिया गया भाषण।

जिस प्रस्ताव के संबंध में प्रधान मंत्री ने यह भाषण दिया, उसे काजी सैयद करीमुद्दीन ने प्रस्तुत किया था और वह इस प्रकार था:—

"इस संसद का मत है कि इस देश की आर्थिक रूप-रेखा मुख्य उद्योगों के राष्ट्रीयकरण, सहयोगी तथा सामूहिक खेती, और देश के भौतिक साधनों क समाजीकरण पर आधारित साम्यवादी सिद्धान्त के अनुकूल होगी और भारत सरकार उपर्युक्त सिद्धांत को इसी समय से स्वीकार करेगी।"

कि हम कितनी ही अन्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, इसी कारण बहुत से मामलों को हमें स्थगित रखना पड़ा है।

उदाहरण के लिये हमारी इच्छा थी कि हम एक योजना-कमीशन की नियुक्ति पर विचार करें, जिसे कुछ साधारण निदेश हों और जो फिर यह स्थिर करे कि हम किन किन बातों को सब से पहले हाथ में लें, और किस तरह हमारे आर्थिक जीवन के विविध अंगों को समन्वित किया जाय। मुझे यह कहते हुए खेद है कि हम ऐसा नहीं कर सके। हम आशा करते हैं कि जल्दी ही हम इस दिशा में कुछ कर सकेंगे। इस बीच, जैसा कि इस सभा को मालूम है, हमने एक छोटे पैमाने पर एक पुनर्वास और विकास ('रिहैबिलिटेशन एंड डेवलपमेंट') बोर्ड नियुक्त किया है, जो कि यद्यपि मुख्यतः शरणार्थियों के पुनर्वास से संबंध रखता है, तथापि विकास कार्यों से भी उसका घनिष्ठ संबंध है, और उसे विकास संबंधी विविध योजनाओं पर भी विचार करना पड़ेगा और शरणार्थियों के पुनर्वास की दृष्टि से कार्यक्रम निश्चित करना होगा।

पिछले कुछ वर्षों में, इस विषय पर कई बार मुझे अपने विचारों को प्रकट करने का अवसर मिला है, और कुछ वर्षों तक मैं राष्ट्रीय आयोजन समिति का अध्यक्ष था, जहां ऐसे सब मामले विचारार्थ आते थे। इस समिति में हम लोगों ने बहुत-सा अच्छा काम किया था। दुर्भाग्य से इस काम का फल एक अंतिम रिपोर्ट के रूप में सामने नहीं आया। लेकिन बहुत सी उपसमितियों द्वारा प्रकाशित रिपोर्टें और हमारे बहुत से प्रस्ताव, हमने जो कुछ काम किया था, उसके साक्षी हैं।

मुझे यह कहने में प्रसन्नता है कि उप-समितियों की इन रिपोर्टों में से बहुत सी, उन लोगों के लिये जिन्हें उनमें दिलचस्पी हो, आज भी प्राप्य हैं। यदि वे इन रिपोर्टों को और अन्य सामग्री को जो हमारे पास है, पढ़ें, तो उन्हें पता लगेगा कि ये प्रश्न अत्यन्त जटिल हैं, आपस में मिले-जुले हैं, और उन्हें एक सूत्र मात्र से हल नहीं किया जा सकता।

यह फारमूला अपने उपयोग करने वाले की मानसिक प्रवृत्ति को केवल एक संकेत भर देता है। यह ठीक है, लेकिन एक सरकार अस्पष्ट फारमूलों द्वारा अपने विचार नहीं बता सकती। सरकार को प्रश्न के हर एक पहलू पर विचार करना होता है, विशेषकर इस बात पर कि वह तत्काल क्या कर सकती है।

अब, यह सब को अच्छी तरह मालूम है, और हमने इस पर अक्सर जोर भी दिया है कि आज हमारे सामने उत्पादन, यानी देश की संपत्ति को बढ़ाने का प्रश्न सब से महत्वपूर्ण प्रश्नों में से एक है। हम और बातों की भी उपेक्षा नहीं कर सकते,

फिर भी उत्पादन सब से पहले आता है, और मैं यह कहने के लिये तैयार हूं कि जो कुछ भी हम करें, सर्वप्रथम, उत्पादन के दृष्टिकोण से उस पर विचार करना चाहिये। यदि राष्ट्रीयकरण से उत्पादन में वृद्धि होनी है तो हम कदम कदम पर राष्ट्रीयकरण करेंगे। अगर उसके द्वारा ऐसा नहीं होता, तो हमें देखना चाहिये कि हम किसी तरह ऐसा कर सकते हैं कि उत्पादन में रुकावट न आवे। आज यही मुख्य बात है।

पर यह इतना सहज नहीं है, जैसा कि माननीय सदस्य समझते जान पड़ते है, अर्थात् यह कि हम कानून बना दें और फिर जैसे किसी जादू से नतीजे पैदा हो जायं। ऐसा कदम तो शायद हमें किसी आफत की ओर ले जाय, और वस्तुतः एक भीषण संकट उठ खड़ा हो। इसलिये यह केवल एक विशिष्ट आर्थिक दृष्टिकोण को स्वीकार कर लेने का प्रश्न नहीं है, बल्कि समय निर्धारित करने का, सब से जरूरी आवश्यकताओं को निश्चित करने का, उन्हें किस तरह, किस ढंग से और कब कार्यान्वित करना है, इन सब का भी प्रश्न है। किसी पद्धति को दूर करना, या तोड़ना मात्र ही काफी नहीं है, आपको उसकी जगह पर दूसरी पद्धतियाँ स्थापित करनी हैं। इन सब बातों को ध्यान में रखना चाहिये।

जो प्रस्ताव माननीय सदस्य ने सामने रक्खा है, उसमें सभी तरह के दोष हैं। उनमें वे दोष भी हैं जो वह हम पर लगा रहे थे। यह प्रस्ताव भी अस्पष्ट है। सिवाय इसके कि वह उनके हृदय की भलाई प्रदर्शित करता है, उसका कोई अर्थ नहीं निकलता। वह खेती तथा उद्योग में सर्वत्र इसी समय राष्ट्रीयकरण की बात करते है। मैं इसकी कल्पना भी नहीं करता कि कोई सरकार, आर्थिक प्रश्नों के विषय में उसके चाहे जो भी विचार हों, इस तरह का प्रस्ताव कैसे स्वीकार कर सकती है। हममें से बहुतों का—और, अपने बारे में मैं कह सकता हूं कि मेरा भी—विश्वास है कि न केवल भारत की बल्कि संसार के और हिस्सों की आर्थिक व्यवस्था में भी, तेजी से परिवर्तन करने का समय आ गया है। मैं समझता हूं कि हमारे मित्रों और देशवासियों में और दूसरे देश वालों में भी बहुत से लोग अभी तक उस शब्दावली में विचार करते हैं जो कि एक बीते हुए युग के उपयुक्त थी। वे, जिसे हम उन्नीसवीं सदी की आर्थिक विचार-धारा कह सकते हैं, उससे चिमटे हुए हैं। यह संभव है कि अपने समय में वह बहुत अच्छी रही हो, लेकिन आज वह अधिकांश रूप में लागू नहीं है। मैं समझता हूं कि आज की दुनिया की बहुत सी बुराइयों का कारण यह है कि आज की मौजूदा आर्थिक व्यवस्था, जो उन्नीसवीं सदी में विकसित हुई थी, अब बीसवीं सदी के मध्य की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं रही।

इसलिए हम पाते हैं कि सारे संसार में एक आर्थिक बेचैनी फैली हुई है, और

सम्भवतः हमारी बहुत सी राजनैतिक मुसीबतों का कारण यह है कि समझदारी से हम समय की गति के साथ अपने को व्यवस्थित नहीं कर पाये हैं। जो भी हो, जिस बात पर हमें विचार करना है वह यह नहीं है कि हम कितनी ध्वंसकारी आलोचना कर सकते हैं बल्कि यह कि स्थिति को सँभालने के लिये हम कितने रचनात्मक कार्य कर सकते हैं। जो कुछ हम कर सकते हैं, वह अधिकांश हमारे अपने देश की परिस्थितियों पर निर्भर करता है : कुछ अंश में बाहरी दुनिया की परिस्थितियों पर भी, क्योंकि इन सब घटनाओं की एक दूसरे पर प्रतिक्रिया होती है।

अपने देश की परिस्थितियों पर विचार करते हुए हमें तरह तरह की बातों को देखना है। हमें उसी के अनुसार योजना बनानी है, और समझदारी से एक एक पग आगे बढ़ना है, जिससे कि हम अपने पास की किसी ऐसी चीज को न तोड़ बैठें, जिसकी जगह पर हम कोई दूसरी अधिक अच्छी चीज बना पाते। चीजों को तोड़ फोड़ देना काफी आसान काम है पर निर्माण करना उतना आसान नहीं है। यह बहुत संभव है कि आर्थिक व्यवस्था को बदलने की कोशिश में आपको एक आधी-तबाही के समय का सामना करना पड़े। आप उत्पादन को ही, जो कि आज हमारा ध्येय है, रोक सकते हैं। संभव है कि अन्त में, बहुत रफ्ता रफ्ता आप एक नये प्रकार की व्यवस्था का निर्माण कर लें। लेकिन इस समय तो आप मौजूदा व्यवस्था को तोड़ देंगे। और इस समय, जब कि हमें अपनी सारी शक्ति उत्पादन में लगानी है यह वांछित न होगा।

माननीय सदस्य ने एक विशेष रिपोर्ट का हवाला दिया है जो कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक उप-समिति द्वारा, जिसका कि मैं अध्यक्ष था, प्रकाशित की गई थी। मैं सिफारिश करूंगा कि वह तथा अन्य सदस्य इस रिपोर्ट को ध्यान से पढ़ें। क्योंकि यह रिपोर्ट बड़ी सावधानी से तैयार की गई है। पर यह किसी भी हालत में अन्तिम रिपोर्ट नहीं थी। यह ऐसी रिपोर्ट थी, जिस पर कि पहले तो कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति को और बाद में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को विचार करना था। स्वयं रिपोर्ट में कहा है कि वह केवल एक कच्चा खाका है, और इन सब बातों पर योजना कमीशन को, जिसे बनाने की सिफारिश इस रिपोर्ट में की गई है, विचार करना होगा।

इस रिपोर्ट में सुरक्षा संबंधी व्यवसायों और मूल व्यवसायों के राष्ट्रीयकरण के बारे में कुछ और बात पेश की गई थी। अब, यह बिल्कुल सच है कि जहां तक राष्ट्रीय कांग्रेस का सम्बन्ध है, उसने यह सिद्धांत १७ वर्ष हुए स्वीकार किया था, अर्थात् सुरक्षा सम्बन्धी और मूल व्यवसायों व सार्वजनिक उपयोगिताओं का राष्ट्रीयकरण, स्वामित्व और नियंत्रण करना। मुझे अब भी विश्वास है कि ऐसे व्यवसायों

का हमें किसी न किसी समय राष्ट्रीयकरण करना पड़ेगा। उस के बाद से कांग्रेस ने अपने विविध प्रस्तावों में यह भी संकेत किया है कि राष्ट्रीयकरण के इस क्रम को और दिशाओं में कुछ आगे बढ़ाना चाहिये। लेकिन जब आप उसे कार्यान्वित करने पर आते हैं, तब आप को यह विचार करना पड़ता है कि इनमें किसे पहले चुना जाय, और वर्तमान आधारभूत ढांचे को गिराये बिना और उत्पादन के कार्य में वस्तुतः बाधा डाले बिना उसे कैसे कार्यान्वित किया जाय।

इस रिपोर्ट की, जिसका मैंने हवाला दिया है और जो कांग्रेस की आर्थिक योजना उप-समिति द्वारा प्रकाशित हुई थी, बड़ी आलोचनाएं हुई हैं, या कम से कम, दोनों ही पक्षों से कुछ न कुछ बातें कही गई हैं। कुछ लोगों का खयाल है कि यह काफी आगे नहीं जाती, और दूसरे यह समझते हैं कि यह एक क्रांतिकारी परिवर्तन का आरंभ है, जो कि हमारी आर्थिक व्यवस्था को उलट-पलट देगा, और जो वास्तव में एकाएक साम्यवाद पर आ कूदने के समान है। परन्तु वास्तव में यह दोनों में से किसी प्रकार की चीज नहीं है। यह साम्यवाद से बहुत दूर है। यह एक ऐसे क्रम को जारी करना है जो कि आज सारी दुनिया में चल रहा है, जिसमें कि संसार के पूंजीवादी शायद उनमें से सब से बड़े यानी संयुक्त राज्य अमरीका को छोड़कर सभी देश शामिल हैं। दूसरे देशों में आप कुछ जगहों पर इस क्रम को चलता हुआ पायेंगे और कुछ देशों में और देशों की अपेक्षा गति ज्यादा तेज है। इस रिपोर्ट में साम्यवाद के प्रति एक दृढ़ प्रवृत्ति मिलती है, और कुछ उद्योगों को औरों की अपेक्षा शीघ्रतर समाजीकरण के लिये नामांकित कर दिया गया है। इस रिपोर्ट में भी यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि हर एक कदम इस प्रकार बढ़ाना चाहिये कि हमारे राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि में रुकावट न पड़े।

मैं इस रिपोर्ट के एक दो अंश इस सभा को पढ़कर सुनाना चाहूंगा। पहला अंश है "इस बात पर जोर दिया जाता है कि यह रिपोर्ट एक ब्यौरेवार नक्शा नहीं है, बल्कि योजना का एक खाका मात्र है, जिसमें कि विस्तार की बातें स्थायी योजना कमीशन को, जिसकी कि सिफारिश की गई है, बनानी होगी।" इसके बाद इसने विशिष्ट और मूल उद्योगों को बताया है, और यहां मैं कहना चाहूँगा कि 'मूल उद्योग' शब्द का उपयोग बहुत अस्पष्ट है। 'मूल उद्योग' क्या है, इसके संबन्ध में मतभेद हो सकता है, चाहे हम एक उद्योग की चर्चा कर रहे हों, चाहे बहुतों की। यह अस्पष्टता जान-बूझकर रक्खी गई है। क्योंकि इन उद्योगों की परिभाषा देने की अवस्था बाद में आवेगी, जब कि स्थायी कमीशन द्वारा इस विषय पर विचार होगा। उनकी परिभाषा देने के अतिरिक्त, उनके राष्ट्रीयकरण का और उसके लिये समय निश्चित करने का प्रश्न भी उसी कमीशन पर, या जो भी अधिकारी इस पर विचार करे उसके निर्णय पर, छोड़ दिया जायगा।

एक और विषय की चर्चा भी इस रिपोर्ट में हुई है। हमने विशेष रूप से कहा है कि कुछ स्पष्ट प्रमुख महत्व के उद्योगों के अतिरिक्त, हम उचित समझते हैं कि राज्य विशेष प्रकार के नये उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करे, या उसे आरंभ कर दे। कहने का तात्पर्य यह है कि वर्तमान समय में जब तक अनिवार्य न हो, मौजूदा उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की कोशिश कर हमें अपने साधनों को क्षीण न होने देना चाहिये: बल्कि अपने साधनों की रक्षा करके नये उद्योगों को आरंभ करना चाहिये।

मैंने उसे एक बहुत ठीक सिद्धान्त समझा, क्योंकि, आखिरकार, हम जो भी करें, उसे हमें अपने साधनों के अनुसार सीमित रखना होगा। हमें यह चुनना होगा कि पहले किस काम को शुरू करें। यदि हम केवल वर्तमान उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करने में ही अपने साधनों को व्यय कर दें (संभव है कि उनका राष्ट्रीयकरण राष्ट्र के हित के लिये हो) तो यह भी मुमकिन है कि तत्काल हमारे पास कोई और साधन बच न रहें, और साथ ही हम निजी उद्योग के क्षेत्र को भी बिगाड़ दें। इसलिये राज्य के लिये यह कहीं अच्छा होगा कि कुछ खास आवश्यक नये उद्योगों पर वह ध्यान दे, न कि बहुत से पुराने उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करने में हमारी शक्ति लगे, यद्यपि, जैसा मैंने कहा है, कुछ खास प्रमुख उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया भी जा सकता है।

इसमें बहुत से लाभ हैं। एक तो यह कि, जैसा मैंने कहा, राज्य के साधन नये उद्योगों में, उत्पादन की आवश्यकताओं के अनुसार, लगाए जा सकते हैं, और वर्तमान प्रबन्ध में जब तक नितान्त अनिवार्य न हो, हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। जो कुछ नया कार्य राज्य करेगा, वह निर्माण रूप में, उत्पादन में वृद्धि करना होगा, न कि केवल पुराने उद्योगों का हस्तांतरित करना। कुछ काल बाद,—जिसका कि रिपोर्ट में संकेत है—पांच साल, या ऐसे ही किसी काल के बाद, इस प्रश्न पर पुनर्विचार किया जा सकता है, और हम यह देख सकते हैं कि हमें इसके अतिरिक्त और क्या करना चाहिये।

अब, इस पांच वर्ष की कालावधि देने का क्या उद्देश्य है? वास्तव में, चाहे जो भी काल निर्धारित कर दीजिये, उसका वर्तमान बदलती हुई गतिशील दुनिया में थोड़ा ही महत्व है। यह किसी को भी मालूम नहीं, और मुझे संदेह है कि इस सभा का कोई सदस्य यह बता सकेगा, कि भारत में दो या तीन साल बाद ही, चाहे राजनैतिक, और चाहे आर्थिक क्षेत्र में, क्या होगा। इसलिये समय-क्रम या कार्यक्रम निर्धारित करने से विशेष सहायता नहीं मिलती, सिवाय इसके कि एक उद्देश्य सामने रहता है।

पांच वर्ष का समय इस लिये यों रक्खा गया है कि उन लोगों को जो कि इन परिवर्तनों की संभावना से कुछ विचलित हो रहे हों, एक प्रकार से आश्वासन प्राप्त हो जाय, अर्थात् यह कि हम वर्तमान चीजों को उलट-पलट नहीं कर रहे हैं, उन्हें प्रायः जैसा का तैसा छोड़ रहे हैं। बल्कि हम दूसरे क्षेत्रों का विस्तार कर रहे हैं और यह क्षेत्र कमोबेश निर्धारित है। इस तरह की शिकायत न हो सके कि कोई ऐसी बात की गई है जिससे वर्तमान ढांचा उलट दिया गया है। मुझे इस रिपोर्ट की मोटी रूप-रेखा की उद्योगपतियों तथा औरों द्वारा की गई आलोचनाएं पढ़कर आश्चर्य हुआ, क्योंकि मेरी समझ में इस रिपोर्ट ने, देश के सामने उपस्थित बहुत सी समस्याओं पर उद्योगपतियों के और दूसरों के दृष्टिकोण से भी विचार किया था। हमने उनके हित की बहुत सी बातों का ध्यान रक्खा था। हो सकता है कुछ बातें रह भी गई हों, जिन पर बाद में विचार हो सकता है। लेकिन साधारणतया हमने सावधानी से इस बात का ध्यान रक्खा कि देश में कोई अचानक परिवर्तन न हो; यह न हो कि वर्तमान ढांचा बिना उसके स्थान पर दूसरा प्रबंध किये हुए, उलट-पलट हो जावे।

इस रिपोर्ट के तैयार होने के बाद इस सभा ने रिजर्व बैंक और इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया के राष्ट्रीयकरण का निश्चय किया। इस तरह से परिवर्तन होते ही रहते हैं। यह हो सकता है कि यदि हम सब जगहों में, बड़े बड़े परिवर्तनों की बातें करें, तो कोई भी परिवर्तन न होने पावे, क्योंकि यह केवल कागज़ी निश्चय होगा, जिसे सहज में कार्यान्वित न किया जा सकेगा। इस लिए मेरा निवेदन है कि इस मामले को निबटाने का उचित तरीका इस तरह का प्रस्ताव पास करना नहीं है। बल्कि तरीका यह है कि जो कुछ नया काम किया जा सकता है उस पर हम ध्यानपूर्वक विचार करें, और साधारण नीति, साधारण दृष्टिकोण या साधारण ध्येय निर्द्धारित कर लिये जाएं। अन्तिम ध्येय पर, हो सकता है कि बहुत विचार करने की आवश्यकता न हो। लेकिन उन बहुत-सी बातों पर जो उस ध्येय तक पहुँचती हैं, समय समय पर विचार करना आवश्यक हो सकता क्योंकि इस बीच सभी तरह के परिवर्तन हो रहे हैं।

मिसाल के लिए, यदि मैं इस विषय का एक पहलू भी इस सभा के सामने रक्खूं, तो मैं यह कहूंगा कि निर्माण कला और विज्ञान में इतनी महान और इतने वेग से उन्नति हो रही है, कि बहुत थोड़े ही काल में, यह कहिए कि १५ वर्षों में, आधुनिक उद्योग की सारी कल्पना ही पूरी तरह बदल जायगी। तब शक्ति के नए स्रोतों का पता लग चुका होगा और शक्ति के ये नये स्रोत आज के उत्पादन के तरीकों को उलट-पलट देंगे। १५० वर्ष पहले इंग्लिस्तान और शेष यूरोप में जो औद्योगिक क्रान्ति हुई थी, उससे भी कहीं अधिक।

यह सब महान परिवर्तन होने जा रहे हैं, और मैं पाता हूँ कि हम में से बहुत से लोग, चाहे हम अपने को समाजवादी या साम्यवादी या पूंजीवादी या किसी और नाम से पुकारते हों, इन बड़े परिवर्तनों से, आश्चर्य जनक रूप से अनजान हैं। वास्तव में वे इससे इतने अनजान हैं कि नए तरीकों से अधिक संपत्ति के अस्तित्व में आने की बात न सोचकर वे केवल उद्योगों के स्वामित्व को बदलने की बात ही सोचते हैं, जो कि निश्चय ही बराबरी स्थापित करने की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण पग हो सकता है।

वितरण बहुत आवश्यक है। लेकिन उससे भी आवश्यक है हमारा प्रगतिशील भविष्य। नई परिस्थितियों में सारे संसार में शक्ति के नए साधन हमारे कृषि और उद्योग में समान रूप से क्रान्ति उत्पन्न कर सकते हैं। अतः राज्य के लिए जो बात मेरी समझ में सब से अधिक महत्वपूर्ण है, वह यह है कि उत्पादन के वर्तमान साधनों का चाहे जो रूप रहे, उत्पादन के इन नए और नवीन प्रकार के साधनों को राज्य के हाथों में रहना चाहिए। हमें इन्हें व्यक्तियों के हाथों में पहुँच कर व्यक्तिगत एकाधिकार में पड़ने से बचाना चाहिए। और वर्तमान साधनों का जहां तक मामला है, हमें पग-पग आगे बढ़ना चाहिए और उत्पादन में कमी आने को, और जहां तक संभव हो, आर्थिक ढांचे में व्याघात उपस्थित होने से रोकना चाहिए।

यह सभा जानती है कि नदियों की घाटियों से संबंध रखने वाली हमारी कई बड़ी बड़ी योजनाएं या विचार हैं। इन योजनाओं के अन्तर्गत बड़े जलाशयों का निर्माण, जल-विद्युत् से परिचालित कार्य, आबपाशी की नहरें, धरती के क्रमिक क्षय को रोकना, मलेरिया की रोक थाम आदि आदि बातें है। इन योजनाओं में विशाल धन लगेगा और इनमें जो सब से महत्व की बात है, वह यह है कि ये भविष्य की उन्नति का आधार बनेंगी। इन से हमारे खाद्य का प्रश्न बहुत हद तक हल होगा और व्यावसायिक तरक्की के लिए जिस शक्ति की आवश्यकता है, वह भी इनसे प्राप्त होगी। आपको यह शक्ति एक बार प्राप्त हो जाय तो आप काफी तेज़ी से आगे बढ़ सकते हैं। इसलिए सरकार ने इन नदी घाटी योजनाओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करने का निश्चय किया न कि अपनी शक्ति को छोटी मोटी अस्थायी बातों में नष्ट करने का। यदि हमें इन बड़ी योजनाओं पर अपनी शक्ति को केन्द्रित करना है, तो क्या यह हमारे लिए उपयुक्त होगा कि हम अपनी शक्ति इस या उस उद्योग पर अधिकार करने में लगाएँ—जिससे संभव है कि कुछ अन्तर आए, या न भी आए; जो कि थोड़ी बहुत उलट-पलट भी कर दे, लेकिन जो उस बुनियादी आधार-शिला पर हमें न पहुँचा सके, जिस पर कि भविष्य में हमारे उद्योग को टिकना है? इसलिए राष्ट्रीयकरण की दृष्टि से भी हमें बुनियादी बातों को पहले उठाना चाहिए। सब से प्रथम हमें महत्व की बातों को, तथा समय-क्रम

को निर्द्धारित कर लेना चाहिए और राष्ट्रीय अर्थनीति के किसी अंग को लेकर, समय परिपक्व होने पर ही उसका राष्ट्रीयकरण करना चाहिए। समय कब परिपक्व होगा, यह मैं नहीं बता सकता। हमें न केवल धन की आवश्यकता है, बल्कि कुशल और शिक्षा प्राप्त लोगों की भी आवश्यकता है।

वास्तव में, अन्तिम विश्लेषण स यही सिद्ध होता है कि चाहे व्यवसाय के सम्बन्ध में और चाहे जीवन के और विभागों के सम्बन्ध में यही बात महत्वपूर्ण है। हमें स्वीकार करना चाहिए कि हमारे यहां आज जीवन के सभी क्षेत्रों में काम सीखे हुए लोगों की कमी है। जीवन के हर एक विभाग में, विज्ञान में, उद्योग में, हमारे यहाँ बहुत ऊंचे दर्जे के व्यक्ति उत्पन्न हुए हैं। हमारे यहां संसार के कुछ बहुत ही अच्छे वैज्ञानिक हैं। फिर भी वह थोड़े हैं। वह काफी नहीं हैं। इस सभा को याद होगा कि सरकार ने कुछ समय हुआ एक वैज्ञानिक मानवशक्ति समिति ('साइंटिफ़िक मैन पावर कमिटी') नियुक्त की थी, क्योंकि जो भी हमारे यहां वैज्ञानिक मानवशक्ति है उसे उपयोग में लाने, उसे बढ़ाने को हम बहुत ही अधिक महत्व देते हैं। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट दी और उस पर सरकार ने विचार किया। उसकी बहुत सी सिफ़ारिशें स्वीकार कर ली गई। हम अपने विशेषज्ञों और अन्य लोगों को बड़ी संख्या में शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेशों में भेज कर और अपने विद्यार्थियों को सिखाने के लिये बाहर से विशेषज्ञों को बुलाकर अपने वैज्ञानिकों की संख्या बढ़ाना चाहते हैं। ये सब वास्तविक आधार और नींव है, जो कि भविष्य की उन्नति के लिए डाली जा रही है। दूसरा सैद्धान्तिक और काल्पनिक रास्ता, अर्थात् यह कहना कि हम ऐसे बड़े बड़े परिवर्तन करने जा रहे हैं, हमारी बहुत मदद नहीं करता। यह काल्पनिक रास्ता लोगों को, जो नहीं समझ पाते कि हमें करना क्या है, एक बिल्कुल गलत तस्वीर देता है। इसलिए मेरा निवेदन है कि इस तरह का प्रस्ताव हमें बिल्कुल मदद नहीं देगा। मैं आशा करता हूँ कि इस अधिवेशन में किसी समय, यदि संभव हुआ, तो हम इस सभा के सामने कुछ निश्चित प्रस्ताव या औद्योगिक योजना के विषय में नीति सम्बन्धी वक्तव्य प्रस्तुत कर सकेंगे। स्वाभाविक है कि जो भी योजना हम स्वीकार करेंगे, उसे इस सभा का समर्थन प्राप्त होगा।

कांग्रेस उप-समिति की रिपोर्ट की फिर चर्चा करूँ, तो यह कहा जा सकता है कि स्वभावतः अगर कोई योजना, चाहे वह आर्थिक हो या कोई दूसरी, अगर अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की अन्तिम अनुमति प्राप्त करती है, और वह कमिटी आदेश देती है कि वह योजना स्वीकार की जाय तो इस सभा में हम में से अधिकांश उस आज्ञा से बँधे हुए हैं। किसी भी स्वीकृत योजना को निश्चय ही इस सभा का अन्तिम समर्थन होना चाहिए। लेकिन हम में से अधिकतर लोग

उस योजना के समर्थन के लिए पाबन्द होंगे, जो कि स्पष्ट और निश्चित रूप में अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी द्वारा, सामने रक्खी जायगी और उसे हम इस सभा की स्वीकृति के लिए यहां पेश करेंगे। लेकिन अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी आखिर कोई कार्यकारिणी समिति नहीं है : अधिक से अधिक वह एक नीति निर्द्धारण करने वाली समिति है। वह साधारण नीति का निर्देश करेगी, और फिर स्वभावतः इस सभा या सरकार का यह काम होगा कि उसे सुविधानुसार समय क्रम दे कि, कौन कार्य सर्व-प्रथम करना है और यह निश्चय करे किस गति से करना है।

यह सभा जानती है कि भूमि व्यवस्था के सम्बन्ध में हमारी साधारण नीति यह रही है कि ज़मींदारी प्रथा का अन्त कर दिया जाय। इस कार्य की गति मन्द रही है, इसलिए नहीं कि हमारी मेहनत की कमी है, बल्कि इसलिए कि अनेक प्रकार की कठिनाइयां उठ खड़ी हुई हैं। फिर भी मैं आशा करता हूं कि यह मामला काफी जल्द पूरा हो जायगा। यह भी उन आधार शिलाओं में से एक है, जिस पर हम और चीजों का निर्माण कर सकते हैं। सामूहिक और सहकारी खेती की चर्चा हुई है। मैं इस देश में सामूहिक और सहकारी खेती का होना पसन्द करूँगा। मैं आशा करता हूँ कि हर हालत में अगर बड़े पैमाने पर नहीं, तो कम से कम एक छोटे पैमाने पर हम सहकारी ढंग से, और हो सकता हो तो सामूहिक ढंग से, इसे करें। लेकिन यह स्पष्ट है कि इसके पहले कि आप उन्हें सोच सकें आपकी वर्तमान भूमि व्यवस्था का, जोकि भारत के अधिकांश भागों में जारी है, अन्त करना पड़ेगा। सब से पहले बड़ी ज़मींदारियों की प्रथा का, और बाद में हो सकता है कि उसकी और कुछ बातों का हमें अन्त करना पड़े। और यह कोई सहज काम नहीं है।

यह कुछ थोड़े से आदमियों की, जिन्हें आप पूंजीपति कह सकते हैं, नापसन्दगी की बात नहीं है; सम्भवतः बहुत से किसान भी, जिन्होंने भूमि का स्वामित्व प्राप्त किया है, इसे नापसन्द करेंगे। यह स्पष्ट है कि जो भी निर्णय हम करें उसके लिए बहुसंख्यक लोगों की रज़ामन्दी आवश्यक है। हम इसे बहुत बड़ी संख्या में अपने किसानों के गले के नीचे जबर्दस्ती से नहीं उतार सकते। हमें उन्हें अपनी राय का बनाना है। ऐसा करने का सब से अच्छा उपाय यह है कि हम उनके सामने सहकारी खेती के सजीव उदाहरण पेश करें और यह दिखावें कि वह कैसे चलती है। तभी हम उनका मतपरिवर्तन कर सकते हैं। भारत एक विशाल देश है। हम यहां एक साथ कई ग्राम्य व्यवस्थायें चला सकते है, और उनमें से जो देश के लिए सब से अच्छी होगी, वह क्रमशः स्वयमेव होती जायगी। सहकारी व्यवस्थाओं के भी कई प्रकार हैं। मैं तत्काल यह नहीं बता सकता कि उनमें किस प्रकार की व्यवस्था सब से उपयुक्त है। हो सकता है कि देश के किसी एक भाग के लिए एक प्रकार

की व्यवस्था उपयुक्त हो और दूसरे भाग के लिए दूसरे प्रकार की ।

इसलिए अन्त में मैं इस सभा को यह आश्वासन दिलाऊँगा, कि जहां तक हमारा सम्बन्ध है, हम अपने औद्योगिक कार्यक्रम के विषय में नीति सम्बन्धी विशेष वक्तव्य तैयार करने के लिए उत्सुक हैं। वर्तमान अवस्था में ऐसा वक्तव्य हमें बहुत आगे पहुँचावेगा, ऐसा मेरा खयाल नही है। बहुत आगे की सोचने में अभी जोखिम है। गैर-सरकारी संगठन बहुत आगे के भविष्य को देख सकते हैं, लेकिन किसी सरकार के लिए बहुत आगे के सम्बन्ध में अपने को बांध देना निरापद नहीं है। मैं और लोगों को, जो इस सभा में नहीं हैं, यह आश्वासन दिलाना चाहूँगा, कि हम जो भी करें, उत्पादन का ध्येय हमारे सामने सर्वप्रथम है। हम इसे परम आवश्यक मानते हैं। यह स्पष्ट है कि उत्पादन, उन लोगों के आपस के पूर्ण सहयोग पर निर्भर करता है, जो इस काम में लगे हुए हैं। यह स्पष्ट है कि हम देश के औद्योगिकों की सदिच्छा चाहते हैं। अकसर यह प्रश्न पूछा जाता है कि "क्या आपके पास उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के लिए योग्य व्यक्ति मौजूद हैं?" सच बात तो यह है कि, जैसा मैंने अभी बताया, हमारे पास पर्याप्त लोग नहीं हैं। लेकिन इस प्रश्न पर मुझे ज़रा आश्चर्य होता है, क्योंकि व्यवहार में तो उन्हीं व्यक्तियों का उपयोग होना है, चाहे उद्योग का राष्ट्रीयकरण हो चाहे न हो। काम तो वही लोग करेंगे और उनमें उद्योग के मुखिया भी शामिल हैं, उनकी प्रबन्ध और कार्य कराने की विशेष योग्यता की आवश्यकता भी शामिल है। अब, आवश्यक यह है कि चाहे जो योजना हम प्रस्तुत करें, हमें उसके पक्ष में अधिक सदिच्छा प्राप्त होनी चाहिए। हमें उत्पादन पर उसका बुरा असर नही पड़ने देना चाहिए। साथ ही, जिस दिशा में हम चाहते हैं, उसमें हमें भविष्य की उन्नति की नींव डालनी चाहिए। इसी दृष्टि से हम ने उप-समिति की रिपोर्ट तैयार की थी। यह एक ऐसी रिपोर्ट है जिस पर आपको तथा देश को विचार करना है। हमने इस बात पर विशेष ध्यान दिया है कि मौजूदा कार्य में कोई व्याघात न आने पावे, न कोई उलट-पलट की बात हो, लेकिन क्रमशः, फिर भी काफ़ी वेग से, अर्थ-व्यवस्था के उन अंगों में, जिनमें राष्ट्रहित को ध्यान में रखते हुए परिवर्तन हो सकता है, परिवर्तन किया जाय। बाद में और परिवर्तन भी हो सकते हैं। इसलिए मैं माननीय सदस्य से यह अनुरोध करूँगा कि एक ऐसे प्रस्ताव पर, जो प्रकट रूप में कार्यान्वित नहीं हो सकता है, वह जोर न दें।

अकेला सही रास्ता

महोदय, मुझे इस सभा से क्षमा मांगनी है कि मैं इस बहस के अवसर पर यहां बराबर उपस्थित नहीं रहा हूँ। लेकिन कभी कभी और कामों के भारी तकाजे होते हैं। मैं यहां बराबर मौजूद रहना पसन्द करता, क्योंकि इस विषय में मेरी गहरी दिलचस्पी है, और यहां सदस्य क्या कहते हैं, उसे मैं सुनना चाहता। मुझे मालूम हुआ है कि बहुत से सदस्यों ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया है और वह इसकी तारीफ में या कम से कम इसके पक्ष में बोले हैं। कुछ ने इसे नापसन्द भी किया है और कुछ ने इसे सख्त नापसन्द किया है। इस मतभेद पर मुझे प्रसन्नता है और यदि माननीय सदस्यों में से किसी ने, किसी ह्विप या अपने दल की कार्यकारिणी के अन्य निर्देश के कारण, अपना मत दबा लिया है, तो उसका मुझे खेद है।

कार्य योजना के सैद्धान्तिक पहलुओं से काफी समय से मेरा स्वयं सम्बन्ध रहा है। मैं अनुभव करता हूँ कि उसके सिद्धान्त और अमल के बीच एक बड़ा अन्तर है जैसा कि जीवन की अन्य बातों के विषय में है। सिद्धान्त कवित्वमय होता है, जैसा कि, यदि मैं कह सकता हूँ, मेरे माननीय सहयोगी, प्रस्ताव के प्रस्तावक का भाषण था। लेकिन हम जब उस कवित्व को व्यवहार में लाना चाहते हैं तो तरह तरह की कठिनाइयां उठ खड़ी होती हैं। साधारणतः कठिनाइयां सभी जगह होती हैं, लेकिन भारत में जैसी परिस्थिति है, पिछले सात या आठ महीनों में जो कुछ हुआ है, उसके बाद, किसी व्यक्ति को, वह जो कदम भी बढ़ाता है, उसमें बड़ी सावधानी बरतने की आवश्यकता है, जिस से मौजूदा ढांचा टूटने न पावे। विनाश और टूट-फूट काफी हुई है, और मैं इस सभा के सामने निश्चय ही यह स्वीकार करूँगा, कि मैं इतना साहसी और बहादुर नहीं कि और आगे भी विनाश में लगूँ। मैं समझता हूँ कि भारत में बहुत सी चीजों की तोड़-फोड़ करने की अब भी गुंजाइश है। उन्हें निस्सन्देह दूर करना पड़ेगा। फिर भी यह अपना अपना देखने का ढंग है। क्या हम ऐसा करने जा रहे हैं कि हमारे सामने साफ स्लेट आवे, जिस पर से सब कुछ मिट गया हो, जिसमें कि हमें नए सिरे से लिखने का सुख प्राप्त हो? ऐसी स्लेट पर जिस पर

संविधान परिषद् (व्यवस्थापिका), नई दिल्ली में, उद्योग और रसद विभाग के मंत्री माननीय डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी के औद्योगिक नीति के प्रस्ताव पर, ७ अप्रैल १९४८ को दिया गया भाषण।

कुछ और न लिखा हो ? यह काम करने का सहज ढंग जान पड़ता है, अगर्चे शायद साफ़ स्लेट कभी रही नहीं है ; उस समय भी जब कि लोगों ने कल्पना की कि स्लेट साफ होने जा रही है ।

मैं यह नहीं कहना चाहता कि किसी को साफ़ स्लेट से आरम्भ करने की कभी कोशिश ही न करनी चाहिए । लेकिन आदमी को देश का और उसकी हालत का ध्यान रखना पड़ता है, और यह देखना पड़ता है कि कौन सा रास्ता पसन्द करने लायक है, किसमें कम खतरा है । मुझे जान पड़ता है कि दुनिया की और भारत की जो अवस्था है, उसमें जिसे साफ स्लेट पर लिखने को कोशिश कहेंगे--यानी जो कुछ हमारे यहां है उसे मिटा कर--वो वह निश्चय ही हमें तरक्की के निकट न लायेगी, बल्कि उसमें बहुत देर कराएगी । आर्थिक तरक्की लाना तो दूर रहा, यह हमें राजनैतिक दृष्टि से इतना पीछे फेंक सकती है कि आर्थिक पहलू ही हमारी निगाह से ओझल हो जाय । हम इन दो चीजों को अलग नहीं कर सकते । हम एक बड़ी राजनैतिक उथल-पुथल और मंथन में से गुजरे हैं, और अगर अपनी पसन्द की किसी चीज को पाने की कोशिश में हम एक कदम आगे बढ़ते हैं, तो साथ ही दूसरी दिशा में कुछ कदम पीछे हट जाते हैं, तो सब मिलाकर हम कुछ घाटे ही में रहते हैं, नफे में नहीं । इस लिए स्लेट की सफाई को बजाय यह हो सकता है कि हम यहां वहां कुछ मिटाने की और उस जगह पर कुछ और लिखने की और वह भी क्रमशः---मैं आशा करता हूँ कि बहुत धीमी गति से भी नहीं, फिर भी बहुत तोड़ फोड़ और बोझ से बचते हुए--पूरी स्लेट की लिखावट बदलने की कोशिश कर सकते हैं । हो सकता है कि मुझ पर हाल की घटनाओं का असर पड़ा हो, लेकिन मैंने अधिकाधिक यह अनुभव किया है कि किसी भी वस्तु को, जो उत्पादन कर सकती है, या जिसमें अच्छा श्रम करने की क्षमता है, मिटाना उचित नहीं । बनाने में तो बहुत समय लगता है, मिटाने में बहुत समय नहीं लगता । इसलिए यदि यह सभा और यह देश समझता है कि हमे मिटाने की भावना से अधिक निर्माण की भावना को लेकर आगे बढ़ना चाहिए, तब वह दृष्टिकोण अनिवार्य रूप से भिन्न होगा । आपके क्या आदर्श है यह दूसरी बात है । लेकिन उन आदर्शों की प्राप्ति के लिए भी क्या इसे आप सबसे आसान तरीका समझते है कि जो कुछ है उसे मिटाकर साफ कर दिया जाए, तब नए सिरे से काम आरम्भ किया जाय ? या यह कि अपने मौजूदा साधनों और सामान को देखते हुए पुरानी इमारत को जितनी तेजी से सम्भव हो, नई इमारत में बदला जाय ? इसमें सन्देह नही कि हमे मौजूदा इमारत को बदलना है और जितना जल्दी हो सके, उतना जल्दी ।

जो माननीय सदस्य अभी मुझसे पहले बोले हैं, उनका भाषण मैं सुन रहा था; उद्योग या टैक्स पर, और जहां कही बोझ डाले गए है, उनके बारे में उनके मातम को मैं सुन रहा था । सच्ची बात यह है कि यह मातम, दुनिया के सम्बन्ध में एक विशेष

दृष्टिकोण पर आधारित है, जिसका कि, मुझे भय है, अब लौटना नामुमकिन है। मैं आदर्शवादी ढंग से नहीं, वरन् केवल व्यावहारिक ढंग से विचार कर रहा हूँ; और कहता हूं कि उसे आप लौटा नहीं सकते। उद्योग पर और अधिक बोझ पड़ने जा रहे हैं क्योंकि खुद राज्य पर, उसकी सामाजिक समस्याओं का इतना बड़ा बोझ है। राज्य को उसे हल करना है, नहीं तो वह समाजवादी राज्य नहीं बन पाएगा, और मुमकिन है कि यह पुलिस राज्य बन जाय या कोई और राज्य उसकी जगह ले ले। राज्य को अपनी समस्याओं का सामना करना है, और अगर उसे ऐसा करना है, तो इसके लिये उसे आवश्यक साधन भी प्राप्त करने होंगे। स्वभावतः उद्योग पर बोझ बढ़ता ही जायगा। वास्तव में यह आपके या मेरे या किसी और के सोचने से ऐसा नहीं हो रहा, बल्कि अनिवार्य रूप से घटनाओं का प्रवाह ऐसा है कि वह राज्य को अधिकाधिक निर्माणात्मक उद्योगों का संगठन करने वाला बना रहा है न कि व्यक्तिगत पूंजीपति को या किसी और को। जहां तक मैं तटस्थ रूप से देख सकता हूँ, यह बिल्कुल अनिवार्य है। मैं नफे के उद्देश्य को बिल्कुल अलग नहीं कर रहा हूँ। मैं नहीं कह सकता कि एक सीमित अर्थ में यह कब तक चलेगा, लेकिन व्यापक अर्थ में यह समाजवादी राज्य की नई कल्पना से अधिकाधिक संघर्ष में आएगा। यह संघर्ष चलता रहेगा, और जीत एक पक्ष की ही होगी, और यह स्पष्ट है कि राज्य की जीत होगी, न कि उस वर्ग की जोकि उद्योगों में कोरे नफे के उद्देश्य का समर्थक है। यह एक अनिवार्य विकास है। आप उस विकास का सामना कैसे करेंगे? तो क्या आप उसकी गति तेज़ करने की कोशिश करेंगे, जैसा कि हम में से बहुत से लोग चाहते हैं? क्योंकि आर्थिक पहलू या विशेषज्ञ के पहलू को अलग रखते हुए भी, मैं विश्वास करता हूँ, कि हम ऐसी स्थिति में पहुँच गए है, जो हर एक संवेदनशील मनुष्य को खलने वाली है। आज का संवेदनशील मानव समाज उस बड़े अन्तर को, जो मनुष्य-मनुष्य के बीच में हैं, उनके बीच के भेदभाव को, एक ओर अवसर की कमी और दूसरी ओर अपव्यय को सहज में सहन नहीं कर सकता। यह इतनी अशिष्ट बात जान पड़ती है और अशिष्टता का समर्थन करने से बुरी वस्तु किसी देश या व्यक्ति के लिए नहीं है। यदि मैं कहूँ तो अब से पचास या सौ वर्ष पहले यह बात इतनी अशिष्ट नहीं थी। यद्यपि नफे का उद्देश्य उस समय भी बहुत जोरों पर काम कर रहा था, और यद्यपि उस समय अब से ज्यादा कष्ट था; फिर भी दृष्टिकोण दूसरा था। तब शायद सामाजिक मूल्यांकन ही दूसरा था। लेकिन आज की दुनिया के प्रसंग में इस प्रकार का उद्देश्य न केवल आर्थिक दृष्टि से अधिकाधिक अनुचित, बल्कि किसी भी संवेदनशील दृष्टि से अशिष्ट हो गया है। इसलिए परिवर्तनों का होना अवश्यंभावी है।

तो फिर यह परिवर्तन आप कैसे करने जा रहे हैं? जैसा कि मैंने कहा, मैं तो चाहूँगा कि बिना विनाश और अवरोध के यह परिवर्तन लाया जाय। क्योंकि विनाश

और अवरोध के मार्ग से भविष्य में चाहे कुछ भी फल मिले, आज निश्चय ही उनसे नुकसान होगा। वह उत्पादन को रोकेंगे। उनसे सम्पत्ति का उत्पादन कम होगा। लेकिन यह निश्चित नहीं कि आगे भी आप इनके द्वारा अधिक तेजी से काम कर सकेंगे। इसलिए, आदमी को समझौता करना पड़ता है। यद्यपि मैं इस प्रसंग में या किसी भी प्रसंग में समझौता शब्द से नफ़रत करता हूँ, तब भी इससे बचा नहीं जा सकता।

अब हमें अर्थ-व्यवस्था की परिवर्तन कालीन स्थिति पर विचार करना है, उसे चाहे जिस नाम से पुकारिये, मिश्रित अर्थ-व्यवस्था या किसी और नाम से। यह हमें ऐसा कार्य करने पर विवश करती है, जिसमें कि देश की सम्पत्ति निरन्तर वृद्धि पाती रहे, साथ ही देश में उस सम्पत्ति का अधिक न्याय-संगत वितरण हो सके। क्रमशः ऐसी स्थिति पर हम पहुँचेगें, जिसमें कि सारी अर्थ-व्यवस्था का भार-केन्द्र ही बदला हुआ होगा। अब, मुझे स्वयं संदेह है कि ऐसे परिवर्तन बिना संघर्ष के या बारबार होने वाले संघर्षों के हो सकेंगे, क्योंकि विशेष हितों पर अधिकार या विशेष विचार रखने के अभ्यस्त लोग सहज में नए विचार स्वीकार नहीं करते और कोई भी अपने पास की चीज को छोड़ना नहीं चाहता। कम से कम कोई वर्ग ऐसा करना पसन्द नहीं करता; व्यक्ति कभी कभी ऐसा करते हैं। यह संघर्ष बराबर हो रहे हैं। लेकिन बात यह है कि ये संघर्ष प्रायः कुछ बेवकूफ़ी के संघर्ष होते हैं, क्योंकि ये घटनाओं की प्रवृत्ति को बदल नहीं सकते। अधिक से अधिक ये संघर्ष इस क्रम में देर लगा सकते हैं। और देर करने का संभावित परिणाम यह होता है कि जो लोग निहित-स्वार्थों को पकड़े रहते हैं, उन्हें, अन्त में और भी घाटे का सौदा करना पड़ता है।

अब, एक दूसरा पहलू है जिस पर कि मैं चाहूँगा कि यह सभा विचार करे। यह एक अजीब बात है कि हमारे खूब जोशीले क्रान्तिकारियों में से बहुत से लोग, जो कि आदर्शवादी संसार की कल्पना करते हैं, जब संसार की समस्याओं पर वैज्ञानिक दृष्टि से देखने का अवसर आता है, तो अद्भुत रूप से रूढ़िवादी दिखाई देते हैं। मैं अपना कथन स्पष्ट कर दूं; मैंने 'वैज्ञानिक' शब्द का एक संकीर्ण अर्थ में प्रयोग किया है। हमारे अधिकतर मित्र—समाजवादी अथवा साम्यवादी—बराबर इस रूप में चिन्तन करते हैं कि उत्पादन की प्रणाली जैसी है, वह वैसी ही बनी रहेगी। अवश्य ही इसे वह स्वीकार न करेंगे। वह कहेंगे, "नहीं, यह बदल रही है।" लेकिन वास्तव में वे अपनी योजनाएं एक गतिहीन संसार पर आधारित करते हैं, न कि एक परिवर्तन शील संसार पर, जिसमें कि उत्पादन के नए ढंग, नई प्रणालियां काम में आवेंगी। उदाहरण के लिए वे भूमि व्यवस्था के बदलने की बात सोचते हैं। यह बिल्कुल ठीक है, क्योंकि सामंती भूमि व्यवस्था को समाप्त होना चाहिए, तभी आप एक नए समाज का निर्माण कर सकेंगे। यहां तक तो बहुत ठीक, भूमि-व्यवस्था को जरूर बदल दीजिए।

वह उद्योगों पर अधिकार प्राप्त करने की सोचते हैं, क्योंकि समाजवादी अर्थ-व्यवस्था का अर्थ यह होता है कि बड़े उद्योगों पर राज्य का स्वामित्व हो। ठीक; बहुत अच्छा। लेकिन वह इसे नहीं सोचते कि उत्पादन के तरीकों में महान परिवर्तन हो रहे हैं, जो कि संभव है वर्तमान औद्योगिक ढांचे को, या धरती को जोतने के तरीकों को बिल्कुल दक़ियानूसी बना दें। वह कहते हैं, "तुम इस या उस चीज़ पर अधिकार क्यों नहीं कर लेते ?" क्या उन वस्तुओं पर अधिकार करने में धन व्यय किया जाय, जोकि ९० प्रतिशत दक़ियानूसी हो चुकी हैं ? वास्तव म, यन्त्र कौशल की उन्नति की दृष्टि से इस तरह की दक़ियानूसी मशीनों, पुतली घरों और अन्य यंत्र-घरों पर अधिकार करना पैसों की सोलह आना बरबादी सिद्ध हो सकती है। यह सही है कि जब तक नए पुतली घर और नए यान्त्रिक तरीके व्यवहार में नहीं आते, तभी तक इन का उपयोग है। और अगर आपके पास अपार धन और साधन हों तो ज़रूर उन पर अधिकार कर लीजिए और नई चीजों को आगे बढ़ाइए। लेकिन अगर आपके साधन सीमित हैं, तब जो ख़ास बात है, वह यह है कि एक गति-हीन यन्त्र कौशल का विचार न करके परिवर्तनशील यन्त्र-कौशल की बात सोचिए। राज्य द्वारा नए तरीकों पर अधिकार करने का चिन्तन कीजिए, पुराने तरीकों पर नहीं सिवाय इसके कि जब पुराने तरीके बाधक होते हों, और आपकी योजना और उन्नति को रोकते हों।

अब, ज़ाहिर है कि भारत में जो स्थिति है, उसमें हमारे साधन असीमित नहीं हैं। धन कहां से आवे, कैसे आवे, और कैसे अन्य यांत्रिक या बाकी साधन आवें—इनके बारे में हमें बहुत सोचना पड़ता है। अगर ऐसा है तो इस विषय में एक निर्द्धारित पूर्वापर कार्यक्रम के अनुसार हमें कार्य करना है। अगर आप चीजों पर अधिकार करना आरम्भ कर भी दें—मान लीजिए कि हम बहुत से उद्योगों पर अधिकार करने का निश्चय करते हैं—और आप यह प्रस्ताव पास कर देते हैं, तब भी मुझे पूरा यकीन है कि जब इसे हम व्यवहार में लाएंगे तो एक एक करके इन उद्योगों को अधिकार में लाने में बहुत समय लग जायगा। आप चाहे जितनी तेज़ी करें, फिर भी इसमें काफी समय लगेगा। यह दूसरी बात है कि आप 'साफ़ स्लेट" का क्रम बरतें, जिसमें कि पुरानी चीज़ें बुहार कर फेंक दी जायं और आप नई का निर्माण करें। इसलिए आपको यह विचार करना पड़ेगा कि प्रथम क्या काम हाथ में लिया जाय; कौन सा उद्योग और कौन सी सेवाएं पहले ली जायँ ; उसके बाद आपको रुपए का प्रबन्ध करना होगा। एक संगठन बनाना होगा; यंत्र कुशल काम करने वालों का प्रबन्ध करना होगा, आदि, आदि। अतएव समय लगता है। और जब आप अतिरिक्त उद्योगों और नए उद्योगों और नई पुरानी योजनाओं को मिलाने की सोचें तो और भी समय लगेगा। मुझे अपने मन में कोई संदेह नहीं है कि सरकार का प्रथम चुनाव केवल नई चीजों का होना चाहिए, जब तक कि पुरानी चीजें राह में बाधा के रूप में नहीं आतीं।

उन बड़ी नदी घाटी योजनायों को मैं बहुत ही अधिक महत्व देता

हूँ, जो कि तैयार की गई हैं, और जिनमें से पहली, यानी दामोदर घाटी योजना इस संसद से स्वीकृत भी हो चुकी है, दूसरी भी जल्द ही यहां पेश होने वाली है। मैं समझता हूँ कि आपके सभी मौजूदा उद्योगों की अपेक्षा वह कहीं अधिक महत्व की हैं। यह एक नई चीज़ है, जिसे कि आप बिल्कुल नए सिरे से खड़ा करेंगे। नई धरती खेती के काम में आवेगी, बहुत सी नई चीजें हैं जिनका कि नदी घाटी योजना द्वारा जनित विशाल शक्ति की सहायता से निर्माण किया जायगा। मैं इसे पूर्णतया राज्य के अधिकार में करना चाहूँगा, लेकिन इस का संचालन, जैसा कि प्रस्ताव में बताया गया है, सार्वजनिक संस्थान या कार्पोरेशन के नमूने पर होगा। मैं आशा करता हूँ कि यह सार्वजनिक संस्थान किसी सरकारी विभाग की अधीनता में संचालित न होकर पूर्णतया या अंशतया स्वतन्त्र संगठन के रूप में संचालित होगा। मैं आशा करता हूँ कि यह उन लोगों द्वारा संचालित न होगा, जो कि विभागीय लीकों में पड़े हुए हैं, बल्कि ऐसे व्यक्तियों द्वारा चलाया जायगा जिनमें कल्पना है, उत्साह है और क्रियात्मक शक्ति है; उन लोगों द्वारा नहीं जो मिसलों पर लिखते हैं, बल्कि उन लोगों द्वारा जो काम करते हैं। अब, इन नदी घाटी योजनाओं की दिक्कत यह है कि भारत के साधन उनको शीघ्र कार्यान्वित करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। क्या मैं उन्हें अधूरा रहने दूं और इन में देर होने दूं और यह सोचूं कि एक ट्रैमवे का बन्दोबस्त, या कोई दूसरी चीज़ जहां-तहां कैसे अधिकार में लाई जाय? ट्रैमवे का बन्दोबस्त आप चाहिए तो हासिल कर लीजिए, लेकिन मैं ट्रैमवे के बन्दोबस्त को या इसी तरह की किसी चीज़ को पहला स्थान नहीं देना चाहता।

अब, इस प्रस्ताव में, जो कि आपके सामने रक्खा गया है, कई सूचियां दी गई हैं। पहली सूची, दूसरी सूची आदि। जिनमें यह बताया गया है कि सरकार ने क्या क्या किया है और वह क्या करना चाहती है। नदी घाटी योजनाओं का कुछ साधारण ढंग से बयान हुआ है। लेकिन स्मरण रखिए कि इस साधारण बयान का क्या अर्थ है, इसका अर्थ यह है कि राज्य देश भर में, महान साहसी कार्यों को उठाने जा रहा है जो कि देश के उद्योगों का संचालन करेंगे, और जो कुछ आपने अधिकार में किया है वह एक गौण और छोटी वस्तु हो जायगी। ये नदी घाटी योजनाएं राज्य द्वारा नियंत्रित हैं और ये देश की अर्थ-व्यवस्था और उद्योगों का पूरी तौर पर नियंत्रण करेंगी। यदि आप इन सब बातों को अच्छी तरह समझ लें तो यह क्रम तेज़ हो सकेगा, लेकिन यदि हम केवल दिखावटी योजनाएं सामने रखते हैं, तो हम उनके किसी हिस्से को पूरा न कर सकेंगे। तब वास्तव में हम सिवाय कागजी बातों के और सिद्धान्तों को उपस्थित करके, आगे नहीं बढ़ेंगे। इसलिए अस्पष्ट योजना के काव्य से उतर कर हमें गद्यमय बयान पर आना पड़ता है। क्योंकि यह एक गद्यमय बयान है, इसमें कविता बहुत कम है सिवाय मेरे उन माननीय मित्र की कविता के, जिन्होंने कि आरम्भ में भाषण दिया था। यह निश्चित रूप से एक गद्यमय बयान है। जानबूझ कर

यह गद्यमय है। यह सभा जानती है कि ऐसे प्रस्ताव में भाषा का अलंकरण ले आना कठिन नहीं, जिससे कि यह जनता के लिए बहुत सुन्दर ध्वनि रखता और बिना किसी प्रकार से सरकार को बन्धन में लाए हुए, कान और आंख को अच्छा लगने वाला होता और यह प्रभाव डालता कि हम लोग कैसे अच्छे हैं। तो, ऐसा हमने जानबूझ कर नहीं किया। क्योंकि अपनी समझ में, हमें क्या करना चाहिए और निकट भविष्य में हम क्या कर सकते हैं, इस सम्बन्ध में हम इसे एक गद्यमय बयान बनाना चाहते थे। कितना हम कर सकेंगे, यह इस सभा पर और बहुत सी अन्य बातों पर निर्भर करेगा। लेकिन, कम से कम, यह एक ऐसी चीज़ है जिसे कि हमारा करने का इरादा है, केवल ऐसी चीज़ नहीं, जिसे कि एक संगठित योजना का रूप देकर जनता के आगे आडम्बर के साथ घुमा देना है।

इसकी गति कई बातों पर निर्भर करेगी। मैंने इन नदी घाटी योजनाओं की चर्चा इसलिए भी की है कि मैं इन्हें बहुत महत्व देता हूँ। अब, मान लीजिए दामोदर घाटी योजना खूब सफल होती है और यह हमारे हाथ में है, तो, यह राज्य के दृष्टि-कोण से औद्योगीकरण के दृष्टिकोण से इसकी अपेक्षा कहीं बड़ी चीज़ है कि यह सभा और आधी दर्जन ऐसी योजनाएं स्वीकार करे, जोकि कार्यान्वित न हों। इसलिए पहले कदम का मूल्य है। यदि हम राज्य के आश्रय में एक उद्योग आरम्भ करते हैं, तो हमें चाहिए कि उसे पूर्णरूप से सफल बनाएं, बजाय इसके कि इस या उस चीज़ पर अधिकार करने की कोशिश करें और कई चीजों का सत्यानाश कर दें। निश्चय ही एक बार आपने अच्छी नींव डाल दी, तो आगे बढ़ना आसान होगा। अब, यह स्पष्ट है कि यह सरकार या यह सभा इस प्रस्ताव को स्वीकार कर सकती है और अब से पांच या दस वर्षों में क्या होगा, इसका समय-निर्धारण कर सकती है। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि हम वेग से होने वाले परिवर्तन और तब्दीली के युग में रह रहे हैं, और कोई आदमी इसका जिम्मा नहीं ले सकता कि आगे चलकर कब और क्या होगा। कोई इसका जिम्मा नहीं ले सकता कि लड़ाई होगी या शांति रहेगी। शान्ति रहते भी क्या होगा, इसका जिम्मा भी कोई ले सकता होगा, क्योंकि भारत में चीजें तेजी से बदल रही हैं। हम पिछले आठ महीनों में तेजी से होने वाले परिवर्तनों के बीच रहे हैं, और कई तरह से यह बड़ा अवांछित और अहित-कर परिवर्तन रहा है। फिर भी जब हम दस वर्ष कहते हैं तो यह समझकर कहते हैं कि जो कुछ हम देख रहे हैं, यह उसके आधार पर है। और हम दस वर्ष इसलिये कहते हैं कि हम जहां तक देख सकते हैं, इस बीच राज्य के हाथों में पूरा काम भरा होगा। यह केवल आश्वासन दिलाने के लिये नहीं है। अगर्चे हम सभी चालू उद्योगों को आश्वासन दिलाना चाहते हैं जिसमें कि वह उचित ढंग से कार्य कर सकें। लेकिन मूलतः हमारे पास बहुत कुछ करने को है और उसे हम अच्छी तरह करना चाहते हैं। लेकिन चाहे मैं आश्वासन दूं, चाहे यह सभा आश्वासन दे, अन्त में घटनाएं

ही गति का निर्द्धारण करेंगी। घटनाएं तेजी से घट सकती हैं या धीमी गति से। घटनाएं हमारी आर्थिक व्यवस्था को तोड़ फोड़ सकती हैं या कुछ और ही हो सकता है। यही नहीं, सैकड़ों बातें हो सकती हैं।

जब हमसे कहा जाता है, और मैं अनुमान करता हूं कि यह ठीक ही है, कि देश की पूंजी सशंक है और वह सामने आ नहीं रही है, या कि हम निजी उद्योगों या सार्वजनिक कर्जों के लिये धन नहीं पा रहे हैं, आदि, तो यह सचाई है। लेकिन, यह भी, मेरा खयाल है कि, इन्हीं परिवर्तनशील स्थितियों के कारण हैं। हम क्या करते हैं या क्या नहीं करते इसका कारण उतना नहीं है। यह स्पष्ट है कि देश अलग नहीं खड़ा रह सकता। या तो हम उद्योगपति को आगे बढ़ने का उचित क्षेत्र और उचित अवसर देते हैं, और यदि वह आगे नहीं बढ़ता तो हम उसके बिना ही आगे बढ़ते हैं। हम चीजों की दुर्व्यवस्था नहीं देख सकते, न व्यवस्था का अभाव ही देख सकते हैं। इसलिये कि उसे डर है कि काफी नफा नहीं होता, या कुछ और न हो जाय। लोग इंतिजार नहीं कर सकते। हम उसे उचित अवसर, उचित क्षेत्र और उचित नफा देते हैं। यदि वह अपनी पूरी शक्ति नहीं लगाता तो उसी काम को किसी दूसरे को करना होगा। शून्य की स्थिति नहीं रह सकती। यह भी है कि अगर उद्योगों का अच्छा प्रबंध नहीं होता या प्रबंध ही नहीं होता, या धीमा काम होता है या काम बन्द कर दिया जाता है, तो फिर हमें यह विचार करना होगा कि हम क्या करें। क्योंकि वह दिन बीत गया जब कि किसी उद्योग ने काम बन्द कर दिया और वह रुक गया। इसलिये कि या तो मालिक ने या श्रमिकों ने दुर्व्यवहार किया। आज समाज को इस तरह पीड़ित नहीं किया जा सकता। समाज को देखना होगा कि श्रमिकों के साथ न्याय होता है, लेकिन यह बात दूसरी है। इसलिये, इस प्रस्ताव में इसके बारे में बहुत कुछ कहा गया है, और यह शायद प्रस्ताव का सब से महत्वपूर्ण अंश है, अर्थात् सभाओं और समितियों के संबंध में। क्योंकि जब तक आप श्रमिकों के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार नहीं करते, तब तक उनके दुर्व्यवहार करने पर आप उन पर सख्ती नहीं कर सकते। उसके बाद भी लोग दुर्व्यवहार कर सकते हैं, इसलिये मैं चाहूंगा कि यह सभा इस प्रस्ताव पर इस प्रसंग में विचार करे। और भी बहुत से विषय हैं, जिनके बारे में यहां कहा जा सकता था, लेकिन मैंने कुछ नहीं कहा है। मुझे संदेह नहीं, कि यदि यह सभा जुट जाय तो वह इस बयान में कुछ हेर-फेर कर सकती है। लेकिन मेरा निवेदन है कि इस बयान का जो मूल दृष्टिकोण है, वही सही दृष्टिकोण है और वही वर्तमान समय में व्यावहारिक मार्ग है, और मैं आशा करता हूं कि यह सभा इसे अपनी स्वीकृति देगी।

हमें मिलजुल कर शक्ति लगानी चाहिए

सभापति महोदय, और फेडरेशन के सदस्यो, कल आपके सभापति के पद से दिये गये भाषण में आपने अनेक समस्याओं की चर्चा की है। आपने विदेशों की घटनाओं और घरेलू समस्याओं का जिक्र किया है विशेष कर जिनका इस देश के वाणिज्य, व्यापार और उद्योग पर प्रभाव पड़ता है। मुझे खेद है, मैं इस भाषण के सुनने के लिये मौजूद न था। लेकिन मैंने उसे पढ़ा और उससे लाभ उठाने की कोशिश की। आप मुझ से यह आशा न करेंगे कि मैं उन सभी विषयों पर, जो आपने उठाये हैं, कुछ कहूँ। क्योंकि वह एक जटिल कहानी हो जायगी। लेकिन आपकी आज्ञा से, अपनी समस्याओं के कुछ मोटे पहलुओं के विषय में मैं कुछ कहना चाहूँगा।

सब से पहले, जो कुछ मैंने हिन्दुस्तानी में कहा है, उसे दुहरा लूं। वह यह है कि जिस तरह अभी आपने मुझे प्रशंसा और प्रेम और विश्वास के साथ संबोधित किया है, उस तरह संबोधित होकर मुझे बहुत सान्त्वना मिलती है। फिर भी मेरा ऐसा खयाल है कि मैं जब भी, आज जैसी सभाओं में आता हूं तो मुझे और मेरी सरकार को इस तरह समझा जाता है, जैसे कि हम न्यायालय के समक्ष पेश किये गये कैदी हों। हमारे सब कुसूर और भूलें, त्रुटियां और कमियां, हमारे सामने तीव्र ढंग से रक्खी जाती हैं। रक्खी ही नहीं जातीं, बल्कि कभी कभी यह संकेत भी किया जाता है कि यद्यपि हम ऐसी अवस्था में पहुंच गये हैं, जहां हमारा सुधार हो ही नहीं सकता, फिर भी एक कर्तव्य का पालन किया जा रहा है। ऐसा आज जैसी सभाओं में ही नहीं होता, बल्कि संसद भवन में भी यही होता है—हमारे सहयोगी तक ऐसा करते हैं, विरोधियों की मैं नहीं कहता। मैं आलोचना का तो स्वागत करता हूं, और हमारी—विशेष कर मेरी—त्रुटियां जो आप बताते हैं, इस बात का स्वागत करता हूं। वास्तव में कभी कभी मैं खुद उनकी गिनती कर लेता हूं। मैं समझता हूं कि यह एक व्यक्ति तथा राष्ट्र के लिये अच्छी बात है कि वह हमेशा यह जानने की कोशिश करे कि कहां वह गलती पर है, और उसे सुधारे। आलोचना से कभी डरना नहीं चाहिये। मैं आलोचना का स्वागत करता हूं। मैं उसका उतना स्वागत तब नहीं करता, जब कि उसके पीछे हमारी बदनीयती

फेडरेशन आफ़ इंडियन चेंबर्स आफ़ कामर्स के २२वें वार्षिक अधिवेशन, नई दिल्ली में, ४ मार्च १९४९ को दिया गया भाषण।

का संकेत किया जाता है। स्वभावतः इसे कोई भी पसन्द नहीं करेगा। लेकिन मैं इस तरह की आलोचना, सभी तरह की सभाओं में जहां पहुंचता हूं, पाता हूं सिवाय एक के जिसके बारे में अभी कहूंगा। हमारी आलोचना उद्योगपति, पूंजीपति, व्यवसाय के कर्णधार करते हैं। हमारी आलोचना श्रमिकों के नेतागण यह कह कर करते हैं कि हम उन्हें दबा रहे हैं। हमारी आलोचना शरणार्थी या स्थानान्तरित लोग इसलिये करते हैं कि उनकी काफी सहायता नहीं हो रही है। हमारी आलोचना प्रांतीय सरकारें इसलिये भी करती है कि हम उनकी सहायता नहीं कर रहे हैं। हमारी आलोचना इसलिये भी होती है कि हम पूरी किफायत नहीं कर रहे हैं और सेक्रेटेरियट के बढ़े हुए कर्मचारीगण को हम कम नहीं कर रहे हैं। हमारी आलोचना इसलिये होती है कि हम कर्मचारियों की छंटनी कर रहे हैं, और और विविध तरीकों से हमारी आलोचनाएं होती हैं। हमारी विदेशी नीति की आलोचना होती है, हमारे घरेलू नीति की आलोचना होती है। यदि (कंट्रोल) नियंत्रण लगाए जाते हैं तो हमारी आलोचना होती है, यदि नियंत्रण उठा लिये जाते हैं तो भी हमारी आलोचना होती है। अब, मैं मानता हूं, कि यह एक स्वास्थ्यसूचक चिन्ह है।

मैंने कहा था कि एक प्रकार की सभा में मेरी आलोचना नहीं होती, यानी इस देश की साधारण जनता की सभाओं में। वह हमारी आलोचना नहीं करते, और मैं चाहूंगा कि इस बात पर आप एक क्षण विचार करें। हम सरकार की हैसियत से आज इसलिये विद्यमान हैं कि हममें जनता का विश्वास है। उदाहरण के लिये, मैं वहां न हूंगा, अगर मुझे यह संदेह हो कि भारत के लोग, भारत के साधारण लोग—हममें विश्वास नहीं रखते। और यह उनके प्रेम के कारण है कि हम इस बोझ को कंधों पर उठाये हुए हैं। और आप जानते हैं कि यह बोझ कोई हलका बोझ नहीं है, कोई सुखद बोझ नहीं है। फिर भी हम उसे ढो रहे हैं, कुछ तो इसलिये कि इसे हम अपना कर्तव्य समझते हैं कि जब तक एक मंजिल पूरी न हो जाय, तब तक इसे वहन करें। ऐसे समय तक जब तक हम इसे दूसरों को, जिनके कंधे ज्यादा मजबूत हों और जो इसे वहन करने के ज्यादा योग्य न हों, न दे सकें। लेकिन मुख्यतया इसलिये कि हम भारतीय जनता के बहुत संख्यक लोगों का अपने में विश्वास पाते हैं।

अब, जैसा मैंने कहा, आलोचना का हम स्वागत करते हैं। लेकिन जब हमारी आलोचना मित्र लोग या विरोधी लोग करते हैं, तो हमारा दृष्टिकोण भारत की इस अथवा उस समस्या पर क्या होना चाहिये? मुझे ऐसा जान पड़ता है कि बदलती हुई स्थितियों में हम अच्छी तरह अपने को बिठा नहीं सके हैं। जब मैं "हम" कहता हूं, तो इसमें देश के सभी प्रकार के लोगों के वर्गों को सम्मिलित कर लेता हूं, जिसमें उद्योगपति और श्रमिक दोनों ही हैं,

व्यवसायी और मुझ जैसे राजनीतिज्ञ, कांग्रेस वाले तथा अन्य लोग भी हैं। हम लोग अपने विचारों की संसार से, जैसा कि वह है, संगति स्थापित नहीं कर सके हैं। यह एक भीषण रूप से कठिन कार्य है, क्योंकि यद्यपि विचार तेज गति वाला होता है, फिर भी जिस तरह के परिवर्तन-काल से होकर हम गुजरते रहे हैं और अब भी गुजर रहे हैं, उसमें मस्तिष्क घटनाओं से पिछड़ जाता है। मनुष्य के विचार घटनाओं से पीछे रह जाते हैं। हममें से अधिकतर लोगों ने अपने विचारों को, वह चाहे राजनैतिक विचार हों, चाहे अर्थ-सम्बन्धी, भारत जैसा कुछ वर्ष पहले था, कम से कम शासन के इस हेर-फेर से पहले था, उसी ढांचे में ढाल रक्खा है। हमने राजनैतिक कार्यों के प्रति अपने दृष्टिकोण को, इस अदूर अतीत के अनुसार बना रक्खा है। हम यह अनुभव नहीं करते कि अनेक कारणों से, विशेषकर पिछले महायुद्ध के कारण, संसार में बड़े परिवर्तन हुए हैं। वास्तव में घोर परिवर्तन हुए हैं जैसा कि आप सब जानते हैं और आपने स्वयं कल अपने भाषण में कहा था--एशिया के भिन्न भागों में, चीन, बर्मा, इंडोनेशिया, और और जगहों में। अब अगर संसार इतना बदल गया है तो निश्चय ही हमारे चिंतन में अन्तर आना चाहिये, हमें उसे समझना चाहिये और उन परिवर्तनों के अनुकूल अपने को भी ढालना चाहिये। समस्याओं को देखने का हमारा ढंग अब तक यह रहा है कि सरकार की घोर आलोचना की जाय। वह सरकार उस समय ब्रिटिश सरकार थी। यह एक आंदोलनकारी ढंग था, जो ठीक ही था। क्योंकि हमारा पहला कर्तव्य यह था कि उस सरकार को उलट दिया जाय, उसे हटाकर बाहर कर दिया जाय और देश में अपनी सरकार कायम की जाय। इसलिये हम लड़े, अपने हाथ-पैर मारे और हम कामयाब हुए। परन्तु अब, यह ढंग भारत की वर्तमान अवस्था में उपयुक्त नहीं रहा। फिर भी हममें से अधिकतर लोगों पर उसी ढंग का असर बना हुआ है। हम उससे मुक्त नहीं हो पाते। मैं देखता हूं कि संसद में हमारे बहुत से सहयोगी केवल इसी ढंग पर काम कर सकते हैं। वह किसी दूसरे ढंग पर चल ही नहीं पाते। वह हमारे प्रिय सहयोगी हैं, यह सब बात है। लेकिन उनमें बदलती हुई स्थिति की पहचान न देखकर कुछ चिन्ता होती है। यदि किसी देश या उसके निवासी, उन चीजों को, जिस रूप में वे हैं, नही समझ पाते, तो वे चीजें, उन्हें छोड़कर दूर चली जाती हैं या उनके बावजूद भी अलग हो जाती हैं। आप घटनाओं पर विजय या नियंत्रण नहीं पा सकते, न उन पर असर डाल सकते हैं, जब तक कि आप उन्हें अच्छी तरह समझ न लें।

आप में से बहुत से अपने अपने कार्य-क्षेत्र में विशेषज्ञ हैं, और, निस्संदेह, जब आप घटनाओं का काफी ध्यानपूर्वक विश्लेषण करते हैं, शायद और बहुत से लोगों से अधिक, आप उन घटनाओं के समझने में अपने पूरे अनुभव का उपयोग करते हैं। फिर भी, यह बहुत सम्भव है कि जो प्रस्तावनाएं लेकर आप चल रहे

हों, वे हमेशा ठीक न हों। यह हो सकता है कि आपके विचारों के आधार-रूप कोई ऐसा बात हो, जो कि अब प्रासंगिक नहीं रही। हो सकता है कि आप आज की गतिशील दुनिया का ध्यान रखते हुए विचार न कर रहे हों, बल्कि एक स्थिर संसार की कल्पना बनाकर विचार कर रहे हों। इस स्थिति के कारण, मैं अनुभव करता हूं कि आज भारत के वातावरण में एक महान अवास्तविकता आ गई है, चाहे मैं आपसे बात कर रहा हूं, चाहे श्रमिकों से, चाहे किसी और से।

जब मैं यहां बैठा हुआ था, तो आपके फेडरेशन के एक सदस्य ने, जो कि कोई प्रस्ताव पेश कर रहे थे या उसका समर्थन कर रहे थे, व्यावहारिक दृष्टिकोण के बारे में कुछ कहा था। क्योंकि अवश्य ही उद्योगपति और व्यवसायी व्यावहारिक होने का गर्व करते हैं। राजनीतिज्ञ भी व्यावहारिक होने की बात करते हैं। लेकिन जो बात मुझे हैरत में डालती है वह यह है, कि जिनका सर्वस्व 'व्यावहारिक होना' है, उनके गिर्द क्या हो रहा है, उसके बारे में भी ये लोग कभी कभी अद्‌भुत रूप से अज्ञान रखते हैं। व्यावहारिक होने की उनकी कल्पना यह है कि संसार कभी बदलता नहीं। और जो उनके पूर्वज अतीत काल में करते आये हैं, उसी का अनुसरण करना चाहिये। यह है व्यावहारिक होना। जिस तरह कि, यदि मैं उस वर्ग को लं जिसका कि मैं कहा जा सकता हूं, अर्थात् राजनीतिज्ञों का, तो वह भी बड़े ठोस-दिमाग के और व्यावहारिक कहे जाते हैं। चूंकि वह ठोस दिमाग के और व्यावहारिक होते हैं, इसलिये लोग उन्हें मजबूर करके दुनिया में एक बड़ा युद्ध करा देते हैं। विषम समस्याओं को निबटाने में वह बड़ी संलग्नता दिखाते हैं और श्रम करते हैं। उन्हें हल करने में वे असफल होते हैं और फिर दूसरा युद्ध होता है और नई समस्याएं उत्पन्न होती हैं। और इसी तरह चक्र चलता रहता है। इस तरह से चक्र चलता है और हम सभी व्यावहारिक होने का दावा करते हैं। अब, निश्चय ही इस दृष्टिकोण में कुछ भूल है। इसलिये, मैं उन लोगों से, जो अपने को व्यावहारिक और ठोस दिमाग का कहते हैं, कुछ ऊब गया हूं। उस ठोस-दिमागी का अर्थ अकसर लचकीलेपन का नितान्त अभाव भी होता है।

दूसरी चीज लीजिये। आज चाहे विदेशी क्षेत्र को देखिये, चाहे घरेलू क्षेत्र को, जो बात हर एक व्यक्ति जानता है, वह यह है कि सब चीजें आपस में परस्पर सम्बद्ध होती हैं। आज आप उन्हें अलग अलग नहीं कर सकते। आप भारत की समस्याओं पर आज इस तरह नहीं विचार कर सकते, मानो उनका संसार की समस्याओं से राजनैतिक अथवा आर्थिक दृष्टि से कोई सम्बध ही न हो। इसके अर्थ यह होते हैं कि हम संसार के दूसरे हिस्सों में, जो कुछ हो रहा है, उसे समझें। यह आसान बात नहीं है, क्योंकि दुनिया के दूसरे भागों में भी, जिसे व्यावहारिक समझा जाता है, उसकी वही पूजा चल

रही है। फल यह होता है कि लोग उन्हीं रास्तों पर चले जा रहे हैं, जिन पर बीते हुए समय में प्रत्यक्ष रूप से बरबादी हुई है। मुझे यह कहना चाहिये था कि यद्यपि तत्काल बुद्धिमानी का प्रदर्शन करना कठिन हो सकता है, फिर भी निश्चय ही जो बात अतीत काल में बार बार बरबादी करा चुकी है उससे बचने में अधिक बुद्धिमानी की जरूरत नहीं। लेकिन एक अजीब बात है कि हमने ऐसा नहीं किया।

बात यह है कि हम एक रास्ता पकड़े हुए चले जा रहे हैं जब कि हम अच्छी तरह जानते हैं कि यह बरबादी की तरफ ले जाने वाला है। अब, अगर यह सच है कि हम सब ने अपनी अक्ल बिल्कुल खो दी है, और ऐसी चीज के चंगुल में फंसे हैं जो कि दुःखान्त घटना के ढंग की है, एक अनिवार्य विपत्ति है, तब हमें जो करना चाहिये, वह यह है कि इस विपत्ति, का एक गौरवपूर्ण रीति से सामना करें। या इसका यदि कोई और रास्ता है, तो वह रास्ता हमें ढूंढ़ना चाहिये, चाहे वह सब से अच्छे नतीजे न ला सके। अब, भारत को देखते हुए, जो जटिल समस्याएं हमारे सामने हैं, और वे बहुत सी हैं, और उनमें से कितनी ही बड़ी-बड़ी समस्याएं हैं। पिछले डेढ़ साल या इससे अधिक समय को देखते हुए, जिसमें कि सरकार काम कर रही है, मुझे इस बात को चेताना है कि बहुत सी चीजें हैं, जो हमने बुरे ढंग से की हैं। बहुत सी चीजें हैं जिन्हें हम करना चाहते थे और अभी तक नहीं कर सके हैं। हमने अपने सामने जरा ऊंचे आदर्श रक्खे और हम उन्हें, जैसा कि हम आशा करते थे, प्राप्त नहीं कर सके। यह बिल्कुल ठीक है। फिर भी, इस बड़े देश के प्रधानमंत्री की हैसियत से एक निश्चयात्मक ढंग से बोलते हुए, मैं कहूंगा कि मैं सरकार की ओर से क्षमा-याचना का भाव लेकर मैं आपके सामने नहीं आया हूं। जो कुछ मेरी सरकार ने किया है, उसका मुझे गर्व है, और मैं समझता हूं कि हमने अपनी समस्याओं का साहस के साथ, बिना उत्तेजना के, सामना किया है उन समस्याओं का जिन्होंने बहुत सी सरकारों को और बहुत से लोगों को पराभूत कर दिया होता। यह सही है कि हमने भूलें और गलतियां की हैं। लेकिन अगर आप देश पर एक व्यापक दृष्टि डालें, वह चाहे विदेशी सम्बन्धों के क्षेत्र में हो,चाहे घरेलू क्षेत्र में हों, और एक क्षण के लिये अपनी दृष्टि भंवरों और जलावर्तों और जलावरोधों से हटा लें, तो आप देखेंगे कि मुख्य धारा आगे बहती चली जा रही है और काफी तेजी से आगे बढ़ रही है। मुझे इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि यह देश आगे बढ़ रहा है और भविष्य में तेजी से आगे बढ़ेगा। इस देश में बहुत से लोग हैं, जिनका मुख्य काम, मुझे जान पड़ता है, अपने देश की निन्दा करना, अपने लोगों की निन्दा करना, सरकार की निन्दा करना और करीब-करीब सभी चीजों की निन्दा करना है। मैंने कहा कि मैं आलोचना की चिन्ता नहीं करता, वह चाहे जितनी कड़ी हो, कितनी ही निरन्तर हो। हम चाहते हैं, आप कहना चाहें तो कह लें कि हम विरोध भी चाहते हैं। मुझे इनकी

चिंता नहीं । लेकिन यह अत्यधिक निराशा की भावना मुझे अच्छी नहीं लगती, और भारत के भविष्य के विषय में अशुभ वचनों का प्रयोग मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं मानता हूं कि केवल आशावादी होना और वस्तुस्थिति को न देखना मूर्खता है। लेकिन यह उससे कम मूर्खता नहीं कि निराशावादी हुआ जाय और अपने ऊपर सभी प्रकार की आपत्तियों के आने की कल्पना की जाय। इसलिए बावजूद उन कठिनाइयों के जिनका हमें सामना करना पड़ा है, और बावजूद उन बेशुमार आलोचनाओं के जो कि हमारे विषय में होती रही है, जब मैं भारत और उसके भविष्य का विचार करता हूं तो अपने हृदय को दृढ़ पाता हूं। इसका यह अर्थ नहीं कि हम आत्म-तुष्टि का रुख ले ले। इससे बड़ी कोई मूर्खता न होगी। हमारे सामने बड़ी समस्यायें हैं, और उन्हें हल करने के लिए हमें कठिन परिश्रम करना है। लेकिन यदि हमें इन समस्याओं को एक लोकतंत्रात्मक ढंग से हल करना है। तो इसके लिये और जनता और केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों के बीच तथा भारत के सभी दल और वर्ग के लोगों में अ पस में, बहुत अधिक सहयोग की आवश्यकता है। इसके लिए, हमें अपने आप पर, जो कार्य हमारे सामने है उसमें, और अपने देश के भविष्य में, विश्वास रखना चाहिये। जैसा कि मैं कह चुका हूँ, आलोचना अवश्य होनी चाहिये, लेकिन ऐसी नहीं जिसका उद्देश्य रुकावट डालना हो, बल्कि ऐसी जो रचनात्मक और हमारे कार्य में सहायक सिद्ध हो। हमें पुराना दृष्टिकोण बदलना होगा, और अपनी समस्याओं को समझने के लिए एक नया, अधिक सजीव दृष्टिकोण ग्रहण करना पड़ेगा।

अब मैं आप से एक दूसरा और बड़ा कठिन प्रश्न पूछना चाहता हूँ, जोकि मेरे और मेरी सरकार के सामने सदा मौजूद रहता है। अगर मैं कहूं, तो हम लोग राजनीतिक दृष्टि से गांधी जी के सिद्धांतों के बीच जन्मे और पले है। यद्यपि हमने गांधी जी के विचारों को न तो अहिंसा के विषय में न अर्थशास्त्र के विषय में, पूरी तरह ग्रहण किया। फिर भी हमने उनमें से बहुतों को ग्रहण किया जो हमारे देश के लिए उपयुक्त थे—और हो सकता है संसार के लिए भी कुछ हद तक उपयुक्त हों। अब आप जरा ऐसे लोगों की कल्पना कीजिये कि जो सदा शान्तिपूर्ण तरीकों को ग्रहण किये हुए अपनी स्वतंत्रता की लड़ाई चलाते रहे हों, उन्हें हद दर्जे की हिंसा का, और राज्य की हथियारबन्द शक्ति का सामना करना पड़ा हो। ऐसा करने म हमें कोई प्रसन्नता नहीं हुई, और इससे हमारे मन में बड़ी समस्यायें और संघर्ष उत्पन्न हुए। हम लोग एक सरकार की हैसियत से शान्ति और व्यवस्था के लिए जिम्मेदार थे, और यदि हम शान्ति और व्यवस्था नहीं कायम रख सकते थे, तो सारे देश के छिन्न-भिन्न होने का भय था। उस जिम्मेदारी को छोड़ देने का या किसी दूसरे रूप में कार्य करने का हमें अधिकार न था। लेकिन हमारे मन में सदा यह संघर्ष और

ख्याल रहा है कि महात्मा गांधी ने जिन बड़े सिद्धांतों को हमें सिखाया था उनके विषय में हम कपटपूर्ण व्यवहार कर रहे थे। हम बातें तो गांधी जी के सिद्धान्तों की करते थे पर हर कदम पर हम उनको अमल में लाने में असफल होते थे। यह एक कष्टकर परिस्थिति थी। परन्तु देश में उस समय जो वस्तुस्थिति थी उसे देखते हुए हमें एक विशष प्रकार से कार्य तो करना ही था। मैं नहीं कह सकता कि हमने इससे भिन्न कार्य किया होता तो वह अच्छा होता। हम लोगों ने अपनी बुद्धि के अनुसार काम किया, और किसी समय भी महात्मा गाँधी के संदेश की यथार्थता या सत्य से इन्कार न करते हुए, हमने वह किया जिसे कि हम अत्यन्त आवश्यक समझते थे। अब जो प्रश्न बार-बार अपने विविध रूपों में हमारे सामने आता है वह यह है कि हम एक व्यापक रूप में नागरिक स्वतंत्रता के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं। जब तक कि नागरिक स्वतंत्रता का खूब विस्तार न हो, देश में असली स्वतंत्रता नहीं हो सकती। पर हम लोगों को बड़ी संख्या में, बिना मुकदमे की सुनवाई के, बंदी कर रहे हैं, और हमारी कुछ राज्यीय सरकारें ऐसे ढंग का कानून बना रही है जिस पर कि पुराने समय में हमें बहुत ही आपत्ति थी। इसे भाग्य की विडंबना ही समझना चाहिये कि हमें ऐसा करना पड़ रहा है। फिर भी हमने ऐसा किया है, और एक आकस्मिक ढंग से नहीं, बल्कि पूर्ण विचार के बाद किया है; हमारे लिए यह एक गहरी चिंता का विषय था। अब हमें इसके बारे में क्या करना चाहिये? लोग हमारे पास आते हैं और नागरिक स्वतंत्रता के के नाम पर उलाहना देते हैं; वे हमारे मनों में एक सहानुभूति की प्रतिध्वनि पाते हैं। पर वस्तुस्थिति यह है कि अगर हम ऐसी कार्यवाही न करें, तो देश में इससे कहीं बुरी बातें घटित होती हैं—गड़बड़ी और दुर्व्यवस्था होती है। इतना ही नहीं, देश के कुछ भागों में भीषण हत्याएं तक हुई हैं। और अगर कोई एक बात है जिसकी कि यह सरकार, जब तक कि वह अपने को सरकार कहती है, या जब तक कि उसके कुछ भी अधिकार शेष हैं, संभवत इजाजत नहीं दे सकती, तो वह सुचिंतित हत्या और किसी दल द्वारा किया गया विध्वंस-कार्य है। मैं किसी प्रकार के सिद्धांत के प्रचार पर आपत्ति नहीं करता, बशर्ते कि उसके अंतर्गत हिंसा का प्रचार न हो। मैं नहीं समझता कि नागरिक स्वतंत्रता की किसी व्याख्या के अंतर्गत हिंसा का प्रचार और हिंसात्मक काम आ सकते हैं। पिछले डेढ़ वर्ष में हमें घोर हिंसा के विविध रूपों से निबटना पड़ा है, चाहे वह हिंसा अगस्त, सितम्बर और अक्टूबर के प्रारम्भिक दिनों में पंजाब या दिल्ली में हुई हो, और चाहे बाद में साम्प्रदायिक संगठनों द्वारा की गई हो, या चाहे कुछ श्रमिक दलों द्वारा और बहुत हद तक भारत की कम्युनिस्ट पार्टी के कुछ वर्गों द्वारा पहले मुख्यतया हैदराबाद के आसपास सरहद के दोनों ओर और फिर पश्चिमी बंगाल में और दूसरी जगहों में की गई हो। मैं इस बात को स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि नागरिक स्वतंत्रता की हमारी कल्पना अब भी यही है कि हम सभी वर्गों के लोगों को अपने सिद्धांतों के प्रचार की पूरी स्वतंत्रता दें, बशर्ते कि वे हिंसात्मक कार्यों

से बचे रहें। हमें इसकी चिंता नहीं कि हम उन सिद्धांतों से सहमत हैं या नहीं; यदि उनका परिणाम हिंसात्मक नहीं तो हम उसके प्रचार की इजाजत देंगे। लेकिन यदि वैसा है, यदि किसी दल के प्रचार का उद्देश्य हिंसा या विध्वंस है, तब उसकी आज्ञा न होगी, और यदि इस कारण नागरिक स्वतंत्रता को सीमित करना पड़ता है तो वह सीमित की जायगी क्योंकि कोई दूसरा उपाय ही नहीं। कलकत्ते में कुछ दिन पहले जो भयानक कांड हुआ था उसे आप सब जानते हैं। बात केवल यहीं तक नहीं कि कुछ लोगों की जानें गईं यद्यपि वह भी बहुत बुरा है। हम लोग बड़े पैमाने पर मृत्यु के अभ्यस्त हो गये हैं। लेकिन जिस बात से मैं सबसे अधिक विचलित हुआ वह यह भावना थी कि लोग जानबूझ कर इस तरह की बातें कर सकते हैं। वह पृष्ठभूमि कैसी है जिसके भीतर से ऐसा वीभत्स व्यापार प्रकट हो सकता है? हमारी जनता में जो कि साधारणतः नम्र और एक दूसरे के प्रति सदय है, किस प्रकार ऐसी मनोवृत्ति विकसित हो जाती है कि वह इस तरह के भयानक कर्म कर सके?

जो हो, हमें ऐसी बातों का सामना करना है और इस तरह की घटनाओं को फिर से होने से रोकना है, भले ही हमें कितने ही आदमियों को मुकदमे की सुनवाई के बाद या बिना मुकदमे के ही जेल में भरना पड़े, क्योंकि यदि यह क्रम जारी रहता है तो सभी प्रकार का नियमित जीवन समाप्त हो जाता है। केवल कुछ गुंडे बच रहते हैं, जो कि प्रबल होकर समाज पर अत्याचार करते हैं। हम गुंडपन को इस देश में किसी तरह नहीं पनपने देंगे। यह बड़े दुःख की बात है कि इस तरह की बात लोगों के मन में श्रमिक वर्ग या श्रमिकों के संबंध में बैठे, क्योंकि मुझे विश्वास है कि भारत का श्रमिक, भारत का मजदूर वर्ग एक बहुत अच्छा मजदूर वर्ग है। वे कभी कभी चाहे उत्तेजित या गुमराह हो जायँ, लेकिन उनसे उचित व्यवहार किया जाय तो वे बड़े काम के लोग हैं और आखिर उन्हीं के बल पर तो आप भारत का निर्माण करेंगे। उन लोगों से आपको निबटना है और उनके साथ न्यायोचित और अच्छा व्यवहार करना है। और जिस बात से मुझे बहुत दुःख पहुँचा है वह यह है कि लोगों के दिमागों में इन भयानक कृत्यों में से कुछ का श्रमिकों अथवा श्रमिक संघों के कार्य के साथ संबन्ध है। यह घातक सिद्ध होगा। हमारी सरकार ने श्रमिकों के संगठनों, श्रमिक संघों आदि को प्रोत्साहन देने की कोशिश की है, क्योंकि यह सबको भली भांति विदित है कि सभी दृष्टिकोणों से ज्यादा अच्छा यह है कि श्रमिक वर्ग उचित रूप में संगठित हो, उसे संगठन की स्वतंत्रता प्राप्त हो, उसे अपने हितों की रक्षा की स्वतंत्रता प्राप्त हो। यह स्थिति श्लाघनीय नहीं कि मजदूर असंगठित रहें, अपनी रक्षा न कर सकें और अपना काम ठीक से पूरा न कर सकें। इसलिए हमने उन्हें संगठित

होने के लिए प्रोत्साहन दिया है। जैसा कि आप जानते हैं, हमने झगड़ों का निपटारा करने के लिए, सुलह आदि कराने के लिए कानून बना दिये हैं, जिसमें जहाँ तक संभव हो हड़तालें टल सकें। जो कानून हमने बनाया है उसके कुछ अंशों पर आप में से बहुतों ने, शायद, आपत्ति की है। लेकिन हमारे सामने कोई दूसरा चारा नहीं है; या तो आप हड़तालें और बड़ी हड़तालें होने दें या कोई ऐसा संगठन बनावें जो कि झगड़ों का निपटारा कर सके। यह स्पष्ट है कि इनमें से दूसरा रास्ता बेहतर है, बशर्ते कि संगठन अच्छा हो, और उसका उद्देश्य किसी पक्ष को सताना न हो कर न्याय और निरपेक्ष व्यवहार हो। हम इस मार्ग पर चल रहे हैं और बावजूद कुछ श्रमिकों और मालिकों के गुमराह प्रयत्नों के, इसी मार्ग पर चलते रहने का इरादा रखते हैं। अच्छी सरकार का यह काम नहीं कि उत्तेजित होकर उद्देश्यों को छोड़ बैठे और थोड़े-से लोगों के दुराचरण की सजा बहुसंख्यक लोगों को दी जाय। ऐसा करना बहुत गलत होगा। फिर भी आज हमें स्थिति का सामना करना है, जिससे कि कुछ लोग और कुछ संघ और कम्यूनिस्ट पार्टी से संबद्ध कुछ अन्य संघ, अंतर्ध्वंस, तोड़–फोड़ और फूट डालने जैसी बुरी बातें न कर सकें। कुछ दिन हुए मैंने संसद में एक वक्तव्य दिया था जिसे आपने देखा होगा। अब हम इस स्थिति का सामना करने जा रहे हैं, और इस तरह के कार्यों का अन्त करने जा रहे हैं। इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। जिस बात की मुझे चिंता है वह यह नहीं कि हम इस स्थिति का कैसे सामना करें, क्योंकि हम इसका सामना करेंगे, हममें इसका सामना करने की काफी शक्ति है; चिंता की बात यह है कि इस तरह के संघर्ष अपने पीछे एक बुरा प्रभाव छोड़ते हैं, और दुर्भावना उत्पन्न करते हैं। एक तरह का ख्याल समाज के अन्य वर्गों में फैल जाता है कि औद्योगिक श्रमिक या रेलवे के श्रमिक अपराधी हैं। यह एक गलत ख्याल है और वास्तव में, उनमें से अधिकांश भले लोग हैं जो इस तरह का कोई उपद्रव नहीं करना चाहते। लेकिन जहाँ तक यह चुनौती हमारे सामने है, हमें उसका सामना करना पड़ेगा और हम करेंगे।

अब मैं खास तौर पर आप सब उद्योगपतियों और उन लोगों से, जिनका भारत के व्यापार से संबंध है, कहना चहूँगा कि पिछले दो-तीन सालों में इस बात को बहुत जोर देकर कहा गया है कि पूंजी लगाने वाला, व्यापारी और उद्योगपति बहुत संवेदनशील होता है। वह एक भयानक रूप से सुकुमार प्राणी है और यदि उसकी शान में कोई गलत शब्द कहा गया, या व्याख्यान दिया गया तो उसका पारा एकदम चढ़ जाता है। पर उसके शरीर या दिमाग या आत्मा की संवेदनशीलता उसकी थैली की संवेदनशीलता के मुकाबले में कुछ नहीं है। मै चाहूँगा कि आपलोग इस पर विचार करें, और पिछले साल या इसके लगभग जो बातें हुई हैं उनके विषय में सोचें।

आप सोचें कि किस तरह वह वर्ग, जिसके आप प्रतिनिधि है, बजट से या किसी दूसरी घटना से या किसी और कार्यवाही से, जो घटित हुई हो या न हुई हो, भयभीत हुआ है। यह सब बार-बार कहा गया है, और इसमें निस्संदेह कुछ सत्य है। मुझे विश्वास है कि आप भयभीत हुए हैं। लेकिन क्या आप समझते है कि हर किसी से बार-बार यह कहने से कि जो कुछ भी हो रहा है उससे आप डर गए है आपकी प्रतिष्ठा देश में बढ़ी है? क्या मैं आपसे कहूँ कि इससे आपकी प्रतिष्ठा बढ़ने की बजाय लोग यह समझने लगे हैं कि आप डरपोक हैं, और आप की अवस्था ढल चली है। जब मैं अवस्था ढलने की बात कहता हूँ तो मेरा तात्पर्य आपकी शारीरिक अवस्था से नही है, बल्कि इस बात से है-और यही एक सारभूत बात है-कि भारत के पूंजीपति, उद्योग-पति आदि इतने उदार नहीं कि नये युग की नई समस्याओं का सामना कर सकें, और आम तौर पर यह खयाल भी फैल रहा है कि वे कुछ संकुचित हृदय के लोग है और जरा-जरा सी बातों में घबड़ा जाते हैं और शिकायत करने लगते हैं और अपने-अपने आवरण में दुबक जाते हैं और दूसरों से सहायता माँगने लगते है। आपको सरकार से मदद माँगने का हक अवश्य है और आप उसे अवश्य मांगिए। लेकिन आपके लिए या किसी भी वर्ग के लिए यह एक बुरी बात है कि इस प्रकार की कमजोरी और दुर्बलता का प्रभाव आप पर पड़े। आखिरकार आज की दुनिया में यह कहा जाता है कि अनेक आर्थिक विचार-धाराओं का संघर्ष हो रहा है। मुख्यतया ये दो हैं--एक ओर तो तथाकथित पूंजीवादी विचार-धारा है, और दूसरी ओर तथाकथित साम्यवादी या सोवियत विचार-धारा है। मैं समझता हूँ कि प्रश्न को सामने रखने का यह बहुत मोटा ढंग है। यह सत्य है कि समस्या को देखने के विविध आर्थिक दृष्टिकोण हैं, और हर एक पक्ष अपने दृष्टिकोण की यथार्थता का कायल है। लेकिन इससे अनिवार्य रूप से यह नतीजा नहीं निकलता कि आप इन दोनों में से एक को स्वीकार करें। बीच के अन्य अनेक तरीके भी हैं। आप सब लोग जानते हैं कि पूंजीवाद या औद्योगिक पूंजीवाद को जो कि संसार में लगभग १५० वर्ष पहले आया, एक बड़ी समस्या का सामना करना पड़ा था। वह थी उत्पादन की समस्या। उसने इस समस्या को, सिद्धान्त में और बहुत कुछ व्यवहार में, दुनिया के अनेक भागों में हल कर लिया। इसलिए औद्योगिक पूंजीवाद बावजूद अनेक प्रतिकूलताओं के, बहुत अधिक सफल रहा है। उसने उत्पादन की समस्या को हल कर लिया। अब, दूसरा प्रश्न उठता है: उसने जमाने की और समस्याओं को कहाँ तक हल किया? आज उसकी यह परीक्षा हो रही है कि वह वितरण की समस्या को भी क्या उसी तरह हल कर सकता है, जिस तरह कि उसने उत्पादन की समस्या को हल किया। यदि वह उस समस्या को हल नहीं कर सकता तो कोई और रास्ता निकालना पड़ेगा। यह सिद्धान्त का प्रश्न नहीं है; वह चाहे साम्यवाद का हो, चाहे समाजवाद का या पूंजीवाद का। यह कठोर तथ्य का प्रश्न है। भारत में अगर हम अपने देश की भोजन-वस्त्र, मकान आदि की बुनियादी समस्याओं

को हल नहीं करते, तो हम चाहे अपने को पूंजीवादी कहते हों या समाजवादी या साम्यवादी या कुछ और हम अलग कर दिए जायंगे और हमारी जगह पर कोई दूसरा आएगा और उन्हें हल करने की कोशिश करेगा। इसलिए. अन्त में जमाने की ये बड़ी समस्याएं तर्क से या युद्ध से हल होने की नहीं, बल्कि ऐसे ही तरीके से हल हो सकती हैं जो प्रत्यक्ष परिणाम दिखायें। यह तरीका जो भी हो और जैसे भी काम पूरा हो तथा ऐसा आवश्यक परिवर्तन हो सके जिससे कि जनता को संतोष हो सके, वही ठीक समझा जायगा, और उसीसे आशा बँधेगी। यह आवश्यक नहीं कि वह तरीका कोई चरमपंथी तरीका हो और ऊपर बताई गई दो विशिष्ट विचार-धाराओं में से एक के अन्तर्गत हो। यह दोनों के बीच का रास्ता भी हो सकता है। वास्तव में आप संसार में आज बहुत-से देशों में देखते हैं कि अन्य ऐसे तरीकों को ढूंढ़ निकालने की कोशिश हो रही है, जो कि पुराने ढंग के पूजीवाद से बिल्कुल जुदा हो और जो उस तरफ झुकते हुए हों जिसे कि साधारणतया समाजवाद कहा जाता है। वे बहुत तेजी से इसके निकट आ रहे हैं। हो सकता है कि भारत में भी हम कोई तरीका, कोई मध्यम मार्ग, ऐसा निकाल सकें, जो कि जनता की हालतों के अधिक अनुकूल हो। इसलिए मैं इन 'वादों' से मोहित नहीं हूँ, और मेरा दृष्टिकोण इस समस्या पर विचार करने के लिए कुछ सुस्ती का है (और मैं कहना चाहूँगा कि देश का दृष्टिकोण भी ऐसा ही होना चाहिए) और मैं इसके साथ जो 'वाद' लगा है उसे भूल जाना चाहता हूँ। आज हमारे सम्मुख समस्या जनता के रहन-सहन के स्तर को ऊपर उठाने, उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने और उनके लिये ऐसे साधनों को प्रस्तुत करने की है जिससे वे अच्छा जीवन बिता सकें, और उनका जीवन न केवल भौतिक साधनों की दृष्टि से बल्कि सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विषयों की दृष्टि से भी, आगे बढ़ सके। दूर भविष्य में क्या होगा, यह मैं नहीं जानता, लेकिन मैं उन्हें ठीक मार्ग पर लगा देना चाहता हूँ और इसकी मुझे चिन्ता नहीं कि वह कौन-सा 'वाद' है जो कि हमें उनको ठीक मार्ग पर लगा देने में सहायक होता है, बशर्ते कि वे ठीक मार्ग पर लग जायं। और अगर एक रास्ते पर चलने से हमें असफलता मिलती है, तो हम दूसरे रास्ते को पकड़ेंगे; हमें इस अथवा उस मार्ग के विषय में हठवादी न होना चाहिए। मार्ग में जो भी रुकावट आती है उसकी एकदम उपेक्षा करनी होगी, या उसे हटा देना होगा। पूरे आदर के साथ मैं आपको बताना चाहूँगा कि अगर आप की माँगें जनता के हित में बाधक होती हैं, तो आप की माँगों की पूरी उपेक्षा कर दी जायगी। यह स्पष्ट है कि वे ऐसी न होंगी और उन्हें ऐसा न होना चाहिए, क्योंकि आपके हित उनके हितों के साथ जुड़े हुए हैं। लेकिन यह मैं आप ही के हित में कह रहा हूँ कि मुझे इस पर आपत्ति है कि आप देश में घूमते फिरें और अपनी माँगें बताते फिरें और यह कहें कि आप का कितना माली नुकसान हुआ है।

आप अपनी थैली को भूल जाइये और अगर भूल नहीं सकते तो उसका जिक्र न कीजिए। यह बात आपके विरुद्ध पड़ती है। हमारे सम्मुख एकमात्र सच्ची कसौटी यह है कि कोई बात जनता के हित की है अथवा नहीं।

अब एक दूसरी भड़काने वाली बात को लीजिये। वह है राष्ट्रीयकरण की बात। भारत के प्रसंग में इसका ठीक-ठीक अर्थ क्या है? पारसाल किसी समय, मेरा खयाल है कि मैंने इस विषय पर भाषण दिया था। मुझे याद नहीं कि मैं आपके सामने भी इस विषय पर बोला था या नहीं, लेकिन मैंने संसद् में इस सम्बन्ध में कुछ कहा था। और लोगों ने भी इस विषय पर कहा है। अभी उस दिन उपप्रधान मंत्री ने भी इस विषय पर कुछ कहा था। लोग समझते हैं कि सरकार एक नीति को पलट कर दूसरी नीत अपना रही है और साथ ही स्पष्ट निश्चय नहीं कर पा रही है कि उसे किधर बढ़ना है। हमें किसी बात पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता ही नहीं हुई, क्योंकि हमारे विचार इस विषय पर बिल्कुल स्पष्ट रहे हैं। हमारे विचारों की स्पष्टता का कारण किसी प्रकार के सिद्धान्त नहीं थे—यद्यपि हर बात के पीछे एक सिद्धान्त होता है—बल्कि मूलतया कुछ व्यावहारिक कारण थे। हम समझते हैं कि भारत में, आज की परिस्थितियों में कुछ बुनियादी उद्योगों पर राज्य का नियंत्रण होना चाहिए। कुछ तो इसलिए कि इन मूल और बुनियादी उद्योगों का निजी हितों द्वारा नियंत्रण इन उद्योगों के लिए भयावह है, और कुछ दूसरे कारणों से भी जिनके विस्तार में जाने की यहाँ आवश्यकता नहीं। जहाँ तक कि और उद्योगों का सम्बन्ध है, वे निजी नियंत्रण में रह सकते हैं, लेकिन यहाँ भी स्मरण रखना होगा कि जब एक राज्य अपने औद्योगिक और अन्य प्रकार के विकास के संबंध में योजना बनाता है, तो योजना बनाना ही एक हद तक राज्य की ओर से नियंत्रण या निर्देशन का सूचक होता है, नहीं तो योजना बन ही नहीं सकती। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने, १७ वर्ष हुए, राज्य द्वारा बुनियादी मूल उद्योगों और कुछ खास उद्योगों और सेवाओं के नियंत्रण की नीति निर्धारित की थी। इस विषय का प्रारंभिक दृष्टिकोण यही है। दूसरी विचारणीय बात यह है कि किन चीजों को पहले उठाना चाहिए और किन्हें बाद में? उद्योग संबंधी नीति पर एक बयान देते हुए हमने कुछ चीजें गिनाई थीं, जिन्हें कि हमने समझा था कि तत्काल राज्य को ले लेना चाहिए या जिनका राष्ट्रीयकरण हो जाना चाहिए (यदि आप इस शब्द का व्यवहार करना चाहें)। औरों के तथा कुछ बुनियादी और मूल उद्योगों के बारे में भी हमने कहा था, कि हम उन्हें दस वर्ष तक, या हो कि सकता है कि इससे भी अधिक काल तक न छाएँगे। हमने ऐसा क्यों कहा? आप से बिल्कुल स्पष्ट कहूँ कि जो लोग इन उद्योगों का नियंत्रण कर रहे हैं उनके प्रेमवश हमने ऐसा नहीं कहा, बल्कि इसलिए कि हमारे साधन सीमित थे। चूंकि हम लोग देश को औद्योगीकरण में सहायता देने के लिये

चिंतित थे, इसलिए हमने अनुभव किया कि जो साधन हमारे पास हैं उनका कहीं अच्छा उपयोग यह होगा कि उन्हें नए बुनियादी उद्योगों या नई योजनाओं में जो हमारी निगाह में थीं, लगाया जाय, न कि कुछ उद्योगों के स्वामित्व को निजी हाथों से बदल कर राज्य के नियंत्रण में फँसा दिया जाय। इसलिये भली भाँति सोच-विचार के बाद हमने निर्णय किया कि इन निजी उद्योगों को हम कायम रखेंगे और उनको सब तरह से प्रोत्साहन देंगे। हम नहीं जानते कि कब हम उनका राष्ट्रीयकरण कर सकेंगे। लेकिन इस बीच फौजी उद्योगों के अतिरिक्त, जिनका कि हर हालत में राष्ट्रीयकरण करना है, नए उद्योगों का एक राष्ट्रीय ढाँचा हम निर्माण कर लेना चाहते हैं। इसलिए यह हमारे साधनों के अच्छे-से-अच्छे उपयोग का तथा अन्य लोगों से, जिनमें कि उद्योग और व्यापार के और अन्य हितों के प्रतिनिधि भी होंगे, परामर्श करते हुए आगे बढ़ने का प्रश्न है जिससे कि हम अपने पैसों का अच्छे-से-अच्छा लाभ उठा सकें और साथ ही मौजूदा हालतों को उलट-पलट न दें।

उप-प्रधान मंत्री ने उस दिन मद्रास या हैदराबाद में कुछ इस तरह की बात कही थी कि अपने वर्तमान साधनों को देखते हुए, कुछ चीजों का, जिन्हें कि हमने छोड़ दिया है, हम राष्ट्रीयकरण करने नहीं जा रहे हैं, क्योंकि अगर हम ऐसा करते हैं तो हम अपनी राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के दूसरे विभागों के विकास को रोकते हैं। इसलिए, बिल्कुल व्यावहारिक दृष्टिकोण से, और इस दृष्टिकोण से भी कि जो काम आज हो रहा है और जिसे हम चाहते हैं कि जारी रहे, वह उलट-पलट न जाय, हम इस निर्णय पर पहुँचे। अब आपको और हमें और वास्तव में हम सबको एक दूसरे को समझना है, और अगर आप समझते हैं कि हम आपके हितों का नुकसान करने जा रहे हैं, तब स्पष्ट है कि सहयोग कठिन है। या, अगर हम समझते हैं कि आप अलग ही रहेंगे और हमारे अर्थात् राज्य के हितों को और अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुँचायेंगे तो भी हमारा—आपका कोई सहयोग नहीं हो सकता, क्योंकि जहाँ विश्वास का अभाव है वहाँ किसी प्रकार का सहयोग स्थापित हो ही नहीं सकता। हो सकता है कि हम और आप सदा सहमत न हों, लेकिन वस्तुस्थिति यह है, कि चाहे हम सहमत हों चाहे न हों, साधारण बुद्धि का तकाजा यह होना चाहिए कि हम मिल-जुल कर शक्ति लगावें। नहीं तो हममें से किसी का भी भला नहीं होना है। मैं चाहता हूँ कि आप इस विषय में विचार करें क्योंकि आप भली भाँति जानते हैं उद्योगपति और व्यवसायी लोग, चाहे उनकी गलती हो या न हो, आज जनसाधारण में बड़े अप्रिय हो गए हैं। वे अप्रिय इसलिए हुए हैं कि उनमें से कुछ लोगों ने ठीक व्यवहार नहीं किया है, और परिस्थितियों से लाभ उठाकर अंधाधुंध नफ़ा कमाकर समाज को नुकसान पहुँचाया है। शायद अपेक्षाकृत थोड़े ही व्यक्तियों के इस तरह के व्यवहार ने सारे व्यवसायी समाज पर बुरा असर डाला

है। इसने उन्हें बदनाम किया है और मैं ठीक-ठीक नहीं जानता कि यह बदनामी आप कैसे मिटायेंगे। लेकिन मैं आप से कहता हूँ कि आप अपनी प्रतिष्ठा को सुधारने का पूरा प्रयत्न कीजिए, क्योंकि अन्त में कानून या सरकारी रक्षा के बल पर हम वस्तुओं के उत्पादन में बहुत आगे नहीं जा सकते, बल्कि इस कार्य से संबंधित विविध पक्षों की सद्भावना द्वारा ही ऐसा कर सकते हैं। यदि ऐसी कुछ भावना है कि व्यवसायी वर्ग ने जनसाधारण के प्रति उचित कार्य नहीं किया है, तो, क्या मैं कहूँ कि, प्रायश्चित्त के रूप में आपको कुछ करना ही होगा, और यह बात मैं बड़ी गम्भीरता से कहता हूँ। मैं मानता हूँ कि यह बड़ी गम्भीर बात है कि श्रमिक वर्ग ने कई जगहों पर भयानक रूप से दुर्व्यवहार किया है, और कलकत्ते की घटना बहुत बुरी है। हम इसकी आलोचना कर सकते हैं, लेकिन श्रमिक वर्ग का दुर्व्यवहार करना एक बात है—क्योंकि आखिर उन्हें बहुत अच्छे आचरण की शिक्षा नहीं मिली है—तथा ऐसे लोगों का, जिन्हें कि दूसरों के लिए आदर्श स्थापित करना चाहिए, दुर्व्यवहार करना बिल्कुल दूसरी बात है। यह बुराई श्रमिक वर्ग को दुर्व्यवहार करने का अवसर देती है, क्योंकि वे देखते हैं कि दूसरे क्या करते हैं और इस तरह कुत्सित चक्र चलता रहता है। अतएव मैं चाहूँगा कि आप इस पर विचार करें और इसका ध्यान रक्खें कि जो बातें आप जनता के सामने रक्खें वे ऐसी हों जिनमें जनता आपका स्वार्थ न देखे, बल्कि यह देखे कि आप समाज के हित में काम कर रहे हैं, जैसा कि आप दूसरों से चाहते हैं; क्योंकि आखिर हम लोगों को भारत में साथ ही डूबना या पार होना है, चाहे वह श्रमिक वर्ग हो चाहे उद्योगपति हों। आज भारत में यह देख कर आश्चर्य होता है कि कुछ ऐसे लोग या वर्ग हैं, जो उपद्रव और अनर्थ और अव्यवस्था उत्पन्न करना चाहते हैं, पर जिनका किसी 'वाद' से कोई सम्बन्ध नहीं। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं यह कल्पना नहीं कर सकता कि कोई भी साम्यवादी, अगर वह ईमानदार है और अगर वह भारत के भविष्य के हित में सोचता है, कैसे इस प्रकार के कामों में लग सकता है, जिनमें कि आज भारतीय साम्यवादी दल लगा हुआ है। मैं साम्यवाद से सहमत हूँ या असहमत, इससे स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता। लेकिन मैं कहता हूँ कि भारत के कुछ वर्गों के कार्य,—उनके समाजवादी सिद्धान्त जैसे भी हों,—ऐसे हैं, जिनका भारत की भावी भलाई से कुछ भी वास्ता नहीं। वे कुछ दूसरे ही विचारों पर आधारित हैं। मेरा विश्वास है कि वे भारत में अव्यवस्था उत्पन्न करने के निश्चित उद्देश्य पर आधारित हैं, जिससे कि शायद यह आशा की जाती है कि अन्त में कुछ नई चीज़ निकल आवे। यह एक अजीब दृष्टिकोण है, यानी भारत की चलती गाड़ी को रुकना और शायद एक या दो पीढ़ियों तक इस बात की प्रतीक्षा करना कि कुछ नतीजा निकल आवे। मेरा विश्वास है कि यह एक ऐसी चीज़ है, जिसे कि भारत के लोग कभी बर्दाश्त न करेंगे। हम कुछ ऐसे वर्गों का मुकाबला करने को तैयार हैं जो कि भारत में ऐसी अव्यवस्था और उपद्रव फैलाना चाहते हैं, जैसा कि उन्होंने बर्मा तथा अन्य जगहों में किया है। इसका सभी को मुका-

बला करना है, और इसका मुकाबला तभी किया जा सकता है जब कि हर एक वर्ग अलग-अलग दिशा में जोर न लगा कर और केवल अपने स्वार्थ की बात न सोच कर, राज और जनता के हित की बात सोचे ।

अब मैं खुराक की समस्या के सम्बन्ध में कुछ बातें कहना चाहूँगा । भोजन आज हमारे लिए एक बुनियादी समस्या बन गया है । यह एक ऐसा विषय है जिसके बारे में यह कहा जा सकता है कि हम स्थिति सँभालने में असफल रहे हैं । मैं समझता हूँ कि उस आसानी के कारण ही, जिससे कि हमें बाहर से खाने का सामान मिलता रहा है, हम इस समस्या का उचित ढंग से सामना नहीं कर सके हैं । मैं समझता हूँ कि हमें इस रूप में सोचना चाहिए कि एक निश्चित काल के बाद हम बाहर से अनाज नहीं मँगायेंगे यह अवधि हम चाहें तो दो वर्ष की रख लें, पर इससे मैं एक दिन भी आगे बढ़ना न चाहूँगा, और हमें यह निश्चय कर लेना चाहिए किदो वर्ष के बाद जो अनाज हम पैदा करेंगे उसी पर अपना निर्वाह करेंगे या इस प्रयत्न में जान की बाजी लगा देंगे । अब अपने मन में मुझे पूरा विश्वास है कि मूलतः और बुनियादी तौर पर भारत की खुराक की समस्या कोई कठिन समस्या नहीं है । कुछ हमने उसे मुश्किल बना ही लिया है । आखिरकार अनाज की कमी, मेरा खयाल है, अब ६ % या ७ % के लगभग है । फ़सलें बुरी हों तो १० % मान सकते हैं । हम लम्बे समय की योजनाओं को, जो पांच, छः या दश वर्षों में फल लाएँगी, अलग भी रक्खें तो भी यह सहज में सम्भव होना चाहिए कि अगले लगभग दो वर्षों के बीच उपज बढ़ाकर या नए रकबों पर खेती करके या खाने की आदतों में परिवर्तन करके ऐसा प्रबन्ध कर लें कि यह ७ या ८ % की कमी पूरी हो जाय, और मैं चाहूँगा कि केन्द्रीय सरकार और राजकीय सरकारें तथा और लोग भी इसी प्रकार कार्य करें। जिस तरह इस समय काम चल रहा है उसी तरह चलाए जाना अर्थात् विदेशों से बहुत बड़ी मात्रा में अनाज मंगा कर निर्वाह करना ठीक नहीं है ।

मैंने आपका बहुत सा समय ले लिया और शायद मैंने उन सब बातों की चर्चा नहीं की जिनको कि आपके अध्यक्ष ने अपने भाषण में उठाया है। जैसा कि आपको मालूम है हम सब आज कल संसद में अपने बजट पर बहस कर रहे हैं और इस बजट का, हमारी की हुई और बातों की तरह सभी तरह के लोग बड़े जोरों से विरोध कर रहे हैं। यह बजट मूलतः एक ऐसा बजट है जो सावधानी बरतते हुए तैयार किया गया है, जिसमें जोखिम से बचने का प्रयत्न हुआ है और जो कि हमारे सुयोग्य वित्त-मंत्री के दिमाग से बहुत सोच विचार के बाद निकला है । इसकी आलोचना करना सहज काम है, लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि हमने इस समस्या पर जान-बूझ कर इस दृष्टि से नहीं देखा है कि तत्काल नतीजे हासिल हो जायँ, बल्कि इस दृष्टि से कि अगले वर्ष परिणाम निकलें । इस समय ऐसी बातें कहना या करना सहज

होता जो कि सरकार को कुछ अधिक जनप्रिय बना देतीं। यह बहुत आसान था। लेकिन लोकप्रियता हासिल न करके भविष्य में एक अधिक मजबूती लाने वाला रास्ता पकड़ने का साहस हमने दिखाया। कार्य करने के इस ढंग का जनता स्वागत करेगी या नहीं, यह मैं नहीं जानता, क्योंकि लोग अक्सर आगे के वायदे की अपेक्षा तत्काल लाभ पसन्द करते हैं। लेकिन आखिरकार, सरकार की हैसियत से हमें आज की ही नहीं बल्कि आने वाले कल की और परसों की बातें भी सोचनी पड़ती हैं। हमें भारत की इस विशाल इमारत को दृढ़ नींव पर बनाने की बात सोचनी है। हमने पिछले साल-दो साल के बीच इस दृढ़ नींव के रखने की कोशिश की है। लेकिन नींव रखने का कार्य आरम्भ करने से पहले ही हमें दैत्यों जैसी बाधाओं और विघ्नों का सामना करना पड़ा, और उनसे लड़ना पड़ा और अगर उन्हें मार डालना नहीं तो कम से कम बेकार करना पड़ा। आगे भी बहुत से वन्य जंतुओं का हमें सामना करना है। फिर भी भविष्य के भारत की नींव आज पड़ रही है, और अगर हम उसे कुछ ऐसी बातें करके खतरे में डाल दें, जो कि सुखकर भले ही हों लेकिन जिनके प्रतीक्षित नतीजे कल कुछ न निकलें तो भविष्य में अपने विश्वास के प्रति हम झूठे होंगे। हम आखिर एक प्रकार की कार्यवाहक सरकार हैं, जो कि भारतीय गणराज्य की स्थापना की प्रतीक्षा कर रहे हैं। जब उसकी स्थापना हो जायगी हम भारत का भार उसको सौंप देंगे; और हम चाहेंगे कि हम एक ऐसे भारत का भार उसे सौंपें जिसने अभी ही एक अंश में महत्ता प्राप्त कर ली है और जो वेग के साथ आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों ही क्षेत्रों में कहीं बड़ी प्रतिष्ठा के पथ पर अग्रसर हो रहा है।

भारत की वैदेशिक नीति

भारत की वैदेशिक नीति

महोदय, मैं इस अवसर का स्वागत करता हूँ। यद्यपि हम विदेशी मामलों के विषय में प्रत्यक्ष ढंग से नहीं, बल्कि कटौती के प्रस्ताव को लेकर विचार कर रहे हैं; फिर भी, इस सभा के लिए यह एक नवीन अवसर है और मैं समझता हूँ कि यह अच्छी बात है कि हम यह अनुभव करें कि इसके क्या अर्थ होते हैं।

इसके यह अर्थ हैं कि हम अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में, केवल सम्मेलनादि करके नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों को देश के तथा इस सभा के सामने निर्णय के लिये रखकर, प्रवेश कर रहे हैं। इस सभा के सामने कोई तात्कालिक प्रश्न नहीं है। लेकिन आगे चल कर निश्चय ही बड़े अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर इस सभा को निर्णय करना होगा।

वादविवाद को और माननीय सदस्यों के भाषणों को सुनकर मैं यह समझ पाया हूँ, जैसा कि कदाचित् स्वाभाविक भी था कि कोई तात्कालिक विचारणीय विषय या विवाद का कोई खास प्रश्न हमारे सामने नहीं है, बल्कि केवल कुछ सद्भावना-पूर्ण आशाएँ हैं, कुछ अस्पष्ट आदर्श हैं और कभी-कभी, यह कहना चाहिए कि, संसार में जो बातें हुई हैं उनकी निन्दा है। यह एक अनिश्चित वादविवाद रहा है, जिसमें कोई ऐसी विशेष बात नहीं हुई जिसे ग्रहण किया जा सके। कई माननीय सदस्यों ने, भारत सरकार की ओर से गत वर्ष वैदेशिक मामलों में जो कुछ हुआ है उसके बारे में भले और उदार शब्द कहने की कृपा की है। मैं उनका कृतज्ञ हूँ, लेकिन क्या मैं उत्तर में कह सकता हूँ कि मैं उनसे बिल्कुल असहमत हूँ?

मैं समझता हूँ कि भारत सरकार ने, पिछले वर्ष, जो कुछ उसे करना चाहिए था, नहीं किया। इसमें, कदाचित्, भारत सरकार का उतना दोष नहीं था, जितना परिस्थितियों का। जो भी हो, हमने जो कुछ करने का विचार कर रक्खा था, वह हम नहीं कर सके, अधिकांशतः इसलिए कि देश में अन्य परिस्थितियाँ खड़ी हो

संविधान परिषद् (व्यवस्थापिका), नई दिल्ली, में ४ दिसम्बर, १९४७ को दिया गया भाषण।

वैदेशिक मामलों और कामनवेल्थ संबंधों के मन्त्रालय के लिये व्यय की मांग पर प्रोफेसर एन० जी० रंगा द्वारा रखे गए कटौती के प्रस्ताव के उत्तर में यह भाषण दिया गया था।

गई, जो इसमें बाधक हुईं। हम अभी उन आन्तरिक तथा अन्य कठिनाइयों को दूर नहीं कर सके हैं। अपने वैदेशिक सम्बन्धों में हमारा स्वतंत्र हाथ नहीं रहा है, और इसलिए मैं इस सभा से अनुरोध करूँगा कि इस अवधि के विषय में अपना निर्णय करते हुए वह उन बातों का ध्यान रखेगी जो न केवल पिछले तीन-चार दुःखद महीनों में, बल्कि पिछले वर्ष भर में देश में हुई हैं। यह वह समय रहा है जब कि हम ऐसे आंतरिक संघर्ष और अव्यवस्था के बीच से गुज़रे हैं, जिसने कि हमारी शक्ति का शोषण कर लिया है और हमें अन्य मामलों पर ध्यान देने का समय नहीं दिया है।

यह हमारे पिछले वर्ष की राजनीति की मुख्य बात रही है, और निस्संदेह इसने हमारी वैदेशिक नीति पर इस रूप में असर डाला है कि हम अपना काफ़ी समय और शक्ति उसे नहीं दे सके। तथापि मैं समझता हूं कि हम उस क्षेत्र में आगे बढ़े हैं। फिर, यह माप करना कठिन है कि आप इस क्षेत्र में कितना आगे बढ़ सके। मेरे माननीय मित्र डा० खरे ने कई बातों की आलोचना की है, और इसका उन्हें पूरा अधिकार है, और उनकी आलोचना ने एक लिखित व्याख्यान का रूप लिया है जिसकी ओर आप का ध्यान आकर्षित नहीं किया गया! माननीय डॉ० खरे के इस वाद-विवाद में प्रवेश करने से मुझे प्रसन्नता हुई, क्योंकि विवाद कुछ भारी सा पड़ रहा था और उन्होंने उसमें प्रहसन और हास्य और साथ ही कल्पना का पुट दे दिया। जब ये माननीय सदस्य इस सभा में भारत सरकार के प्रतिनिधि थे, तब वे जो कुछ कहते थे उसे विशेष महत्व देना कुछ कठिन होता था। मैं समझता हूं, ऐसा करना शायद अब उतना कठिन नहीं, या शायद हो भी! इसलिए मैं कुछ कहने का या उन्होंने जो कुछ कहा है उसका उत्तर देने का साहस न करूँगा, क्योंकि वह मुझे बिल्कुल असंगत और अर्थहीन जान पड़ता है।

लेकिन हम और बातों पर आवें, तो आज वैदेशिक नीति के प्रमुख विषय का धुँधला-सा संकेत हमें उस रूप में मिलता है जिसकी चर्चा "आप इस गुट के साथ हैं या उस के?" इस प्रश्न द्वारा करते हैं। पर ऐसा कहना विचारणीय विषय को अत्यधिक सरल कर देना है। माननीय मौलाना के लिए यह प्रवचन देना सहज है कि भारत इस झंडे या उस झंडे के नीचे युद्ध करेगा। लेकिन एक जिम्मेदार सभा या एक जिम्मेदार देश, निश्चय ही, स्थिति को इस तरह नहीं देखता।

हमने पिछले वर्ष यह घोषणा की थी कि हम किसी खास गुट के साथ अपने को संबद्ध न करेंगे। इसका तटस्थता या अकर्मण्यता या किसी और बात से सम्बन्ध नहीं। अगर एक बड़ा युद्ध होता है तो कोई कारण नहीं कि हम उसमें कूद पड़ें। फिर भी आजकल संसारव्यापी युद्धों में तटस्थ रहना कुछ कठिन होता है।

जिसे अन्तर्राष्ट्रीय मामलों का कुछ भी ज्ञान है, वह यह जानता है। विचारणीय विषय यह नहीं है कि जब युद्ध हुआ तो क्या होगा। क्या हम मौलाना हसरत मोहानी की सलाह मान कर दुनिया से ऐलान करने जा रहे हैं कि जब लड़ाई होगी तब हम रूस का साथ देंगे ? वैदेशिक नीति या किसी प्रकार की नीति के बारे में क्या यही उनकी कल्पना है ? उनकी इस बात से मुझे जान पड़ता है कि उन्हें इसका आश्चर्यजनक रूप से अज्ञान है कि वैदेशिक मामलों का संचालन कैसे होता है । जहां तक हो सकेगा हम किसी युद्ध में सम्मिलित न होंगे; और जब यह तै करने का अवसर आयेगा कि हम किस तरफ़ शरीक हों, तो हम उस तरफ़ शरीक होंगे जिधर जाने से हमारा हित होगा। यहीं पर यह बात खतम हो जाती है ।

विदेशी नीतियों की चर्चा करते हुए इस सभा को याद रखना चाहिए कि यह शतरंज के तख्ते की झूठी लड़ाइयां नहीं हैं। इनके पीछे सभी प्रकार की बातें होती हैं । अन्त में, वैदेशिक नीति आर्थिक नीति का परिणाम होती है, और जब तक भारत अपनी आर्थिक नीति का ठीक-ठीक विकास नहीं कर लेता, उसकी वैदेशिक नीति कुछ अनिश्चित, कुछ असंगत, कुछ अटकल लगाती हुई सी रहेगी । यह हम भले ही कहें कि हम शान्ति और स्वतंत्रता के पक्ष में हैं, फिर भी, इससे कोई कुछ समझ नहीं सकता, सिवाय इसके कि यह एक सद्भावनापूर्ण आशा है। हम निस्संदेह शान्ति और स्वतंत्रता के पक्ष में हैं । मैं समझता हूँ कि इस विषय में कुछ कहा जा सकता है । जब हम कहते हैं कि हम एशियायी देशों की स्वतंत्रता के पक्ष में और उन पर होने वाले साम्राज्यवादी नियंत्रण के विरुद्ध हैं तो इसमें कुछ अर्थ अवश्य है ।

निश्चय ही इसका कुछ तात्पर्य होता है, लेकिन यह अनिश्चित वक्तव्य कि हम शान्ति और स्वतंत्रता के पक्ष में हैं, स्वतः कोई अर्थ नहीं रखता, क्योंकि हर एक देश यही बात कहने के लिए तैयार है, चाहे उसका यह मतलब हो या न हो, तो फिर हम किस पक्ष में हैं ? वास्तव में, इस तर्क का विवेचन करने के लिए हमें आर्थिक क्षेत्र में जाना पड़ेगा । आज की जो स्थिति है, वह यह है कि यद्यपि हमें कुछ समय से सरकार के रूप में अधिकार प्राप्त हैं, फिर भी मुझे खेद है कि हम कोई रचनात्मक आर्थिक योजना या आर्थिक नीति नहीं प्रस्तुत कर सके हैं। इसकी जो सफाई मैं दे सकता हूँ वह यह है कि हम एक ऐसे अजीब ज़माने से गुज़रे हैं जिसने हमारी सारी शक्ति और सारा ध्यान खींच रक्खा था और इसी से ऐसा करना कठिन था। फिर भी यह हमें करना पड़ेगा, और जब हम यह कर लेंगे तो हमारी विदेश नीति इस सभा में दिए गए सब व्याख्यानों की अपेक्षा उसके अधिक आश्रित होगी ।

हमने विदेशी गुत्थियों से बचने का यत्न, किसी गुट में सम्मिलित न होकर

किया है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह रहा है कि इन बड़े गुटों में से एक का भी हमारी तरफ़ सहानुभूति का रुख नहीं है। वे समझते हैं कि हमारा भरोसा नहीं किया जा सकता, क्योंकि हमें एक पक्ष या दूसरे पक्ष में राय देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

पिछले वर्ष जब हमारा प्रतिनिधि-मंडल संयुक्त राष्ट्र संघ में गया, तो वह पहला मौका था जब कि भारत से एक कमोबेश स्वतंत्र प्रतिनिधि-मंडल बाहर गया हो। इसे कुछ संदेह की दृष्टि से देखा गया। लोगों को मालूम नहीं था कि यह क्या करने जा रहा है। जब उन्होंने देखा कि हम अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करते हैं तो उन्होंने इसे पसन्द नहीं किया। गत वर्ष हम संयुक्त राष्ट्र संघ में लोकप्रिय नहीं थे। मेरा आशय व्यक्तिगत रूप से लोकप्रिय होने से नहीं है, बल्कि अपनी नीति के सम्बन्ध में। वे ठीक-ठीक पता नहीं चला सके कि हम क्या हैं और हमारा उद्देश्य क्या है। पहले पक्ष के मन में यह सन्देह था कि हम वास्तव में दूसरे पक्ष से गुप्त रीति से मिले हुए हैं, और हम इस बात को छिपा रहे हैं, और दूसरे पक्ष ने समझा कि हम पहले पक्ष से गुप्त रीति से मिले हुए हैं, और हम इस बात को छिपा रहे हैं।

इस साल उनके रुख में कुछ परिवर्तन हुआ। हमने बहुत सी ऐसी बातें कीं जो दोनों पक्षों ने नापसन्द कीं, लेकिन यह उनकी समझ में आगया कि हम वास्तव में किसी गुट से मिले हुए नहीं हैं, और हम अपने दृष्टिबिन्दु के अनुसार और अपनी समझ से किसी विवाद विशेष के गुण-दोष को देखते हुए काम करने की कोशिश करते हैं। स्पष्ट है कि उन्होंने इसे पसन्द नहीं किया, क्योंकि स्थिति आज यह है कि इन बड़ी विरोधी शक्तियों में आपस में इतना मनोविकार, इतना भय और आपस में एक दूसरे के प्रति इतना सन्देह है कि कोई भी जो उनके साथ न हो उनका विरोधी समझा जाता है। इसलिए अनेक अवसरों पर जो कुछ भी हमने किया उसे उन्होंने नहीं पसंद किया : फिर भी उन्होंने हमारा काफी आदर किया, क्योंकि उन्होंने अनुभव किया कि हमारी एक स्वतंत्र नीति है, हमको धमका कर इस या उस पक्ष में नहीं किया जा सकता। हम किसी दूसरे की भांति गलती कर सकते हैं, फिर भी हम अपनी नीति, और अपने कार्यक्रम पर दृढ़ रहेंगे। इस तरह एक ओर जहां हमने संभवतः अपने कुछ मित्रों को पिछले वर्ष से भी अधिक अप्रसन्न किया, वहीं सब के साथ हमारा अच्छी तरह निभाव हुआ, क्योंकि उन्होंने समझा कि हमारा अपना एक पक्ष है।

हमने किस प्रकार कार्य किया इसके उदाहरण स्वरूप फिलिस्तीन का मामला ले लीजिए, जिसमें बड़ी दिक्कतें उपस्थित हुईं, और आगे भी होंगी। हमने इस सम्बन्ध में एक विशेष रुख लिया, जो कि मोटे ढंग से संघीय राज्य की स्थापना के पक्ष में था जिसके अलग-अलग भागों को

स्वायत्तता प्राप्त हो। संयुक्त राष्ट्रों के सामने जो दो और रुख थे, उन दोनों का यह दृष्टिकोण विरोधी था। इनमें से एक विभाजन के पक्ष में था, जो कि अब हो गया है, और दूसरा एकात्मक राज्य के पक्ष में था। हमने संघीय राज्य का सुझाव दिया, जिसमें, स्वभावत: संघीय शासन में, अरबों का बहुमत होता, लेकिन अन्य प्रदेशों को, जिनके अंतर्गत यहुदी प्रदेश भी आते, स्वायत्त शासन प्राप्त होता। बहुत सोच-विचार के बाद हमने निश्चय किया कि यह न केवल समस्या का उचित और संगत हल था, बल्कि एकमात्र हल था। किसी दूसरे हल का परिणाम होता युद्ध और संघर्ष। फिर भी हमारा बताया हल--जो कि इस सभा को स्मरण होगा कि फिलिस्तीन कमिटी की अल्पसंख्यक रिपोर्ट में दिया हुआ हल था--संयुक्त राष्ट्रों में अधिकांश लोगों द्वारा पसन्द न किया गया। बड़ी शक्तियों में से कुछ विभाजन पर तुली हुई थीं; इसलिए उन्होंने विभाजन पर जोर दिया और अन्त में उनकी बात होकर रही। दूसरे लोग एकात्मक राज्य के लिये इतने उत्सुक थे और विभाजन रोकने के विषय में, कम-से-कम विभाजन के प्रश्न पर दो-तिहाई बहुमत को रोक सकने के विषय में, इतने विश्वस्त थे कि उन्होंने हमारे सुझाव को स्वीकार नहीं किया।

जब किसी तरह अन्तिम कुछ दिनों में विभाजन अचानक अवश्यम्भावी हो गया, और उसके पक्ष में कुछ बड़ी शक्तियों के दबाव से मत पलटने लगे, तो यह अनुभव किया गया कि भारतीय हल कदाचित् सब से अच्छा था, और अन्तिम ४८ घंटों में भारतीय हल को अग्रसर करने का प्रयत्न हमारे द्वारा नहीं, बल्कि उन लोगों के द्वारा हुआ, जो कि एकात्मक राज्य चाहते थे ।

इस समय बात बहुत आगे बढ़ चुकी थी। कार्य-विधि संबंधी कठिनाइयां थीं और बहुत से लोग जिन्होंने कि इस हल को स्वीकार किया होता, विभाजन के पक्ष में वचनबद्ध हो चुके थे। इसलिए, अन्त में, दो-तिहाई बहुमत से विभाजन का निर्णय हुआ, और बहुत से लोगों ने मत दिए ही नहीं; परिणाम यह हुआ कि इस समय फिर कठिनाइयां उपस्थित हो गई हैं, और भविष्य में मध्य-पूर्व में बहुत उपद्रव की आशका है ।

मैं इस सभा को यह एक उदाहरण के रूप म बता रहा हूं कि बहुत सी कठिनाइयो के बावजूद, और दोनों ओर के मित्रों के कहने पर भी कि हमें एक या दूसरे पक्ष के साथ मिल जाना चाहिए, हमने ऐसा करने से इ कार किया, और मुझे कोई संदेह नहीं कि जो स्थिति हमने ग्रहण की थी वही ठीक थ और मुझे अब भी कोई सदेह नहीं है कि हमारा बताया हल ही सब से अच्छा हल होता।

यह स्थिति हने बहुत से मामल. में अपनानी पड़ती है। लेकिन इसका अनिवार्य

रूप से यह अर्थ होता है कि हमें संयुक्त राष्ट्रों में और इस प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय बैठकों में अकेला रहना पड़ता है। फिर भी हमारे लिए एकमात्र सम्माननीय और सही स्थिति यही है, और मुझे पूरा विश्वास है कि इसी स्थिति को ग्रहण करके, अर्थात् किसी परिस्थिति पर तत्काल अपने पक्ष में कोई मत प्राप्त करने के लिए संकुचित दृष्टि से विचार करके नहीं, बल्कि दूरदर्शिता से विचार करके हम अपनी राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को बढ़ा सकते हैं।

मुझे सन्देह नहीं कि शीघ्र ही दो तीन वर्षों के भीतर, संसार देखेगा कि हमारा यह रुख ठीक था और शक्ति के युद्ध में भाग लेने वाली बड़ी शक्तियों द्वारा न केवल भारत आदर पायेगा, बल्कि बहुत से अपेक्षाकृत छोटे राज्य जो अपने को बेबस पाते हैं, कदाचित् अन्य देशों की अपेक्षा भारत की ओर नेतृत्व के लिए अधिक देखेंगे।

क्या मैं इस सम्बन्ध में बता सकता हूँ कि संयुक्त राष्ट्र संघ की साधारण सभा के पिछले अधिवेशन में बहुत से बहुत मुश्किल और विवादग्रस्त विषय उठे थे, और हमारे प्रतिनिधि-मंडल को आश्चर्यजनक रूप से जटिल परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था? मैं अपने प्रतिनिधि-मंडल और विशेषकर उसके नेता की सराहना करना चाहूँगा। माननीय सदस्य अकसर राजदूतों, प्रतिनिधि-मंडल के सदस्यों, और इसी प्रकार की नियुक्तियों के विषय में प्रश्न करते हैं, और यह ठीक ही है, क्योंकि इस सभा की ऐसी महत्वपूर्ण नियुक्तियों में दिलचस्पी होनी ही चाहिए। पर क्या मैं इस सभा को बताऊँ, कि इन नियुक्तियों के करने से अधिक कठिन कोई काम नहीं, क्योंकि यह केवल कुछ योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति करना मात्र नहीं है, बल्कि विशेष व्यक्तियों की विशेष स्थानों पर, जिनमें वह ठीक बैठ सकें, नियुक्ति करना है, जो कि एक असाधारण रूप से कठिन काम है?

संसार की प्रमुख जगहों में, आदर्श राजदूत को एक प्रकार का आदर्श पुरुष होना चाहिए। यह कठिनाई इस बात की नहीं है कि जटिल बातों को समझा जाय, बल्कि बड़ी कठिनाई यह है कि हर एक का मित्र बने रहते हुए अपने उद्देश्य को अग्रसर किया जाय। आखिर अभी तक हम विदेशी मामलों पर बाहर ही बाहर बहस करते रहे हैं—दूसरी सभाओं में, या शायद यहां भी; और यह बहस किंचित् शास्त्रीय ढंग से कुछ इस तरह होती रही है जैसे कि कालेज की वाद-विवाद सभाओं में होती है। अर्थात् हमने ऊँची-ऊँची नीतियों की बातें की हैं लेकिन उनसे साक्षात् निबटने के अवसर, जब कि हमें किसी प्रश्न पर 'हां' या 'न' कहना पड़े, और उसके परिणामों का सामना करना पड़े, हमें प्राप्त नहीं रहे हैं।

यदि यह सभा मुझे क्षमा करे तो मैं कहूँगा कि आज के वाद-विवाद में भी बहुत

से भाषण शास्त्रीय ढंग के थे, जिनमें कि उन महत्वपूर्ण प्रश्नों पर ध्यान नहीं दिया गया, जो आज दुनिया के सामने हैं, जिन का परिणाम शान्ति या युद्ध हो सकता है। लेकिन जब सभा को ऐसे प्रश्न का सामना करना पड़े, और जब किसी के सामने वास्तविकताएँ खड़ी हुई हों, तब केवल आदर्शवादी सिद्धान्तों पर निर्भर नहीं रहा जा सकता।

वैदेशिक मामले आजकल नितान्त वास्तविकतापूर्ण है। एक गलत कदम पड़ने से या एक गलत वाक्यांश कह देने से बड़ा अन्तर उपस्थित हो सकता है। पहली बात जो हमारे राजदूतों को सीखनी चाहिए वह है मुंह बन्द रखना और सार्वजनिक भाषण न देना तथा निजी रूप में भी भाषण बन्द कर देना। यह बिल्कुल मौन रहने की ऐसी आदत है जो हमने अपनी जीवन-यात्रा में नहीं डाली है। लेकिन इसका अभ्यास डालना पड़ेगा। निजी गोष्ठियों में भी मौन रहने की आवश्यकता है, जिससे मुंह से कोई ऐसी बात न निकले, जिससे राष्ट्र का अहित हो, या जिससे अन्तर्राष्ट्रीय मनोमालिन्य पैदा हो।

मैं चाहूँगा कि यह सभा अब इस वास्तविकतापूर्ण पृष्ठभूमि में अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर विचार करे, न कि यह समझ कर कि कुछ दुष्ट प्रकृति के लोग हैं, जो खिलवाड़ कर रहे हैं, और आपस में लड़ रहे हैं और अमेरिका या रूस या ब्रिटिश साम्राज्य के कुछ राजनीतिज्ञ परदे के पीछे दूर पर छिपे हुए हैं। हम लोगों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विषय में इतनी बातें की हैं, कि हम इस आदत से मुक्त नहीं हो पाते।

अन्तिम रूप में जो काम की बातें हैं वे हैं किसी विषय के आर्थिक, राजनीतिक और विविध पहलुओं पर अधिकार प्राप्त करना तथा उन्हें समझने का प्रयत्न करना। आप जो भी नीति निर्धारित करें, किसी देश के विदेशी मामलों के संचालन की कला यह ढूंढ़ निकालने में है कि देश के लिए सब से हितकर बात क्या है। हम अन्तर्राष्ट्रीय सदाशयता की बातें करें और ईमानदारी से करें। हम शान्ति और स्वतंत्रता की बातें करें और ईमानदारी से करें। लेकिन अन्तिम विश्लेषण में हम यह पावेंगे कि कोई सरकार किसी देश का शासन करती है, तो उसके हित के लिए ही करती है, और किसी सरकार का यह साहस नहीं हो सकता कि वह कोई ऐसी बात करे जो दूर या निकट काल में स्पष्टतया देश के अहित में हो।

इसलिए किसी देश का—चाहे वह साम्राज्यवादी हो या समाजवादी या साम्य-वादी—विदेश मंत्री मुख्यतया उस देश के हित को ध्यान में रखता है। हां, एक अन्तर अवश्य है। कुछ लोग अपने देश के हित का विचार अन्य परिणामों की उपेक्षा

करते हुए या निकटस्थ लाभ की दृष्टि से कर सकते हैं। कुछ दूसरे लोग दूरदर्शिता की नीति का ध्यान रखते हुए अन्य देशों के हित को उतना ही महत्वपूर्ण समझ सकते हैं, जितना कि अपने देश के हित को। शान्ति के हित में काम करना अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि यदि युद्ध होता है तो सभी की हानि होती है। इसलिए दूर की दृष्टि रखते हुए, आत्महित की यह मांग हो सकती है और वस्तुतः होती भी है कि अन्य राष्ट्रों के साथ सहयोग तथा सदाशयता की नीति बरती जाय।

प्रत्येक समझदार व्यक्ति यह बात समझ सकता है कि यदि आज किसी देश की एक संकीर्ण राष्ट्रीय नीति है तो संभव है कि उससे लोगों को कोई तात्कालिक खुशी हो और उस खुशी में आकर वे उस प्रकार का जोश दिखावें, जैसा कि साम्प्रदायिकता की पुकार से हुआ है; लेकिन ऐसी नीति बनाना राष्ट्र के लिए भी बुरा है और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से भी बुरा है, क्योंकि आप अन्तिम भलाई को आंखों से ओझल होने देते हैं, और इस तरह अपने ही हित को खतरे में डालते हैं। इसलिए हम भारत के हितों को संसार-व्यापी सहयोग और संसारव्यापी शान्ति के प्रसंग में और यथासंभव विश्व-शान्ति की रक्षा को सर्वोपरि समझते हुए देखना चाहते हैं।

हम और देशों के साथ निकटतम मैत्री की भावना बनाए रखना चाहते हैं, जब तक कि वे स्वयं कठिनाइयां उत्पन्न न करें। हम अमेरिका से मित्रता रक्खेंगे। हमारा इरादा अमेरिका से सहयोग करने का है, और हम पूरी तरह सोवियत संघ से भी सहयोग करना चाहते हैं। जैसा कि इस सभा को मालूम है, कुछ समय से हमारे यहां अमेरिका के एक सुविख्यात प्रतिनिधि मौजूद हैं। दो-एक सप्ताह के भीतर सोवियत संघ के एक सुविख्यात प्रतिनिधि भी यहां सोवियत दूतावास में, जो नई दिल्ली में खोला जा रहा है, आ जायँगे।

मैं इस अवसर पर वैदेशिक मामलों के विषय में और अधिक नहीं कहना चाहता, कुछ तो समय की कमी के कारण, और कुछ इस कारण से कि इन मामलों पर बहस करना कुछ कठिन है। कुछ माननीय सदस्य कदाचित् इस विषय पर कुछ कहना चाहें कि चीन, जापान, स्याम और पीरू में क्या हो, लेकिन मुझे भय है कि मेरे लिए इन विविध मामलों पर कुछ कहना ज़रा गैर-जिम्मेदारी की बात होगी। यह स्वाभाविक है कि भारत एशियायी देशों में शेष दुनिया की अपेक्षा कहीं अधिक दिलचस्पी रखता है। हमारे यहां एक एशियायी कांफ्रेंस हो चुकी है और इस समय हमारे यहां एक प्रमुख अतिथि अर्थात् बर्मा के प्रधान मंत्री, आए हुए हैं।

इस सिलसिले में क्या मैं यह बता दूं कि कुछ लोगों ने एक गलत धारणा बना रखी है? वे समझते हैं कि हम बर्मी शिष्टमंडल से कुछ विशेष समझौते की बातचीत कर रहे

हैं। यह पूर्णतः सत्य नहीं है। उनका आना यहां मुख्यतया भद्रता के नाते हुआ है। साथ ही, हमने मोटे ढंग से विविध प्रश्नों पर, उन्हें समझने के लिए, आपस में विचार-विनिमय अवश्य किया है। हमने समान हित के बहुत से विषयों पर परामर्श किया है। हमने यह इस दृष्टि से नहीं किया कि इन जटिल मामलों पर तुरन्त कोई निर्णय हो जाय, बल्कि इस लिए कि भविष्य की बातचीत के लिए नींव रखी जा सके। क्या मैं यह भी बताऊँ कि बर्मा के प्रधान मंत्री की दिलचस्पी, हमारी ही तरह, न केवल बर्मा और भारत के बीच बल्कि एशिया के विविध देशों के बीच भी, निकटतर संपर्क स्थापित करने में है? हमने इस विषय पर भी विचार-विनिमय किया है, यद्यपि हम ने ऐसा अचानक निर्णय पर पहुँचने की दृष्टि से नहीं किया, क्योंकि इन बातों के आगे बढ़ने में कुछ समय लगता है। इस सबसे एशिया की नई प्रवृत्तियों का पता लगता है, जो कि एशियायी देशों को अपनी रक्षा के लिए और संसारव्यापी शान्ति को पुष्ट करने के लिए एक-दूसरे के निकट लाना चाहती हैं।

अब हम इस कटौती के प्रस्ताव के दूसरे भाग को देखें जो कि ब्रिटिश कामनवेल्थ (राष्ट्रमण्डल) में भारत के रहने के विषय में है। यह एक पुराना और दुःखद विषय है। मैं इस आलोचना से सहमत हूँ कि हम लोग इस दिशा में कुछ भी ठोस काम नहीं कर सके हैं। कनाडा में और अन्यत्र कुछ हुआ है, लेकिन अभी तक कुछ ठोस काम नहीं हुआ है। यह एक अजीब बात है कि यह विषय सरल होने की बजाय अधिकाधिक कठिन होता जाता है। अतीत में ब्रिटिश उपनिवेशों और अधिकृत देशों में भारत-निवासी व्यापारी, व्यवसायी, श्रमिक और शर्तबंद मजदूर आदि अनेक रूपों में गये हैं।

भारतीयों के परदेश में जा बसने का इतिहास, उनमें से छोटे से छोटे व्यक्ति का भी इतिहास, एक आश्चर्यकारी कथा की भांति पढ़ा जाता है। ये भारतीय किस प्रकार विदेशों में गए? एक स्वतंत्र देश के नागरिक न होते हुए भी, सभी संभावित असुविधाओं के बीच काम करते हुए भी, वे जहां कहीं गए, वहां उन्होंने अपनी योग्यता सिद्ध की। उन्होंने अपने लिए और जिस देश को अपनाया उसके लिए कठिन परिश्रम किया, और जिस देश में पहुँचे उसे लाभ पहुँचाया।

यह एक आश्चर्यजनक कहानी है और ऐसी बात है जिस पर कि भारत को गर्व हो सकता है। और क्या मैं यह बताऊँ कि उन गरीब शर्तबन्द मज़दूरों ने, जो कि विषम परिस्थितियों में बाहर गए, अपने श्रम से किस प्रकार क्रमशः उन्नति की? यह भी सत्य है कि भारत एक ऐसा देश है जिसमें, बावजूद अनेक कमियों व अन्य

ऐसी ही बातों के, अपार शक्ति है, और जहाँ के लोग विदेशों में फैल सकते हैं । इससे चीन जैसे हमारे कुछ पड़ोसी देश किंचित् भयभीत होते हैं । चीन स्वयं एक ऐसा ही देश है जिसमें अपार शक्ति है और जिसकी अपार जन-संख्या है । फैलते हैं और हम अपनी संख्या के कारण तथा कभी कभी उस आर्थिक स्थिति के कारण जिस का हम वहां विकास करते हैं, दूसरों पर छा जाते हैं ।

इससे स्वभावतः वे लोग भयभीत होते हैं जिनमें कि ऐसी शक्ति नहीं, और व इससे अपनी रक्षा करना चाहते हैं । और उन निहित स्वार्थों का भी प्रश्न उठता है जिनका विभिन्न देशों में विकास हुआ है । ऐसे प्रश्न उठे हैं, और जहां एक ओर हम स्पष्टतः विदेश-स्थित या प्रवासी भारतीयों के हितों की रक्षा करने के लिए कृत-संकल्प हैं, वहीं दूसरी ओर हम उन निहित स्वार्थों की रक्षा नहीं कर सकते, जो कि उन देशों के हितों के (जहां भी वे हों) विरोधी हों । यह एक बड़ी कठिनाई है । फिर भी सभी न्याय्य हितों की रक्षा करने के लिए, जो भी हम से हो सकेगा, हम करेंगे ।

अब मैं इस सभा का और अधिक समय न लेकर केवल कुछ शब्द और कहना चाहूँगा । एक माननीय सदस्य ने, मेरा खयाल है श्री कामठ ने, दूतावासों द्वारा किए जाने वाले व्यय की चर्चा की है । अब सब से पहिले मेरे लिए यह बात एक छोटा सा सरदर्द बन गई है, और यह एक नई प्रवृत्ति है कि पुराने और नए समाचार-पत्र समान रूप से, बे-रोकटोक, आश्चर्यजनक ढंग से, भूठी बातें छापने लगे हैं। उन सब की जानकारी रखना असंभव हो गया है। जो कुछ वे कहें उसका प्रतिवाद करते रहना अवांछनीय है । यह हो ही नहीं सकता । और नए प्रकार के समाचारपत्र और पत्रिकाएँ, जो कुछ लोगों ने हम पर लादी हैं और जिन्हें मैंने देखा है, न तो भारतीय पत्रकारिता के और न किसी और ही चीज़ के स्तर को ऊँचा करने वाली हैं । इनमें न जाने कितनी कहानियां असत्य हैं । मेरा खयाल है, मैंने दिल्ली के एक पत्र में कहीं पढ़ा था कि संयुक्त प्रान्त की सरकार ने २०,००० रुपए और २०० साड़ियां श्रीमती विजय-लक्ष्मी पंडित को उनकी मास्को-यात्रा के अवसर पर भेंट कीं । मैंने इन पत्रों में श्री आसफ अली के विषय में तरह-तरह के अत्यन्त गर्हित और बे-बुनियाद और भूठे वक्तव्य पढ़े हैं ।

खर्चे के विषय में मुझे यह कहना है कि श्री कामठ ने जो ५ लाख की रकम बताई है उसका वास्तविकता से कोई संबंध नहीं है । मैं कह नहीं सकता कि यह रकम क्या है ।

मेरा सुझाव है कि अगर श्री कामठ को कोई वक्तव्य देना हुआ करे तो वे उसे देने से पहले ठीक-ठीक बातों की जानकारी प्राप्त कर लिया करें ।

जिस बात को मैं चाहूँगा कि यह सभा ध्यान में रक्खे, वह यह है कि इन राजदूतों की नियुक्तियों में यह ध्यान रखना होता है कि उन्हें अपनी एक विशेष मान-मर्यादा कायम रखनी है। एक राजदूत को भेजकर हम उसके रहने के लिए घर का या घर के लिए फर्नीचर का या कम से कम साधनों का जिससे कि वह दूसरे कूटनीतिज्ञों से एक उचित स्तर पर मिल सके और उनकी मेहमानदारी कर सके, प्रबन्ध न करें, तो वह ठीक न होगा। मुझे इसमें संदेह है कि कोई भी देश, चाहे वह बड़ा हो या छोटा, अपने दूतावासों को इतनी किफायत से चला रहा होगा जितनी किफायत से हम चला रहे हैं।

मास्को स्थित हमारे राजदूत द्वारा स्टाकहोम से फ़र्नीचर प्राप्त करने के संबंध में बड़ी आलोचना हुई है। मास्को में घर को किस प्रकार सामान से सजाया जाता है, शायद इसकी कल्पना माननीय सदस्य नहीं कर सकते। मास्को में सामान प्राप्त करना सहज नहीं। आपको खाली घर मिलता है। हमने भारत से सामान भेजने का विचार किया था, लेकिन जब तक कि हवाई जहाजों पर बहुत रुपये खर्च करके मेज़-कुर्सियां न भेजी जायं, यह एक असम्भव सा काम था। यह सही है कि इसके बजाय रूसी फ़र्नीचर से घर सजाया जा सकता था। रूस के लोग—और उसके लिए उनकी पूरी सराहना होनी चाहिए—युद्ध के बाद उन कामों में, जिन्हें कि वे प्रमुख समझते हैं, ऐसे लगे हुए हैं कि वे अन्य साज-सामान पर समय नष्ट करने से इन्कार करते हैं। युद्ध में होने वाली भयानक यातना और विनाश के बाद, उन्हें अपने देश का पुनर्निर्माण करना है और वे अपनी शक्ति बड़े-बड़े कामों में केन्द्रित कर रहे हैं। पैबन्द लगे कपड़े और फटे जूते पहन कर वे आते-जाते हैं। उन्हें इसकी कुछ परवाह नहीं, लेकिन वे बांधों, जलाशयों, पुतलीघरों और अन्य चीजों का, जिन्हें वे आवश्यक समझते हैं, निर्माण करने में जुटे हुए हैं। इस लिए इन छोटे-मोटे सामानों को इस समय वहां प्राप्त कर सकना आसान नहीं है।

रूस में जो चीजें आपको मिल सकती हैं वे जारों के समय की पुरानी कारीगरी की वस्तुएं हैं, जो कि भयानक रूप में मँहगी हैं। परिणाम यह है कि मास्को स्थित हमारे दूतावास को, अपनी कुर्सियों और मेजों के लिए, स्टाकहोम जाना पड़ा, और चूंकि दफ्तर के सामान आदि की शीघ्र आवश्यकता थी, हमारे राजदूत को स्वयं वहां जाना पड़ा। लेकिन इस सभा के सदस्यों को समझना चाहिए कि स्टाकहोम की यात्रा केवल फ़र्नीचर खरीदने के लिए नहीं थी। जब एक राजदूत कहीं जाता है तो वह अन्य काम भी करता है, किसी प्रकार की खरीदारी आदि का काम तो साथ में हो जाता है।

मैं इस सभा का उसके उदार विचारों और सद्भावना के उद्गारों के लिए जो कि हमारी वैदेशिक नीति के सम्बन्ध में (यद्यपि वह किंचित् अनि-

श्चित रही है) प्रकट किए गए हैं, कृतज्ञ हूँ। मैं चाहता था कि यह एक अधिक निश्चित नीति होती। मैं समझता हूँ कि वह अधिक निश्चित होती जा रही है, और क्या में इस सम्बन्ध में कहूँ कि किसी भी देश की, जिसमें कि बड़ी शक्तियां भी सम्मिलित हैं और जिनकी विदेशी मामलों में लम्बी परम्परा है, कोई ऐसी नीति नहीं, जिसे कि एक निश्चित वैदेशिक नीति कहा जा सके, क्योंकि सारा विश्व ही एक अनिश्चित स्थिति में है। हां, यदि आप इसे कोई निश्चित नीति समझते हैं कि एक देश दूसरे देश को कटु अप्रियता से देखे और उस पर संदेह करता रहे तो एक निश्चित नीति निर्धारित हो सकती है। लेकिन यह स्वयं कोई नीति नहीं है, यह केवल उत्तेजना और बदगुमानी है। नहीं तो, किसी देश की कोई बहुत निश्चित नीति नहीं है, और हर एक देश अपनी नीति को नित्य की परिवर्तनशील परिस्थिति में ढालता रहता है।

भारत गुटबन्दी से बाहर है

महोदय, जो विविध सुझाव दिए गए हैं और आलोचनाएँ की गई हैं, उनमें मैंने दिलचस्पी ली है। मैं समझता हूँ कि यदि मैं इस जगह से नहीं बल्कि किसी दूसरी जगह से बोलता होता, तो सम्भवतः मैंने आपत्तियों की एक और लम्बी सूची प्रस्तुत की होती। इसलिए, माननीय सदस्यों ने, वैदेशिक मामलों के विभाग के प्रति जो शिष्ट व्यवहार का परिचय दिया है, उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ।

मैं चाहूँगा कि यह सभा भारत सरकार की विगत वर्ष की वैदेशिक नीति की आलोचना करते समय एक क्षण के लिए अपना ध्यान आज के किसी देश पर दे, और उसकी वैदेशिक नीति पर विचार करे—वह देश चाहे संयुक्त राज्य अमरिका हो, चाहे ग्रेट ब्रिटेन हो, चाहे सोवियत रूस हो, चाहे चीन या फ्रांस हो। ये ही कुछ बड़ी शक्तियां मानी जाती हैं। जरा इनकी वैदेशिक नीति पर विचार कीजिए और मुझे बताइए कि क्या इनमें से किसी एक देश की भी वैदेशिक नीति किसी एक दृष्टिकोण से भी सफल हुई है? क्या वह विश्वव्यापी शान्ति या लोकव्यापी युद्ध को रोकने की दृष्टि से, या उस देश की निजी और अवसर से लाभ उठाने वाली दृष्टि से भी, सफल रही है।

मैं समझता हूँ कि अगर आप इस प्रश्न पर इस दृष्टिकोण से विचार करेंगे, तो आप देखेंगे कि उपर्युक्त हर एक शक्तिशाली देश की वैदेशिक नीति बुरी तरह से असफल रही है। हमें इन मामलों पर इस विशेष प्रसंग में विचार करना होगा। यह वास्तव में किसी एक शक्ति की वैदेशिक नीति की विफलता का प्रश्न नहीं है, यद्यपि दो या तीन बड़ी शक्तियां हैं जो कि विदेशी नीति पर शायद बहुत प्रभाव डालती हैं।

निश्चय ही अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के क्रमशः बिगड़ने की जिम्मेदारी कुछ

संविधान परिषद् (व्यवस्थापिका), नई दिल्ली, में ८ मार्च, १९४८ को दिया गया एक भाषण।

कटौती के दो प्रस्तावों पर, जिन्हें कि प्रोफेसर रंगा और सेठ गोविन्ददास ने, भारत की वैदेशिक नीति पर वादविवाद करने के लिए प्रस्तुत किया था, कुछ सदस्यों ने उस नीति के कुछ पहलुओं की आलोचना की, और संयुक्त राष्ट्रों के संगठन में एक गुट के साथ मेल कर लेने का पक्ष लिया। प्रधान मंत्री ने वादविवाद का उत्तर देते हुए यह भाषण दिया।

शक्तियों पर हो सकती है। भारत में, हमारी जिम्मेदारी बहुत कम है। अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर हमने चाहे अच्छा अभिनय किया हो चाहे बुरा, लेकिन साफ कहा जाय तो हमारा इतना प्रभाव नहीं कि हम अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं पर बहुत प्रभाव डाल सकें। इसलिए, यदि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में स्थिति बहुत बिगड़ी है, तो यह हमारी नीति के कारण नहीं। उस बिगड़ी हुई स्थिति से हमने भी उसी तरह हानि उठाई है, जिस तरह कि और किसी राष्ट्र ने, और मेरा खयाल है कि यह अस्पष्ट धारणा कि हमने हानि उठाई है इस सभा के सदस्यों को उन कारणों की खोज करने को प्रेरित करती है, जिन के कारण हमने हानि उठाई है।

मैं समझता हूँ कि इस विषय को देखने का यह बहुत अच्छा तरीका है, क्योंकि हमें अपनी भूल के कारणों को जानना चाहिए, और यह भी कि हम अपनी स्थिति को कैसे सुधार सकते थे, आदि, आदि। फिर भी मैं समझता हूँ कि वास्तविक बात यह है कि हमने जो भी नीति बरती हो, ये कारण उससे बाहर के हैं। दुनिया पर प्रभाव डालने वाले कारण इससे बड़े और अधिक गहरे हैं, और बड़े-से-बड़े राष्ट्र की ही भांति, हम भी इन शक्तियों द्वारा इधर-उधर खिचते रहते हैं। यह ऐसी बात है, जिसे कि मैं चाहूँगा कि यह सभा अपने ध्यान में रक्खे।

एक दूसरी बात जो हम पर अधिक लागू होती है यह है कि उन दुर्घटनाओं के कारण जो कि भारत में १५ अगस्त, १९४७ से लेकर होती आई हैं, उन बातों का वजन घट गया या कुछ समय के लिए जाता रहा, जो हम बाहरी दुनिया में कर सकते थे। हमारी कुछ गिनती थी, यद्यपि वह बहुत ज्यादा नहीं थी और वह भी वस्तुतः प्रत्यक्षतः कम और प्रच्छन्न रूप से अधिक थी। लेकिन भारत और पाकिस्तान में १५ अगस्त के बाद जो घटनाएं घटीं उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हमारी प्रतिष्ठा को अचानक बहुत गिरा दिया। पाकिस्तान की बात मैं कहूं, तो स्वभावतः उसकी बड़ी गिनती नहीं थी, क्योंकि उसकी कोई पृष्ठभूमि नहीं थी; वह नवागंतुक था। वे हम थे, जिनकी गिनती थी—और इसी से उक्त घटनाओं से हमारी प्रतिष्ठा को ही सबसे अधिक धक्का पहुंचा।

इसी बात ने संयुक्त राष्ट्रों पर, जब वे पिछली अक्तूबर में दक्षिण अफ्रीका के प्रश्न पर विचार करने बैठे, असर डाला। निश्चय ही भारत की घटनाओं ने संयुक्त राष्ट्रों की साधारण सभा पर, जब कि उसमें दक्षिणी अफ्रीका के प्रश्न पर विचार हो रहा था, प्रभाव डाला। इसी तरह और मामलों में भी हुआ। ये सब बातें हमारी वैदेशिक नीति से कोई संबंध नहीं रखतीं।

जो विषय मैं इस सभा के सामने प्रस्तुत करना चाहता हूँ वह यह है, कि यह

हमारे लिए अच्छा हो सकता है कि हम यह अथवा वह वैदेशिक नीति ग्रहण कर लें। इनमें से एक तटस्थता की नीति या, जैसा कि पंडित हृदयनारायण कुंजरू ने कहा था, अधिक निश्चयात्मक नीति हो सकती है।

लेकिन जो कुछ हुआ है उससे इस सब का कोई संबन्ध या सरोकार नहीं।उस पर कुछ अन्य ही बातों का प्रभाव पड़ा है। अगर आप चाहें तो कह सकते हैं कि यह गलती थी, लेकिन हम इन सब मामलों में किंचित् निष्क्रिय रहे हैं, और जिन बातों में हम सक्रिय रहे हैं वे वही बातें हैं जिनके विषय में कि माननीय सदस्य यह चाहते हैं कि हम अधिक सक्रिय हों। हम से कहा जाता है कि संसार के छोटे राष्ट्रों को हम अपने इर्दगिर्द इकट्ठा करें——लेकिन बात यह है कि यही सक्रियता (इसे आप आदर्शवादी कह सकते हैं; मैं नहीं समझता कि यह विशुद्ध आदर्शवादी है; मैं समझता हूँ, आप चाहे तो यों कह लें, कि यह अन्ततः अवसरवादी है) और यही नीति जिसका कि हमने सरकार बनने से पूर्व अनुसरण किया था और कुछ हद तक सरकार बनने के बाद भी, अर्थात् जहां तक हो सके विभिन्न महाद्वीपों के कमज़ोर और दलित लोगों की हिमायत करना, बड़ी शक्तियों को रुचिकर नहीं रही है, क्योंकि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ये शक्तियाँ उक्त लोगों का शोषण करती और लाभ उठाती रही हैं। यही बात है जिसके कारण हम उनकी दृष्टि में अप्रिय बन जाते हैं।

और मामलों पर भी बहुत कुछ कहा गया है। इनमें एक इंडोनीशिया का मामला है। इस सभा के समक्ष यह एक स्पष्ट उदाहरण है। हम वास्तविक सक्रिय सहायता के रूप में बहुत कम कर पाए हैं; हम ऐसा करने की स्थिति में नहीं हैं। लेकिन इंडोनीशियावालों के प्रति हमारी सहानुभूति है और इसे जितने सार्वजनिक रूप में कहना संभव था हमने कहा है। अगर हम इंडोनीशियावालों के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त करते हैं और उनको थोड़ी बहुत सहायता देते हैं और इसको संसार की बड़ी शक्तियां बुरा मानती हैं, तो क्या हम अपनी सहायता वापस ले लें ? क्या हम दब कर चुप हो जायँ और कहें कि, "नहीं, इससे यह अथवा वह शक्ति नाराज़ हो जायगी," क्योंकि इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसा करने से यह अथवा वह शक्ति नाराज़ होती है।

स्वभावतः सरकार की हैसियत से हम उतनी दूर नहीं जा सकते जितना कि हम एक गैर-सरकारी संस्था के रूप में जा सकते थे। गैर-सरकारी ढंग से हम अपना मत यथासंभव स्पष्टता और अग्रसरता के साथ प्रकट कर सकते हैं। सरकार की हैसियत से बोलते हुए, हमें अपनी भाषा को संयत करना पड़ता है। हम कभी-कभी वैसे कार्य नहीं कर पाते जैसे कि हम अन्यथा करते। फिर भी, मुख्य बात यह है कि क्या हम इंडोनीशिया जैसे देश से, उसके स्वतंत्रता-संग्राम में

खुले तौर पर सहानुभूति रक्खें, या नहीं ? यह बात इंडोनीशिया के सम्बन्ध में ही नहीं बल्कि और देशों के सम्बन्ध में भी लागू होती है। हर हालत में, हमें विविध हितों के मूक विरोध का सामना करना पड़ता है। इनमें से कुछ ऐसे होते हैं जिनकी रुचि प्रत्यक्ष होती है, और कुछ अन्य ऐसे होते हैं जिनका कि परोक्ष रूप में लगाव है, क्योंकि ऐसे मामलों में प्रत्यक्ष और परोक्ष हित साथ साथ चलते हैं।

यह बड़े अचरज की बात है कि इंडोनीशिया में सद्भावना-समिति (गुड आफिसेस कमिटी) जिसमें सभी भले लोग हैं, और संयोग से, जिसका मंत्री एक भारतीय ही है, किस रूप में काम करती रही है। जिस रूप में उसने कार्य किया है और उसके जो नतीजे सामने आए हैं वह बिल्कुल सन्तोषजनक नहीं है। अगर यह सभा, सुरक्षा परिषद् के कश्मीर के विषय में इस वर्ष किए हुए कार्य या विचार से असन्तुष्ट है तो मैं समझता हूँ कि सद्भावना-समिति ने इंडोनीशिया में जो कुछ किया है, उससे वह और भी असन्तुष्ट होगी। दुर्भाग्यवश ऐसी समस्याओं के प्रति उसका दृष्टिकोण ऐसा है कि उससे यह सभा हमारी पुरानी परम्पराओं और हमारे आदर्शों के कारण सहमत नहीं हो सकती।

मैं इस गुट अथवा उस गुट की बात नहीं कर रहा हूँ; मैं स्वतंत्र रूप से गुटों के सम्बन्ध में, जैसे कि वे मुझे विश्व-रंगमंच पर प्रतीत होते हैं, कह रहा हूँ। हमें या तो अपनी नीति को साधारणतया सीमाओं को स्वीकार करते हुए चलाना है—क्योंकि उसे हम पूरी तौर पर नहीं चला सकते, फिर भी जितना चलाना है खुले ढंग से चलाना है—नहीं तो उसे छोड़ ही देना है। चाहे हम आदर्शवादिता और नैतिकता की दृष्टि से देखें, चाहे अवसरवादिता और संकुचित राष्टीयता की दृष्टि से, मेरी समझ में कोई भी अन्य बात इतनी हानिकारक नहीं हो सकती जितनी यह कि हम उन नीतियों को त्याग दें जिनका हम अनुसरण करते आए हैं—यथा दलित जातियों के प्रति किसी विशेष आदर्श पर दृढ़ रहना—और विशेष रूप से इनका त्याग किसी बड़ी शक्ति के साथ रहने के हेतु इसलिये किया जाय कि हमें उसका उच्छिष्ट प्रसाद मिल सकेगा। मैं समझता हूँ कि राष्ट्रीय हित के अति संकीर्ण दृष्टिकोण से भी यह निश्चय ही एक बुरी और हानिकारक नीति होगी।

यूरोप के कुछ छोटे देशों का या एशिया के कुछ छोटे देशों का, परिस्थितियों से मजबूर होकर कुछ बड़ी शक्तियों के आगे झुक जाना और विवश होकर उनके अनुचर बन जाना तो मैं समझ सकता हूँ, क्योंकि जिन शक्तियों का इन्हें मुकाबला करना पड़ता है वे इतनी बड़ी होती हैं, कि इनके लिए कोई दूसरा सहारा ही नहीं

रह जाता। लेकिन मैं नहीं समझता कि यह बात भारत पर लागू होती है।

हम किसी दुर्बल या छोटे देश के नागरिक नहीं, और मेरे खयाल में, फौजी दृष्टि से भी आज की बड़ी से बड़ी शक्ति से हमारा भय खा जाना मूर्खता होगी। यह बात नहीं कि मैं किसी धोखे में हूँ। मैं समझता हूँ कि एक बड़ी शक्ति फ़ौजी दृष्टि से हमारे विरुद्ध हो जाती है तो हमारी क्या दशा होगी। मुझे कोई संदेह नहीं कि वह हमें नुकसान पहुँचा सकती है। लेकिन आखिर हमने इससे पहले, एक राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में, संसार की बड़ी से बड़ी शक्तियों में से एक का मुकाबला किया है। हमने उसका एक खास ढंग से सामना किया और उस ढंग से हमें सफलता मिली है, और मुझे संदेह नहीं कि यदि बुरी से बुरी स्थिति आ जाय—और फ़ौजी तौर पर हम इन बड़ी शक्तियों का मुकाबला न कर सकें—तो यह कहीं बेहतर होगा कि हम उनके आगे सिर झुकाने के बजाय अपने ढंग से युद्ध करते रहें, न कि अपने सभी आदर्शों को खो बैठें।

इसलिए हमें इस या उस दल की सैनिक शक्ति से बहुत अधिक डरना न चाहिए। मैं नहीं डरता और मैं संसार से इस देश की ओर से कहना चाहता हूँ कि हम इस या उस देश की सैनिक शक्ति से डरते नहीं। हमारी नीति न निष्क्रिय होगा और न नकारात्मक।

जो दो या तीन उदाहरण दिए गए हैं, उनसे शायद इस बात का संकेत मिल गया होगा कि कुछ माननीय सदस्यों के विचार किस दिशा में काम कर रहे थे, यद्यपि उसे स्पष्ट करने के लिये या तो उनके पास समय नहीं था या उनकी इच्छा नहीं थी। यह कहा गया है कि हमने संयुक्त राष्ट्रों में निषेधाधिकार का इसलिए समर्थन किया कि हम सोवियत गुट की दृष्टि में बुरे नहीं बनना चाहते थे। मैं इस सभा के सामने वस्तुस्थिति जिस रूप में वह मुझे स्मरण है, रखना चाहता हूँ। जैसा कि सभा को स्मरण होगा, निषेधाधिकार प्रत्येक पक्ष की सभी बड़ी शक्तियों की समान अनुमति से रक्खा गया था। यह इसलिए रक्खा गया था कि सोवियत रूस और अमेरिका के सहित बड़ी बड़ी शक्तियां नहीं चाहती थीं कि आधे दर्जन छोटे देश मिल कर उनसे यह अथवा वह करने के लिए कहने लगें।

दोनों ऐसा अनुभव करते थे और इनमें से कोई भी छोटे राष्ट्रों के मिले-जुले बहुमत के सामने झुकना नहीं चाहता था। इसलिए इसे चार्टर या अधिकार-पत्र में शुरू से रक्खा गया। इस निषेधाधिकार का उपयोग हुआ या दुरुपयोग, इस विषय में मैं यहां न पड़ूँगा, लेकिन प्रश्न अब यह उठा है कि निषेधाधिकार को हटा लेना चाहिए। इसे कई बड़ी शक्तियों ने पसंद नहीं किया। यह इस गुट या उस गुट के

समर्थन का प्रश्न नहीं था। कोई भी गुट निषेधाधिकार का हटाया जाना पसंद नहीं करता था।

प्रश्न हमारे सामने यह था कि यदि संयुक्त राष्ट्रों के निर्णय या मतदान से निषेधाधिकार हटाया जाता, तो इसमें जरा भी संदेह नहीं था कि संयुक्त राष्ट्रों का अस्तित्व उसी क्षण समाप्त हो जाता। हमें चुनाव यही करना था कि हम निषेधाधिकार को रखें या उसे खत्म करने की हठ का समर्थन करके संयुक्त राष्ट्रसंघ को ही समाप्त होने दें। यह निषेधाधिकार को पसन्द करने का प्रश्न नहीं था। भारत की ओर से तथा बहुत से अन्य देशों की ओर से भी यह खुले तौर पर कहा गया कि हम निषेधाधिकार नापसन्द करते हैं और उसे हटना चाहिए। लेकिन हमें बताया गया कि यह बात सभी लोगों के मिले-जुले निर्णय से संभव थी।

मैं श्री संतानम के इस कथन से सहमत हूँ कि संयुक्त राष्ट्रों का अस्तित्व उनकी त्रुटियों और कमजोरियों के बावजूद, एक हितकर चीज है। इसे सब प्रकार से प्रोत्साहन देना चाहिए और इसका समर्थन करना चाहिए और इसका एक प्रकार की विश्वव्यापी सरकार या विश्वव्यापी व्यवस्था के रूप में विकास होने देना चाहिए। इसलिए, हमने अपने प्रतिनिधियों को यह निर्देश दिया कि निषेधाधिकार के प्रश्न पर हद तक जोर न दें, बल्कि यह कहें कि यद्यपि हम इसे पसन्द नहीं करते, फिर भी इसे उस समय तक बना रहना चाहिए जब तक कि यह प्रधान संबंधित वर्गों की एक प्रकार की आपस की रजामन्दी से न उठाया जाय।

इस प्रकार से विविध प्रश्न उठते हैं और हर एक प्रश्न पर उसके गुणदोष के अनुसार विचार करना होता है। मैं नहीं जानता कि किसी माननीय सदस्य ने इन अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में हमारे मतदान का विश्लेषण किया है। यदि वे गत वर्ष के संयुक्त राष्ट्रों या उसकी विविध कमेटियों और कौंसिल में उपस्थित किसी भी बड़े प्रश्न को लेकर यह देखेंगे कि भारत ने क्या किया तो उन्हें स्थिति की जानकारी प्राप्त करने में शायद मदद मिले।

यह अवश्य सत्य है कि अपने प्रतिनिधियों को हमारे निर्देश ये रहे हैं कि पहले प्रत्येक प्रश्न पर भारत के हितों को ध्यान में रखते हुए विचार करें, फिर उसके गुणों के अनुसार। मेरा मतलब यह है कि यदि भारत पर प्रभाव न पड़ रहा हो, तो स्वभावतः प्रश्न विशेष के गुणों के अनुसार विचार करें और कोई काम ऐसा न करें या कोई मत ऐसा न दें जिसका उद्देश्य केवल इस अथवा उस शक्ति को प्रसन्न करना हो, यद्यपि यह बिलकुल स्वाभाविक है कि और शक्तियों से मैत्री बनाए रखने के

निमित्त हम ऐसा काम करने से बचना चाहते हैं जिससे उन्हें नाखुशी हो।

वास्तव में, उन्हें अपने अनुकूल करने का जहां तक सम्भव हो हम प्रयत्न करते हैं। औरों के झगड़ों में पड़ना हमारा उद्देश्य नहीं है। हमारी साधारण नीति यह है कि किसी के व्यक्तिगत झगड़े में न पड़ा जाय। अगर मैं कहूँ तो मैं अधिकाधिक इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि जब तक कि हमारे अपने हितों का उनसे उलझाव न हो अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षों में हम जितना कम पड़ें उतना ही अच्छा है, और इसका सीधा कारण यह है कि यह हमारी प्रतिष्ठा के अनुकूल न होगा कि हम हस्तक्षेप तो करें लेकिन कोई प्रभाव न डाल सकें। या तो हम इतने शक्तिशाली हों कि हम प्रभाव डाल सकें, या हम हस्तक्षेप ही न करें। हर एक अन्तर्राष्ट्रीय मामले में टाँग फँसाने के लिए हम उत्सुक नहीं। दुर्भाग्यवश, कभी कभी इससे आदमी बच नहीं सकता, और उसे विवश होकर खिंचना पड़ता है। उदाहरण के लिए, एक कोरिया समिति है। और यही नहीं कि हम उस समिति में हैं, बल्कि हमारा प्रतिनिधि उस समिति का सभापति भी है।

अब हम इससे एक दूसरी बात पर आते हैं, जिसकी कि एक माननीय सदस्य ने चर्चा की है। आज एक अजीब विपरीतता यह है कि जहाँ संयुक्त राष्ट्रों की अधिकृत मंत्रणाओं में हमारा शायद उतना प्रभाव नहीं है जितना कि होना चाहिए, वहां बाहरी गैर-जाब्ते की मंत्रणाओं में हमारा प्रभाव काफी बढ़ गया है। ऐसा क्यों है? क्योंकि लोग अधिकाधिक देखने लगे हैं कि संयुक्त राष्ट्रों के भीतर आदर्शवादी ढंग से या नैतिकता का पक्ष लेकर या दलितों, छोटे राष्ट्रों, एशियायी राष्ट्रों के हितों को लेकर बातें नहीं होतीं। इससे इनमें से अधिकाधिक लोग किसी और का समर्थन प्राप्त करने की खोज में रहते हैं, और इस खोज में प्रायः आप से आप उनकी दृष्टि भारत की ओर पड़ती है।

मैं और देशों से किसी मुकाबले की बात नहीं चलाना चाहता, और भारत में हमने हरगिज कोई ऐसी बात नहीं कर दिखाई है जिससे कि हमें किसी का नेतृत्व करने के योग्य समझा जाय। हम पहले अपना नेतृत्व कर लें, तभी दूसरों का नेतृत्व उचित रूप से कर सकते हैं, और मैं भारत का मामला इससे ऊँचे स्तर पर नहीं रखना चाहता। हमें अभी अपने को ही विशेष रूप से देखना है।

इसीलिए, अगर मैं कहूँ तो वैदेशिक मामलों का मंत्री होते हुए भी मैं वैदेशिक मामलों में इस समय उतनी दिलचस्पी नहीं लेता हूँ जितनी कि आन्तरिक मामलों में। विदेशी मामले आन्तरिक मामलों का अनुसारण करेंगे। वास्तव में यदि आन्तरिक मामले बिगड़ते हैं तो विदेशी मामलों का कोई आधार नहीं रह

जाता। इसलिए, मैं सारे संसार में अपने प्रतिनिधित्व की सीमा का विस्तार नहीं करना चाहता। हमारा प्रतिनिधित्व इस समय ही काफी फैला हुआ है। यह भी हमें प्राय: परिस्थितियों वश करना पड़ा है, क्योंकि स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में हमारा काम बिना उस प्रतिनिधित्व के नहीं चल सकता। लेकिन जब तक कोई विशेष कारण न आ जाय, मैं उसे और विस्तार देने के लिए उत्सुक नहीं हूँ।

यह होते हुए भी तथ्य यह है कि हम कुछ बातों पर टिके हुए हैं। जब हम बाहरी दुनिया के लोगों के सम्पर्क में आते हैं तो हम उनके साथ हैं या नहीं इसका हमें परिस्थिति देखकर निर्णय करना पड़ता है। मुझे कुछ भी संदेह नहीं, जैसा कि मैंने अपने निवेदन के आरम्भ में कहा, कि बिना किसी को अप्रसन्न किए हुए अपने प्रति संसार के करोड़ों लोगों की सहानुभूति और आशाओं को आकर्षित करने का प्रयत्न करने से आगे चल कर भारत का बड़ा हित होगा। दूसरों को अप्रसन्न करना या उनसे टक्कर लेना हमारा उद्देश्य नहीं। लेकिन दुनिया की हालत काफी बुरी है और लोगों का मुझ से यह कहना बहुत सहज है कि "आप तो आदर्शवादी बातें करते हैं, आपको व्यावहारिक होना चाहिए।"

क्या मैं इस सभा को स्मरण दिलाऊँ कि इन बहुत से वर्षों में हमने लोगों और चीजों के व्यावहारिक होने के परिणाम देख लिए हैं? इस व्यावहारिकता से, जो निरन्तर संघर्ष का कारण बनती है और जिसका नतीजा यह सब कष्ट और दुख है, मेरा जी प्राय: भर गया है। अगर इसी को व्यावहारिक होना कहते हैं, तो हम जितनी जल्दी इस व्यावहारिकता से त्राण पा सकें उतना ही अच्छा है।

लेकिन व्यावहारिकता इसे नहीं कहते। यह घोर अव्यावहारिकता है। बिना दाएं-बाएँ देखे चलना; प्रत्येक वर्ग का सिमट कर एक और छोटा गुट बना लेना, जिससे कि दूसरे वर्गों को पूरा खतरा हो; छोटे या बड़े राष्ट्रों को कुछ तात्कालिक लाभ पहुँचाकर अपने पक्ष में कर लेना—ये सब ऐसी ही बातें हैं। मैं कभी न कहूँगा कि ऐसा करना हमारे देश के लिए पर्याप्त रूप में अच्छी बात होगी; और फिर ऐसा करने की हमें कोई विवशता भी नहीं। परिस्थितियों से मजबूर होकर हम अपनी स्वतंत्र नीति छोड़ सकते थे—क्योंकि इसके मानी इस या उस देश की हितेच्छा में अपनी स्वतंत्रता छोड़ना ही होता है—लेकिन परिस्थितियों की हम पर कोई ऐसी मजबूरी नहीं है।

मैं समझता हूँ कि आगे चलकर ही नहीं, बल्कि जल्द ही, मत की स्वतंत्रता और कार्य की स्वतंत्रता का महत्व स्वीकार किया जायगा। पर इसका यह अर्थ न लगाना चाहिए कि हमें विशेष कार्यों में विशेष देशों से निकट सम्पर्क

में न आना चाहिए। पंडित कुंजरू ने हमारे आर्थिक, फौजी तथा अन्य प्रकार के विकास की चर्चा की। निश्चय ही यह सभा अनुभव करती है कि इस सरकार की राय में भारत को आर्थिक और फ़ौजी दृष्टि से शक्तिशाली बनाने से अधिक महत्व की कोई बात नहीं—जहां तक फ़ौजी विकास का सवाल है बड़ी शक्तियों के मुकाबले में तो नहीं, क्योंकि वह हमारे सामर्थ्य से बाहर की बात है, फिर भी हम अपने को दूसरों के आक्रमणों से अपनी रक्षा के उद्देश्य से जितना मज़बूत बना सकते हैं, उतना बनाना चाहिए।

हम यह सब करना चाहते हैं। हम दूसरे देशों की सहायता चाहते हैं; हम उसे प्राप्त करेंगे, और बहुत हद तक वह हमें मिलेगी भी और मैं नहीं जानता कि किसी बड़ी हद तक इसमें हमें रुकावट हुई हो। आर्थिक सहायता स्वीकार करने या राजनीतिक सहायता प्राप्त करने के विषय में भी, यह बुद्धिमानी की नीति नहीं है कि अपना सब कुछ एक ही दांव पर लगा दिया जाय। न अपने आत्मसम्मान का मूल्य चुका कर सहायता प्राप्त करनी चाहिए। तब कोई भी पक्ष आपकी इज्जत न करेगा; आप को कुछ छोटे-मोटे लाभ भले ही हो जायँ, लेकिन अन्त में वे भी आपको न मिलेंगे।

इसलिए चाहे कोरी अवसरवादिता की दृष्टि से ही सोचिये, एक सीधी, ईमानदारी की और स्वतंत्र नीति ही सबसे अच्छी है। वह नीति किसी विशेष समय पर क्या होनी चाहिए, यह मेरे लिए या इस सभा के लिए बता सकना बहुत कठिन है, क्योंकि परिस्थितियां नित्यप्रति बदलती रहती हैं। हो सकता है कि किन्हीं परिस्थितियों में हमें दो बुराइयों में से जो अपेक्षाकृत छोटी बुराई हो उसे चुनना पड़े—हमें सदा अपेक्षाकृत छोटी बुराई चुनना चाहिए।

इस देश में हम लोकराज के और एक स्वतंत्र पूर्ण सत्ताधारी भारत के पक्ष में हैं। अब स्पष्ट है कि इस लोकराज की वास्तविक और मौलिक कल्पना जिसके अन्तर्गत आर्थिक और राजनीतिक दोनों ही पक्ष आ जाते हैं—के विरुद्ध जो भी बात है उसका हमें विरोध करना चाहिए। हम किसी दूसरे विचार या व्यवहार के अपने ऊपर लादे जाने का विरोध करेंगे।

लेकिन कुछ माननीय सदस्यों के भाषणों में एक विचित्र उलझाव रहा है, जब कि एक ओर वे साम्राज्यवाद के विरुद्ध, निर्बलों और दलितों के, समर्थन की बात करते हैं, दूसरी ओर वे हमसे चाहते हैं कि हम कमोबेश, यहां या वहां, एक शक्ति के पक्ष में ही रहें, जो कि साम्राज्यवाद के पक्ष में भी हो सकती है। हो सकता है कि हमें कभी इस या उस शक्ति के साथ जाना पड़े। मैं एक साम्राज्य-

वादी शक्ति के साथ हो जाने की भी कल्पना कर सकता हूँ—यह कहने में मुझे आपत्ति नहीं। कुछ निश्चित परिस्थितियों में दो बुराइयों में यह अपेक्षाकृत छोटी बुराई हो सकती है। फिर भी एक साधारण नीति के रूप में वह नीति न सम्मानपूर्ण है और न लाभदायक।

क्या मैं एक और मुख्य कठिनाई बताऊँ जो हमारे सामने है? भारत में अपने पिछले कारनामों के कारण अर्थात् साम्राज्यवाद-विरोधी कारनामों के कारण हम बहुत से वर्गों और बाहरी लोगों के विशेष प्रियजनों में नहीं रहे हैं। हम उनकी विरोधी भावना अभी दूर नहीं कर सके हैं। पूरी सदिच्छा रखते हुए भी, ये हमें पसन्द नहीं कर सके हैं। इन लोगों का जनता पर प्रभाव है, समाचार-पत्र उनके अधीन हैं। यह आश्चर्यजनक है कि किस प्रकार समाचार-पत्रों के सभी वर्ग—उदाहरण के लिए ब्रिटेन में—जानबूझ कर और बुरी तरह हमें गलत रूप में पेश करते हैं। अभी जब मैं यहां बैठा हुआ था, एक तार मुझे दिया गया, जो कि इस देश में स्थित एक विदेशी संवाददाता का तार था, और जिसमें लन्दन में स्थित अपने पत्र के लिए उसने एक लम्बा संवाद भेजा था। इससे अधिक घृणाजनक झूठी चीज मैंने नहीं देखी। मुझे आश्चर्य है कि किसी भी व्यक्ति को, जो कि यहां कुछ महीनों तक रह चुका हो, ऐसा समाचार भेजने का दुःसाहस कैसे हो सकता है; और अब समय आ गया है कि भारत सरकार इस विषय में दृढ़ता से पेश आवे।

हम भारतीय और विदेशी समाचारपत्रों के प्रति बहुत सहिष्णु रहे हैं। हमने अनावश्यक रूप से उन्हें बताया है कि अगर वे ऐसे समाचार भी भेजें जो कि हमारे लिए अत्यन्त अरुचिकर हों, तो भी हम कुछ न करेंगे। लेकिन झूठ की एक हद होती है, और कुछ संवादों में, मैं समझता हूँ, वह हद अब पहुँच गई है।

उक्त घटना की चर्चा मैंने इसलिए की है कि मैं चाहूँगा कि माननीय सदस्य परि-स्थिति को देखें। श्री कामठ ने अपने व्याख्यान के उपसंहार में एक प्रकार से कहा कि हमें इस या उस गुट में सम्मिलिति हो जाना चाहिए। उन्होंने कहा, "मैं नहीं जानता कि किसमें, लेकिन इस या उस गुट में सम्मिलित हो जाओ।" मुझे याद पड़ता है कि बाद में उन्होंने एक गुट के प्रति अपना रुझान बताया, लेकिन पहले नहीं कहा। जान पड़ता है भाषण देते हुए उन्होंने अपना विचार पलट दिया।

किसी एक गुट में सम्मिलित होने का क्या अर्थ है? आखिरकार इसका एक ही अर्थ हो सकता है कि किसी विशेष प्रश्न पर अपना मत छोड़ दीजिए, और दूसरे पक्ष का मत ग्रहण कर लीजिए जिसमें कि वह प्रसन्न हो जाय और आप

उसकी कृपा पा सकें। जहां तक मैं देख सकता हूँ, इसके यही मानी हैं, और कुछ नहीं। क्योंकि यदि हमारा मत उस गुट का भी मत है, तब मत छोड़ने का कोई प्रश्न ही नहीं; हम उस गुट या देश के साथ हैं ही। प्रश्न तभी उठता है जब हमारा उससे उस विषय में हो; इसलिए हम अपना मत छोड़ देते हैं और उसकी कृपा प्राप्त करने के लिए उसका मत ग्रहण कर लेते हैं।

अब मैं इस बात से सहमत होने के लिए तैयार हूँ कि अनेक अवसरों पर, न केवल अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में, बल्कि इस सभा में भी, आदमी को समझौते के खयाल से अपनी बात छोड़नी पड़ती है। ऐसे सम्मेलनों में अपने दृष्टिकोण को, कुछ विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिए, अधीनस्थ करने की संभावना को अप्रासंगिक मानने के लिए मैं तैयार नहीं। यह पूर्णतया नियमित है और ऐसा अकसर किया जाता है। लेकिन किसी देश से कुछ प्राप्त करने के उद्देश्य से हेतु-सिद्धि का यह ढंग सब से बुरा ढंग है और यदि इसे हम ग्रहण भी करना चाहेंगे तो कार्य-सिद्धि का यह सब से बुरा ढंग होगा।

वस्तुस्थिति यह है कि सैनिक दृष्टि से हमारी कमजोरी के बावजूद—क्योंकि यह स्पष्ट है कि हम कोई बड़ी सैनिक शक्ति नहीं हैं, न हम औद्योगिक दृष्टि से एक उन्नत शक्ति हैं—आज भी संसार के मामलों में भारत की गिनती है, और संयुक्त राष्ट्रों में या सुरक्षा-परिषद् में जो झंझट आप देखते हैं वह इसी कारण हैं कि भारत की गिनती है, न कि इस कारण कि उसकी गिनती नहीं है। यह एक तथ्य है, जिसे आप को याद रखना चाहिए। अगर हम यों ही एशिया या यूरोप में कहीं कोई छोटे से राष्ट्र होते, तो हमारी ज्यादा परवाह न की जाती। लेकिन, चूंकि हमारी गिनती है और चूंकि भविष्य में हमारी अधिकाधिक गिनती होगी, इसी से जो कुछ हम करते हैं वह टीका-टिप्पणी का विषय होता है और बहुत से लोग इस बात को पसन्द नहीं करते कि हमारी इतनी गिनती की जाय। यह हमारे दृष्टिकोण का या इस या उस गुट से मिलने का प्रश्न नहीं है; यह तो केवल एक तथ्य है कि हम प्रच्छन्न रूप से एक बड़े राष्ट्र हैं और एक बड़ी शक्ति हैं, और संभवतः यह बात कुछ लोगों द्वारा नहीं पसन्द की जाती कि हमें मजबूत बनाने वाली कोई बात हो जाय।

ये विभिन्न बातें हैं जिन पर हमें विचार करना है। यह इतनी सीधी-सादी बात नहीं है कि बस हम एक प्रस्ताव द्वारा अपने को इस या उस संगठन से संबद्ध कर लें, और उस संगठन की सदस्यता की सब सुविधाएँ प्राप्त कर लें। इस तरह की बात होने नहीं जा रही है। मैं इस सभा से अवश्य यह निवेदन करूँगा कि अगर मैं साफ़-साफ़ स्वीकार करूँ तो मुझे कहना पड़ेगा कि पिछले वर्ष निश्चय ही बहुत कुछ ऐसा हुआ है जो कि अवांछनीय था, और जहां तक कि वैदेशिक मामलों

के विभाग का प्रश्न है, इसका काम बहुत अच्छा नहीं रहा। जहां तक हमारी सूचना सम्बन्धी सेवाएँ हैं, उनका भी काम बहुत अच्छा नहीं रहा। यह सब बिल्कुल सही है। लेकिन विदेशी नीति के सम्बन्ध में जो हमारा प्रमुख दृष्टिकोण है, और जहां तक उसका सम्बन्ध है, मैं यह बिल्कुल नहीं देख पाता कि उसे किस तरह बदला जा सकता है। यह मैं समझ सकता हूँ कि जैसे-जैसे अवसर उपस्थित हों, हम अपने को उसके अनुकूल ढालें–लेकिन हमारा जो प्रमुख दृष्टिकोण है, उसे, मैं समझता हूँ, वैसा ही बना रहना चाहिए, क्योंकि आप चाहे जितना इस सम्बन्ध में विचार और विश्लेषण कीजिए, कोई दूसरा रास्ता ही नहीं है। किसी विशेष नीति को इसलिये ग्रहण करने का प्रश्न नहीं कि वह आदर्श रूप से सबसे अच्छी है; लेकिन मैं यह निवेदन अवश्य करूँगा कि जिस नीति पर हम चल रहे हैं, उसे यदि छोड़ दें तो इस देश के लिए तनिक भी लाभ की और कोई नीति नहीं रह जाती।

अब दूसरी बात लीजिए। अभी मैंने सूचना सम्बन्धी सेवाओं आदि की चर्चा की है। श्री शिवराव ने एक या दो सुझाव दिए हैं, जिनका मैं स्वागत करता हूँ। एक सुझाव उन विभिन्न प्रतिनिधि-मंडलों, शिष्टमंडलों आदि के सम्बन्ध में था, जो कि विदेशों में भेजे जाते हैं। हर एक मंत्रालय अपने प्रतिनिधि-मंडल को चुनता है, उसे संक्षेप में अपने निर्देश देता है, और वह प्रतिनिधि-मंडल एक विशेष सम्मेलन में जाता है। अकसर ऐसा हो जाता है कि प्रतिनिधि-मंडलों को दिए गए निर्देश आपस में एक दूसरे से मेल नहीं खाते और कुछ संघर्ष हो जाता है, यहां तक कि दो प्रतिनिधि-मंडल अलग-अलग बातें कहते हैं। प्राय: यह भी होता है कि जो लोग बाहर भेजे जाते हैं, उनका चुनाव अच्छा नहीं होता। तो यह संघर्ष होता है, और आपस में मेल का अभाव रहता है। इसलिए हम श्री शिवराव के सुझाव के अनुसार विदेशी मामलों के विषय में एक तरह का विभाग स्थापित कर रहे हैं। वास्तव में वह एक अधूरी अवस्था में मौजूद भी है, और यह कान्फ्रेंस विभाग कहलाता है। प्रत्येक प्रतिनिधि-मंडल वैदेशिक मामलों के मंत्रालय द्वारा न चुना जायगा बल्कि संबंधित मंत्रालय द्वारा चुना जायगा। लेकिन जो भी प्रस्ताव होंगे उन्हें वैदेशिक मामलों के मंत्रालय का कान्फ्रेंस-विभाग काट-छांट कर ठीक करेगा, जिससे कि किसी प्रकार की परस्पर-विरोधी बात न हो जाय और संघर्ष न हो सके।

सूचना के संबंध में, मैं इस सभा को बताना चाहूँगा कि वैदेशिक मामलों के मंत्रालय और सूचना तथा प्रसार मंत्रालय के बीच एक छोटी सी बहस चल रही है। अब तक विदेशों में सूचना का काम सूचना तथा प्रसार मंत्रालय के हाथ में रहा है। अब वैदेशिक सूचना नाम से जो कार्य हो रहा

है, उसे, ज़ाहिर है, कि वैदेशिक मामलों के मंत्रालय के हाथ में होना चाहिए। वास्तव में ऐसा हर एक देश में हो रहा है। इंग्लिस्तान में वैदेशिक सूचना वैदेशिक विभाग के अन्तर्गत है, घरेलू सूचना सम्बन्धी सेवाओं के अन्तर्गत नहीं। दोनों भिन्न हैं, क्योंकि वैदेशिक सूचना को निरन्तर वैदेशिक मामलों के सम्पर्क में रहना पड़ता है। हम निश्चय ही एक समझौते पर पहुँचेंगे और इसके लिए उचित प्रबन्ध करेंगे। लेकिन, दुर्भाग्य से वैदेशिक सूचना के सम्बन्ध में हमारे दृष्टिकोण में पिछले कई महीनों में बड़ी त्रुटि रही है। साथ ही मैं नहीं चाहता कि यह सभा ऐसी कल्पना करे कि अपनी सूचना सम्बन्धी स्थिति को सुधार कर हम कोई अद्भुत परिवर्तन कर लेंगे; क्योंकि दूसरे देशों में और सरकारी विभागों में लोग जिस रूप में विचार करते हैं, उसके कारण कहीं गहरे होते हैं, और केवल सूचना की कमी नहीं होती। श्री शिवराव ने बताया कि अमेरिका में हमारा सूचना-कार्य चाहे जितना अच्छा हो, वह केवल एक छोटे संगठन तक सीमित है। इतना ही हम व्यय कर सकते हैं। इस समय पाकिस्तान का सूचना-कार्य, उसके अनुरोध पर, न्यूयार्क की ब्रिटिश इन्फ़ार्मेशन सर्विस ने ले रक्खा है, जो कि एक बहुत बड़ा संगठन है। अब इस कार्य की उपयुक्तता और समीचीनता पर निर्णय करना हमारा काम नहीं है। यह तो ब्रिटेन का काम है। अमेरिका में सूचना-कार्य इतने बड़े पैमाने पर संगठित होता है कि हमारे लिए उनसे होड़ करने का खयाल ही बेतुका होगा। मुझे ज्ञात हुआ है कि ब्रिटिश इन्फ़ार्मेशन सर्विस में न्यूयार्क में ६०० आदमी काम कर रहे हैं। निश्चय ही हम ६०० आदमी भेजने नहीं जा रहे। हम बड़ी कोशिश करेंगे तो शायद ६ आदमी भेजेंगे, यानी सौवाँ हिस्सा। और यह सारा सूचना-सम्बन्धी संगठन, दुर्भाग्य से, भारत-विरोधी आधारों पर पिछले कुछ वर्षों में तैयार हुआ है। इस सभा को स्मरण होगा कि कुछ वर्ष हुए अमेरिका के ब्रिटिश सूचना-संगठन का एक मुख्य ध्येय भारत-विरोधी प्रचार करना था। वही लोग आज भी वहां काम कर रहे हैं। इसलिए वे जो भी प्रचार करते हैं, उसमें एक भारत-विरोधी झुकाव रहता है, वे इसे चाहें या न चाहें। हम इस लीक से निकल नहीं पाते। वास्तव में हमें यह कहते हुए दुःख होता है कि कुछ भारतीय, जो कि भारत-विरोधी प्रचार-कार्य कर रहे थे, अब भी अमेरिका की ब्रिटिश इन्फ़ार्मेशन सर्विस में नियुक्त हैं।

अब क्या मैं इस सभा से इस बात की क्षमा मांगू कि प्रवासी भारतीयों के बहुत से मामलों पर, जिनकी यहां चर्चा हुई—विशेषकर मेरे माननीय मित्र सेठ गोविन्द दास द्वारा—मैं नहीं बोल सका हूं। मैं चाहूँगा कि यह सभा इस प्रश्न पर फिर इस पृष्ठभूमि में विचार करे कि यह प्रश्न वैदेशिक मामलों के विभाग का नहीं है, या ऐसा नहीं है कि इधर या उधर बिजली का बटन दबा देने से इस सभा द्वारा उसे हल किया जा सके। यह इससे कहीं ज्यादा जटिल है, और जब समय

आयेगा और आवश्यकता होगी तो हम इस अथवा उस नीति को ग्रहणकर लेंगे, बशर्ते कि हमें दृढ़ विश्वास हो जाय कि ऐसा करना देश के हित में होगा।

जहां तक प्रवासी भारतीयों का मामला है, मैं केवल एक-दो शब्द कहूँगा। इनकी कठिनाइयों में से बहुत सी अब तक बनी हुई हैं और अभी उनके बने रहने की संभावना है। मुझे यह कहते दुख होता है कि ब्रिटिश औपनिवेशिक विभाग से हमें बहुत सहायता नहीं मिलती। यद्यपि मैं भारत सरकार के यहां के अटकावों का अभ्यस्त हूँ—और वे काफी आश्चर्य में डालने वाले हैं—फिर भी, ब्रिटिश औपनिवेशिक विभाग के यहां के अटकाव आश्चर्यजनक और आंखें खोलने वाले हैं।

मुझे याद है कि हमने उक्त विभाग को कुछ आवश्यक पत्र भेजे और स्मरण दिलाने के लिए तार भेजे। जवाब प्राप्त करने में हमें ठीक दस महीने लग गए। कुछ ब्रिटिश उपनिवेशों में वहां के भारतीयों को देखने के लिए एक प्रतिनिधि-मंडल भेजने का मामला था। वह बहुत सीधा सा मामला था, वह ऐसा नहीं था जिसमें कोई सिद्धान्तों का अटकाव हो; फिर भी, उन्हें उत्तर देने में दस महीने लग गए, और इस बीच में घटनाएँ घटती रहीं और कुछ किया नहीं जा सका। इस तरह हम इन सभी दफ्तरों में, क्या यहां और क्या वहां, लाल-फीते का प्रभाव पाते हैं।

लेकिन मुख्य कठिनाई नागरिकता की है। अब, ये प्रवासी भारतीय क्या हैं? क्या वे भारतीय नागरिक हैं? वे भारत के नागरिक होंगे या नहीं? अगर वे नहीं हैं, तब उनमें हमारी दिलचस्पी सांस्कृतिक दृष्टि से और मानवता के नाते होती है, राजनीतिक दृष्टि से नहीं। वह दिलचस्पी तो बनी रहती है। उदाहरण के लिए, फ़िजी और मारिशस के भारतीयों को ले लीजिए। क्या वे अपनी राष्ट्रीयता बनाए रखेंगे या फ़िजी अथवा मारिशस वाले बन जायँगे? बर्मा और लंका के बारे में भी यही सवाल उठता है। यह एक कठिन सवाल है। यह सभा उन्हें भारतीयों के रूप में मानना चाहती है, फिर भी यह चाहती कि जहां वे हैं वहां का पूरा मताधिकार उन्हें प्राप्त हो। ज़ाहिर है कि दोनों बातें एक साथ नहीं चल सकतीं। या तो वे दूसरे देश के नागरिक के रूप में मताधिकार प्राप्त करते हैं, या आप उन्हें बिना मताधिकार के भारतीय मानिए और उनके लिए विदेशियों को प्राप्त अच्छे-से-अच्छे अधिकारों की माँग कीजिए।

अन्त में एक और बात है। बिल्कुल आरम्भ में प्रोफ़ेसर रंगा ने भारत के ब्रिटिश कामनवेल्थ में होने के सम्बन्ध में एक प्रश्न किया था। जान पड़ता है कि वे समाचारपत्रों में प्रकाशित कुछ संवादों से जो कि हाल में छपे हैं और जिनमें यह

कहा गया है कि एक प्रतिनिधि-मंडल इस विषय पर विचार-विनिमय के लिए भेजा गया है, धोखे में पड़ गए हैं। मुझे आश्चर्य होता है कि लोग किस तरह कल्पना की उड़ान भरने लगते हैं। मैं समझता हूँ कि जिस प्रतिनिधि-मंडल का हवाला दिया जाता है वह रक्षा-मंत्रालय का प्रतिनिधि-मंडल है, जिसके नेता श्री एच० एम० पटेल हैं। उसका इस मामले से कोई सम्बन्ध नहीं; उसका संबंध केवल रक्षा सम्बन्धी मामलों से है और कुछ सामग्री से है, जिसे कि हम इंग्लिस्तान में तथा अन्यत्र खरीदना चाहते हैं। इस प्रकार के प्रश्न पर कोई विचार-विनिमय नहीं हुआ है। लेकिन जहां तक हमारी साधारण स्थिति है, उसकी परिभाषा इस संविधान परिषद् में शुरू शुरू में हो चुकी है और अन्त में इस पर संविधान परिषद् द्वारा ही निर्णय होगा। किसी समिति या व्यक्ति के इस पर बहस करने का और प्रारम्भिक निर्णय पर भी पहुँचने का कोई प्रश्न नहीं है। अन्तिम निर्णय जो भी हो, मैं विश्वास करता हूँ कि यह पक्की बात है कि भारत पूरी तरह से स्वतंत्र और पूर्ण सत्ताधारी गणतंत्र या कामनवेल्थ या राष्ट्र या आप जो कुछ कहें वह होगा।

पर इसका अर्थ यह नहीं कि हम इस समस्या पर विचार न करें कि इंग्लिस्तान या ब्रिटिश कामनवेल्थ या किसी और दल से हमारे सम्बन्ध क्या हों। यह केवल एक सिद्धान्त का प्रश्न नहीं, बल्कि एक बड़ा व्यावहारिक प्रश्न है। फिर नागरिकता की बात है जिसका कि प्रभाव विभिन्न ब्रिटिश उपनिवेशों में बसे हुए भारतीयों पर पड़ता है। ठीक-ठीक किस प्रकार के हमारे सम्बन्ध हों, किस प्रकार की नागरिकता हो, जिसमें कि वे विदेशी न मान लिए जायँ—इन सब प्रश्नों पर हमें विचार करना होगा। लेकिन यह बात इस प्रश्न से अलग है कि चाहे राजनीतिक या अन्य किसी दृष्टि से देखा जाय, भारत को पूरी तौर से स्वतंत्र देश होना चाहिए।

विदेशों में प्रचार की समस्या

महोदय, इससे पहले कि मैं विषय पर कुछ कहूँ, मैं यूरोप में कुछ दिन पहले घटने वाली एक दुःखद घटना की चर्चा करना चाहता हूँ। मेरा तात्पर्य चेकोस्लोवाकिया गणराज्य के वैदेशिक मंत्री एम० जान मसारिक की मृत्यु से है। यह न केवल अपने आप में एक बड़ी ही दुःखद घटना है (जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं उनसे परिचित था और यह मेरी व्यक्तिगत क्षति है) बल्कि जिन परिस्थितियों में यह घटित हुई है, उसके घोर परिणाम हो सकते हैं। इस देश की सरकार और जनता की ओर से मैंने यहां पर स्थित चेकोस्लोवाकिया गणराज्य के राजदूत के पास सहानुभूति और समवेदना का संदेश भेजा है और मुझे विश्वास है कि यह सभा भी उस संदेश के साथ अपनी सहानुभूति जोड़ना चाहेगी।

वैदेशिक सम्बन्धों के मंत्रालय से सम्बन्धित कटौती के प्रस्ताव के अवसर पर मैंने किंचित् अकस्मात् और संयोगवश अमेरिका-स्थित ब्रिटिश इन्फार्मेशन सर्विसेज़ (सूचना सेवाओं) की चर्चा की थी। वास्तव में मेरे सहयोगी श्री शिवराव ने इसका जिक्र किया था और मैंने उनके कथन का हवाला दिया था और कहा था कि वह पाकिस्तान सरकार के अनुरोध पर प्रचार का कार्य कर रही है। मैंने यह भी कहा था कि वह कुछ भारतीयों की सेवाओं का उपयोग कर रही है। अब अमेरिका की ब्रिटिश इन्फार्मेशन सर्विसेज़ ने इस वक्तव्य का प्रतिवाद किया है, और स्पष्ट रूप में यह कहा है कि पाकिस्तान की ओर से वे कोई प्रचार या प्रकाशन का कार्य नहीं कर रहे हैं; और उन्होंने अपने कर्मचारी वर्ग में किसी भारतीय को नियुक्त नहीं किया है। मुझे उनका वक्तव्य स्वीकार करना चाहिए और मैं इस बात पर खेद प्रकट करता हूँ कि मैंने कोई ऐसा बयान दिया जो कि वस्तुतः ठीक नहीं था। मैं इस तर्क में नहीं पड़ना चाहता। लेकिन वस्तुतः वह ठीक हो या न हो, बहुत सी ऐसी बातों को बताना संभव है जो होती हैं, और केवल इसलिए होती हैं कि बहुत समय से होती आरही हैं। एक लीक से बाहर निकलना कुछ कठिन होता है। कुछ समय हुआ एक प्रख्यात ब्रिटिश पत्रकार का कश्मीर के संबंध में एक लेख ब्रिटिश इन्फार्मेशन सर्विसेज़ द्वारा न केवल अमेरिका में बल्कि विविध देशों में प्रचारित हुआ था। इस लेख में कुछ बातें थीं जो बिल्कुल झूठी

संविधान परिषद् (व्यवस्थापिका), में १५ मार्च, १९४८ को दिया गया एक भाषण

थीं। मिसाल के लिए एक बात लीजिए—यह लिखा गया कि भारतीय संघ में कश्मीर के सम्मिलित होने के बाद, और उससे चिढ़ कर कबायलियों ने कश्मीर पर हमला किया, जब कि बात इससे बिल्कुल उलटी है। यह एक छोटी-सी बात है। मैं इसका जिक्र केवल यह दिखाने के लिए कर रहा हूँ कि जो लोग अब तक एक विशेष प्रकार के काम में लगे रहे हैं, स्वभावतः किसी समस्या को उसी पुराने दृष्टि-कोण से देखते हैं; क्योंकि एक लीक से बाहर आना किसी के लिए भी कठिन होता है। फिर भी पिछले अवसर पर यदि मैंने कोई ऐसा वक्तव्य दिया जो कि ठीक नहीं था, तो मुझे दुःख है, और मैं खेद प्रकट करता हूँ।

विदेशों में प्रचार के बारे में मुझे अधिक नहीं कहना है, सिवाय इसके कि मैं श्री शिवराव के सुझावों में से बहुतों का स्वागत करता हूँ। इसे वैदेशिक प्रचार कहा गया है और शायद माननीय सदस्यगण समझें कि हमें विदेशों को प्रचार की किस्म के तथ्यों और आंकड़ों से भर देना चाहिए। मैं नहीं समझता कि हमारे लिए ऐसा करना मुनासिब होगा, या यह कि हम ऐसा कर ही सकते हैं। मेरा यह खयाल नहीं कि इसे निरी सूचना या विज्ञापन का रूप देना चाहिए। हम ऐसा कर नहीं सकते, क्योंकि ऐसा करने के मानी होंगे बहुत बड़ी संख्या में इस कार्य में लोगों को नियुक्त करना, और इतने अधिक रुपये खर्च करना जो हमारे बस के नहीं हैं, इत्यादि। लेकिन मुख्य कारण जिससे कि मैं ऐसा नहीं करना चाहता यह है कि मुझे यह तरीका बिल्कुल पसन्द नहीं। यह तरीका अनिवार्य रूप से निमित्त-साधन का रूप ग्रहण कर लेता है, और हो सकता है कि कभी कभी इसका प्रभाव पड़े, लेकिन जब लोग यह अनुभव करने लगते हैं कि यह एक विशेष ढंग का अत्यधिक प्रचार है तो इसका मूल्य अधिकाधिक घटता जाता है। मैं जनता के सामने, भारत में भी और बाहर भी, वस्तुस्थिति रखना अधिक पसन्द करूँगा। स्वभावतः मैं उसे अपने दृष्टिकोण से रक्खूंगा और वस्तुस्थिति की पृष्ठभूमि भी देने की कोशिश करूँगा लेकिन जहां तक होगा तथ्य और केवल तथ्य ही समुख रखूँगा और दूसरों को निर्णय करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दूंगा। यह सही है कि जिस रूप में तथ्य लोगों के सामने रक्खे जाते हैं, उससे बड़ा अन्तर आ जाता है। आँकड़ों से हम प्रायः जो भी सिद्ध करना चाहते हैं, सिद्ध कर सकते हैं। हर हालत में जनसूचना का यह धंधा, चाहे वह वस्तुस्थिति की सूचना का हो चाहे किसी और प्रकार की सूचना का, सर्वत्र एक बड़ी चतुराई का धंधा है, और विशेषकर विदेशों में। इसकी आलोचना करना सहज है और मैं समझता हूँ कि बहुत सी आलोचनाएं जो हुई हैं उनमें सार है। शायद यह भी सहज है कि ऐसी योजनाएं तैयार की जायँ जो कि कागज़ पर बहुत अच्छी लगें लेकिन जो व्यवहारतः सफल न हों। जैसा कि मैंने इस सभा को पिछले अवसर पर जब इस प्रश्न पर वाद-विवाद हुआ था, बताया था कि चूंकि वैदेशिक जन-सूचना की समस्या का वैदेशिक नीति से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिए साधारणतः हर एक

देश इसका प्रबन्ध अपने वैदेशिक विभाग द्वारा करता है, न कि अपने आंतरिक सूचना विभाग द्वारा। यहां अनेक परिस्थितियों, विशेषत: युद्ध-जनित परिस्थितियों के कारण—क्योंकि युद्ध काल में ही इधर हमारा ध्यान गया—वैदेशिक प्रचार हमारे सूचना विभाग का एक अंग हो गया। जितना ही मैंने इस पर विचार किया है उतना ही मैंने अनुभव किया है कि यह बहुत सन्तोषजनक व्यवस्था नहीं है। यह ज़ाहिर है कि आन्तरिक सूचना सम्बन्धी संगठन और वैदेशिक प्रचार सम्बन्धी संगठन में अत्यन्त निकट का सहयोग होना चाहिए; लेकिन, मैं समझता हूँ, यह कहीं अच्छा है कि वैदेशिक मामलों के मंत्रालय का वैदेशिक प्रचार के संगठन में जितना हाथ रहा है उससे और अधिक हो।

जब श्री शिवराव विदेश में प्रचार-अधिकारियों की बजाय जन-सम्पर्क अधिकारियों की चर्चा करते हैं तो मैं उनसे सहमत हूँ। उस से, जिस तरह का कार्य उन्हें करना चाहिए, उसका कहीं अच्छा बोध होता है। इस समय जो विविध वितरण-पत्र और अन्य सामग्री प्रकाशित हो रही है, उसका निस्संदेह कुछ उपयोग है, लेकिन मैं नहीं समझता कि जितना पैसा उन पर व्यय हो रहा है, उतना उनका मूल्य है। मेरी अपनी धारणा यह है कि ये सब वितरण-पत्र और पुस्तिकाएँ और पर्चे रद्दी की टोकरी में पहुँच जाते हैं—और यह कोई इस समय की नहीं बल्कि बहुत पहले की धारणा है। इसकी एक वजह यह भी है कि,—मैंने स्वयं, सरकार के एक सदस्य की हैसियत से नहीं, बल्कि निजी तौर पर या कांग्रेस संगठन के सदस्य की हैसियत से विदेशों में एक प्रकार का प्रचार-कार्य किया है—ये पत्र और पुस्तिकाएं उन लोगों के अतिरिक्त, जो पहले से ही आपके अनुकूल हैं और जो इन्हें अपने लाभ के लिए रख छोड़ते हैं, बहुत कम लोगों को प्रभावित करती हैं। बिल्कुल एक दूसरे ही दृष्टिकोण से इस सारे मामलों को देखना होगा, अर्थात् मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से, प्रत्येक सम्बन्धित देश की आवश्यकताओं के दृष्टिकोण से। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका में संभवतः कार्य-प्रणाली फ्रांस से दूसरे ही ढंग की होगी और मैं समझता हूँ बहुत भिन्न होगी, और सोवियत संघ में और भी भिन्न। अमेरिका में जिस प्रकार का पत्र प्रस्तुत किया जाय, उसमें इस बात का लिहाज होगा कि अमेरिका किस प्रकार की सूचना चाहता है। फ्रांस में वह इससे भिन्न होगा। मैं इसे निश्चित रूप से कह सकता हूँ। फ्रांसवालों का देखने का ढंग दूसरा है और वे वस्तुओं का दूसरे ही रूप में मूल्यांकन करते हैं। इसी तरह जिस प्रकार की सूचना हम सोवियत संघ को भेजेंगे वह बिल्कुल भिन्न या प्रायः बिल्कुल भिन्न होगी। हमारे राजदूत का कहना है कि सोवियत संघ जिस प्रकार की सूचना हम से चाहता है वह प्रायः बिल्कुल आर्थिक सूचना होती है, जैसे कि हमारी विभिन्न योजनाओं में, विभिन्न स्कीमों में, बांधों, जलाशयों और नदी घाटी योजनाओं में, आबपाशी और शिक्षा के विषय में क्या हो रहा है। वे इन बातों

की सूचना चाहते हैं; इन में उन की दिलचस्पी है। विशेष रूप से राजनीति के सम्बन्ध में कोई जिज्ञासा उनकी ओर से नहीं हुई है। यह हो सकता है कि वे जानबूझ कर इस तरह की जिज्ञासा करते हैं, क्योंकि यह प्रायः सरकारी क्षेत्रों से की जाती है। लेकिन मेरा तात्पर्य यह है कि हर एक देश में पहुँच का ढंग अलग होगा। किन बातों की आवश्यकता है और ठीक ठीक प्रचार किस प्रकार किया जा सकता है, इसे योग्य सार्वजनिक सम्पर्क अधिकारी और विदेशों के हमारे दूतावास ही बता सकते हैं, और इसके बाद उसको यहां के सूचना विषयक प्रबन्धों से सम्बन्धित किया जा सकता है। इसलिए मेरा निश्चित विचार है कि इन सब बातों पर पूरी तरह सोच-विचार करना होगा और वास्तव में वैदेशिक विभाग और गृह विभाग इस पर विचार कर भी रहे हैं। हम सब अधिक व्यावहारिक और अच्छा तरीका निकाल लेने की आशा करते हैं। अनिवार्य रूप से, फिर फिर परीक्षा करके इस प्रश्न को हल करना होगा।

ठीक-ठीक तरीका अनुभव द्वारा ही सीखा जा सकता है, इसके अलावा कोई दूसरा उपाय नहीं। फिर यह भी है कि और देशों का, जो इस कार्य को वर्षों से करते रहे हैं, इस विषय में बहुत अनुभव है। वे इस काम में अपार धन व्यय करते हैं, बहुत अधिक संख्या में लोगों को नियुक्त करते हैं, और जिन देशों में वे काम करते हैं उनके सूचना-संगठनों से निकट सम्पर्क पहले ही स्थापित कर चुके हैं। उनके लिए यह कार्य सहज है। हम अपने अच्छे से अच्छे प्रतिभाशाली युवक को यहां से भेज सकते हैं। उसे ऐसे सम्पर्क स्थापित करने में समय लगता है जो केवल मेल-जोल न होकर मनोवैज्ञानिक तथा अन्य प्रकार के भी हों। इसलिए यदि बहुत मार्के के परिणाम नहीं निकले हैं, तो सभा को यह समझना चाहिए कि यह ढेर के ढेर पैम्फ़लेट, वितरण-पत्रक, व्याख्यान आदि पहुँचाने मात्र का कार्य नहीं है, बल्कि एक ऐसी चीज़ के विकास का कार्य है जो कि इससे अधिक जटिल और कठिन है। निश्चय ही, वर्तमान प्रबन्ध बहुत अच्छे नहीं हैं और उन्हें कुछ उस प्रकार से बदलना पड़ेगा जिनका सुझाव कि इस सभा में दिया गया है।

अब सूचना और रेडियो के सम्बन्ध में मैं कहूँगा कि सूचना और रेडियो इन दोनों विषयों पर मंत्रालय ने मुझे पूरे-पूरे ब्यौरे दिए हैं जिनमें अनेक विशेष बातें हैं। मैं उन्हें इस सभा के सामने पढ़ूंगा नहीं, क्योंकि इसमें बहुत समय लग जायगा और जो बहुत से आंकड़े दिए गए हैं उन्हीं में यह सभा फँस जायगी; लेकिन इस सभा को उन ब्यौरों को जानना अवश्य चाहिए, और मैं मंत्रालय को सुझाव दूंगा कि वह उन्हें इस सभा के सामने और जनता के सामने उचित रूप में रक्खे, जिससे कि वह समझ सकें कि क्या हो रहा है। मेरा अपना मत रेडियो की व्यवस्था के विषय में यह है कि हमें जहां तक

हो, ब्रिटिश नमूने पर यानी बी० बी० सी० के ढंग पर कार्य-संचालन करना चाहिए। अर्थात् अच्छा यह होगा कि हम सरकार की अधीनता में एक अर्ध-स्वायत्त संस्था कायम करें, जिसकी नीति अवश्य ही सरकार द्वारा नियंत्रित होगी, लेकिन जो अन्यथा सरकारी विभाग के रूप में नहीं बल्कि एक अर्ध-स्वायत्त संस्था के रूप में चलायी जायगी। मैं यह नहीं सोचता कि ऐसा करना तत्काल संभव होगा। मैंने इस सभा से केवल इसकी चर्चा की है। मेरा खयाल है कि हमारा उद्देश्य यही होना चाहिए, चाहे हमारे सम्मुख बहुत सी कठिनाइयां हों। वास्तव में बहुत से मामलों में हमारा उद्देश्य इस तरह की अर्द्ध-स्वायत्त संस्थाओं की स्थापना होना चाहिए, जिनमें नीति तथा अन्य बातों का नियंत्रण दूर से सरकार के हाथों में हो, लेकिन सरकार या सरकारी विभाग नित्य के कार्यक्रम में हस्तक्षेप न करे। लेकिन यह तात्कालिक प्रश्न नहीं है। यह स्पष्ट है कि हमारी विभिन्न सेवाओं में समाचार-वितरण, भाषा के प्रश्न आदि में कौन सी नीति बरती जाय इस पर यहां होने वाले वादविवाद ने सभा के विचारों का संकेत दे दिया है। इससे सहायता मिलेगी। लेकिन इनका फल तभी निकलेगा जब समितियों आदि द्वारा इस तरह के वादविवाद शास्त्रीय स्तर पर नहीं, फिर भी पूरे ज्ञान के साथ बराबर ध्यानपूर्वक होते रहें। कटौती के प्रस्तावों के सम्बन्ध में किए गए चलताऊ भाषणों द्वारा इस विषय पर ठीक ठीक विचार हो सकना वास्तव में असम्भव है। मुझे एक माननीय सदस्य से यह जानकर खेद है कि कुछ प्रान्तों में सलाहकार समितियां ठीक ठीक नहीं चल रही हैं। मैंने समझा था कि रेडियो के सम्बन्ध में यह आवश्यक है कि ऐसी समितियां जल्द-जल्द काम करती रहें, उनसे सलाह ली जाय और उन्हें बताया जाय कि क्या हो रहा है और अधिकारी वर्ग और गैर-अधिकारी वर्ग के बीच साधारणतया परस्पर सम्बन्ध बना रहे। इस विभाग की स्थायी समिति से भी मैं कहना चाहता हूँ कि इस सभा में जो प्रश्न उठाए जाते हैं उन पर वह विचार करे और उनके विषय में विभाग के पदाधिकारियों से परामर्श करे। उन से निबटने का यही उचित ढंग है। यह बहुत सन्तोषजनक तरीका नहीं है कि माननीय सदस्य यहां पर व्याख्यान दें और मैं या और कोई उठ कर उसका उत्तर दे दें और यहीं पर साल भर के लिए प्रसंग समाप्त कर दिया जाय। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि इस प्रकार का निकट सम्पर्क और इन विषयों पर मिल-जुल कर परामर्श भविष्य में अब तक की अपेक्षा अधिक होगा। अब भाषा आदि के प्रश्न को ले लीजिए। यह स्पष्ट है कि यह विषय ऊँचे स्तर पर विद्वानों के विचार करने का है। यह ऐसा प्रश्न नहीं कि इसे किसी राजनीतिक वादविवाद की सरगर्मी में निबटाया जा सके। विशेषकर किसी रेडियो-संगठन के लिए इस विषय पर विचार करने के लिए ऊँचे दर्जे के सलाहकारों की आवश्यकता है, जो भाषाओं आदि के विषय में जानते हों और जो उन्हें सलाह दे सकें। इंग्लिस्तान में अवश्य ही कोई ऐसा प्रश्न नहीं है,

कि किस तरह की भाषा का प्रयोग हो, परन्तु इंगिलस्तान के अच्छे से अच्छे साहित्यकार सलाह देने के लिए नियुक्त होते हैं—जैसे बर्नार्ड शा और अन्य लोग। इन लोगों को भाषा के व्यवहार के सम्बन्ध में स्थायी सलाहकार समिति में रक्खा गया है। मैं नहीं कह सकता कि बड़े बड़े साहित्यिकों से हम परामर्श देने के लिए कहें तो परिणाम बहुत अच्छा ही होगा, क्योंकि उनकी सलाह संभवतः दूसरे साहित्यिकों के विषय में होगी और मेरे जैसे लोग समझ न पायेंगे कि क्या हो रहा है। इस संभावना की कल्पना की जा सकती है। फिर भी मेरा तात्पर्य यह है कि वे लोग, जो इस समस्या को तथा इसके शिक्षा संबंधी एवं सार्वजनिक पहलुओं को समझ सकते हैं, इस विषय पर निष्पक्षता के साथ विचार करें। उन्हें रेडियो मंत्रालय से संबद्ध कर लेना चाहिए, उनसे सलाह लेनी चाहिए तथा शब्द-सूची, शब्द-कोष आदि जो व्यवहार में आ सकें तैयार कराना चाहिए। हर एक देश में ऐसा होता है, अगर्चे उनके यहां भाषा सम्बन्धी ऐसे विवाद नहीं चल रहे हैं जैसे कि यहां हैं। यही बात इस पर भी लागू होती है कि किस प्रकार के समाचार दिए जायं।

इस सभा में इस विषय पर दो सम्मतियां नहीं हो सकतीं कि ग्रामीण प्रदेशों में रेडियो का विकास विशेष महत्व रखता है। मैं इस बात को ठीक-ठीक समझ नहीं सका हूँ कि, जैसा कि मेरे खयाल में श्रीमती कमला चौधरी ने बताया, ग्रामीण प्रदेशों के लिये किये जाने वाले प्रसारणों को अधिक समय दिया जाना चाहिये। मेरी समझ में यह समय का प्रश्न ही नहीं है। मान लीजिए कि एक घंटा रोज की जगह पर आप पांच घंटे रोज देते हैं। पर ग्राम-निवासी तो केवल कुछ ही समयों पर सुन सकते हैं, और फिर एक बात हद से अधिक भी हो सकती है। न मैं यही ठीक समझता हूँ कि हमें अपने रेडियो के कार्यक्रम में दूसरों को शिक्षा देने के ध्येय को ही ध्यान में रखना चाहिए। मैं नहीं कह सकता कि माननीय सदस्यों की, उन्हें सुधारने के लिए किए गए प्रयत्नों के प्रति क्या प्रतिक्रिया होगी। लेकिन मेरी इसके विरुद्ध बड़ी जोरदार प्रतिक्रिया होती है। यदि कोई मुझे उपदेश देना चाहता है तो मैं उस उपदेश को न सुनूंगा। मैं समझता हूँ कि जन-साधारण की भी यही मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया होती है; बहुत उपदेश देने का, आपके लाभ की बहुत सलाह देने का, बार-बार यह कहने का कि अच्छे आचरण करो, परिणाम बहुत अच्छा नहीं होता। हमें इस समस्या के सम्बन्ध में दूसरी तरह पर काम करना चाहिए। आप शिक्षा देना चाहते हैं तो दिल-बहलाव के ढंग पर, मनोरंजन प्रस्तुत करते हुए, हल्के-फुल्के ढंग से, और कभी-कभी आप चाहें तो बोझिल ढंग से भी दीजिए,—ठीक वैसे ही जैसे आप बच्चे को देते हैं। मेरा सुझाव है कि ये सब बातें विशेषज्ञों के विचार करने की हैं। इसलिए मैं समझता हूँ कि यह वांछनीय होगा कि अलग-अलग समितियों के सदस्य

इन बातों पर विचार करें और अपने कार्यों को परस्पर संबंधित करते हुए, मंत्रालय को परामर्श दें। इसी तरह हम क्रमशः सुधार कर सकते हैं।

मुझे खेद है कि बहुत से विषय जो उठाये गए उन पर मैंने कुछ नहीं कहा, लेकिन उनसे निबटने के ढंग के विषय में मैंने मार्ग-दर्शक सुझाव दे दिया है।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत का उदय

यह सभा हमारी वैदेशिक नीति और वैदेशिक मामलों और भारत पर पड़नेवाले उनके प्रभाव आदि के विविध पहलुओं में निःसन्देह दिलचस्पी रखती है। संभवतः आज के वादविवाद के सिलसिले में इनमें से कई बातों पर ध्यान दिलाया जायगा। लेकिन बजाय इसके कि मुख्य समस्या के छोटे-छोटे पहलुओं पर मैं कुछ कहूँ, मैं वैदेशिक मामलों और वैदेशिक नीति के कुछ साधारण पहलुओं पर जिस रूप में कि वे भारत पर प्रभाव डालते हैं और जिस रूप में हम उन्हें देखते हैं, कुछ कहना चाहूँगा।

उससे भी पहले, मैं न केवल वैदेशिक मामलों का, बल्कि स्वयं भारत के मामलों का एक प्रकार से सिंहावलोकन करना चाहूँगा। पिछले कुछ दिनों में हमने आय-व्यय सम्बन्धी प्रस्तावों की बहुत कुछ आलोचना सुनी है और सरकार की बहुत-सी त्रुटियों को कम या अधिक जोर के साथ बताया गया है। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं हर तरह की आलोचना का स्वागत करता हूँ और मेरा यह निश्चित विश्वास है कि यह दुर्भाग्य की बात होगी कि यह सभा एक गतिहीन, एक अधीन सभा बन जाय, ऐसी सभा जो सरकार की सभी बातों पर केवल "हां" करने वाली हो। स्वतंत्रता का मूल्य निरन्तर सतर्कता द्वारा चुकाना होता है, और इस सभा के हर एक सदस्य को सतर्क रहना चाहिए और सरकार को भी बेशक सतर्क रहना चाहिए। लेकिन अधिकार पद पाए हुए लोगों की एक प्रवृत्ति प्रायः यह होती है कि वे किञ्चित् आत्मतुष्ट हो जाते हैं। इसलिए मैं दुहराऊँगा कि मैं तो, इस सभा के माननीय सदस्यों की इस विषय में सतर्कता का और इस बात का स्वागत करता हूँ कि वे हमारा ध्यान हमारी त्रुटियों या भूलों या शासन की लापरवाहियों की ओर दिलाते हैं। साथ ही मैं आशा करता हूँ कि आलोचना सद्भाव से, मैत्रीपूर्ण ढंग से, की जाती है और सरकार की नेकनीयती पर सन्देह नहीं किया जाता। यदि सरकार की नेकनीयती पर संदेह किया जाय, तो भी मुझे आपत्ति नहीं, बशर्ते कि यह स्पष्ट रहे कि विचारणीय विषय वही है।

पिछले दिनों इन आलोचनाओं को सुनते हुए या उनके विषय में पढ़ते हुए

संविधान परिषद (व्यवस्थापिका), नई दिल्ली, में ८ मार्च, १९४८ को दिया गया भाषण।

मैंने अनुभव किया है कि शायद हम विस्तार की बातों पर अत्यधिक ध्यान दे रहे हैं और मूल बातों को नहीं देख रहे हैं। हम आज भारत की पूरी तस्वीर को, और जो कुछ पिछले लगभग अठारह महीनों में हुआ है उसे नहीं देख रहे हैं। उसे जहां तक आप से हो सके आप तटस्थ होकर देखिए—मानो आप कुछ दूर पर हों और इस बदलते हुए दृश्य को देख रहे हों। मैं समझता हूँ, अगर आप अपने को अब से डेढ़ साल पहले पहुँचा सकें और देखें कि तब क्या हुआ और उसके बाद से अब तक क्या हुआ, तो आप पायेंगे कि भारत में न केवल एक बड़ा परिवर्तन हुआ है, बल्कि बावजूद अपनी सब कठिनाइयों और संकटों के जिनसे होकर कि वह गुज़रा है, भारत अनेक प्रकार से आगे बढ़ा है। हमारी सरकार को, और विशेषकर कुछ हद तक मुझे, भारी बोझों को वहन करना पड़ा है और हम उन्हें अब भी वहन कर रहे हैं और हमारे सामने बड़ी कठिनाइयां हैं। फिर भी मुझे अनुभव होता है कि हमने पूरी ईमानदारी के साथ कुछ हासिल किया है, हम विफल नहीं हुए हैं। और मैं भविष्य की ओर—मेरा मतलब दूर भविष्य से नहीं है—पूरे विश्वास के साथ देखता हूँ और भारत के इतिहास के इस महान काल में उसकी सेवा कर सकने के अपने सौभाग्य पर एक विशेष रहस्यमयी भावना का अनुभव करता हूँ।

चूंकि आपने आय-व्यय विषयक प्रस्तावों की चर्चा की है, मैं कहूँ कि इस बजट में ही ऐसी बातें हैं, जो कुछ सदस्यों को रुचिकर न हों, और हो सकता है कि जहां तहां हम उनमें सुधार कर सकते थे, लेकिन मेरी समझ में बजट स्वयं हमारी शक्ति और राष्ट्र की शक्ति का सूचक है। मैं समझता हूँ कि यह सभा और यह देश देखेगा कि जिस सावधानी और दूरदर्शिता से हमारे अर्थमन्त्री ने यह बजट तैयार किया है उसका पूरा पूरा लाभ हमें आने वाले महीनों और वर्षों में मिलेगा। हम सावधानी से आगे बढ़े हैं, क्योंकि स्पष्ट कहा जाय तो जो दायित्व हमारे हाथों में सौंपा गया है, उसे हम जोखिम में डालने का साहस नहीं कर सकते। बहुत सी बातें जो हम करना चाहते थे, हमने नहीं कीं, क्योंकि भारत के भविष्य से या भारत के वर्तमान से हम जुआ नहीं खेल सकते। किसी विषय पर अपने विचारों या सिद्धान्तों को रखते हुए भी, यदि उनके अनुसार चलने में जोखिम या भय हो, तो आगे बढ़ने में सावधानी रखनी चाहिए। इसलिए हम सावधानी से आगे बढ़े हैं। हो सकता है कि हम इस मामले में कुछ और अग्रसर होते तो कुछ जल्दी परिणाम प्राप्त हो सकते थे, लेकिन मैं निजी तौर पर मौजूदा नाज़ुक वक्त में सावधानी की नीति से पूरी तरह सहमत हूँ। जहां-तहां कुछ छोटी बातों को अलग रखते हुए मै अपने सहयोगी अर्थ मंत्री के उस साहस, कल्पना और महान योग्यता की प्रशंसा करूँगा जिससे उन्होंने हमारी समस्या को हल करने की चेष्टा की है।

भारतीय संघ एक शिशु राज्य है। वह केवल डेढ़ साल का नया स्वतंत्र राज्य है।

लेकिन स्मरण रखिए कि भारत एक शिशु देश नहीं । वह एक अति प्राचीन देश है जिसके पीछे हज़ारों वर्षों का इतिहास है——ऐसा इतिहास जिसमें कि उसने अपनी विस्तृत सीमाओं के भीतर ही नहीं, बल्कि संसार में और विशेषकर एशिया में एक जीवित-जागृत भाग लिया है । अब इस वर्ष या इससे कुछ अधिक समय में भारत का फिर से मानवीय क्रिया-कलाप के मुख्य प्रवाह के बीच आविर्भाव होने जा रहा है ।

यह एक बड़े ऐतिहासिक महत्व की बात है । मैं कह सकता था कि इतिहास के इस प्रमुख प्रवाह में एशिया का आविर्भाव हो रहा है । एशिया ने अपने हजारों वर्षों के इतिहास में बड़े महत्व का भाग लिया है । यही बात भारत के विषय में भी निश्चित रूप से सही है; लेकिन पिछले लगभग दो सौ वर्षों में यूरोप में और उसके बाद अमेरिका में हुए विज्ञान और यंत्रकला के विकास के कारण एशिया पर यूरोप का प्रभुत्व स्थापित हो गया और संसार में एशिया के कार्यों में रुकावट आ गई । वह सीमित हो गया और बँध-सा गया । इस काल में भारत और एशिया में विविध आंतरिक परिवर्तन हुए । लेकिन आमतौर पर भारत और एशिया के और देश यूरोप के राजनीतिक और आर्थिक प्रभुत्व का सामना कर सके । अब वह काल समाप्त हो गया है और भारत मेरी समझ में अब राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं में आगे आ रहा है ।

आज के प्रमुख प्रश्नों में एक यह है कि एशिया और यूरोप के परस्पर संबंधों का किस नए रूप में ठीक ठीक समन्वय हो । जब हम एशिया की बात करते हैं, तब याद रखना चाहिए कि अपनी किसी आकांक्षा के कारण नहीं; बल्कि स्थितियों के वश में होकर, भूगोल के कारण, इतिहास के कारण, और बहुत सी और चीज़ों के कारण, भारत को अनिवार्य रूप से एशिया में एक महत्त्व का भाग लेना पड़ता है । और यही नहीं, भारत एक प्रकार से अनेक प्रवृत्तियों और शक्तियों के परस्पर मिलने की जगह और जिसे हम मोटे तौर पर पूर्व और पश्चिम कहेंगे उनके परस्पर मिलने की जगह बन जाता है ।

आप जरा विश्व के मानचित्र को देखिए । अगर आपको मध्यपूर्व से संबंधित किसी प्रश्न पर विचार करना है तो भारत अनिवार्य रूप से आपकी दृष्टि के सम्मुख आ जाता है । अगर आपको दक्षिण-पूर्वी एशिया विषयक किसी प्रश्न पर विचार करना है, तो भी भारत की ओर ध्यान दिए बिना आप ऐसा नहीं कर सकते । यही बात सुदूरपूर्व के सम्बन्ध में समझिए । मध्यपूर्व का दक्षिण-पूर्वी एशिया से भले ही सीधा सम्बन्ध न हो, लेकिन भारत से दोनों ही का सम्बन्ध है । अगर आप एशिया के प्रादेशिक संगठनों की बात सोचते हैं, तो भी आपको विभिन्न प्रदेशों से सम्पर्क रखना होगा । और जिस

किसी भी प्रदेश की बात आपके विचार में हो, भारत की उपेक्षा नहीं की जा सकती ।

एशिया और यूरोप के परस्पर-सम्बन्धों को किस रूप में ठीक-ठीक समन्वित किया जाय, यह आज के प्रमुख प्रश्नों में से एक है । अब तक मुख्यतया अपने आर्थिक और राजनीतिक प्रभुत्व के कारण पश्चिम ने एशिया की उपेक्षा की है या कम-से-कम जो महत्व उसे दिया जाना चाहिए था वह नहीं दिया है । एशिया को वास्तव में एक पीछे का आसन दिया गया और इसका एक दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम यह हुआ कि राज-नीतिज्ञों ने भी होने वाले परिवर्तनों को नहीं पहचाना । मैं समझता हूँ कि इन परिवर्तनों की अब बहुत कुछ पहचान होने लगी है, फिर भी यह काफी नही है । संयुक्त राष्ट्रसंघ की समितियों में भी एशिया की समस्याओं, एशिया के दृष्टिकोण, एशिया के किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के ढंग ने उतना उत्साह नहीं जगाया है जितना चाहिए था ।

किसी भी विषय पर एशिया और यूरोप के दृष्टिकोण की विभिन्नता का संकेत अनेक बातों से मिलता है । आज एशिया मुख्यतया उन समस्याओं में लगा हुआ है जिन्हें हम मानवता सम्बन्धी तात्कालिक समस्याएँ कहेंगे । एशिया के हर एक देश में—जो कि कमोवेश कम विकसित देश हैं—मुख्य समस्या भोजन, वस्त्र, शिक्षा और स्वास्थ्य की है। हम इन समस्याओं को हल करने में लगे हुए हैं । अधिकार-लालसा-जनित समस्याओं से हमारा सीधा संबंध नहीं है । हम में से कुछ अपने मन में भले ही इसको सोचते हों।

दूसरी ओर विध्वस्त प्रदेशों में यूरोप को भी इन समस्याओं के विषय में निश्चय ही चिन्ता है । यूरोप में शक्तियों का संघर्ष और अधिकार-प्राप्ति से उत्पन्न समस्याएँ मानो उत्तराधिकार में मिली चीजें हैं। उन्हें अधिकार खो बैठने का डर बना हुआ है। साथ ही उन्हें यह भय भी सताता रहता है कि कोई अधिक अधिकार प्राप्त करके एक या दूसरे देश पर आक्रमण न करे । इसलिए यूरोपीय दृष्टिकोण यूरोप के पुराने संघर्षों के फलस्वरूप मिली विरासत है ।

मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं कि हम एशियावासी किसी प्रकार से आचार या नीति की दृष्टि से यूरोपीयों से श्रेष्ठतर हैं । कुछ बातों में, मेरा खयाल है, हम अपेक्षाकृत बुरे हैं । फिर भी यूरोप में संघर्ष का एक सिलसिला चला आ रहा है । एशिया में कम-से-कम वर्तमान काल में ऐसी कोई बात नहीं है । एशियायी देशों में जहां-तहां अपने पड़ोसियों से झगड़े हो सकते हैं । लेकिन संघर्ष का कोई ऐसा बुनियादी सिलसिला नहीं है जैसा कि यूरोपीय देशों में है । एशिया के पक्ष में यह एक बहुत बड़े लाभ की बात है, और भारत के लिए, तथा एशिया के अन्य देशों के लिए, यह बड़ी मूर्खता की बात होगी कि वे यूरोपीय संघर्षों के ढंग के संघर्ष में पड़ें । हमें यह जानना चाहिए कि संसार अधिकाधिक एकता की ओर बढ़ रहा है—शान्तिकालीन

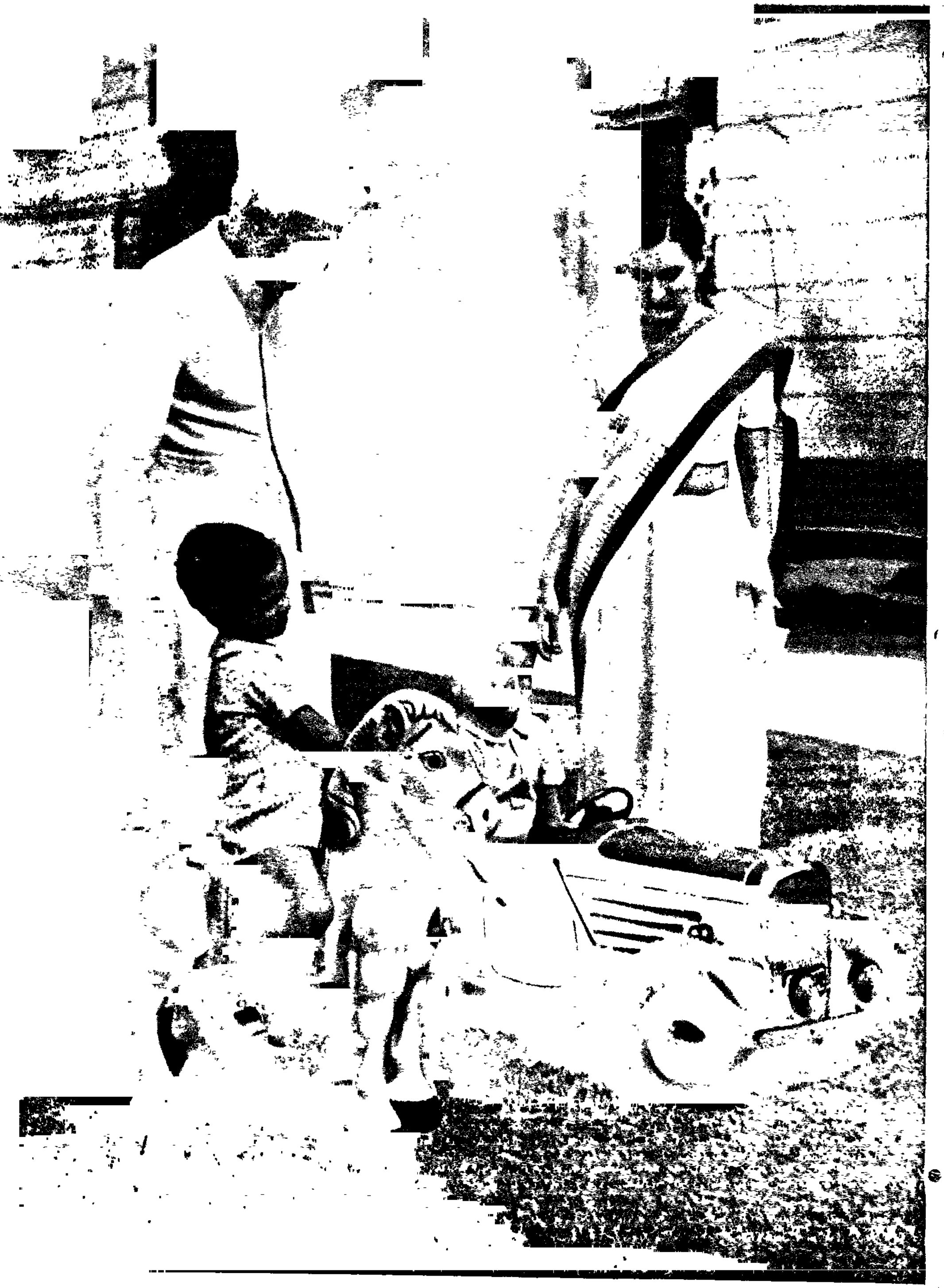

अपने निवास-स्थान पर अपनी पुत्री तथा पौत्र के साथ

एकता की ओर और संभवत: युद्धकालीन एकता की ओर भी। कोई नहीं कह सकता कि अगर बड़ा अग्निदाह हुआ तो कोई देश उससे अलग बचकर रह सकता है। फिर भी मनुष्य ऐसी नीति का अवलम्बन कर सकता है जिससे यह संघर्ष टले और उसमें किसी को फँसना न पड़े।

इसलिए जिस बात को मैं चाहता हूँ कि यह सभा ध्यान में रक्खे वह यह है: सबसे पहले तो संसार के मामलों में भारत की अग्रसरता संसार के इतिहास पर एक बड़ा प्रभाव डालने वाली बात है। हम लोगों का, जो कि भारत सरकार में या इस सभा में हैं, अपेक्षाकृत विशेष महत्व नहीं है। लेकिन हमारे हिस्से में ऐसे समय में काम करना आ पड़ा है जब कि भारत बढ़ कर विशालकाय होने जा रहा है। इसलिए अपने छोटेपन के बावजूद हमें बड़े ध्येयों के लिए काम करना है और शायद इस क्रम में अपने को ऊँचा उठाना है।

डेढ़ वर्ष हुआ, जब भारत स्वतंत्र हुआ तो हमने अपने लिए या कहिए कि भाग्य ने हमारे लिए एक बड़ी कठिनाई का समय चुना। पिछले महायुद्ध की क्षतियाँ और परिणाम हमारे सम्मुख थे ही। ज्यों ही हम स्वतंत्र हुए भारत में ज्वालामुखी जैसे उथल-पुथल हुए। चाहे भारत में पूरी शांति भी रही होती, तो भी उस अतीत काल की, जब कि हमारी बाढ़ रुकी हुई थी, सब समस्याएँ हमारे लिए कुछ कम कठिनाइयाँ उपस्थित न करतीं। लेकिन उनके साथ साथ महानकाय नई समस्याएँ आ गईं। हमने उनका कैसे सामना किया, उसे यह सभा अच्छी तरह जानती है और यह इतिहास बतायेगा कि हम असफल रहे, या सफल रहे, या अंशत: सफल रहे। जो भी हो, हम उन कठिनाइयों को झेल कर जीवित ही नहीं रहे बल्कि कई प्रकार से आगे भी बढ़े। धीरे धीरे हमने उन समस्याओं पर अधिकार पा लिया है और हमने भारत में एक राजनीतिक इकाई स्थापित कर ली है।

क्या मैं इस सभा को बताऊँ कि वह राजनीतिक इकाई जिसे आज भारत कहते हैं, जनसंख्या की दृष्टि से, संसार की सब से बड़ी राजनीतिक इकाई है? लेकिन जनसंख्या और गिनतियों का मूल्य नहीं, मूल्य योग्यता का ही होता है। मैं यह भी कहूँगा कि संभावित साधनों की दृष्टि से और उन सम्भावित साधनों के उपयोग की सामर्थ्य की दृष्टि से भी हम सम्भावित रूप से संसार की सब से बड़ी इकाई हैं। यह मैं आत्म-श्लाघा की भावना से नहीं कह रहा हूँ, लेकिन हमें अपने महान भार को समझना चाहिए और इस बड़े बोझ और बड़ी जिम्मेदारी को निभाने की बात सोचनी चाहिए।

अब मैं आपके सम्मुख एक अन्य विषय भी रखना चाहूँगा। इस सभा के सदस्यों में से अधिकतर लोगों ने और देश की बहुसंख्यक जनता ने अपना जीवन उसमें, जिसे क्रान्तिकारी कार्य कह सकते हैं, और शासन-सत्ता से संघर्ष में बिताया है। हम लोग क्रान्ति की परम्परा में पले हैं, और अब स्वयं अधिकार के पदों पर आरूढ़ हैं,

और हमें कठिन समस्याओं से निबटना पड़ता है। किसी भी समय, किसी के भी लिए अपने को नई परिस्थितियों के अनुकूल बनाना सहज नहीं होता। और फिर हम न केवल क्रान्तिकारी और आन्दोलनकारी और बहुत-सी चीजों के तोड़नेवाले रहे हैं, बल्कि हम महात्मा गांधी के मार्ग-दर्शन में एक ऊँची परम्परा में पले हैं। वह परम्परा एक नैतिक परम्परा है, आचार सम्बन्धी परम्परा है, और साथ ही वह नैतिक ओर आचार सम्बन्धी सिद्धान्तों का व्यावहारिक राजनीति में प्रयोग है। उस महापुरुष ने हमारे सामने काम करने की एक विधि रक्खी जो कि संसार में अद्वितीय थी, जिसमें कि राजनीतिक कार्य और राजनीतिक संघर्ष और स्वतंत्रता के लिए युद्ध के साथ कुछ नैतिक और आचार संबंधी सिद्धान्त निहित थे। मैं यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि हममें से अमुक व्यक्ति उन नैतिक और आचार सम्बन्धी सिद्धान्तों का पालन कर सका। लेकिन मैं यह कहने का साहस अवश्य करता हूँ कि पिछले लगभग तीस वर्षों में हम में से सभी, कम या अधिक मात्रा में, और स्वयं यह देश, कम या अधिक मात्रा में, उस महान शिक्षक तथा नेता के उन नैतिक ओर आचार सम्बन्धी सिद्धान्तों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा।

उस आदर्शवाद और नैतिक पृष्ठभूमि के साथ अब हम व्यावहारिक समस्याओं का सामना करते हैं, और उस विशेष सिद्धान्त को इन समस्याओं के हल करने के लिए लागू करना बड़ी कठिन बात हो जाती है। यह ऐसा संघर्ष है जिसका कि व्यक्तियों और वर्गों और राष्ट्रों को अकसर सामना करना पड़ा है। यह हमारे आगे बड़ी विचित्र परिस्थितियों में आया, और उन परिस्थितियों ने उसे और गहन बना दिया इसलिए हम में से अधिकतर लोगों ने आत्म-वेदना का अनुभव किया है। हमने अक्सर गान्धी जी ओर उनके महान सिद्धान्तों और उनके संदेश पर पर्याप्त विचार नहीं किया है, और जहां हमने उनकी बार-बार प्रशंसा की है, हमने अनुभव किया है: "क्या हम कपटी नहीं हैं? क्योंकि हम उनके विषय में बात तो करते हैं, लेकिन उनके कहने के अनुसार आचरण नहीं कर पाते। क्या ऐसा करके हम अपने को और संसार को धोखा नहीं दे रहे हैं?" जीवन की छोटी बातों के विषय में हम कपटी हो सकते हैं, लेकिन जीवन की बड़ी बातों के विषय में कपटी होना भयावह है। और यह बड़ी दुःखद बात होती अगर हम अपने महान नेता के नाम और प्रतिष्ठा का लाभ उठाते, उसकी शरण लेते और अपने हृदयों में और अपने कार्यों में उस संदेश के प्रति कपट भाव रखते जिसे वे इस देश और संसार के लिए लाए थे। तो हमारे मनों में ये संघर्ष रहे हैं और अब भी चल रहे हैं, और शायद इन संघर्षों का कोई अन्तिम हल भी नहीं, सिवाय इसके कि हम आदर्शवाद के और परिस्थितियां जो व्यवहार हमसे हठात् कराती हैं उसके बीच की खाई को बराबर भरते रहने की कोशिश करें। हम घटनाओं में परिवर्तन का ध्यान रक्खे बिना अन्धे कठपुतलों की भांति, जो कुछ 'उन्होंने कहा उसका पालन नहीं कर सकते और मुझे पूरा विश्वास है कि ऐसा करने की वे

हमसे अपेक्षा भी न करते। दूसरी ओर, उन आदर्शों का, जिनके पालन के लिए हमने अपने को इतनी बार प्रतिज्ञाबद्ध किया है, हमें अपने मन में ध्यान बनाए रखना चाहिए।

एक महापुरुष और एक राजनीतिज्ञ के किसी समस्या को देखने के ढंग में सदा एक बड़ा अन्तर रहता है। हमारे यहां एक ऐसा व्यक्ति था जो महापुरुष और राजनीतिज्ञ दोनों ही था; लेकिन हम लोग न तो सिद्ध है और न राजनीतिज्ञता की दृष्टि से ही महान हैं। जो हम कह सकते हैं वह यह है कि जहां तक हम उस आदर्श के अनुसार चल सकें, हमें अपनी पूरी सामर्थ्य से चलने का प्रयत्न करना चाहिए। साथ ही हर समस्या पर अपनी बुद्धि के अनुसार विचार करते हुए चलना चाहिए, नहीं तो हम विफल होंगे। एक ओर तो यह बड़ा भय है कि हम उस महापुरुष के संदेश के विरुद्ध न जायँ, और दूसरी ओर यह कि उस संदेश के अन्ध अनुसरण में हम उसकी समस्त जीवनी-शक्ति न खो बैठें। इसलिए हमें इनके बीच का मध्यम मार्ग ग्रहण करना है। तब एक राजनीतिज्ञ या राजदर्शी को, या जिस नाम से भी उसे पुकारिये, न केवल सत्य को देखना पड़ता है बल्कि इस बात को भी कि मनुष्य उस सत्य को कहां तक ग्रहण कर सकते हैं, क्योंकि यदि उसकी पर्याप्त स्वीकृति नहीं होती तो राजदर्शी या राजनीतिज्ञ के दृष्टिकोण से वह सत्य, जब तक कि लोगों के मन उसके लिए तैयार नहीं होते, झाड़खंड में खोया सा रहता है। और जब तक लोग उस सत्य में विश्वास न करें, निश्चय ही कोई राजनीतिज्ञ उसके विषय में विशेषकर एक जनसत्तात्मक युग में कुछ नहीं कर सकता। इसलिए, दुर्भाग्यवश लेकिन अनिवार्य रूप से, समय-समय पर समझौते करने पड़ते हैं। समझौतों के बिना आप काम नहीं चला सकते। लेकिन यदि समझौता अवसरवादिता के आधार पर अर्थात् सत्य के ध्येय को परे रख कर हुआ है तो वह समझौता बुरा है। अच्छा समझौता तभी हो सकता है जब वह सत्य को आंखों से ओझल न होने दे और उस तक आप को पहुँचाने का यत्न करे। अतएव पिछले डेढ़ साल के बीच हमने इन कठिन समस्याओं का सामना किया है, और यह कठिनाई बहुतों पर प्रकट रही है। लेकिन शायद किसी ने अन्तःकरण की उस यातना पर ध्यान नहीं दिया होगा जो हम सब बराबर सहन कर रहे थे। जो कुछ हम कर सकते हैं वह यह है कि हम समय-समय पर अपने को सचेष्ट करें, अपने कार्यों को देखें, जो ऊँचा आदर्श हमारे सामने रक्खा गया है उसके प्रकाश में उसकी जांच करें और जहां तक हो उसके निकट रहने का प्रयत्न करें।

यह एक अजीब बात थी कि हम लोगों को, जिन्होंने कि स्वतंत्रता का युद्ध अहिंसात्मक और शान्तिपूर्ण ढंग से चलाया, तुरन्त ही भीषणतम हिंसा का—

नागरिक हिंसा का और जिसे कि फ़ौजी हिंसा कह सकते हैं उसका सामना करना पड़ा और हमें देश के एक भाग में एक प्रकार का युद्ध करना पड़ा। जिन सब बातों के पक्ष में हम रहे, उनसे यह बिल्कुल उलटा ही जान पड़ा; फिर भी स्थितियां ऐसी थीं कि मुझे पूरा विश्वास है कि हमारे लिए कोई दूसरा रास्ता न था और हम लोगों ने जो रास्ता ग्रहण किया वह ठीक था।

क्या मैं इस सभा को बताऊँ कि जब अक्तूबर १९४७ के अन्त में हमारे सामने कश्मीर का प्रश्न अचानक आया, जब हमने सुना कि आक्रमणकारी कश्मीर में आ गए हैं और लूट-मार और विनाश कर रहे हैं, तो इस प्रश्न का निर्णय करना हमारे लिए बड़ा कठिन हो गया ? फौजी दृष्टि से तो यह काफ़ी कठिन था ही, क्योंकि हम लोग अलग पड़ गए थे और दूर थे और हथियारों का या सेना का हवाई मार्ग से भेजना फ़ौजी दृष्टि से कोई सरल काम न था। लेकिन वास्तविक कठिनाई हमारे भीतर से उत्पन्न होने वाली कठिनाई थी; यह अन्तरात्मा का संकट था। यह हमें कहां पहुँचायेगा ? दूसरी ओर, कश्मीर की जनता की—उन लोगों की, जिन पर आक्रमण हो रहा था और जिनका विनाश किया जा रहा था—जबरदस्त पुकार थी। हम उनसे "नहीं" नहीं कह सकते थे। साथ ही, हम ठीक-ठीक नहीं जानते थे कि यह हमें कहां ले जायगा। अन्तरात्मा के इस संकट में—जैसा कि मैं अकसर करता था—मैं महात्मा गान्धी के पास उनकी सलाह लेने गया। फ़ौजी मामलों में उनके लिए परामर्श देना स्वाभाविक नहीं था। इनके बारे में वे जानते ही क्या थे ? उनके युद्ध अन्तरात्मा के युद्ध होते थे। लेकिन मेरी बातों को सुनकर, अगर मैं पूरे आदर के साथ ऐसा कह सकता हूँ, तो उन्होंने, जिस कार्य-प्रणाली का मैंने प्रस्ताव किया उस के लिये "नहीं" नहीं कहा। उन्होंने देखा कि परि-स्थिति आ पड़ने पर एक सरकार को अपने कर्तव्य का, चाहे उसे सैन्य-संचालन द्वारा ही करना पड़े, पालन करना आवश्यक हो जाता है। इन चन्द महीनों में, जब तक वे हमारे बीच से उठ नहीं गए, मुझे बहुत से अवसरों पर उनसे कश्मीर के विषय में बात करने का अवसर मिला, और मेरे लिए यह बड़े सुख की बात थी कि जो भी हमने किया था उसमें हमें उनका आशीर्वाद प्राप्त था।

हम पिछले डेढ़ साल पर दृष्टि डालें तो देखेंगे कि हमने भारत का अकेली संग-ठित राजनीतिक इकाई के रूप में निर्माण किया है और इस कार्य में, जैसा कि यह सभा जानती है, मेरे आदरणीय सहयोगी उप-प्रधान मंत्री ने अत्यन्त महत्व का भाग लिया है। इस मामले में हमें कुछ और आगे जाना है, लेकिन मैं आशा करता हूँ कि आगे की ये समस्याएँ भी शीघ्र ही तै हो जायँगी। एक समस्या तो कश्मीर की है। अन्य समस्यायें पांडिचेरी, चन्द्रनगर, गोआ आदि प्रदेशों की हैं जो कि भारत के विदेशी अधिकार युक्त प्रदेश कहलाते हैं। हमने बराबर यह कहा है कि हम इन विदेशी

अधिकारयुक्त प्रदेशों के सम्बन्ध में शान्तिपूर्ण समझौता चाहते हैं। लेकिन यह बिल्कुल स्पष्ट है कि इन अधिकृत प्रदेशों का एकमात्र भविष्य यह है कि वे भारत में पूरी तरह समाविष्ट हो जायँ। संघर्ष न करने के उद्देश्य से हम कुछ इंतिज़ार करने को तैयार हैं। हम इन और अन्य समस्याओं के शान्तिपूर्ण हल चाहते हैं। लेकिन यह कल्पना से बाहर की बात है कि इस नए जागृत भारत में छोटे-छोटे इलाके दूर-स्थित शक्तियों के अधिकार में हों।

मैं एक और बात की ओर आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ। यह सभा बहुत उचित रूप से इस विषय में सतर्क है कि हमारी शासन सम्बन्धी सेवाओं के विकास में अपव्यय को रोका जाय। एक मितव्यय-समिति बैठाई जा चुकी है, तथा अन्य समितियां भी हैं, जो इस विषय पर विचार कर रही हैं। इस बात को कृपया ध्यान में रखिए कि भारत सरकार को, जो कि १५ अगस्त, १९४७ से कार्य कर रही है, अब तक की किसी भी भारत सरकार की अपेक्षा अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। एक तो पहले की सरकारें सामाजिक ध्येय को, जो उनके सामने होता था, अपना मुख्य कार्य या उतने ही महत्व का कार्य नहीं समझती थीं, जितना कि हमें अनिवार्यतः समझना चाहिए। दूसरे, यह वैदेशिक मामलों का क्षेत्र ले लीजिए जिसके बारे में मैं बोल रहा हूँ। उस समय कोई वैदेशिक मामले नहीं थे। हमारे लिए अपनी वैदेशिक और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का निर्माण करना, एक बिल्कुल नया प्रयास रहा है। इससे लाज़िमी तौर पर हमें यहां और विदेशों में अपने कर्मचारी वर्ग में बहुत काफी वृद्धि करनी पड़ी है और बहुत धन व्यय करना पड़ा है। यह हो सकता है कि कुछ बचत की जा सकती हो; उस पर विचार करना पड़ेगा और उसे देखना होगा। लेकिन आप स्वतंत्र राष्ट्र होते हुए उन वैदेशिक संबंधों के बिना काम नहीं चला सकते। भारतीय सारे संसार में फैले हुए हैं। हमें उनके हितों को देखना है। प्रवासी भारतीयों के अतिरिक्त और भी हमारे हित हैं जिन्हें हमें देखना है, जैसे कि व्यापारिक हित आदि। हमें चीज़ें खरीदनी हैं, हमें चीज़ें बेचनी हैं। एक स्वतंत्र देश के लिए, विशेषकर भारत जैसे महान और बड़े देश के लिए, यह बिलकुल असम्भव है कि वह विदेशी व्यापार-गृहों, विदेशी दूतावासों, और विदेशी व्यापार-मंडलों आदि के साथ ऐसे सम्बन्ध स्थापित किए बिना अपना साधारण अस्तित्व बनाए रख सके।

मैं इसकी चर्चा इसलिए करता हूँ कि अकसर इसकी आलोचना होती है कि हमारे दूतावास सारी दुनिया में फैल रहे हैं। शायद यह समझा जाता है कि हमारे अपने मिथ्याभिमान को तृप्त करने की यह एक मुद्रा है। और कभी कभी मुझ से कहा जाता है कि मुझे एक तरह की सनक हो गई है और यह कि मैं भारत की मुसीबतों को भूल जाता हूँ और मैं उन पर ध्यान नहीं देता, और मैं टिंबकटू से लेकर पीरू तक सिर्फ राजदूतों को भेजने की बात सोचता रहता हूँ। मैं चाहूँगा कि यह सभा

इस मामले पर विचार करें और इसके सम्बन्ध में बिल्कुल स्पष्ट रूप से समझ लें, क्योंकि इस सम्बन्ध में टिंबकटू से रोम तक की बात करना मुझे बुद्धिमत्ता की पराकाष्ठा नहीं जान पड़ती। इससे पता चलता है कि लोगों को इसकी काफी समझदारी नहीं है कि भारत क्या है और आन्तरिक और घरेलू विषयों में भारत को किस चीज की आवश्यकता है। अगर हम बाहर नहीं जाते हैं और अपने विदेशी कर्मचारी-वर्ग की स्थापना नहीं करते, तो किसी और को हमारे हितों पर दृष्टि रखनी पड़ेगी। वह और कौन है? क्या हम इंगलिस्तान से कहेंगे कि वह विदेशों में हमारे हितों की देखरेख करे, जैसा कि पाकिस्तान ने कई देशों में किया है? क्या इसी प्रकार की आजादी की हम कल्पना करते हैं? आजादी किन बातों से होती है? यह मुख्यतया और बुनियादी तौर पर वैदेशिक सम्बन्धों से होती है। यही आजादी की कसौटी है। इसके अतिरिक्त जो कुछ है वह स्थानीय स्वायत्त शासन है। एक बार जब वैदेशिक सम्बन्ध आपके हाथों से किसी और के हाथों में चले जाते है, तो उस हद तक और उस मात्रा में आप स्वतन्त्र नहीं रह जाते। अगर हम एक स्वतन्त्र राष्ट्र हैं तो हमें वैदेशिक सम्बन्ध रखने पड़ेंगे। वास्तव में हम उनके बिना काम चला नहीं सकते। हम अगर वैदेशिक सम्बन्ध कायम करते हैं तो इन सम्बन्धों को चालू रखने के लिए हमें कर्मचारी-वर्ग को रखना होगा। और वैदेशिक सम्बन्धों के अन्तर्गत यद्यपि व्यापार, धंधे आदि आ जाते हैं, फिर भी उनका स्थापित करना किसी व्यापारिक संस्था की एक शाखा खोल देने जैसा काम नहीं है, जैसा कि हमारे कुछ प्रमुख व्यापारियों ने समझ रखा है। मानव मनोवृत्ति और राष्ट्रों की मनोवृत्ति से निभाना बड़ा पेचीदा और बड़ा कठिन काम है, क्योंकि इसमें उनकी पृष्ठभूमि और संस्कृति, भाषा आदि का विचार करना पड़ता है।

नए सिरे से आरम्भ करके हमने अपने वैदेशिक विभाग का थोड़े ही समय में विकास कर लिया है। यह एक कठिन कार्य रहा है और मेरे लिए यह कहना बेमानी होगा कि वैदेशिक विभाग के विकास के लिए जो कुछ हमने किया है उससे मुझे सन्तोष है। लेकिन पिछले अठारह महीनों में मैंने जो अनुभव एकत्र किया है उसके आधार पर मैं कहना चाहूँगा कि सब कुछ देखते हुए हमने बहुत खासी सफलता पाई है और उसकी कसौटी —निश्चय ही, एकमात्र कसौटी—संसार की दृष्टि में भारत का स्थान है। व्यक्तियों ने जहां तहां भूलें की हों, लेकिन अन्तिम कसौटी यह है: हमारी वैदेशिक नीति ने कुछ परिणाम दिखाए हैं या नहीं? वह अपना काम पूरा कर रही है या नहीं? मैं समझता हूँ कि उसने अपना काम कुछ हद तक, बल्कि, बहुत हद तक वास्तव में एक आश्चर्यजनक रूप से पूरा किया है। इस अवसर पर मैं इस सभा में अपने अनेक राजदूतों की और सचिवों की, जो विदेशों में हैं और संयुक्त राष्ट्रों में अपने प्रतिनिधि-मंडल की, उनके कार्यों के लिए प्रशंसा करना चाहूँगा। मुझे इस सभा को यह सूचना देने की आज्ञा दी जाय कि

संयुक्त राष्ट्रों की बैठकों में भारत की बहुत ऊँची प्रतिष्ठा है ।

हमारे तीन मुख्य दूतावास, जैसा कि यह सभा जानती है, लन्दन, वाशिंगटन और मास्को में हैं । अपेक्षाकृत छोटी छोटी बातों के विषय में आलोचनाएँ हुई हैं जैसे नियुक्तियों आदि के विषय में । लेकिन मैं इस सभा से बराबर वैदेशिक मंत्री की हैसियत से बोलते हुए यह कहना चाहूँगा कि मुझसे जो भी जिज्ञासा की जाय उसका मैं स्वागत करूँगा, और या तो मैं उसके सम्बन्ध में जांच करूँगा या जो भी सूचना मेरे पास होगी उसे इस सभा के किसी भी सदस्य को दूंगा । इतने बड़े विभाग में बहुत सी जांच करने लायक बातें लाजिमी तौर पर होंगी । मेरा खयाल है कि हमारे लन्दन, वाशिंगटन और मास्को में स्थित प्रमुख दूतावासों ने बहुत ही अच्छा कार्य किया है । चीन में हमें बड़ी कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, और हमारे दूतावास ने उनका बड़े प्रशंसनीय ढंग से सामना किया । पेरिस में, अनेक कारणों से, हमें निरन्तर दुर्भाग्य का सामना करना पड़ा, लेकिन मुख्यतया इसलिए कि एक वर्ष तक हमारे ठहरने के लिये मुश्किल से कोई जगह मिल सकी । कोई उपयुक्त स्थान न होने के कारण हमारे प्रतिनिधियों को बड़े अनुपयुक्त निवासों में रहना पड़ा । सब कुछ लेकर, हम अपनी विदेशी सेवाओं का बहुत थोड़े समय में पर्याप्त सफलता के साथ निर्माण कर सके हैं ।

तब मुख्य प्रश्न, जिसके विषय में यह सभा चिन्तित रहती है, प्रवासी भारतीयों की स्थिति का है । इस प्रश्न को अब तक जिस प्रकाश में देखा जाता था, अब उससे भिन्न प्रकाश में देखना होगा । अब तक हमारा मुख्य प्रयास यह रहा है कि ब्रिटिश औपनिवेशिक विभाग को प्रेरित करते रहें कि प्रवासी भारतीयों की दशा के सुधार में वह दिलचस्पी ले । हमें एक स्वतंत्र राष्ट्र की हैसियत से अन्य स्वतंत्र राष्ट्रों से व्यवहार करना पड़ता है । स्वभावतः, जो कुछ हम से हो सकता है हम करने की कोशिश करते हैं । मुझे विश्वास है कि प्रवासी भारतीयों की दशा सुधर रही है । लेकिन जो मुख्य बात घटी है वह यह है कि संसार की दृष्टि में प्रवासी भारतीयों का स्थान बहुत ऊँचा उठ गया है ।

संसार के मामलों में इस समय जिन समस्याओं का हमें सामना करना पड़ता है, उनका, जो संघर्ष चल रहे हैं, उनसे बहुत कुछ सम्बन्ध है । हमने बार-बार यह कहा है कि हमारी वैदेशिक नीति राष्ट्रों के बड़े गुटों—विरोधी गुटों—से अपने को अलग रखने की और सभी देशों से मैत्री बनाए रखने की है, और किसी प्रकार की फौजी या अन्य मित्रताओं के उलझाव से बचने की है, जो कि हमें किसी सम्भावित संघर्ष में खींच ले जायँ । कुछ लोगों ने हमारी आलोचना की है और कहा है कि यह पर्याप्त रूप में अच्छी नीति नहीं है, और घनिष्ठतर सम्पर्क या मैत्री द्वारा जो लाभ हम उठा सकते थे उसे खो रहे हैं । उधर दूसरे लोगों ने दूसरे ही

प्रकार की आलोचना की है, और यह कहा है कि हम कहते कुछ हैं और गुप्त रीति से या और प्रकार से करते कुछ हैं। जब हेतुओं का आरोप किया जाय, तो बेशक कुछ जवाब देना कठिन हो जाता है, लेकिन तथ्य यह है कि हमने बड़ी कड़ाई से किसी प्रकार की वचनबद्धता में फँसने से अपने को बचाया है, और किसी शक्ति या शक्तियों के गुट के साथ फौजी समझौता करने से तो निश्चय ही अलग रहे हैं, और हम इस नीति पर दृढ़ रहना चाहते हैं, क्योंकि हमें पूरा विश्वास है कि इस समय और भविष्य में भी यही एक सम्भावित नीति हमारे लिए हो सकती है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि हम दूसरे देशों से निकट सम्पर्क स्थापित न करें।

इस सभा को याद होगा कि कुछ समय पहले मैंने कामनवेल्थ के साथ भारत के सम्भावित सम्बन्ध की चर्चा की थी और इस सभा को इस विषय में मोटे तौर पर अपने दृष्टिकोण से परिचित किया था, और यह समझा था कि सभा उससे सहमत है। बाद में इस प्रश्न पर राष्ट्रीय कांग्रेस के जयपुर अधिवेशन में विचार हुआ, और उसने भी इस सम्बन्ध में नीति की मोटी रूपरेखा निर्धारित की। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है हम इन आदेशों का कड़ाई से पालन करना चाहते हैं। बेशक हमें बदलती हुई परिस्थितियों का ध्यान रखना पड़ेगा और उनकी विभिन्न प्रकार से व्याख्या करनी होगी, लेकिन नीति की मोटी रूपरेखा निर्धारित हो चुकी है, जो इस प्रकार है :

(क) भारत स्वभावतः और अनिवार्य रूप से कुछ महीनों के भीतर एक स्वतंत्र गणराज्य हो जायगा ;

(ख) अपनी विदेशी, आन्तरिक या घरेलू नीति में, अपनी राजनीति-सम्बन्धी नोति में या अपनी आर्थिक नीति में हम कोई भी ऐसी बात स्वीकार न करेंगे जिसका तात्पर्य किसी दूसरी शक्ति पर कुछ भी निर्भरता हो ।

इन शर्तों के साथ, हम दूसरे देशों से मैत्रीपूर्ण ढंग से सम्पर्क स्थापित करने के लिए तैयार हैं। संयुक्त राष्ट्रों में आज हमारा संसार के बहुत से देशों से सम्बन्ध है। हम और चाहे जो कुछ करें, हमें यह देखना होगा कि हमारा कार्य संयुक्त राष्ट्रों से हमारी संबद्धता के विपरीत नहीं जाता। स्वतंत्र राष्ट्रों के आपस के सहयोग के रूप में ही हम कामनवेल्थ से अपने सम्पर्क के विषय में विचार कर सकते हैं। जैसा कि कुछ लोगों ने सुझाव दिया है, हो सकता है कि इस अथवा उस देश से मैत्री सम्बन्ध स्थापित हों। मैत्री के साथ प्रायः फौजी या दूसरे प्रकार की वचनबद्धताएँ भी होती हैं और उनका अधिक बन्धन होता है। इसलिए सहचर्य के अन्य रूप, जो कि इस प्रकार बांधने वाले नहीं होते, लेकिन जो सुदृढ़ता और जहाँ आवश्यक हो सहयोग के हित में राष्ट्रों को एक दूसरे के साथ लाने में सहायक होते हैं, बन्धन में डालने वाले रूपों की अपेक्षा कहीं अधिक वांछनीय हैं। इसका नतीजा क्या निकलेगा, यह मैं नहीं जानता।

ज्यों ही मुझे उसका आभास होगा, मैं इस सभा को बताऊँगा । लेकिन आज जो बात मैं इस सभा के सामने पेश कर रहा हूँ वह यह है कि इस विषय में हमारी नीति जयपुर कांग्रेस के प्रस्ताव के आधार पर कड़ाई से निश्चित की जायगी ।

हाल ही में, भारत की प्रेरणा से, नई दिल्ली में, इंडोनीशिया के विषय में एक सम्मेलन हुआ था, और एशिया के बहुत-से देशों ने उसमें भाग लिया था । इसके अतिरिक्त मिस्र, इथोपिया, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड भी उसमें सम्मिलित हुए थे । इस सम्मेलन ने संसार के सामने ज़ोरदार ढंग से कुछ बातें रक्खीं । सम्मेलन के प्रस्तावों में एक यह था कि हमें निकटतर सम्पर्क के तरीकों की खोज करनी चाहिए । हम इस दिशा में जाँच कर रहे हैं और शायद महीने-दो-महीने में हम कुछ अधिक निश्चित नतीजों पर पहुँच सकें, जिन पर कि विचार किया जा सके । सम्भव है हमें सहयोग की संभावित दिशाओं पर विचार करने के लिए एक और सम्मेलन बुलाना पड़े । यह सहयोग स्वतंत्र राष्ट्रों के बीच का ही सहयोग हो सकता है, जिसमें कोई भी किसी रूप में दूसरे से प्रतिज्ञाबद्ध न हो । हमने अभी यह निश्चय नहीं किया कि किस क्षेत्र में यह सहयोग होगा क्योंकि जैसा मैंने अभी कुछ पहले कहा, भारत एशिया के कई क्षेत्रों में दिलचस्पी रखता है । सब का एक वर्ग बनेगा या वे अलग रहेंगे, अभी मैं यह नहीं जानता । यह मिलजुल कर हमारे विचार करने और निश्चय करने की बात होगी । लेकिन हर हालत में दो बातों पर ध्यान रखना है । एक तो यह कि सहयोग का जो भी रूप हम निर्धारित करेंगे वह पूरे तौर पर संयुक्त राष्ट्रों के अधिकारपत्र की सीमा के भीतर होगा । दूसरे, उसमें प्रतिज्ञाबद्ध करने वाली शर्तें न होंगी । यह अधिकांश में ऐसे विषयों पर विचार और सहयोग के लिए स्थापित एक संगठन होगा जो कि स्वभावतः समान हितों से उद्भूत हों ।

इसलिए, हमारी नीति यही बनी रहेगी कि हम न केवल शक्तियों की गुटबन्दी से अलग रहें, बल्कि मैत्रीपूर्ण सहयोग सम्भव बनाने की कोशिश करें । सौभाग्य की बात यह है कि हम अपनी स्वतंत्रता में इस प्रकार प्रवेश कर रहे हैं कि हमारी किसी भी देश से विरोध की पृष्ठभूमि नहीं है । हम सभी देशों के प्रति मैत्री भावना रखते हैं । पिछले २०० वर्षों में हमारा विरोध मुख्यतया उस शक्ति से रहा है जो यहाँ राज कर रही थी । भारत के स्वतंत्र हो जाने पर वह विरोध अधिकांश में दूर हो गया है, यद्यपि कुछ लोगों के मन से वह अब भी नहीं हटा इसलिए हम सारे संसार के समक्ष एक मैत्रीपूर्ण आधार लेकर आते हैं और कोई कारण नहीं कि हम किसी भी दल के प्रति अमैत्रीपूर्ण रुख रखकर अपने को असुविधा में डालें । मेरी धारणा है कि भारत को संसार के मामलों में एक महत्वपूर्ण भाग लेना है ।

विविध विचार-धारायें जो कि आज संसार के सामने हैं और विविध 'वाद' जिनसे कि बार-बार संघर्ष उत्पन्न होने का भय रहता है, मैं समझता हूँ, ऐसे हो सकते हैं कि उन में बहुत कुछ अच्छाई हो, लेकिन अगर मैं कहूँ तो वे सभी यूरोप की पृष्ठभूमि से आए हैं। अच्छा, तो यूरोप की पृष्ठभूमि संसार की पृष्ठभूमि से कुछ बिल्कुल अलग की चीज़ नहीं है, और यूरोप की पृष्ठभूमि में बहुत कुछ ऐसा है जो कि भारत में या दूसरे देशों में मौजूद है। फिर भी यह सही है कि यूरोप की पृष्ठभूमि बिल्कुल भारत की या संसार की पृष्ठभूमि नहीं है, और कोई कारण नहीं कि हम से कहा जाय कि इस अथवा उस विचार-धारा को हम पूर्णतया चुन लें।

भारत ऐसा देश है जिसमें एक महान जीवनी शक्ति है, जैसा कि इतिहास से प्रकट है। अकसर इसने अपनी सांस्कृतिक छाप दूसरे देशों पर डाली है— हथियारों के बल पर नहीं, बल्कि अपनी जीवनी शक्ति, संस्कृति और सभ्यता के बल पर। कोई कारण नहीं कि हम अपने कार्य करने के ढंग को, और अपने विचार करने के ढंग को केवल किसी ऐसी विचार-धारा के कारण छोड़ दें, जो कि यूरोप से उपजी हो। इसमें मुझे कोई संदेह नहीं कि हमें यूरोप और अमेरिका से बहुत-सी बातें सीखनी हैं, और मैं समझता हूँ कि हमें अपनी आँखें और कान पूरी तौर से खुले रखने चाहिए। हमारे मस्तिष्क मे लचीलापन होना चाहिए और हमें ग्रहण-शील होना चाहिए। लेकिन इस में भी मुझे सन्देह नहीं कि हमें अपने को, यदि मैं गांधी जी के शब्दों का प्रयोग करूँ, अपने पैरों को किसी भी हवा में उखड़ने से रोकना चाहिए।

इसलिए हमें इन समस्याओं को, चाहे वे घरेलू हों चाहे अन्तर्राष्ट्रीय, अपने ढंग से देखना है। अगर हम, किसी तरह, निश्चित रूप से, किसी एक शक्ति-समूह के साथ मिल जाते हैं तो शायद हमें एक दृष्टि से कुछ लाभ हो। लेकिन इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि बड़े दृष्टिकोण से, न केवल भारत की बल्कि संसार की शान्ति के दृष्टिकोण से, हानि हो होगी। क्योंकि तब हम उस अपार सुविधा को खो बैठेंगे, जो हमें अपने प्रभाव को (जो प्रतिवर्ष बढ़ता ही रहेगा) संसार की शान्ति के लिये इस्तेमाल करने के लिये प्राप्त है। संसार के मामलों में हमारी रुचि क्यों है ? हम किसी देश पर अधिकार नहीं चाहते। हम किसी भी देश के घरेलू या अन्य मामलों में हस्त-क्षेप नहीं करना चाहते। संसार के मामलों में रुचि रखने का हमारा मुख्य ध्येय शान्ति है, यह देखना है कि जातिगत समानता स्वीकार की जाय और जो लोग अब भी पराधीन हैं वे स्वतंत्र हो जायें। इसके अलावा हम संसार के मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहते, और न हम यह चाहते हैं कि दूसरे हमारे मामलों

में दखल दें। लेकिन अगर फ़ौजी, राजनीतिक या आर्थिक किसी भी रूप में ऐसा दखल, दिया जाता है, तो हम उसका विरोध करेंगे ।

अतएव, इस मैत्री की भावना से ही हम संसार को देखते हैं। यह सच है कि ऐसा करने में अकसर हमारा आशय गलत रूप में समझा जायगा, क्योंकि सारे संसार में आवेश पैदा किया गया है, और कभी-कभी कोई देश समझता है कि अगर आप उसके साथ पूरी तौर पर कतार बांधकर नहीं खड़े हैं, तो आप उसके वैरी या विरोधी हैं। यह दुर्भाग्य की बात है कि लोग ऐसा समझते हैं; हम इसमें विवश हैं। दूसरों के मन में इस प्रकार का भय या संदेह होने के कारण हम छोटे-मोटे लाभों से वंचित भी रह सकते हैं। लेकिन इस समय भी और देश इस बात का अनुभव करने लग गए हैं कि हम अपने स्वतंत्र रास्ते पर हैं, और किसी के साथ बँधे हुए नहीं हैं। हम जहाँ तक हो सकता है बिना आवेश के और निरपेक्षता के साथ समस्याओं पर उनके गुणों के अनुसार विचार करते हैं, न कि उस दृष्टिकोण से, जोकि अब बहुत साधारण हो रहा है, अर्थात् एक सम्भावित भावी युद्ध के दांव-पेच के दृष्टिकोण से। इसी दृष्टिकोण से आज समस्याओं पर प्रायः विचार किया जा रहा है।

मेरा काम दूसरे राष्ट्रों और उनकी नीतियों की आलोचना करना नहीं है। लेकिन मैं नहीं समझ सकता कि भारत इस तरह क्यों कार्य करे या संसार में जो दाँव-पेच चल रहा है, उसमें क्यों शरीक हो। हमें उससे अलग रहना है और साथ ही सभी देशों से निकटतम सम्बन्ध बनाना है। इतिहास और संयोग के कारण ऐसा है कि हमारे आर्थिक और व्यापारिक सम्बन्ध और देशों की अपेक्षा कुछ देशों से बहुत अधिक हैं।और यह देखते हुए कि वे हमारे विकास में बाधक नहीं होते, हमारी उन्नति के मार्ग में नहीं आते, हम उन्हें बनाए रक्खेंगे; नहीं तो, हम उन्हें ऐसा रूप देंगे कि हम दुनिया के मामलों में बड़े महत्व का भाग ले सकें।

सब से बड़ा प्रश्न, जिसका कि आदमी को आज दुनिया में सामना करना है यह है कि "हम लोकव्यापी युद्ध को होने से कैसे बचायें ?" कुछ लोग ऐसा खयाल करते जान पड़ते हैं कि यह अनिवार्य है, और इसलिए वे इसकी तैयारी कर रहे हैं। वे न केवल फ़ौजी दृष्टि से तैयारी कर रहे हैं, बल्कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी, और इस तरह युद्ध को निकटतर ला रहे हैं। निजी तौर पर मैं समझता हूँ कि यह बड़ी गलत और बड़ी खतरनाक बात है। निस्संदेह कोई भी देश, संभावित अनिश्चित घटना से बचाव की कुछ न कुछ तैयारी किए बिना नहीं रह सकता। हमें भी भारत में अपनी स्वतंत्रता और अस्तित्व के प्रति सभी सम्भावित खतरों से बचने के लिए तैयार रहना चाहिए। यह ठीक है, लेकिन ऐसा सोचना कि लोकव्यापी युद्ध अनिवार्य है, एक भयावह चिन्तन है। मैं चाहूँगा कि यह सभा और यह देश ठीक-ठीक समझे कि लोकव्यापी युद्ध के क्या अर्थ हैं, उसके क्या नतीजे हो सकते

हैं। लोकव्यापी युद्ध में कौन जीतता है, इससे कुछ भी अन्तर नहीं आता, क्योंकि उससे इतनी बड़ी बरबादी होगी कि एक पीढ़ी या इससे भी अधिक समय तक तरक्की या मानवी उन्नति के लिये हम जिन चीजों के भी पक्ष में हैं, वे समाप्त हो चुकी होंगी। इस बात की कल्पना बड़ी भयानक है और इस बरबादी से बचने के लिए जो कुछ किया जा सकता है, करना चाहिए ।

मैं समझता हूँ कि भारत युद्ध को टालने में एक बड़ा और संभवतः सफल भाग ले सकता है । इसलिए यह और भी आवश्यक हो जाता है कि भारत किसी भी शक्ति-समूह की कतार में न खड़ा हो। ये देश विविध कारणों से युद्ध की सम्भावना से आतंकित हैं और युद्ध की तैयारी में लगे हैं। हमारी वैदेशिक नीति का यह मुख्य दृष्टिकोण है, और यह कहने में मुझे प्रसन्नता है और मेरा विश्वास है कि इसे अधिकाधिक ठीक रूप में पहचाना जा रहा है ।

इस समय सभी देशों से हमारी मैत्री है। अपने पड़ोसी देश पाकिस्तान से मैं समझता हूँ हमारे सम्बन्ध दिन-ब-दिन सुधरते जा रहे हैं। जैसी हालत कुछ महीने पहले थी उससे अब बहुत अच्छी है । मैं आशा करता हूँ कि इसमें और भी सुधार होगा । अफ़गानिस्तान और नेपाल के साथ हमारे सम्बन्ध अत्यन्त मैत्रीपूर्ण हैं। एशिया में और यूरोप में अन्य देशों के साथ हमारे सम्बन्ध निकटतर होते जा रहे हैं, और हमारे व्यापार का विस्तार हो रहा है ।

मैं समझता हूँ कि संयुक्त राष्ट्रों में तथा दूसरी जगह इस स्थिति का हमें इस रूप में उपयोग करना चाहिए कि शान्ति का ध्येय पूरा हो और यह संभव है कि कई ऐसे देश, जो कि युद्ध की सम्भावना से प्रसन्न नहीं हैं, भारत के रुख का समर्थन करें। हमने संयुक्त राष्ट्रों के विचाराधीन प्रश्नों को अलग अलग करके व्यक्तिगत प्रश्नों के रूप में लिया है। उदाहरण के लिए, कोरिया के विषय में, पैलेस्टाइन के विषय में, और कुछ और मामलों में, हमने लोगों को अप्रसन्न किया है, क्योंकि इन में से प्रत्येक प्रश्न को हमने स्वतंत्र प्रश्न के रूप में लिया और उन पर उनके गुणों के अनुसार अपनी सम्मति दी। यह सही है, कि इन गुणों को अन्य विविध संभावित परिणामों से अलग नहीं किया जा सकता। मैं समझता हूँ कि लोगों ने कई बार यह अनुभव कर लिया है कि भारत ने जो सलाह दी और जो नहीं स्वीकार की गई, वह सही सलाह थी, और अगर वह स्वीकार कर ली जाती तो दिक्कतें कम होतीं। इस प्रश्न के कई पहलू हैं, जिन पर मैं बोल सकता था, लेकिन मैंने अभी ही इस सभा का बहुत समय ले लिया है ।

इस सभा से मैं अनुरोध करूँगा कि वह इस मामले को उस अधिक विस्तृत दृष्टिकोण से देखे, जिसे कि मैंने उसके सामने उपस्थित किया है, अर्थात् मानवीय क्रिया-कलाप की आधुनिक गति विधि में भारत और एशिया के प्रादुर्भाव की दृष्टि से, और इस दृष्टि

से कि भारत की अपनी संभावित शक्ति महान है और जन-संख्या के लिहाज से आज वह सब से बड़ी राजनीतिक इकाई है, और साधनों के लिहाज से भी ऐसा ही होने जा रहा है, भारत का अनिवार्य रूप से एक बड़े महत्व का भाग होगा ; यदि हमें यह भाग लेना है तो हमें इस प्रश्न को इस बड़े दृष्टिकोण से देखना होगा, न कि उन छोटी कठिनाइयों और समस्याओं के दृष्टिकोण से जो हमारे सामने आवें, और यह भाग मूलतया ऐसा होगा, जिससे कि संसार में शान्ति और स्वतंत्रता की वृद्धि हो और जातिगत विषमताएँ दूर हों।

क्या इस सम्बन्ध में मैं यह कहूँ कि जो जातिगत उपद्रव दक्षिण अफ्रीका में डर्बन में हुए हैं उनका हाल जानकर हमें गहरा दुःख हुआ है ? इसके बारे में मैं अधिक नहीं कहना चाहता, सिवाय इसके कि अगर जातिगत भेदों की भावना को कहीं भी उकसाया जायगा तो उससे ऐसे ही उपद्रव होंगे। लेकिन हमारे लिए गहरे दुःख का कारण यह है कि भारतीय और अफ्रीकी ऐसे उपद्रव में शरीक हों। आज नहीं, वर्षों से अफ्रीका में अपने प्रतिनिधियों से हमारी यह निश्चित हिदायत रही है कि हम अफ्रीकियों की हानि करके भारतीयों के पक्ष में किसी विशेष हित को नहीं चाहते। हमने उन को अफ्रीकियों से सहयोग की आवश्यकता को स्पष्ट बताया है और इन आदेशों को बार-बार दुहराया है। मैं आशा करता हूँ कि डर्बन के खेदपूर्ण अनुभव के बाद भारतीय और अफ्रीकी फिर आपस में मिलेंगे। वास्तव में, पूर्वी अफ्रीका तथा और जगहों में भारतीयों और अफ्रीकियों में पर्याप्त मात्रा में सहयोग के प्रमाण मिलते हैं।

मैं आशा करता हूँ कि उस नीति की साधारण रूप-रेखा का, जिसका कि मैंने सुझाव दिया है, इस सभा और इस देश के द्वारा समर्थन होगा, और वह हमें निर्देश देगी कि भारत लोकव्यापी शान्ति के पक्ष में इस रूप में भाग लेना चाहता है। और इस तरह लोकव्यापी युद्ध के महान संकट के निवारण में सहायता देना चाहता है।

हमारी वैदेशिक नीति

सभापति महोदय, और मित्रो, सबसे पहले, क्या मैं आपको इस विचार पर बधाई दूं कि इस भोज को वार्षिक भोज सम्मेलन कहा गया है ? मैं समझता हूँ कि इस तरह के संगठन के लिए यह एक अच्छा विचार है कि समय-समय पर मिला जाय, न केवल मिलजुल कर भोज का आनन्द लेने के लिए, बल्कि आप चाहें तो उन विषयों पर बातचीत करने के लिए भी जो इस संगठन से सम्बन्धित हों। इस भोज के विषय में मेरा एक सुझाव है, वह यह कि आगे के भोजों में इस बात का ध्यान रखा जाय कि वे इतने चटपटे न हों। मैं यह इसलिए कह रहा हूँ कि इस भोज में मिर्चों का जो इस्तेमाल हुआ है, उसका मैं अपने को शिकार अनुभव कर रहा हूँ।

मैं समझता हूँ कि पहला विषय जो आपके मन में होगा, वह अवश्य यह है कि हमारे दो अत्यन्त प्रतिष्ठित सदस्य, जिन्होंने इस संगठन का निर्माण किया था, पिछले कुछ महीनों के भीतर ही दिवंगत हुए, हमारे सभापति डा० तेज बहादुर सप्रू और श्रीमती सरोजिनी नायडू। हमारे आज के सभापति ने एशियायी सम्मेलन की चर्चा की है, जो दो वर्ष पहले हुआ था और उसके साथ मेरा नाम जोड़ा है। सच यह है कि जैसा आप लोग जानते हैं, श्रीमती नायडू न केवल सम्मेलन की अध्यक्षा थीं; वल्कि उन्होंने बीमार रहते हुए भी, उसके लिए अथक परिश्रम किया, और उसे इतना सफल बनाया। एक प्रस्ताव है कि हमें यहाँ दिल्ली में डा० सप्रू का एक स्मारक बनाना चाहिए और इस स्मारक को एक इमारत का रूप देना चाहिए, जिसमें एक हाल हो और इंडियन कौंसिल आफ़ वर्ल्ड अफेअर्स के लिए कुछ कमरे हों। मैं समझता हूँ कि यह बहुत अच्छा प्रस्ताव है। और यह डा० सप्रू का एक उपयुक्त स्मारक होगा और एक ऐसी चीज़ भी होगी जिसकी दिल्ली को बहुत जरूरत है। मैं उम्मीद करता हूँ कि इस स्मारक के लिए पर्याप्त धन इकट्ठा करने में कोई कठिनाई न होगी। आप सब लोग जो इतनी संख्या में यहाँ उपस्थित हैं, यदि थोड़ी सी दिलचस्पी लें तो यह काम बहुत जल्द पूरा हो सकता है।

अब अगर्चे मैं इस भोज में आपसे मिलने के अवसर का स्वागत करता हूँ, मैं कह नहीं सकता कि मैं या और वैदेशिक मंत्री जो मेरे बाद आवेंगे, वे सदा

इंडियन कौंसिल आफ़ वर्ल्ड अफेअर्स, कांस्टिट्यूशन क्लब, नई दिल्ली के तत्वावधान में २२ मार्च, १९४९ को दिया गया भाषण।

वैदेशिक नीति के सम्बन्ध में बोलने के विचार का भी स्वागत करेंगे। मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि संसार के लिए यह एक अच्छी बात हो यदि सभी वैदेशिक मंत्री कुछ समय के लिए मौन हो जायँ। मैं समझता हूँ कि विदेशी मामलों में, उन व्याख्यानों से जो वैदेशिक मंत्री खुद या अपने प्रतिनिधियों द्वारा अपनी संसदों में या संयुक्त राष्ट्रों के सामने देते हैं, दिक्कतें और बढ़ जाती हैं। वे खुली कूटनीति की चर्चा करते हैं, और मैं खयाल करता हूँ कि सिद्धान्त में हम में से अधिकतर उसमें विश्वास करते हैं। निश्चय ही, मैंने उसमें बहुत समय से विश्वास किया है, और मैं नहीं कह सकता कि मैं बिल्कुल उस विश्वास को खो बैठा हूँ। खुली कूटनीति काफ़ी अच्छी होती है, लेकिन जब वह खुली कूटनीति बहुत खुले संघर्षों और आरोपों द्वारा एक दूसरे के प्रति बड़ी कड़ी भाषा के प्रयोग का रूप ले लेती है, मैं अनुमान करता हूँ कि तब उस का परिणाम शान्ति को अग्रसर करना नहीं होता। यह एक प्रतियोगिता बन जाती है—एक दूसरे के प्रति हिंसात्मक भाषा के व्यवहार की खुली प्रतियोगिता। विदेशी नीति के सम्बन्ध में बात करना तो बहुत अच्छा है, लेकिन आप यह मानेंगे कि कोई भी व्यक्ति, जिस पर देश की विदेशी नीति का भार हो, वास्तव में उसके बारे में बहुत कुछ कह नहीं सकता। वह उसके बारे में कुछ साधारण बातें बता सकता है; अवसर पड़े तो कभी-कभी वह उसके बारे में बहुत निश्चित बातें भी बता सकता है, लेकिन उससे संबंधित बहुत-सी बातें हैं, जिनके विषय में यह समझा जाता है कि वे अत्यन्त गोपनीय फाइलों में हैं। बावजूद इसके कि वे अत्यधिक रूप से गोपनीय नहीं होतीं, फिर भी उनके सम्बन्ध में सार्वजनिक रूप से बोलना उचित नहीं होता।

अब, मेरा अनुमान है कि भूतकाल में वैदेशिक नीति एक देश के उसके निकट पड़ोसी देशों से सम्बन्ध के विषय में हुआ करती थी—चाहे वह मित्र हों या इतर। जैसा कि हमारे सभापति जी ने आपको स्मरण दिलाया है, अब संसार के सभी देश हमारे पड़ोसी हैं, इसलिए केवल कुछ आस-पास के देशों तक हम अपनी वैदेशिक नीति को सम्बन्धित नहीं रख सकते, बल्कि हमें करीब-करीब संसार के सभी देशों का विचार करना पड़ता है, और संघर्ष, व्यापार, आर्थिक दिलचस्पी, आदि के सभी सम्भावित क्षेत्रों को ध्यान में रखना पड़ता है। यह अब समझ लिया गया है कि यदि बड़े पैमाने पर संसार में कहीं कोई संघर्ष होता है, तो सारे संसार में उसके फैलने की संभावना है, अर्थात् युद्ध अब अविभाज्य हो गया है, और, इसीलिए शान्ति भी अविभाज्य है। इसलिए हमारी वैदेशिक नीति अपने को निकट के देशों तक नहीं सीमित रख सकती। फिर भी निकट के देश आपस में एक दूसरे में खास दिलचस्पी रखते हैं, और भारत को अनिवार्य रूप से, स्थल और जल मार्गों से अपने से निकटतम देशों से सम्बन्ध के विषय में विचार करना होगा। ये देश कौन से हैं? बाईं तरफ़ से चलें तो पाकिस्तान है; मैं अफ़गानिस्तान को भी शरीक कर लूँगा अगर्चे वह भारत

की सरहदों को स्पर्श नहीं करता; तिब्बत और चीन, नेपाल, बर्मा, मलाया, इंडोनीशिया और लंका। जिस रूप में पाकिस्तान का निर्माण हुआ है और भारत का विभाजन हुआ है, उससे स्थिति बड़ी विचित्र रही है। न केवल वे सब उथल-पुथल हुए हैं, जिनसे आप सब परिचित हैं, बल्कि उससे भी गहरी बात हुई है, और वह है इन घटनाओं के कारण भारत और पाकिस्तान के लोगों के मनों में असंतुलन हो जाना। इस चीज़ से पेश पाना बड़ा कठिन होता है, यह मनोवैज्ञानिक चीज़ है और ऊपरी ढंग से इसे नहीं निबटाया जा सकता। डेढ़ साल या अधिक गुज़र गए हैं, और इसमें संदेह नहीं कि हमारे सम्बन्ध सुधरे हैं और सुधर रहे हैं। मेरे मन में इस विषय में भी बिल्कुल संदेह नहीं कि भारत और पाकिस्तान के बीच कभी न कभी भविष्य में घनिष्ठ सम्बन्ध—बहुत घनिष्ठ संबंध होना अनिवार्य है। मैं कह नहीं सकता कि ऐसा कब होगा, लेकिन जो हमारी स्थिति है और जैसा हमारा इतिहास रहा है, उसे देखते हुए हम उदासीन पड़ोसियों के रूप में नहीं रह सकते। हम एक दूसरे के कुछ विरोधी हो सकते हैं, या बड़े मित्र हो सकते हैं। अन्त में हम वास्तव में बड़े मित्र ही रह सकते हैं, बीच में चाहे जितने काल तक विरोध रहे, क्योंकि हमारे हित आपस में संबद्ध हैं। जो विभाजन हुआ है, वह एक आश्चर्यजनक बात है, और अगर्चे इसके बारे में हम बहुत कुछ जानते हैं, क्योंकि हम इस उपद्रव के ज़माने से गुज़रे हैं, फिर भी जिन-जिन चीज़ों में इससे उथल-पुथल हुआ है, उनकी सूची बनाना मनोरंजक है। हमारे सब आने-जाने के मार्ग और संवाद के साधन टूट गए। तार, टेलीफ़ोन, डाक, रेलपथ, वस्तुतः सभी चीज़ें अस्त व्यस्त और विच्छिन्न हो गईं। हमारी राजकीय सेवायें विच्छिन्न हो गईं। हमारी सेना के टुकड़े हो गए। हमारी आबपाशी की व्यवस्था टूट गई, और कितनी ही बातें हुईं। हम अगर गिनने लगें तो एक लम्बी सूची तैयार हो जायगी। लेकिन सब से ऊपर जो चीज़ टूटी और जो बड़ी मार्मिक थी वह था भारत का शरीर। इसके भीषण परिणाम हुए, जो केवल वे ही नहीं थे, जिन्हें आपने देखा, बल्कि वे भी थे जिनकी आप कल्पना नहीं कर सकते थे, अर्थात् करोड़ों मानवों के मन और आत्मा पर होनेवाली प्रतिक्रिया। इन के परिणाम स्वरूप हमने अत्यधिक संख्या में देशान्तर गमन देखा, लेकिन जो इससे गहरी बात थी वह थी वह चोट और क्षति जो भारत की आत्मा को पहुँची। हम उससे संभल रहे हैं, जैसे कि लोग किसी भी प्रकार की क्षति से सँभलते हैं, और फिर हम पाकिस्तान से निकटतर सम्बन्ध बढ़ा रहे हैं। अब भी बहुत-सी समस्याएं हल होने को हैं, और मैं अनुमान करता हूँ कि वे धीरे-धीरे हल हो जायँगी।

जहाँ तक और देशों की बात है, उनसे हमारे सम्बन्ध खूब मैत्रीपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए अफ़ग़ानिस्तान को ले लीजिए। उससे हमारे बड़े मैत्रीपूर्ण संबंध हैं, और तिब्बत, नेपाल तथा सभी पड़ोसी देशों से भी मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध हैं। वास्तव

में, मेरा यह कहना उचित होगा कि इस विस्तृत संसार में कोई देश ऐसा नहीं जिस से हमारे सम्बन्ध वैर या विरोध के कहे जा सकें। यह स्वाभाविक है कि हम कुछ के प्रति अधिक आकर्षित होंगे या हमारे व्यापार और आर्थिक हित हमें कुछ देशों से अधिक और कुछ से कम संबद्ध करें, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारी सब से मैत्री है। मैं समझता हूँ कि यह एक अच्छी बात है और हमें इसे एक सफलता समझनी चाहिए।

अगर एक ओर हमारे मन में पड़ोसी देशों का खयाल सब से पहले आता है, तो दूसरी ओर एशिया के और देश हैं, उनसे भी हमारा काफ़ी घनिष्ट संबंध है। एशिया में भारत की एक अनोखी स्थिति है, और उसके इतिहास पर उसकी भौगोलिक स्थिति का तथा और बातों का बड़ा असर पड़ा है। एशिया की किसी भी समस्या को उठाइए, किसी-न-किसी रूप में भारत चित्र में आ जाता है। चाहे आप चीन या मध्यपूर्व या दक्षिण पूर्वी एशिया का विचार करें, भारत चित्र में आ ही जाता है। इसकी ऐसी स्थिति है कि उसके अतीत इतिहास, परम्पराओं आदि के कारण, एशिया के किसी देश या देशों के समुदाय की किसी भी बड़ी समस्या का विचार करते हुए, भारत का विचार करना पड़ेगा। चाहे प्रतिरक्षा का प्रश्न हो, चाहे व्यापार, उद्योग या आर्थिक नीति का, भारत की उपेक्षा नहीं की जा सकती। उसकी उपेक्षा असम्भव है, क्योंकि जैसा कि मैंने आप से कहा। उसकी भौगोलिक स्थिति एक विवश करनेवाला कारण बनती है। वास्तविक या प्रच्छन्न शक्ति तथा साधनों के कारण भी, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। भारत की वास्तविक शक्ति चाहे जो कुछ भी हो प्रच्छन्न रूप से भारत एक बड़ा शक्तिशाली देश है, और उसमें वे गुण तथा वे बातें हैं जो एक देश को, शक्तिशाली, स्वस्थ और समृद्ध बनाने में बड़ी सहायक होती हैं। उन तत्वों में वह समृद्ध है, और मैं समझता हूँ कि उसके लोगों में उन तत्त्वों का उपयोग करने की योग्यता है। स्वभावतः हमारी कमज़ोरियाँ भी हैं और कठिनाइयाँ भी मौजूद हैं, लेकिन यदि आप इस समस्या को एक दृष्टि-परम्परा में देखें, तो किसी के मन में कोई संदेह नहीं हो सकता कि भारत की संभावित सम्पत्ति वास्तविक हो जायगी, और वह भी अदूर भविष्य में।

इसलिए हमारे अपने मत जो भी हों, अपनी व्यावहारिक स्थिति के कारण और अन्य कारणों से जिन्हें मैं ने बताया है, भारत का एशिया में—एशिया के सभी–प्रदेशों में—चाहे पश्चिमी एशिया हो, चाहे सुदूर पूर्व और चाहे दक्षिण पूर्वी एशिया एक महत्वपूर्ण भाग होना अनिवार्य है। बेशक, ऐसा है कि सांस्कृतिक दृष्टि से भी हमारे इन सभी प्रदेशों से गहरे लगाव हैं, चाहे वह पश्चिमी एशिया हो, चाहे सुदूर पूर्व और चाहे दक्षिण पूर्वी एशिया, और ये लगाव बहुत पुराने हैं, और निरन्तर बने रहे हैं।

मोटे ढंग से कहा जाय जब भारत में ब्रिटिश शक्ति आई और यहाँ ब्रिटिश आधिपत्य कायम हुआ तब एक बड़ी अद्भुत बात हुई। यही कारण था कि हम एशिया में अपने पड़ोसी देशों से विलग हो गए। अब हमारे सम्पर्क समुद्र पार इंग्लिस्तान से हो गए, और हम कुछ हद तक इस आधिपत्य के विरुद्ध लड़ते रहे और इन सम्पर्कों पर आपत्ति करते रहे; फिर भी संपर्क तो थे ही, और हम दुनिया को अधिकाधिक उस खिड़की से—ब्रिटिश खिड़की से—देखते रहे। भारत से एशियायी देशों में बहुत कम लोग गए, और वहाँ से यहाँ बहुत कम लोग आए। और जिन थोड़े से एशियायियों से हम मिले भी उन से एशिया में नहीं, बल्कि यूरोप में मिले। अब हाल में यह क्रम पलट गया है या विविध कारणों से पलट रहा है। शुरू में, मेरा खयाल है कि हवाई यात्रा एक कारण थीं, क्योंकि अगर यूरोप गए तो हम बगदाद, तेहरान और अन्य जगहों से गुज़रते थे। हवाई यात्रा एकमात्र कारण नहीं थी, राजनैतिक कारण भी थे, जो अब इन परिवर्तनों को ला रहे हैं। विशेष रूप से, जब से भारत स्वतंत्र और आज़ाद देश बना तब से, आप कई बातें होती देखते हैं। जैसा कि आप जानते हैं दो वर्ष हुए एशियायी सम्मेलन बुलाया गया था, और उसमें समान हित की विविध बातों पर परामर्श हुआ था। मैं आप को बताऊँगा कि उस सम्मेलन के सम्बन्ध में क्या हुआ। जब कि एशियायी सम्मेलन करने का प्रस्ताव किया गया—यह प्रस्ताव परीक्षात्मक रूप से उपस्थित किया गया था—हम ठीक-ठीक नहीं जानते थे कि इस पर क्या प्रतिक्रिया होगी। कई देशों को आमंत्रण भेजे गए, और मैं आप से बताऊँ कि हमें प्रतिक्रिया देख कर आश्चर्य हुआ। इसके पक्ष में प्रतिक्रिया बहुत अधिक हुई, और सम्मेलन जैसा कि आप अच्छी तरह जानते हैं, बहुत ही सफल रहा।

इसलिए आप देखते हैं कि एशिया के मस्तिष्क में एक क्रिया चल रही है, भारत ही में नहीं, बल्कि सारे एशिया में। किसी वस्तु का अंकुर निकल रहा है और यदि उसे अवसर मिला, तो वह बाहर आ जायगा। हमें विश्वास है कि एशियायी देशों में मिलजुल कर काम करने की आपस में परामर्श करने की और एक दूसरे पर भरोसा रखने की उत्कट इच्छा है। संभवतः अतीत में यूरोप द्वारा किए गए व्यवहार पर अप्रसन्नता के कारण ऐसा हो। निश्चय ही यह इस धारणा के कारण भी है कि एशियायी देशों को अब भी यूरोपीय तथा अन्य देशों द्वारा स्वार्थ साधन का क्षेत्र न बनाया जाय। लेकिन मैं समझता हूँ कि बहुत कुछ अपने पुराने सम्पर्कों की स्मृति जागृत होने के कारण भी है, क्योंकि हमारे साहित्य में उसके वर्णन भरे पड़े हैं। हम इसकी बहुत अधिक आशा रखते हैं कि आगे की वृद्धि के लिए हम अपने इन सम्पर्कों को और अधिक विकसित कर सकेंगे। इसी से जब कभी कोई ऐसा कदम उठाया जाता है, जैसे कि दिल्ली में हाल में होने वाला इंडोनीशिया सम्बन्धी सम्मेलन था, तो तत्काल उसका अच्छा स्वागत होता है। यह सम्मेलन बहुत थोड़ी सूचना से बुलाया

गया था। लेकिन इसमें ये सभी लोग शरीक हुए। इसने उन्हें अवश्य ही इसलिए आकर्षित किया कि उनकी इंडोनीशिया में दिलचस्पी थी, लेकिन मेरा खयाल है कि इससे भी अधिक यह इच्छा थी कि एक साथ मिल कर विचार विनिमय किया जाय और आपस में सहयोग किया जाय। भारत की ओर इन सभी देशों की दृष्टि थी और यह भावना थी कि भारत सम्भवत: एशियायी देशों को एक साथ लाने में महत्त्वपूर्ण भाग ले।

कुछ लोग किंचित् असंयत ढंग से (और अगर मैं कहूँ तो जरा बेवकूफ़ी से) भारत के, इसके नेता या उसके नेता या एशिया के नेता बनने की बात चलाते हैं। मुझे यह बात बिल्कुल अच्छी नहीं लगती। यह नेतृत्व का मामला एक बुरा दृष्टिकोण है। लेकिन यह सच है कि विविध कारणों से जिन्हें कि मैंने बताया है, भारत के ऊपर एक विशेष जिम्मेदारी आती है। भारत इसे अनुभव करता है और दूसरे देश भी इसे अनुभव करते हैं। यह जिम्मेदारी जरूरी तौर पर नेतृत्व की नहीं है, बल्कि कभी-कभी बात को शुरू करने की और दूसरों को सहयोग के कार्य में सहायता पहुँचाने की है।

भूगोल के अतिरिक्त और बहुत सी बातें हैं, जो एशिया के देशों को आपस में बाँधती हैं। एक बात यह है कि पिछले १५० से २०० वर्षों से एशिया पर यूरोप का—कुछ यूरोपीय देशों का आधिपत्य रहा है। वह यहाँ आए, इस महाद्वीप में उन्होंने स्वार्थ साधन किया, इस पर आधिपत्य किया। इसके कई परिणाम हुए। आज हम इधर २०० वर्षों के यूरोपीय आधिपत्य के इतिहास से कुछ अभिभूत हैं। लेकिन अगर हम इतिहास के लम्बे क्रम को देखें, और कई सौ वर्ष पहले को देखें, तो हमें ज्यादा सच्ची दृष्टि परम्परा प्राप्त होती है और उस दृष्टि परम्परा में चाहे आप एशिया को देखें, चाहे भारत को, विदेशी आधिपत्य का काल सीमित दिखाई देता है। और अब, जब कि अधिकतर एशियायी देशों पर विदेशी आधिपत्य समाप्त हो चुका है, और निश्चय ही पूरी तरह समाप्त होगा, तो अपने को समझने की क्रिया चल रही है, और हर एक एशियायी देश आधुनिक आदर्शों के अनुसार उन्नति की विविध सीढ़ियों पर है; अपने को देखने की, अपने को पहचानने की, कुछ भरोसा और आत्म-विश्वास जागृत होने की। हो सकता है, कुछ देशों में अपनी आर्थिक तथा और कमज़ोरियों के कारण भय की क्रिया चल रही है—लेकिन, मोटे तौर पर यह अपने को पहचानने की क्रिया है। यह भी एक दूसरे को आपस में बाँधने वाला एक निश्चित कारण है।

इसके बाद, फिर एशिया की समस्याएँ जो कि मूलतया जितनी प्राथमिक मानवी आवश्यकताएँ हैं, उन्हें पूरा करने की हैं। ये समस्याएँ उनसे भिन्न हैं, जिन्हें कि हम

शक्तियों की राजनीति कहेंगे। बेशक, हर एक देश का, शक्ति-राजनीति से कुछ सम्बन्ध है। लेकिन एशिया के चाहे जिस देश को हम लें, उनकी एक समस्या है, वह है अपनी स्वतंत्रता की रक्षा। उसे यह डर है कि कोई उसकी स्वतंत्रता का अपहरण न कर ले। मूल समस्या अर्थात् प्राथमिक आवश्यकताओं—भोजन, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि—के अतिरिक्त यह समस्या भी बराबर मौजूद है। ये सभी समस्याएँ निश्चय ही सारे संसार की समस्याएँ हैं, लेकिन बाकी दुनिया का अधिकतर भाग अपने रहन-सहन के स्तर में एशियायी देशों की अपेक्षा बहुत आगे बढ़ गया है। बाकी दुनिया के देशों के लिए उन्नति की और गुंजाइश अवश्य है, पर पिछले युद्ध से उन्हें बहुत नुकसान पहुँचा है। उन्हें पिछले युद्ध से हुई क्षतियों को पूरा करना पड़ा है। दुर्भाग्यवश, पिछले १०० वर्षों में, यूरोप का दृष्टि-कोण, देशों द्वारा बहुत अधिकार प्राप्त कर लेने का, उसे खोने के भय का, आपस में एक दूसरे से डरने का या अपने अधिकार को विस्तृत करने का रहा है। इस लिए आज का यूरोप आज के एशिया की अपेक्षा शक्ति-राजनीति में कहीं अधिक फंसा हुआ है। मैं भविष्य के बारे में नहीं जानता। उनके दृष्टिकोणों में इस समय मौलिक भेद हैं। और अब पिछले युद्ध के बाद से, यूरोप अनेक गम्भीर समस्याओं और संघर्षों में बँध गया है। अगर मैं कहूँ तो यूरोप के पिछले कर्म उसका पीछा कर रहे हैं। हम सहज में अपने पिछले कर्मों के शाप से नहीं बच सकते; यह हमारे देश का अनेक तरीकों से पीछा कर रहा है। लेकिन प्रस्तुत समस्याओं के विषय में यूरोपीय और एशियायी दृष्टिकोण में मेरी समझ में यह बुनियादी अन्तर है। सारी दुनिया शान्ति चाहती है; इसमें मुझे बिल्कुल संदेह नहीं; और अगर कुछ व्यक्ति हैं जो युद्ध चाहते हैं तो उनकी संख्या अधिक नहीं हो सकती, और उनके दिमाग भी पूरी तरह संतुलित न होंगे। लेकिन होता यह है कि जो लोग युद्ध चाहते हैं उन्हें एक वहम, एक डर सताता रहता है, और इसलिए वह चाहें या न चाहें वह युद्ध की तरफ़ खिंचते रहते हैं। यह बड़ी शोचनीय बात है कि डर की यह मनोवृत्ति हम आज करीब-करीब सारी दुनिया में पा रहे हैं। यूरोप में इस समय वह छाई हुई है। यूरोप ही क्यों, दुनिया के और हिस्सों में भी। और, बेशक, एशिया में भी यह है, बहुत कुछ है, लेकिन यूरोप के मुकाबले में मेरी समझ में, बहुत कम है।

इसी बात को मैं दूसरी तरह से कहूँ—वे देश जो समृद्ध रहे हैं, वे जो कुछ उनके पास है, उसके खोने की संभावना से बहुत भयभीत हैं, जब कि वे देश जिनके पास खाने के लिए बहुत नहीं है, उन पर यह भय उतना नहीं छाया है। जो भी हो, इन विभिन्न समस्याओं के प्रति यह विभिन्न मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण है।

अब, संयुक्त राष्ट्र को लीजिए। संयुक्त राष्ट्र संगठन के भीतर संसार के

अधिकतर राष्ट्र हैं, लेकिन यह सही है कि उस में यूरोप और अमरीका के कुछ बड़े राष्ट्रों का प्राधान्य है, नतीजा यह होता है कि जिन मुख्य समस्याओं पर वहाँ विचार होता है, वे यूरोप और अमरीका की समस्याएँ हैं। स्वभावतया हमारी उन समस्याओं में दिलचस्पी है, क्योंकि उन का हम पर भी असर पड़ता है; और अगर युद्ध हो तो जाहिर है हम पर भी उसका असर पड़ेगा। लेकिन उन समस्याओं पर हम सम्भवतः उतने उत्तेजित नहीं हो सकते जितना कि यूरोप और अमरीका के लोग होते हैं। उदाहरण के लिए, इंडोनीशिया की समस्या, बहुत-सी यूरोपीय समस्याओं के मुकाबले में ज्यादा महत्त्व की है। चाहे आप कह लें कि इस का कारण भूगोल है। जो भी कारण है, वास्तविक कारण अन्त में केवल भूगोल नहीं है, बल्कि हमारे मनों में पैठी हुई एक भावना है कि यदि इंडोनीशिया में किसी प्रकार का औपनिवेशिक आधिपत्य जारी रहा, अगर इसे जारी रहने दिया गया, तो यह सारे एशिया के लिए एक खतरे की बात होगी, यह भारत में हमारे लिए भी एक खतरे की बात होगी, और दूसरे देशों के लिए भी। इसके अलावा, यदि इसे वहाँ जारी रहने दिया गया—यह जाहिर है कि ऐसा बड़ी शक्तियों में से कुछ की निष्क्रिय या सक्रिय रजामंदी से ही हो सकता है—तो परिणाम यह होगा वे बड़ी शक्तियाँ, जो इसे स्वीकार करेंगी, एशिया की दृष्टि में स्वयं उस अपराध में हिस्सेदार मालूम पड़ेंगी। यह एक खास बात याद रखने की है कि हमारे लिए यह राजनैतिक शतरंज का खेल मात्र नहीं है; इंडोनीशिया की स्वतंत्रता से अलग, यह सारे आस्ट्रेलिया, एशिया और शायद अमरीका की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या है। इस दृष्टिकोण से यूरोप और अमरीका की, एशिया के निगाह में परीक्षा हो रही है; उसी तरह, जिस तरह कि यूरोप और अमरीका की निगाह में हमारी हो रही है।

मैं आपको एक उदाहरण देता हूँ। अब, अगर मैं आपसे बिल्कुल स्पष्ट रूप में कहूँ, तो मुझे संदेह नहीं है कि इंडोनीशिया में जो हो रहा है, उससे यूरोप और अमरीका के देश स्वयं बहुत घबराए हुए और परेशान हैं। वह इंडोनीशिया की सहायता करना चाहते हैं। मैं समझता हूँ वह इस बात का अनुभव करते हैं कि इंडोनीशिया की स्वतंत्रता न केवल स्वतः एक वांछनीय चीज है, बल्कि एक बड़ी व्यवस्था के लिए भी, जिसका नक्शा उनके सामने है, यह वांछनीय है, और अगर किसी संयोग से इंडोनीशिया में किसी प्रकार का साम्राज्यवादी आधिपत्य सफल होता है तो भविष्य के लिए उनके सामने जो बड़ी योजनाएं हैं, वे अव्यवस्थित होती हैं। मैं अनुभव करता हूँ कि एशियायी राष्ट्रों पर आम तौर से बड़ा असर पड़ेगा और इंडोनीशिया में जो कुछ होता है, उसका हमारे कार्यों पर प्रभाव पड़ेगा। इसलिए, मैंने सुना है कि वे इंडोनीशिया की समस्या को सन्तोषजनक ढग से हल करने के लिए और इंडोनीशिया में स्वतंत्रता और आजादी की स्थापना के लिए बहुत चिन्तित हैं। यह सच है, लेकिन फिर, जब आप भूल जाते हैं या कुछ निश्चित सिद्धान्तों का

पालन नहीं करते तो एक कठिनाई उपस्थित होती है । इंडोनीशिया में जो कुछ भी होता है, उसका प्रभाव एक तरफ़ तो इंडोनीशिया पर और दूसरी तरफ़ नेदरलैण्ड की सरकार पर पड़ता है । अब एक बिल्कुल दूसरे ही प्रसंग में जैसा आप जानते हैं पश्चिमी यूरोप और अमेरीका की कुछ शक्तियों ने, जिन में कि नेदरलैण्ड की सरकार भी सम्मिलित है, एटलांटिक पैक्ट के रूप में एक समझौता किया है । अपने हितों का खयाल से वे उचित पथ पर है । यह दूसरी बात है, मैं उस पर बहस नहीं कर रहा हूँ । लेकिन यहाँ पर इन सभी देशों के मन में एक संघर्ष उठता है । जहाँ एक ओर वह इंडोनेसी स्वतंत्रता चाहते हैं, वहाँ दूसरी ओर वे इसलिए भी चिन्तित हैं कि नेदरलैण्ड्स उनके राजनैतिक गुट्ट में बना रहे । कभी-कभी वे सीधी और स्पष्ट बात जो वे अन्यथा करते इसलिए नहीं कर पाते कि ऐसी कठिनाइयाँ उन्हें दूसरी ओर खींचती हैं ।

इसलिए आम तौर पर हम विविध मामलों पर सहमत हो सकते हैं, लेकिन किस बात पर हम अधिक ज़ोर देते हैं, वह सब के लिए भिन्न हो सकता है । किसी विषय को हम १ नंबर की बात समझ सकते हैं, जिसे वह २ नंबर की समझेंगे, और उनके लिए जो बात १ नंबर की है वह हमारे लिए २ नंबर की हो सकती है । हम २ नंबर के विरुद्ध भले ही न हों, फिर भी वह हमारे लिए १ नम्बर की नहीं है । किन चीज़ों को आप पहला या दूसरा नम्बर देते हैं इससे निश्चय ही बड़ा अन्तर आ जाता है । जीवन और राजनीति में सत्य को आप पहला स्थान देते हैं या दूसरा इससे तो दुनिया भर का अन्तर आ सकता है ।

उस दिन मैं भारत की वैदेशिक नीति के सम्बन्ध में भाषण दे रहा था, और स्वभावतया मैंने कुछ साधारण बातें कहीं, क्योंकि निश्चित और खास बातों का कहना बड़ा कठिन होता है । जब हम कालेज के विद्यार्थी होते हैं, तो हम सभी मामलों और समस्याओं और वैदेशिक नीति पर बहस करते हैं और अपनी राय आज़ादी से और खुले तौर पर देते हैं, क्योंकि हम इन प्रश्नों को आमतौर पर इस तरह देखते हैं मानों वह और प्रश्नों से अलग-अलग हैं । और प्रश्नों से अलग करके किसी एक प्रश्न पर राय देना काफ़ी सहज है । लेकिन जब आपको जीवन के कार्यों को निबटाना होता है, तब आप को पता चलता है कि कोई प्रश्न दूसरे प्रश्नों से बिल्कुल जुदा नहीं है । आप जहाँ किसी खास प्रश्न पर 'हाँ' कहते हैं, वहाँ जब उसे आप दूसरे प्रश्नों के सम्बन्ध में देखते हैं तो वह 'हाँ', 'नहीं' भी बन सकता है, या इनके बीच की कोई चीज़ हो सकता है ।

विदेशी नीति साधारणतः एक ऐसी वस्तु है, जो धीरे-धीरे विकसित होती है । कुछ सैद्धान्तिक मान्यताओं के अतिरिक्त, जिन्हें कि आप निर्धारित करें,

यह एक ऐसी वस्तु है, जो यदि वास्तविक है, तो उसका सम्बन्ध वस्तुस्थिति से होगा, कोरे सिद्धान्त से नहीं। इसलिए आप निश्चित रूप से अपना साधारण दृष्टिकोण या साधारण मार्ग निर्द्धारित नहीं कर सकते, बल्कि वह क्रमशः विकसित होता है। हम एक स्वतंत्र देश के रूप में अभी नए हैं, यद्यपि हमारा देश एक प्राचीन देश है और हमें एक प्राचीन देश होने की सभी सुविधाएँ तथा असुविधाएं प्राप्त हैं। फिर भी, वैदेशिक नीति के वर्तमान प्रसंग में हमारा देश नया है, और इसलिए हमारी वैदेशिक नीति क्रमशः विकसित हो रही है, और कोई कारण नहीं जान पड़ता कि हम सभी जगह क्यों दौड़ कर पहुँचे रहें, इस तरह कोई ऐसी बात क्यों कर दें जो कि इस क्रमिक विकास में बाधक हो। इस विषय में अपना साधारण मत कि हम कहाँ जाना चाहते हैं और क्यों जाना चाहते हैं, हम प्रकट कर सकते हैं और हमें ऐसा करना चाहिए, लेकिन किसी विशेष देश के प्रति अपनी नीति निश्चित रूप में बना लेना कदाचित् हमें कठिनाई में डाल सकता है। जैसा मैंने कहा, हमारी साधारण नीति सभी देशों से मैत्री स्थापित करने के प्रयत्न करने की रही है, लेकिन यह ऐसी बात है जिसे कोई भी कह सकता है। इस विचार से बहुत सहायता नहीं मिलती। यदि मैं कहूँ कि यह प्रायः राजनीति से बाहर की बात है तो ठीक होगा। यह एक शाब्दिक वक्तव्य या नैतिक प्रेरणा हो सकती है। इसे राजनैतिक प्रेरणा कहना कठिन है। फिर भी, राजनैतिक क्षेत्र में भी इसके पक्ष में कुछ कहा जा सकता है। हम कदाचित् सभी देशों से सदा मैत्री नहीं रख सकते। दूसरी बात यह हो सकती है कि कुछ से बड़ी मित्रता हो तथा औरों से विरोध रहे। किसी देश की साधारणतः यही विदेशी नीति होती है, अर्थात् कुछ देशों के साथ घनिष्ठ मित्रता के सम्बन्ध। इसका परिणाम यह होता है कि आप का दूसरों के प्रति वैरभाव होता है। आप की कुछ देशों से बड़ी मित्रता हो सकती है, और यह असंभव सी बात है कि सभी देशों से आपकी एक सी मित्रता हो। स्वभावतः उनसे आपकी अधिक मित्रता होती है जिन के साथ आपके निकटतर सम्बन्ध हैं, लेकिन वह बड़ी मित्रता यदि सक्रिय है तो अच्छी है; अगर उसमें किसी दूसरे देश के प्रति वैर की झलक है तो बात और हो जाती है, और अन्त में आप का वैर भाव दूसरे लोगों का वैर जागृत करता है, यह रास्ता संघर्ष का है और इससे कुछ हल नहीं होता। सौभाग्य से भारत का किसी देश से पुराना वैर नहीं। अतएव हम किसी देश से वैरभाव का सिलसिला अब क्यों चलावें? बेशक, यदि स्थितियां हमें विवश करें तो हम कर ही क्या सकते हैं? लेकिन वैरभाव की इन पृष्ठभूमियों से हमें अपने को दूर ही रखना अच्छा है। यह भी स्वाभाविक है कि हमारी कुछ देशों से औरों की अपेक्षा अधिक मित्रता हो, क्योंकि इससे परस्पर लाभ हो सकता है। यह दूसरी बात है, फिर भी, और देशों से हमारी मित्रता जहाँ तक हो सके, ऐसी नहीं होनी चाहिए कि हमें अनिवार्य रूप से दूसरों से संघर्ष में ले आवे। अब, कुछ लोग यह कह सकते हैं कि दो विरोधी दलों के बीच दोनों से भला बने रहने की या गड्डों

को बचा कर चलने की नीति है, या सड़क के बीच से चलने की नीति है । जिस रूप में मैं इसकी कल्पना करता हूँ उसमें ऐसी कोई चीज़ नहीं । यह बीच सड़क से चलने की नीति नहीं है । यह एक धनात्मक, रचनात्मक नीति है, जिसका एक निश्चित उद्देश्य है, जो जानबूझ कर और देशों से, जहाँ तक हो सभी देशों से, वैर बचाने का प्रयत्न करती है ।

हम इसे कैसे हासिल कर सकते हैं ? स्पष्ट है कि इसमें जोखिम है और खतरा है, और हर एक देश का पहला कर्तव्य अपनी रक्षा करना है । अपनी रक्षा का अर्थ दुर्भाग्य से यह होता है कि सशस्त्र सेनाओं आदि पर निर्भर रहा जाय, इसलिए हम, आवश्यकता पड़ने पर अपना प्रतिरक्षा संबंधी यंत्र खड़ा करते हैं । ऐसा न करने का हम जोखिम नहीं उठा सकते, अगर्चे महात्मा गांधी ने निस्संदेह यह जोखिम उठाया होता और मैं यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि उनका यह कार्य गलत होता, वास्तव में यदि कोई देश इतना मजबूत है कि यह जोखिम उठा ले, तो यही नहीं कि वह जीवित रहेगा, बल्कि वह एक महान् देश बनेगा । लेकिन हम सब छोटे लोग हैं और ऐसा जोखिम उठाने का साहस नहीं कर सकते, लेकिन अपनी रक्षा करते हुए, हमें ऐसा करना चाहिए जिसमें हम किसी दूसरे को बैरी न बना लें, और यह भी न मालूम पड़े कि हम किसी देश की स्वतंत्रता पर आक्रमण करना चाहते हैं । यह महत्त्व की बात है । साथ ही हमें कोई ऐसी बात लिखना या कहना न चाहिए जिससे कि राष्ट्रों के बीच के सम्बन्ध और बिगड़ें । दूसरे देशों के, उनकी नीतियों के और कभी-कभी उनके राजनीतिज्ञों के विरूद्ध कहने या करने की प्रेरणा बड़ी प्रबल होती है । क्योंकि दूसरे लोग कभी-कभी बड़े नागवार हो जाते हैं, वह कभी-कभी बड़े अग्रसर हो जाते हैं । अगर वे अग्रसर होते हैं तो हमें उनकी अग्रसरता से अपनी रक्षा करनी पड़ती है । अगर भविष्य में आक्रमण की आशंका हो-तो उससे भी अपने को बचाने का उपाय करना पड़ता है । यह तो मैं समझ सकता हूँ, लेकिन इसमें और मकान की छतों पर खड़े होकर हमेशा बुलंद आवाज में इस या उस देश पर आक्रमण करने में, स्पष्ट अन्तर है– चाहे वह देश आलोचना या आक्रमण के योग्य ही क्यों न हो । पर इस प्रकार चीखने-चिल्लाने से—कुछ मदद नहीं मिलती, इससे बात बिगड़ती ही है, क्योंकि इससे भय की वह मनोवृत्ति, जिसकी कि मैंने चर्चा की, भयानक रूप में बढ़ जाती है । जब दोनों ओर से चीखना-चिल्लाना चलता रहता है, तो तर्क और विचार जाते रहते हैं, क्योंकि लोगों के आवेश जागृत हो जाते हैं और अन्त में उन्हें युद्ध में पड़ना होता है ।

युद्ध छिड़ जाने पर उसका सामना करना पड़ता है । कुछ हदतक उसका पहले से उपाय होना चाहिए, और अगर युद्ध छिड़ता है तो उसके सभी परिणामों को

स्वीकार करना पड़ता है। जैसा मैंने कुछ समय पहले कहा था मैं मानता हूँ कि इस संसार के अधिकतर लोग युद्ध नहीं चाहते। तब हमारी नीति का मुख्य ध्येय युद्ध से बचना या युद्ध को रोकना होना चाहिए। युद्ध को रोकने में अपनी रक्षा का उपाय करना पड़ता है, यह बात तो ठीक है, लेकिन इसके अन्तर्गत चुनौतियाँ, जवाबी--चुनौतियाँ, आपस का बुरा भला कहना, धमकियाँ आदि नहीं आनी चाहिए। निश्चय ही इस तरह से युद्ध नहीं रोका जा सकता, बल्कि इस से वह और निकट आवेगा, क्योंकि इससे दूसरी सरकारें डरेंगी, और दूसरी सरकारें भी इसी तरह की चुनौतियाँ देंगी, तब आप डरेंगे, और हर एक व्यक्ति एक भय के वातावरण में रहेगा, और भय के इस वातावरण में कुछ भी हो सकता है।

अब, क्या कोई देश, क्या भारत, इस तरह के परस्पर दोषारोपण को रोकने में सफल हो सकता है? क्या हम इस बात में सफल हो सकते हैं– जैसा कि हम चाहते हैं– कि प्रत्येक प्रश्न पर उसके गुणों के अनुसार विचार हो? आज अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर इस दृष्टि से विचार होता है कि भविष्य में आनेवाले किसी संघर्ष में उनका क्या प्रभाव पड़ेगा; परिणाम यह होता है कि हम दोनों ओर के दलों को विषय के गुणों को भुलाते हुए पाते हैं, पर भारत जिसका विचार करने का दृष्टिकोण अन्य देशों से कुछ भिन्न है। हर प्रकार से एक असुविधा का हेतु समझा जाता है; दुर्भाग्य से असुविधा का कारण ही नहीं समझा जाता बल्कि हर एक वर्ग यह संदेह करता है कि वह विरोधी दल से मिला हुआ है। लेकिन मैं समझता हूँ कि दूसरे देशों द्वारा अब कुछ ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि हम वही कहते हैं जो हमारा आशय है। यह कोई गहरा दाँव-पेच या षड़यंत्र नहीं है और हम चाहते हैं कि प्रश्नों पर उनके गुणों के अनुसार विचार हो, और गुणों के अन्तर्गत निश्चय ही ऐसे प्रश्नों से संबंधित और सभी बातें भी आ जाती हैं। हाल के दो या तीन मामलों पर-कोरिया, पैलेस्टीन और अणुशक्ति पर-हमारा रुख ले लीजिए। यह अणुशक्ति का मामला संयुक्त-राष्ट्रों की साधारण सभा में, पेरिस में, पिछले अधिवेशन में आया था, और इस पर बड़ी बहस हुई थी कि क्या करना चाहिए। इस विषय पर विचार करनेवाली समिति का भारत एक सदस्य बनाया गया, और हमारे प्रतिष्ठित प्रतिनिधि जो कि इस समिति में थे, जो इस कार्य के लिए आदर्श रूप में उपयुक्त हैं और जब कि दूसरे उत्तेजित होते हैं कभी उत्तेजित नहीं होते और प्रश्न पर शांति और निरपेक्षता से विचार करते हैं– समिति के वातावरण को बदल देने में असमर्थ रहे। कोई बड़ा परिणाम निकला हो या नहीं, यह दूसरी बात है, लेकिन परिणाम प्राप्त करने का मार्ग हमने दिखाया था। कुछ देश हैं, जो चाहे कुछ हो जाय, अपने आसन से हटने से इनकार करते हैं। अब, मैं यह नहीं कहता कि हम इतने दृढ़ हैं कि कोई चीज हमें अपने आसन से डिगाती ही नहीं। ऐसा कदापि नहीं है। फिर भी हमारी कोशिश यह रहती है कि हम अपने पैरों के बल खड़े रहें, नाचें-कूदें या गिरें नहीं।

क्या मैं कहूँ कि मैं एक क्षण के लिए भी शेष दुनिया को सलाह देने या उसकी आलोचना करने का, भारत के पक्ष में किसी ऊँचे पद का, दावा नहीं करता ? मैं समझता हूँ कि हमारी कोशिश केवल यह है कि इन समस्याओं पर हम उत्तेजित न हों; कम से कम, कोई कारण नहीं कि हम इसकी कोशिश न करें। इससे नतीजा यह निकलता है कि जिन्हें शक्ति-दल कहते हैं, उनकी पंक्ति में हमें शरीक नहीं होना चाहिए। बिना ऐसा किए हुए हम कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। इस बात की भी किंचित संभावना है कि किसी और के ऊपर कुछ संकट की अवस्था में हमारे शांतिपूर्ण और मैत्रीपूर्ण प्रयत्न स्थिति में अंतर ला सकें, संकट का निवारण कर सकें। अगर ऐसा है तो यह प्रयत्न करने योग्य है। जब ये कहते हैं कि हमें किसी शक्ति-दल से न मिल जाना चाहिए, तो स्पष्टतया इसकी यह मानी नहीं है कि हमें औरों की अपेक्षा कुछ देशों से निकटतर संबंध न रखना चाहिए। यह बिल्कुल और ही बातों पर निर्भर करता है, जो मुख्यतया आर्थिक, राजनैतिक, कृषि संबंधी हैं, तथा अन्य बहुत सी बातें हैं। इस समय, आप देखेंगे कि वास्तव में पश्चिमी दुनिया के कुछ देशों से हमारे अपेक्षाकृत कहीं निकट के संबंध हैं। कुछ तो इतिहास के कारण, कुछ अन्य कारणों से, आजकल के विविध कारणों से ऐसा है। ये निकट संबंध निश्चय ही बढ़ेंगे और हम उनको बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन देंगे, लेकिन हम अपने को ऐसी स्थिति में नहीं रखना चाहते हैं, जहाँ कि राजनैतिक दृष्टि से यह कहा जा सके कि हम किसी खास दल से मिल गए हैं और अपने विदेशी कार्यों के विषय में उस के साथ बँध गए हैं। भारत स्वयं इतना बड़ा देश है कि वह किसी के पीछे क्यों बैठेगा, दूसरा देश चाहे जितना बड़ा हो। भारत एक ऐसा देश होने जा रहा है, और निश्चय ही होगा कि संसार के मामलों में उसकी गिनती होगी। ऐसा फौजी अर्थ में नहीं, बल्कि और दूसरे अर्थों में, जो कि अन्त में अधिक महत्त्व के और अधिक कारगर होते हैं। हमारी—अर्थात् यहाँ की आज की सरकार की—किसी एक दिशा में बहुत दूर तक जाने की कोशिश हमारे ही देश में कठिनाइयां उत्पन्न करेगी। इस पर आपत्ति की जायगी और हम अपने ही देश में एक संघर्ष उत्पन्न करेंगे, जो न हमारे लिए न किसी और देश के लिए ही सहायक होगा। शक्ति-गुटों से अलग रहते हुए हम कहीं अच्छी स्थिति में हैं कि ठीक अवसर आने पर हम शांति के पक्ष में अपना जोर डाल सकें, और इस बीच में, आर्थिक तथा अन्य क्षेत्रों में, हमारे संबंध उन देशों से जिनसे कि हम अपने संबंध विकसित कर सकते हैं, ज्यादा निकट के हो सकते हैं। इसलिए अलग-अलग या शेष दुनिया से कट कर रहने का प्रश्न नहीं है। हम अलग-अलग होकर रहना नहीं चाहते। हम निकटतम संपर्क चाहते हैं, क्योंकि शुरू से ही हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि संसार आपस में निकटतर आ रहा है और अन्त में उस आदर्श की सिद्धि होगी, जिसे कि अब 'एक संसार' का आदर्श कहा जाता है। लेकिन, हमें विश्वास है कि भारत इस क्रम में एक स्वतंत्र स्थिति ग्रहण करके और अपनी इच्छानुसार कार्य करते हुए, जब कभी संकट आवे, अधिक सहायता दे

सकता है, बजाय इसके कि वह दूसरों में अपने को विलीन करके कड़े बंधनों में बँध जाय।

अपनी नीति के संबंध में यह हमारा साधारण दृष्टिकोण है, और हम अनुभव करते हैं कि आज की दुनिया को देखते हुए, हम युद्ध की बड़ी चर्चा सुनते हैं। जबतक कोई बड़े ही दुर्भाग्य की बात नहीं होती, जैसे कि कोई भीषण दुर्घटना या इसी तरह की कोई बात, तब तक मैं नहीं समझता कि युद्ध होने जा रहा है, कम से कम अगले कुछ वर्षों में युद्ध की सम्भावना नहीं है। फिर भी कोई इस बात की जिम्मेदारी नहीं ले सकता कि एक लंबे समय तक शांति बनी ही रहेगी। अगर अगले कुछ वर्षों तक युद्ध होने नहीं जा रहा है—और अगर मैं कह सकता हूँ कि युद्ध न होगा, तो मुख्य कारण यह होगा कि देश युद्ध के लिए तैयार नहीं हैं। कहने का तात्पर्य यह कि अगर्चे राजनैतिक दृष्टि से, पिछले वर्ष यह कहा जा सकता था कि हम युद्ध के निकट हैं, क्योंकि आवेग जगे थे, और बहुत सी ऐसी बातें हुई थीं, जिनसे राष्ट्रों में लड़ाई छिड़ जाती है, फिर भी लड़ाई नहीं हुई। इसका कारण यह है कि फौजी दृष्टि से, या और प्रकार से, देश युद्ध के लिए तैयार न थे। युद्ध तभी होता है जब कि दो हेतु एक साथ उपस्थित होते हैं। एक तो युद्ध के लिए राजनैतिक प्रेरणा और दूसरे युद्ध की तैयारियाँ। अब इन में एक यदि नहीं है, तो युद्ध का होना संभावित नहीं। अच्छा तो, इनमें एक कारण मौजूद नहीं है और वह कारण युद्ध की तैयारी की कमी। परिणाम यह हुआ कि वह महान संकट, जिसके बीच से पिछली ग्रीष्म और शरत् ऋतुओं में यूरोप ज्यों-त्यों गुजरा, टल गया। आप एक महान संकट की दशा में निरंतर नहीं रह सकते। या तो वह फूट कर युद्ध के रूप में प्रकट होता है, या वह क्रमशः दब जाता है। इसलिए अगर एक राजनैतिक संकट उपस्थित होता है, और अगर कुछ कारणों से वह फूट कर युद्ध का रूप नहीं लेता है, तो वह निश्चय ही दब जायगा, जैसा कि व्यवहार में हुआ है। लेकिन, हर हालत में, इसके यह अर्थ नहीं हैं कि खतरा है ही नहीं। हाँ, आप यह कह सकते हैं कि आपको कुछ वर्ष के लिए शांति प्राप्त हुई है, और आप जानते हैं कि हमारे इस उद्धत संसार में कुछ वर्षों की शांति भी गनीमत है। शांति का स्वल्प काल भी आपको निश्चित रूप से यह अवसर देता है कि आप अधिक स्थायी शांति के लिए उद्योगशील हों। मैं दृढ़ता से यह अनुभव करता हूं कि निश्चय ही इसकी संभावना है कि इस अवसर का संसार के देशों द्वारा उपयोग हो और शांति मजबूती से स्थापित हो।

लेकिन आज हुआ क्या है? हम पाते हैं कि युद्ध की परिभाषा में विचार करने की एक भयावह प्रवृत्ति विकसित हुई है। निश्चय के साथ कुछ कह सकना जरा कठिन है, फिर भी युद्ध की संभावना इतनी बुरी है और उसके परिणाम इतने भीषण

होंगे कि, युद्ध का नतीजा जो भी हो, मैं चाहूँगा कि हर एक मनुष्य को युद्ध को बचाने के लिए अपनी पूरी शक्ति से प्रयत्न करना चाहिए। हम कहीं भी युद्ध नहीं चाहते। हम कम से कम १० या १५ वर्षों के लिए शांति चाहते हैं, जिसमें कि हम अपने साधनों का विकास कर सकें। अगर दुनिया में कहीं भी युद्ध होता है, तो शेष दुनिया का क्या हाल होगा? युद्ध के अनन्तर आप करोड़ों आदमियों को भूखों मरते पायेंगे।

इसलिए, अगर हम तत्परता से युद्ध रोकने के लिए उद्योग करें, और इस घटना से लाभ उठाएँ कि पिछली शरत् ऋतु में जो गंभीर संकट उपस्थित हुआ था, और जो अब दब गया है और आगे और दब सकता है, तो मैं समझता हूँ कि हम शांति की संभावना को भली प्रकार बढ़ा सकते हैं। जहाँ तक हमारा संबंध है हमें ऐसा करने की कोशिश करनी चाहिए। दूसरे संघर्ष हैं—चाहे वे बर्लिन में हों, चाहे यूरोप में, चाहे दूसरी जगहों में। इनके अतिरिक्त, दुनिया में दो और प्रश्न हैं, जिन्हें संतोषजनक रीति से हल न किया गया तो वह बड़े पैमाने पर संघर्ष उत्पन्न कर सकते हैं। इन में से एक तो वह है जिसकी मिसाल इंडोनीशिया है, यानी एक देश द्वारा दूसरे देश पर आधिपत्य। जब तक यह आधिपत्य जारी रहता है,—चाहे वह एशिया में हो, चाहे अफ्रीका में— तब तक वहाँ शांति नहीं हो सकती है। लोगों के मन में भी निरंतर संघर्ष, और एक दूसरे के प्रति निरंतर संदेह बना रहेगा और यूरोप के प्रति एशिया के मन में बराबर अविश्वास बना रहेगा और इस लिए एशिया और यूरोप के बीच जो मैत्री का संबंध होना चाहिए, वह सहज में न स्थापित हो सकेगा। अतएव यह आवश्यक है कि औपनिवेशिक आधिपत्य के इन क्षेत्रों को मुक्त किया जाय, और वे स्वतंत्र देशों के रूप में कार्य कर सकें।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है जातिगत समानता की। यह भी संसार के कुछ भागों में, जैसा आप जानते हैं, सामने आ गई है। उदाहरण के लिए दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के प्रश्न को ले लीजिए। यह एक ऐसा विषय है जिससे कि सबका संबंध है। यह भारतीयों या दक्षिण अफ्रीकावालों का ही प्रश्न नहीं है, बल्कि यह संसार के लिए एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है, क्योंकि यह भी संसार की एक दशा का प्रतीक है। अगर यह संसार में बना रहता है तो संघर्ष, बड़े पैमाने पर संघर्ष अनिवार्य है, क्योंकि यह बड़ी संख्या में दुनियाँ के लोगों के आत्म सम्मान के प्रति एक निरंतर चुनौती है, और वह इसे सहन न करेंगे। इसलिए यह विषय संयुक्त राष्ट्र के सामने है और मैं आशा करता हूँ कि संयुक्त राष्ट्र इसे हल करने में सहायक होंगे। लेकिन इसमें तनिक भी संदेह नहीं हो सकता कि अगर ऐसी नीति संयुक्त राष्ट्र से बिलकुल अलग चलती है, तो यह संघर्ष उत्पन्न करेगी। और यह संघर्ष दक्षिण अफ्रीका के या दूसरी जगह के विशिष्ट क्षेत्रों तक न सीमित रहेगा; इसका असर विशाल महाद्वीपों के लोगों पर भी होगा।

तीसरे विषय के संबंध में, अर्थात् आर्थिक नीति के बुनियादी विषय के संबंध में, मैं विवेचन नहीं करूँगा—यह बहुत बड़ा विषय है। मैं केवल इसके बारे में यह कहना चाहूँगा कि जहाँ तक मैं देखता हूँ दुनिया में आगे बढ़ने का आज एक मात्र ढंग यह है कि हर एक देश को अनुभव करना चाहिए कि दूसरे देश की आर्थिक नीति में उसका हस्तक्षेप उचित नहीं। अन्त में वे नीतियाँ सफल होंगी जो अपने को हितकर सिद्ध करेंगी, जो ऐसा नहीं करतीं वह सफल न होंगी। दूसरे देशों की नीतियों में हमलावर तरीके से हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति अनिवार्य रूप से झगड़े पैदा करती है। हमें यह अनुभव करना चाहिए कि आज संसार में विभिन्न प्रकार की आर्थिक नीतियाँ चल रही हैं, और उनमें उन देशों के लोगों का विश्वास है। तो फिर एक ही बात करने को रह जाती है, वह यह कि उन्हें अपने-अपने भाग्य का निश्चय करने के लिए छोड़ दिया जाय। हो सकता है कि इनमें से एक, एक नीति को समर्थन करता है, दूसरा दूसरी नीति को। यह भी हो सकता है कि तीसरा एक मध्यमार्ग का अनुसरण करता है। जो कुछ होना है, भविष्य दिखाएगा। जो भी हो, तात्पर्य यह है कि हमें इस आधार पर चलना चाहिए कि प्रत्येक देश अपने भीतरी मामलों में जैसा वह चाहता है करने के लिए स्वतंत्र रहे। बलपूर्वक आर्थिक नीति को बदलने का या किसी आंतरिक नीति को बदलने का, कोई भी प्रयत्न, या उस पर दबाव का नतीजा जवाबी दबाव के रूप में सामने आवेगा और उससे निरंतर संघर्ष होगा।

भाषण समाप्त करने से पूर्व क्या मैं एक बात और कहूँ? हम 'एक संसार' के पक्ष में प्रयत्न कर रहे हैं और यातायात के साधनों और दूसरी चीजों के फलस्वरूप हम एक दूसरे के निकटतर आ रहे हैं। हम एक दूसरे के विषय में पहले की अपेक्षा कहीं अधिक जानते हैं। फिर भी मेरी धारणा है कि हमारा एक दूसरे के विषय में ज्ञान अद्भुत रूप से छिछला है, और हम अपनी बड़ी या छोटी लीकों में पड़े हुए यह कल्पना करते हुए जान पड़ते हैं— हर एक देश ऐसी कल्पना करता हुआ जान पड़ता है— कि हम कमोबेश संसार के केंद्र हैं, और जो कुछ भी हमारे अतिरिक्त है वह किनारे की चीज है, और यह कि हमारा रहने का ढंग ही ठीक ढंग है और दूसरों के रहने का ढंग या तो बुरा ढंग है, या पागलपन का ढंग है या किसी प्रकार पिछड़ा हुआ ढँग है। मैं समझता हूँ कि यह आदमियों की एक आम कमजोरी है कि वे खयाल करें कि वे ही सही रास्ते पर हैं और दूसरे गलती पर हैं। गलत या सही होने की बात अलग रक्खी जाय, तो यह हो सकता है कि दोनों सही हों या दोनों गलती पर हों; हर हालत में, जहाँ तक लोगों के रहने के ढंग का संबंध है, न केवल यूरोप, अमरीका, एशिया और अफ्रीका के बीच अन्तर हो सकते हैं, बल्कि एक ही महाद्वीप के भीतर भी अन्तर हो सकते हैं। यूरोप और अमरीका की, चूंकि वह आधिपत्य रखने वाले देश हैं और उनकी एक प्रबल संस्कृति रही है, यह प्रवृत्ति रही है कि रहन-सहन के ढंग जो उनसे भिन्न हैं, वे उनकी दृष्टि में लाजिमी तौर पर घटिया हैं। वे घटिया हैं या नहीं मैं

नहीं जानता, अगर वे घटिया हैं तो संभवतः वहीं के लोग उन्हें बदल देंगे। लेकिन एक देश का दूसरे को इस प्रकार देखने का ढंग बहुत त्रुटिपूर्ण है, और बहुत बुद्धिमानी नहीं प्रदर्शित करता, क्योंकि यह संसार एक बहुरंगी स्थल है। भारत में भी, हमारी सारी संस्कृति इस बात की साक्षी है कि हम मनुष्य मात्र की विविधता को समझते हैं, लेकिन विविधता और विभिन्नता के होते हुए भी एकता पर जोर देते हैं। संसार एक बहुत विविधतापूर्ण स्थल है, और व्यक्तिगत रूप से मैं कोई वजह नहीं देखता कि हम उस पर एक तरह की पाबंदी लगाएं। और फिर भी लोगों के विचारों की यह प्रवृत्ति है, कि उस पर पाबंदी लादें और एक ही विशेष नमूने पर उसे ढालें। हो सकता है कि भारत का दृष्टिकोण अपने सारे जीवन-दर्शन के कारण हो। अपने सीमित दृष्टिकोण और त्रुटियों के कारण हम जो भी करें, हमारा एक विशेष दर्शन रहा है, जो कि 'स्वयं जीवित रहो और दूसरों को जीने दो', इस प्रकार का जीवन-दर्शन है। हममें दूसरे लोगों के दृष्टिकोण या विचारों को बदलने की कोई खास इच्छा नहीं है। हम हर एक से बहस करने और उसे समझाने के लिए तैयार हैं, पर मानना न मानना दूसरे के हाथ है, और अगर वह अपने रास्ते जाना चाहता है, तो भी हम प्रसन्न हैं। अगर वह हमारे मार्ग में हस्तक्षेप करता है तो हमें बिल्कुल प्रसन्नता नहीं होती। जान-पड़ता है दूसरे दर्शन यह चाहते हैं कि आदमी उन्हीं के ढंग पर विचार और काम करने के लिए मजबूर हो, और इससे संघर्ष होता है; इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि कदाचित् मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह एक ठीक ढंग भी नहीं है।

इसलिए अगर हम समझ लेते हैं कि यह संसार विविधता का एक क्षेत्र है, और इसमें रहने, काम करने, विचार करने के जुदा-जुदा ढंग हैं, तो हमें दुनिया की बुराई को दूर करने की कोशिश करनी तो चाहिए, पर संसार की विविधता को बने रहने देना चाहिए। इसमें एकता लानेवाली काफी प्रबल शक्तियाँ काम कर रही हैं और संभावना है कि यह एकता उत्पन्न हो और विविधता कदाचित कम हो। यह दुर्भाग्य की बात होगी अगर यह विविधता किसी दिन बिल्कुल उठ जाय और हम सब एक तरह के ढांचे में ढाल दिए जायँ; इसकी कल्पना ही भयानक है। अगर ऐसा होता है, तो जो लोग तब जीवित होंगे वे अपने समय की समस्याओं का सामना करेंगे। हममें से अधिकतर उस समय जीवित न होंगे। मैं अनुमान करता हूँ कि यदि हम इस रूप में देखें, तो देश आपस में एक दूसरे को कहीं अधिक समझने लगेंगे।

विदेशों से आए हुए अपने कुछ मित्रों को यहाँ आकर भले उपदेश देते हुए देखकर हमें आश्चर्य होता है, और हम यह जानते हुए कि जो उपदेश हमें दिए जा रहे हैं वे लाजिमी तौर पर बहुत बुद्धिमानी के नहीं हैं, हम उन्हें धैर्य से सुन लेते हैं; और उपदेश देने का तरीका भी शायद बहुत बुद्धिमानी का नहीं होता; न उससे विचार

की किसी गहराई का पता चलता है, क्योंकि अपनी सब कमजोरियों के बावजूद हम एक बहुत प्राचीन लोग हैं, और हम कई हजार साल के मानवी अनुभव से गुजरे हैं; हमने बहुत बुद्धिमत्ता भी देखी है और बहुत मूर्खता भी और हमारे चारों ओर उस बुद्धिमत्ता और उस मूर्खता दोनो ही के चिन्ह दिखाई देते हैं। हमें बहुत कुछ सीखना है, और बहुत कुछ हम सीखेंगे; और शायद बहुत कुछ सीखी हुई बातें हमें भुलानी भी हैं। लेकिन आश्चर्य की बात कि लोग बिना यह समझे हुए कि हम क्या हैं, हमें सुधारने का प्रयत्न करते हैं। हमें इस पर विशेष आपत्ति नहीं है, लेकिन इससे अधिक सहायता नहीं मिलती। अब, यही बात हम पर भी लागू होती है, क्योंकि हम भी दूसरों को सुधारने की बात सोचते रहते हैं। मैं चाहूँगा कि हम सभी दूसरों को सुधारने के विचार को छोड़ दें और उसके बदले में अपने को सुधारें। धन्यवाद।

भारत और राष्ट्रमंडल

एक दैवी और ऐतिहासिक निर्णय

लंदन में राष्ट्रमंडल (कामनवेल्थ) के प्रधान मंत्रियों की बैठक में भाग लेने के बाद मैं तीन दिन हुए दिल्ली लौटा हूँ। यह उचित ही है कि मैं इस बैठक का हाल आपको बताऊं जिसके परिणामस्वरूप एक महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक निर्णय हुआ है। इस निर्णय को संविधान सभा के सामने उसकी स्वीकृति प्राप्त करने के लिए रखना होगा। इस पर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी भी विचार करेगी, जो इन अनेक वर्षों से भारतीय स्वतंत्रता की मशालवाहक रही है। इन महान और प्रतिनिधि संग-ठनों का कार्य होगा कि जो कुछ मैंने और औरों ने लंदन में पिछले महीने में किया, उस पर अंतिम निर्णय दें।

आपने उस घोषणा को पढ़ ही लिया है, जिसमें लंदन की बैठक में किए गए निर्णय समाविष्ट हैं। मेरे वापस आने के बाद मुझ पर जो प्रभाव पड़ा है, वह यह है कि हमारे यहाँ के बहुसंख्यक लोगों ने इस निर्णय का स्वागत किया है, यद्यपि कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन्होंने बड़ी कड़ी भाषा में जो कुछ मैंने किया, उसकी आलोचना की है यहां तक कि इसे "एक महान भूल" और "भारतीय जनता की राष्ट्रीय भावना पर अत्याचार" कहा है। भारत की सेवा की काफी लंबी अवधि में मुझपर भूल और गलती करने के अक्सर आरोप हुए हैं, लेकिन अब तक मुझ पर यह इलजाम नहीं लगा है कि मैंने कोई काम ऐसा किया है जो कि भारत और उसके लोगों के आत्म सम्मान और प्रतिष्ठा के विरुद्ध रहा हो। इसलिए यह एक गंभीर बात है, अगर थोड़े से लोग भी, जिनकी सम्मति का मैं आदर करता हूँ, ऐसा समझते हैं कि मैंने अत्याचार किया।

मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि मुझे अपने मन में तनिक भी संदेह नहीं है कि जो भी प्रतिज्ञायें मैंने अपने करोड़ों देश-वासियों के साथ भारत की स्वतंत्रता के संबंध में पिछले बीस या अधिक वर्षों में की हैं उन पर मैं शब्दशः और भाव में दृढ़ रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि भारत की प्रतिष्ठा या हित को हानि पहुंचाना तो दूर रहा, जो कार्य मैंने लंदन में किया उसने उस प्रतिष्ठा को ज्वलंत और दीप्तिमान् बनाए रक्खा और संसार में उसके पद को बढ़ाया है।

यद्यपि आलोचक थोड़े ही हैं, फिर भी मैं उन्हीं को संबोधित करूंगा, न कि उन बहुसंख्यक लोगों को जो अपना समर्थन प्रकट कर चुके हैं। मैं केवल यही

नई दिल्ली से १० मई, १९४९ को प्रसारित एक वार्ता।

कल्पना कर सकता हूँ कि आलोचक किसी भ्रम में पड़े हैं या उन को यह सन्देह है कि गोपनीय रूप से कोई और बात हुई है, जो प्रकाश में नहीं आई है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि गोपनीय रूप में कोई भी बात नहीं हुई है और अपनी पूर्ण सत्ता या अपनी आन्तरिक या विदेशी नीति को राजनीतिक आर्थिक या सैनिक क्षेत्र में सीमित करने वाली किसी बात पर किसी प्रकार से हम बचनबद्ध नहीं हैं। अपनी विदेशी नीति के संबंध में मैंने अकसर यह घोषणा की है कि वह सभी देशों के साथ शांति और मैत्री पूर्ण व्यवहार की है और किसी भी शक्ति गुट में सम्मिलित न होने की है। हमारी नीति की आधारशिला अब भी यही है। हम दलित राष्ट्रों की स्वतंत्रता और जातिगत भेदभाव का अन्त करने के पक्ष में हैं। मुझे विश्वास है कि पूर्ण सत्ताधारी भारतीय गणतंत्र, कामनवेल्थ के अन्य देशों से स्वतंत्रतापूर्वक संपर्क रखता हुआ , इस नीति के अनुसरण में पूरी तरह मुक्त होगा, शायद पहले से अधिक मात्रा में और अधिक प्रभाव रखते हुए।

बहुत समय हुए हमने पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति की प्रतिज्ञा की थी। हमने उसे प्राप्त कर लिया है। क्या एक राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता दूसरे देश से मैत्री करके खो देता है ? मैत्रियाँ साधारणत: दो पक्षों को आपस में प्रतिज्ञाबद्ध करती हैं। कामनवेल्थ के सत्ताधारी राष्ट्रों के स्वतंत्र साहचर्य के अन्तर्गत ऐसी कोई प्रतिज्ञाबद्धता नहीं है। इसकी शक्ति ही इसके लचीलेपन में और इसकी पूरी स्वतंत्रता में है। यह अच्छी तरह मालूम है कि किसी भी सदस्य राष्ट्र के लिये यदि वह चाहे तो उससे अलग हो जाने का मार्ग खुला है।

यह याद रखना चाहिये कि कामनवेल्थ किसी अर्थ में एक अतिराज्य या ऊपर से लादा गया राज्य नहीं है । हमने राजा को इस स्वतंत्र सहयोग का एक प्रतीक रूप प्रमुख स्वीकार किया है। लेकिन कामनवेल्थ में राजा के पद के साथ उसका कोई कृत्य नहीं है, जहाँ तक भारतीय विधान का संबंध है, उसमें राजा के लिये कोई स्थान नहीं है, और उनके प्रति हमारी कोई राजनिष्ठा न होगी ।

स्वभावत: मैंने भारत के हित का ध्यान किया है, क्यों कि यह मेरा पहला कर्तव्य है। मैंने इस कर्तव्य की कल्पना सदा संसार के हित के विस्तृत प्रसंग में की है। यही पाठ है जो कि हमारे आचार्य ने हमें सिखाया है, और उन्होंने हमें यह भी बताया है कि भारत की स्वतंत्रता और सम्मान पर सदा दृढ़ रहते हुए हमें शांति और दूसरों से मैत्री का मार्ग ग्रहण करना चाहिये। आज संसार संघर्षों से भरा हुआ है, और क्षितिज में विपत्ति का धूमिल आभास हो रहा है। मनुष्यों के हृदयों में व्याप्त घृणा, भय और संदेह से उनकी निगाहों पर बादल छाए हैं। इसलिये इस खिंचाव को कम करने के लिये जो भी पग आगे बढ़ाया जा सकता है, उसका स्वागत होना चाहिये। मैं समझता हूँ कि भविष्य के लिये यह शुभ सूचक है कि

भारत और इंग्लिस्तान के बीच का पुराना झगड़ा इस मैत्रीपूर्ण ढंग से दूर हो, जो दोनों ही देशों के लिये सम्मानपूर्ण हो। संसार में इतनी विच्छेदकारक शक्तियाँ यों ही हैं, ऐसी सूरत में हमें अपना भार और अधिक विच्छेद उत्पन्न करने के पक्ष में डालना उचित न होगा, साथ ही किसी भी अवसर का, जो पुराने घावों के भरने में और सहयोग के लक्ष्य को अग्रसर करने में सहायक होता है, स्वागत होना चाहिये।

मैं जानता हूँ कि राष्ट्रमंडल (कामनवेल्थ) के कुछ भागों में बहुत-सी ऐसी बातें हो रही हैं जो हमारे लिये अप्रिय है, और जिसके विरुद्ध हम अब तक लड़े हैं। यह ऐसा प्रश्न है जिसे कि हम पूर्ण सत्ताधारी राज्य की भाँति निबटावेंगे। जिन चीजों को अलग-अलग रखना चाहिये, उन्हें हम एक में न मिलावें।

अतीत काल में भारत का यह विशेष सौभाग्य रहा है कि वह अनेक संस्कृतियों के आपस का मिलनक्षेत्र बना। हो सकता है वर्तमान और भविष्य में यह उसका विशेष सौभाग्य हो कि वह युद्धप्रवृत्त दलों के बीच का पुल बने और आज और भविष्य के लिये सब से आवश्यक चीज —संसार की शांति—की स्थापना में सहायक हो। इसी आशा से कि भारत ज्यादा प्रभावपूर्ण ढंग से शांति और स्वतंत्रता को प्रोत्साहित करने वाली नीति अनुसरण करेगा और दुनिया की कड़वी नफरतों और खिचावों को कम कर सकेगा, मैंने खुशी से लंदन के समझौते को स्वीकार किया। लंदन में प्रधान मंत्रियों के सम्मेलन में जो निर्णय हुए, उनका मैंने इस विश्वास में समर्थन किया कि वह हमारे देश और संसार के लिये ठीक निर्णय हैं। मैं आशा करता हूँ कि भारत के लोग भी इसी प्रकाश में उन्हें देखेंगे और उसे भारत की प्रतिष्ठा और संस्कृति के अनुकूल ढंग से, और अपने भविष्य में पूरा विश्वास रखते हुए उन्हें स्वीकार करेंगे। संसार के इतिहास के इस संकट काल में, व्यर्थ के विवाद में हमारी अपनी शक्ति का व्यय करना उचित नहीं, बल्कि अच्छा हो कि हम आज के आवश्यक कार्यों पर अपना ध्यान केंद्रित करें, जिससे कि भारत बड़ा और शक्तिशाली बने, और ऐसी स्थिति में हो कि एशिया और संसार के कार्यों में कल्याणकारी भाग ले सके।

यह नए प्रकार का साहचर्य

निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित करने का मुझे सम्मान प्राप्त है:—

"निश्चय हुआ कि यह संसद, इस प्रस्ताव से, भारत के प्रधान मंत्री द्वारा स्वीकृत, भारत के कामनवेल्थ अव् नेशन्स के सदस्य बने रहने की घोषणा को, जिस रूप में वह कामनवेल्थ के प्रधान मंत्रियों की, लंदन में होने वाली कान्फ्रेंस के अन्त में २७ अप्रैल, १९४९ को प्रकाशित शासकीय विज्ञप्ति में दी गई है, प्रमाणित करती है।"

इस घोषणा की प्रतियाँ सभी माननीय सदस्यों को मिल चुकी हैं, इसलिये मैं इसे फिर नहीं पढूंगा। मैं केवल बहुत संक्षेप में इस घोषणा की कुछ मुख्य बातें बताऊँगा। यह चार अनुच्छेदों का एक छोटा और सादा लेख है। पहला अनुच्छेद, जैसा कि देखा जायगा, वर्तमान वैधानिक स्थिति के संबंध में है। यह ब्रिटिश कामनवेल्थ अव् नेशन्स का और इस बात का कि कामनवेल्थ के लोग राजा के प्रति समान रूप से निष्ठा स्वीकार करने के लिये आबद्ध हैं, निर्देश करता है। विधान के अनुसार यह वर्तमान स्थिति है।

इस घोषणा के बाद का अनुच्छेद यह बताता है कि भारत सरकार ने राष्ट्रमंडल देशों की अन्य सरकारों को यह सूचना दी है कि भारत शीघ्र एक संपूर्ण सत्ताधारी गणराज्य होने जा रहा है, और यह कि वह राष्ट्रमंडल (कामनवेल्थ अव् नेशन्स) की अपनी पूर्ण सदस्यता, राजा को स्वतंत्र साहचर्य का एक प्रतीक मान कर, बनाये रखना चाहती है।

तीसरा अनुच्छेद कहता है कि अन्य राष्ट्रमंडलीय देश इसे स्वीकार करते हैं, और चौथा अनुच्छेद यह कहने के अनन्तर समाप्त होता है कि ये सभी देश कामनवेल्थ अव् नेशन्स के स्वतंत्र और बराबरी वाले सदस्यों के रूप में सम्मिलित बने रहेंगे। आप देखेंगे कि जहाँ पहले अनुच्छेद में इसे ब्रिटिश कामनवेल्थ अव् नेशन्स कहा गया है, बाद के अनुच्छेद में इसे केवल कामनवेल्थ अव् नेशन्स कहा है। यह भी आप देखेंगे कि जहाँ पहले अनुच्छेद में राजा के प्रति निष्ठा का प्रश्न है, जैसा कि इस समय है, बाद में निश्चय ही यह प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि भारत गणराज्य होकर राज्य पद के क्षेत्र से बिल्कुल बाहर हो जाता है। कामनवेल्थ के संबंध में

कामनवेल्थ के निर्णय को प्रमाणित करने के संकल्प को उपस्थित करते हुए संविधान परिषद् नई दिल्ली में १६ मई, १९४९ को दिया गया भाषण।

राजा का, इस साहचर्य के प्रतीक के रूप में, निर्देश हुआ है। ध्यान दीजिये कि निर्देश राजा का है, राज्य पद का नहीं, यह छोटी सी बात है, लेकिन इसका एक विशेष महत्त्व है। लेकिन तात्पर्य यह है कि जहां तक भारतीय गणराज्य का संबंध है, उसके विधान और संचालन का संबंध है, उसका किसी बाहरी अधिकारी या राजा से संबंध नहीं, और उसकी कोई प्रजा राजा या किसी बाहरी अधिकारी में निष्ठा रखने के लिये आबद्ध नहीं है। लेकिन गणराज्य कुछ और देशों से, जो राजतंत्र हैं या जैसे भी हैं, स्वेच्छापूर्वक साहचर्य रखने की स्वीकृति दे सकता है। इसलिये यह घोषणा यह कहती है कि भारत का नया गणराज्य, पूर्ण सत्ताधारी होते हुए भी और राजा के प्रति निष्ठा के लिये बिना उस रूप में आबद्ध हुए, जिस रूप में कि अन्य कामनवेल्थ देश आबद्ध हैं, इस कामनवेल्थ का पूरा सदस्य बना रहेगा और यह स्वीकार करता है कि राजा इस मुक्त साझेदारी बल्कि साहचर्य का प्रतीक माना जायगा।

मैं इस घोषणा को इस माननीय सदन के समक्ष उसके अनुमोदन के लिये रखता हूँ। इस अनुमोदन से भिन्न, इसके अनुसार किसी विधान के निर्माण का प्रश्न नहीं उठता। कामनवेल्थ के पीछे कोई विधान नहीं है। इसके साथ वह औपचारिकता भी नहीं है जो साधारणतः संधियों के साथ होती है, यह स्वतंत्र सम्मति से किया हुआ समझौता है, जिसे स्वतंत्र सम्मति से अन्त किया जा सकता है। इसलिये यदि यह सभा इसका अनुमोदन कर देती है तो उसके बाद कोई अन्य कानून बनाने की ज़रूरत नहीं है। इस घोषणा में राजा की स्थिति के संबंध में कुछ बहुत विशेष नहीं कहा गया है, सिवाय इसके कि वे एक प्रतीक होंगे। यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया गया है—और पहले भी स्पष्ट कर दिया गया था—कि राजा के कोई कर्तव्य न होंगे। उन्हें एक विशेष पद प्राप्त है। अगर मैं कह सकता हूँ तो स्वयं कामनवेल्थ एक संस्था नहीं है; उसका कोई संगठन नहीं जिसके द्वारा वह कार्य करे, और राजा के भी कोई कर्तव्य नहीं है।

अब इससे कुछ परिणाम निकलते हैं। सिवाय इसके कि एक दूसरे के प्रति मैत्रीपूर्ण पहुँच हो, सिवाय इसके कि सहयोग की इच्छा हो—जो सदा इस बात पर निर्भर करेगा कि प्रत्येक पक्ष अपनी नीति का अनुसरण करते हुए किस मात्रा में सहयोग करना निश्चय करता है—कोई पाबन्दी नहीं है। प्रतिज्ञाबद्ध होने के रूप में कोई पाबन्दी नहीं है। लेकिन, ऐसी चीज उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है जो कि बिल्कुल नई है; और मैं एक ओर विधान शास्त्रियों का एक ऐसी वस्तु के प्रति किंचित् विचलित होना समझ सकता हूँ, जिसकी कि कोई मिसाल या नज़ीर नहीं। कुछ और लोग ऐसे भी हो सकते हैं, जो अनुभव करते हों कि इसके पीछे कोई ऐसी बात हो सकती है जिसे कि वे ठीक समझ नहीं रहे हैं, कोई

जोखिम या खतरे की बात, क्योंकि प्रत्यक्ष में तो यह बहुत सीधी-सादी चीज़ है। लोगों के मन में ऐसा सन्देह उठ सकता है। जो बात मैंने दूसरी जगह कही है, यहां उसे ही दुहराना चाहूँगा। जो कुछ सभा के सामने रक्खा गया है उसके अतिरिक्त इसके पीछे बिल्कुल कोई चीज़ नहीं है।

दो एक बातें मैं स्पष्ट कर दूँ, जिनकी कि इस घोषणा में चर्चा नहीं हुई है। इनमें से एक जैसा मैंने कहा है, यह है कि राजा का कोई भी कार्य नहीं है। हमारी कार्यवाही के बीच में यह स्पष्ट कर दिया गया था; और निश्चय ही लन्दन में कांफ्रेंस के कार्य-विवरण में दर्ज कर लिया गया है। दूसरी बात यह थी कि इस प्रकार के कामनवेल्थ साहचर्य के उद्देश्यों में एक ऐसी अवस्था की सृष्टि करना है, जो बिल्कुल विदेशी और राष्ट्रीय होने के बीच की चीज़ हो। यह स्पष्ट है कि कामनवेल्थ के देश विभिन्न राष्ट्रों के हैं। ये विभिन्न जाति के हैं। साधारणतः आप या तो राष्ट्रीय हैं या विदेशी। इनके बीच का कोई दर्जा नहीं। अब तक इस कामनवेल्थ या ब्रिटिश कामनवेल्थ अव् नेशन्स को आपस में बांधने वाली कड़ी राजा के प्रति निष्ठा थी। इसलिए इस कड़ी के रहते हुए, एक अर्थ में, एक मोटे ढंग की सम राष्ट्रीयता थी। वह टूट जाती है, हमारे गणराज्य होने के साथ समाप्त हो जाती है; और अगर हमारी इच्छा इन देशों में से किसी को विशेष सुविधा देने की या उससे रियायत करने की हो, तो साधारणतः ऐसा करने में हमारे लिए बाधा उत्पन्न होगी, क्योंकि "सब से अधिक कृपापात्र राष्ट्र सम्बन्धी धारा" के अनुसार हर एक देश उतना ही विदेशी होगा जितना कि कोई और देश। अब हम उस विदेशीपन को दूर करना चाहते हैं, और जो विशेष सुविधा या रियायत हम दूसरे देश को दे सकते हैं, उसे अपने हाथ में रखना चाहते हैं। यह मामला बिल्कुल दो देशों के आपस में सन्धि या समझौते द्वारा निर्णय करने का है, इस तरह हम एक नई स्थिति उत्पन्न करते हैं—या हम उत्पन्न करने की कोशिश करते हैं—यह कि दूसरे देश, यद्यपि एक अर्थ में विदेशी हैं, फिर भी बिल्कुल विदेशी नहीं हैं। मैं ठीक-ठीक नहीं जानता कि इस विषय को आगे चल कर हम किस रूप में निबटाएँगे। यह इस भवन के निर्णय का विषय होगा—अर्थात् अगर हम चाहें तो कुछ सुविधाओं और रियायतों के संबंध में, कामनवेल्थ देशों से व्यवहार करने के अधिकार, और केवल अधिकार को ग्रहण करना। ये क्या होंगे, इसका निर्णय बेशक हम प्रत्येक मामले में स्वयं करेंगे। इन बातों को छोड़ कर कोई बात गुप्त रीति से या अन्य प्रकार से ऐसी नहीं हुई है, जो जनता के सामने नहीं रख दी गई है।

इस भवन को स्मरण होगा कि एक मंज़िल पर कामनवेल्थ की नागरिकता की कुछ बातचीत थी। अब यह समझना कठिन था कि कामनवेल्थ की नागरिकता का क्या पद होगा, सिवाय इसके कि इसके अर्थ यह होते कि सदस्य एक दूसरे के प्रति

बिल्कुल विदेशी नहीं हैं। वह गैर-विदेशीपन बना रहता है, लेकिन मैं समझता हूं कि यह अच्छा हो कि हम एक अस्पष्ट चीज़ के विषय में जिसकी निश्चय ही परिभाषा नहीं हो सकती बात करना छोड़ दें, लेकिन दूसरी बात, जैसा मैंने अभी बताया है, बनी रहती है। यह कि इसका अधिकार हम अपने पास रक्खें कि अगर हम किसी समय उसका उपयोग करना चाहें और कामनवेल्थ देशों से परस्पर विशेष सुविधा या रियायत पाने के लिए संधि या समझौता करना चाहें, तो कर सकते हैं।

मैंने संक्षेप में इस सभा के सामने यह लेख रख दिया है। यह एक सीधा-सा लेख है और फिर भी जैसा कि यह सभा जानता है यह बहुत ही महत्व का लेख है, बल्कि यह कि इसमें जो विषय अन्तर्गत है वह बड़े और ऐतिहासिक महत्व का है। मैं इस कान्फ्रेंस में कुछ सप्ताह हुए, भारत के प्रतिनिधि के रूप में गया था। मैंने अपने सहयोगियों से बेशक यहां पहले से परामर्श कर लिया था, क्योंकि यह एक बड़ी ज़िम्मेदारी की बात थी, और जब कि भारत के भविष्य की बाज़ी लगी हुई हो, कोई आदमी इतना बड़ा नहीं जो अकेले इस ज़िम्मेदारी को अपने कन्धों पर ले सके। कई महीने पहले से हम लोगों ने आपस में इस पर परामर्श किया था, बड़े और प्रतिनिधि रूप संगठनों से परामर्श किया था, इस सभा के बहुत से सदस्यों से परामर्श कर लिया था। फिर भी जब मैं गया तो मैं यह ज़िम्मेदारी लेकर गया और इसके बोझ का अनुभव करता रहा। मुझे सलाह देने के लिए सुयोग्य साथी थे, लेकिन भारत के प्रतिनिधि के रूप में मैं ही अकेला था, और एक अर्थ में उस क्षण के लिए भारत का भविष्य मेरी रखवाली में था। इस अर्थ में मैं अकेला था, और फिर भी बिल्कुल अकेला न था, क्योंकि जब मैं हवाई मार्ग से यात्रा कर रहा था और जब मैं कान्फ्रेंस की मेज़ पर बैठा था, मेरे जीवन के अनेक अतीत दिनों की प्रेतात्माएं मुझे घेरे हुए थीं और एक के बाद एक चित्र मेरे सामने उपस्थित कर रही थीं, जो प्रहरियों और अभिभावकों की भांति मेरी निगरानी कर रही थीं और शायद मुझ को जता रही थीं कि कहीं फिसल कर मैं गिर न पड़ूं या उन्हें भूल न जाऊँ। मुझे स्मरण आया उस दिन का, जैसा कि बहुत से माननीय सदस्य भी स्मरण करेंगे, जब कि १९ वर्ष पहले रावी नदी के तट पर आधी रात के समय हमने एक प्रतिज्ञा की थी और मैंने पहली बार याद किया २६ जनवरी को, और कठिनाइयों और रुकावटों के बावजूद प्रति-वर्ष बार-बार दुहराई जाने वाली प्रतिज्ञा का स्मरण किया और अन्त में मैंने उस दिन की याद की जब कि इसी जगह से मैंने इस सभा के सामने एक प्रस्ताव रक्खा था। इस माननीय भवन के सामने सर्व प्रथम आने वाले प्रस्तावों में से वह एक था, और वह प्रस्ताव "ध्येय विषयक प्रस्ताव" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। तब से दो वर्ष और पांच महीने बीत चुके हैं। उस प्रस्ताव में यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि किस प्रकार की स्वतन्त्र सरकार या कैसा गणराज्य हम चाहते हैं। बाद में एक दूसरे स्थान पर, और एक प्रसिद्ध अवसर पर यह विषय भी विचार के लिए सामने

आया। यह कांग्रेस के जयपुर के अधिवेशन की बात है, क्योंकि न केवल मेरा दिमाग वल्कि और बहुत से दिमाग इस समस्या से आन्दोलित थे, और ऐसा मार्ग निकाल लेने के प्रयत्न में थे कि भारत के सम्मान, प्रतिष्ठा और स्वातंत्र्य के अनुरूप कोई हल निकल आवे, जो कि बदलते हुए संसार के साथ और वस्तु स्थिति से भी मेल खाता हो। कोई हल जो भारत के हित को आगे बढ़ाए, हमारी मदद करे, संसार की शान्ति के लिए हितकर हो, साथ ही जो हमारी प्रत्येक प्रतिज्ञा के बिल्कुल और पक्की तरह अनुकूल हो। यह मेरे लिए स्पष्ट था कि कामनवेल्थ या किसी और वर्ग के साहचर्य से जो भी लाभ हो, कोई भी नाम ऐसा नहीं, वह चाहे जितना बड़ा हो, जिसे कि अपनी प्रतिज्ञाओं के किञ्चिन्मात्र अंश को छोड़कर खरीदा जा सके, क्योंकि कोई देश अपने घोषित सिद्धान्तों के साथ खिलवाड़ करके उन्नति नहीं कर सकता। इसलिए इन महीनों में हमने विचार किया और आपस में परामर्श किया, और जो सलाह मुझे मिली, वह सब लेकर मैं गया। कांग्रेस के जयपुर अधिवेशन में जो प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था, उसे, आप को स्मरण दिलाने के लिए, शायद मैं पढ़ सुनाऊँ, तो अच्छा हो। इसमें आपकी रुचि होगी और मैं आप से अनुरोध करूँगा कि इसकी शब्दावली पर आप ठीक-ठीक विचार करें।

"पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति और भारत में गणराज्य की स्थापना की दृष्टि से, जो स्वतंत्रता का प्रतीक होगा और भारत को संसार के राष्ट्रों में वह सम्मानपद दिलाएगा, जिसका कि वह अधिकारी है, उसके संयुक्त राज्य (ब्रिटेन) और कामनवेल्थ आफ नेशन्स से वर्तमान सम्बन्ध में आवश्यक रूप से परिवर्तन होना अनिवार्य है। तथापि भारत दूसरे देशों से ऐसे सम्बन्ध बनाए रखना चाहता है, जो उसके कार्य-स्वातंत्र्य और स्वतंत्रता में बाधक न हों, और कांग्रेस कामनवेल्थ के स्वतंत्र राष्ट्रों के साथ, सामान्य हित में और विश्व शान्ति की उन्नति के लिए उसके स्वतंत्र साहचर्य का स्वागत करेगा।"

आप देखेंगे कि इस प्रस्ताव की अन्तिम कुछ पंक्तियां प्रायः वही हैं जो कि लन्दन की घोषणा की हैं।

अब तक की अपनी सभी प्रतिज्ञाओं से परिचालित और नियंत्रित होकर और अन्त में इस माननीय सभा के प्रस्ताव से, ध्येय सम्बन्धी प्रस्ताव से और उसके बाद जो कुछ हुआ, उससे और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के इस प्रस्ताव में दिए गए आदेश से परिचालित और नियंत्रित होकर मैं वहां गया; और आज आपके सामने पूरी विनम्रता से यह कहने के लिए खड़ा हूँ कि मैंने शब्दशः आदेश को पूरा किया है। हम में से सभी पिछले बहुत वर्षों में अन्धेरे पथ से गुज़रे हैं; हम लोगों ने अपने जीवन विरोध करने में, युद्ध करने में, कभी जीत और कभी हार में बिताए हैं, और

हम में से अधिकतर इन स्वप्नों और अतीत की कल्पनाओं से, और उन आशाओं से जो हमें अनुप्राणित करती थीं और उन विफलताओं से जो कि इन आशाओं के बाद होती थीं, अब भी अभिभूत हैं। फिर भी हमने देखा है कि विफलताओं और निराशाओं के चुभते हुए कांटों के बीच से हम सिद्धि के गुलाब को चुन सके हैं।

जो घटनाएं बीत चुकी हैं और अब मौजूद नहीं हैं उनकी दृष्टि से स्थिति पर वचार करके हमको गुमराह होने से बचना चाहिए। आप देखेंगे कि कांग्रेस का जोप्रस्ताव मैंने पढ़कर सुनाया है उसमें यह स्पष्ट है कि चूंकि भारत गणतंत्र हो रहा है, इसलिए भारत और कामनवेल्थ के सम्बन्ध में परिवर्तन होना चाहिए। आगे वह यह भी कहता है कि स्वतंत्र साहचर्य बना रह सकता है, शर्त यह है कि हमारी पूर्ण स्वतंत्रता सुनिश्चित रहे। अब लन्दन की इस घोषणा में ठीक यही बात करने का प्रयत्न हुआ है मैं आप से या किसी माननीय सदस्य से यह पूछता हूँ कि भारत की आजादी और स्वतंत्रता किञ्चिन्मात्र भी किस प्रकार सीमित हुई है। मैं नहीं समझता कि ऐसा हुआ है। वास्तव में न केवल भारत की स्वतंत्रता पर, बल्कि कामनवेल्थ के प्रत्येक राष्ट्र की स्वतंत्रता पर, अधिक से अधिक ज़ोर दिया गया है।

मुझसे अक्सर पूछा जाता है कि एक ऐसे कामनवेल्थ में, जिसमें जातिगत-भेदभाव बरता जाता है, जिसमें और बातें होती रहती हैं जिन पर हम आपत्ति करते हैं, हम कैसे शरीक हो सकते हैं। मैं समझता हूँ यह एक उचित प्रश्न है, और यह एक ऐसा मामला है जो आवश्यक रूप से हमारे विचार को आंदोलित करेगा। फिर भी, यह ऐसा प्रश्न है जो वास्तव में उठता नहीं। तात्पर्य यह है कि जब हम किसी राष्ट्र या राष्ट्रों के वर्ग से मित्रता करते हैं तो इसका यह अर्थ नहीं होता कि हम उनकी और नीतियों को स्वीकार करते हैं, इसका यह अर्थ नहीं होता कि जो कुछ वह करें हम उससे बंध जाते हैं। वास्तव में यह सभा जानता है कि हम या हमारे देशवासी इस समय संसार के विविध भागों में जातिगत भेदों के विरुद्ध युद्ध करने में लगे हुए हैं।

यह सभा जानता है कि पिछले कुछ वर्षों में, संयुक्त राष्ट्रों के सामने जो बड़े प्रश्न रहे हैं उनमें भारत की प्रेरणा से, एक प्रश्न दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों की स्थिति का रहा है। सदन की आज्ञा से, एक क्षण के लिये, क्या मैं कल की एक घटना की चर्चा करूं, अर्थात् संयुक्त राष्ट्रों की साधारण सभा में स्वीकृत प्रस्ताव का, और जिस रूप में इस विषय में हमारे प्रतिनिधि मंडल ने कार्य किया है उसकी श्लाघा करूं और संयुक्त राष्ट्रों के उन सभी राष्ट्रों की श्लाघा करूं—जिनमें कि दक्षिण अफ्रीका को छोड़कर प्राय: सभी हैं—जिन्होंने कि भारत के रुख का समर्थन किया? हमारी वैदेशिक नीति का एक आधार स्तंभ, जिसकी कि बार-बार चर्चा हो चुकी है यह है कि जातिगत भेदभावों का विरोध किया

जाय और दलित राष्ट्रों की स्वतंत्रता के लिये लड़ा जाय। कामनवेल्थ में बने रह कर क्या आप इस प्रश्न पर पीछे हट रहे हैं? दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों के प्रश्न पर और अन्य प्रश्नों पर, यद्यपि हम अब तक कामनवेल्थ के आधिपत्य में रहे हैं, हम अब भी लड़ते आये हैं। इस विषय को कामनवेल्थ के क्षेत्र में ले आना एक भयावह बात होगी। क्योंकि तब ठीक वही बात जिस पर कि आप और हम आपत्ति करते हैं, घटित हो सकती है, अर्थात्, कामनवेल्थ को एक प्रकार की उच्चतर संस्था मान लें, जो कभी-कभी न्यायाधीश का या सदस्य राष्ट्रों पर निरीक्षण का कार्य करती है। उसका निश्चय ही यह अर्थ होता कि हमारी स्वतंत्रता और सर्वोपरि सत्ता में कमी आती—यदि हमने उस सिद्धांत को एक बार स्वीकार कर लिया होता। इसलिये, हम इसके लिये तैयार नहीं हैं कि कामन-वल्थ को इस रूप में स्वीकार करें, या कामनवेल्थ के सामने कामनवेल्थ राष्ट्रों के झगड़े ही लावें। हम लोग बेशक मैत्रीपूर्ण ढंग से इस मामले पर विचार-विनि-मय कर सकते हैं, यह अलग बात है। हम कामनवेल्थ के अन्य देशों में अपने देश-वासियों की स्थिति की रक्षा करने के लिये चिंतित हैं। जहां तक हमारा संबंध है, हम उनकी घरेलू नीतियों पर वहां आपत्ति नहीं उपस्थित कर सकते, न हम किसी देश के बारे में कह सकते हैं कि हम चूंकि उस देश की कुछ नीतियों को नापसन्द करते हैं, इसलिये हम उससे संपर्क नहीं रक्खेंगे।

अगर हम यह रुख ले लें, तो मुझे भय है कि हमारा किसी देश से भी कदाचित ही कोई संबंध बना रह सके, इसलिये कि हमने उस देश द्वारा की हुई किसी न किसी बात को नापसन्द किया है। कभी-कभी ऐसा होता है कि मतभेद इतना बढ़ जाता है कि या तो आप उस देश से संबंध तोड़ देते हैं या संघर्ष होता है। कुछ वर्ष हुए संयुक्त राष्ट्रों की साधारण सभा ने अपने सदस्य राष्ट्रों से यह सिफारिश करने का निश्चय किया कि वह स्पेन से अपने अपने राजदूतों को वापस बुला लें, क्योंकि स्पेन को एक फासिस्ट देश समझा गया। इस प्रश्न के गुण-दोष में मैं नहीं जाना चाहता। कभी-कभी इस रूप में प्रश्न सामने आता है। यह प्रश्न फिर सामने आया और उन्होंने अपने पूर्व निर्णय को पलट दिया और प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को यह स्वतंत्रता दे दी कि वह जैसा उचित समझे करे। यदि आप इस तरह चलते हैं तो किसी भी बड़े या छोटे देश को ले लीजिये : सोवियत संघ की सभी बातों से आप सहमत नहीं, इसलिये हम वहां प्रतिनिधि क्यों भेजें या व्यापार-वाणिज्य संबंधी किसी तरह की मित्रता की संधि उससे क्यों करें? आप संयुक्त राष्ट्र अम-रीका की कुछ नीतियों से असहमत हो सकते हैं, इसलिये आप उनसे संधि नहीं कर सकते। राष्ट्रों के काम करने का, या कोई भी काम करने का, यह तरीका नहीं है। मेरी समझ में, इस दुनिया में वह पहली चीज जिसे कि हमें समझना चाहिये यह है कि विचार के विविध ढंग हैं, रहन-सहन के विविध ढंग हैं, और

संसार के विविध भागों में जीवन के प्रति दृष्टिकोण विविध हैं। हमारी अधिकांश मुसीबतें इस कारण होती हैं कि कोई एक देश अपनी इच्छा, अपने रहन-सहन का ढंग, दूसरे देशों पर लादना चाहता है। यह सही है कि कोई भी देश अलग-अलग होकर नहीं रह सकता, क्योंकि आज का संसार इस प्रकार निर्मित है कि वह अधिकाधिक एक संगठित रूप ग्रहण कर रहा है। अगर कोई देश जो अलग-अलग रह रहा हो, ऐसी बात करता है जिससे कि दूसरे देशों को खतरा हो, तो दूसरे देशों को हस्तक्षेप करना पड़ता है। एक स्पष्ट उदाहरण देता हूं अगर कोई देश अपने को सभी तरह के भयानक रोगों का उत्पादन-क्षेत्र बन जाने देता है, तो दुनिया को हस्तक्षेप करके उसे साफ करना पड़ेगा, क्योंकि वह यह नहीं होने दे सकती कि रोग सारी दुनिया में फैले। इस विषय में एक ही निरापद सिद्धांत हो सकता है, वह यह कि कुछ सीमाओं को स्वीकार करते हुए, हर एक देश को अपने ढंग से अपना जीवन व्यतीत करने की स्वतंत्रता हो।

इस समय संसार में कई विचार धाराएं हैं, और इन विचारधाराओं के परिणामस्वरूप बड़े संघर्ष होते हैं। कौन सी ठीक है, कौन सी गलत, इस पर हम फिर विचार कर सकते हैं, हो सकता है कि इन सब से कोई भिन्न वस्तु ही ठीक हो। अगर आप एक बड़ा संघर्ष, एक बड़ी लड़ाई नहीं चाहते, जिसमें कि इस या उस राष्ट्र की जीत हो तो आपको उन्हें अपने-अपने प्रदेशों में शांतिपूर्वक रहने देना पड़ेगा और उन्हें अपने विचार, अपने रहन-सहन, अपने राज्य के ढांचे के विषय में स्वतंत्र छोड़ देना पड़ेगा, और कौन अन्त में ठीक है इस बात को घटनाओं को निश्चित करने देना होगा। मुझे कोई भी संदेह नहीं कि अन्त में वही प्रथा जीवित रहेगी जो अपनी उपयोगिता सिद्ध करके दिखा देती है,—वह सिद्ध इस तरह से कर सकती है कि मनुष्य जाति की या उस विशेष देश के लोगों की उन्नति और तरक्की हो—और चाहे सिद्धांत की जितनी बकबक हो, चाहे जितने युद्ध हों, वह पद्धति जो अपनी उपयोगिता सिद्ध करके नहीं दिखाती, जीवित नहीं रह सकती। मैं इसकी चर्चा इसलिये कर रहा हूँ कि इस प्रकार का तर्क उपस्थित किया गया था कि भारत कामनवेल्थ में इसलिये शरीक नहीं हो सकता कि वह कामनवेल्थ राष्ट्रों की कुछ नीतियों को नापसन्द करता है। मैं समझता हूँ कि हमें इन दो बातों को बिल्कुल अलग-अलग रखना चाहिये।

हम कामनवेल्थ में स्पष्टतया इसलिये सम्मिलित होते हैं कि यह हमारे लिये और संसार के कुछ उद्देश्यों के लिये जिन्हें कि हम अग्रसर करना चाहते हैं, हितकर है। कामनवेल्थ के और देश इसलिये चाहते हैं कि हम उसमें बने रहें कि वे समझते हैं कि ऐसा उनके हित में होगा। आपस में यह समझी हुई बात है कि ऐसा साहचर्य कामनवेल्थ के राष्ट्रों के लिए हितकर है, इसलिये वे सम्मि-

लित होते हैं। साथ ही, यह बात बिल्कुल स्पष्ट कर दी गई है कि हर एक देश अपने मार्ग पर जाने के लिये स्वतंत्र हैं, यह हो सकता है कि वह कभी-कभी इतनी दूर चले जाय कि कामनवेल्थ से संबंध विच्छेद कर लें। आज की दुनिया में, जहाँ इतनी विच्छेदकर शक्तियां काम कर रही हैं, जहां हम अक्सर युद्ध की सन्निकट सीमा पर रहते हैं, मैं समझता हूं कि जो कोई साहचर्य भी मौजूद हो उसे तोड़ने का प्रोत्साहन देना निरापद नहीं है। उसके बुरे अंश को तोड़िए, आप की वृद्धि के मार्ग में जो कोई वस्तु बाधक होती हो, उसे तोड़िए, क्योंकि कोई चीज जो एक राष्ट्र की वृद्धि के मार्ग में बाधक होती हो, उसे स्वीकार करने का कोई साहस नहीं कर सकता। नहीं तो, किसी भी साहचर्य के बुरे हिस्सों को तोड़ने से अलग यह ज्यादा अच्छा है कि एक सहयोगी संबंध को, जिससे संसार की भलाई हो सकती है, बनाये रक्खा जाय, न कि तोड़ा जाय।

अब यह घोषणा जो कि आपके सामने रक्खी गई है कोई नई कार्रवाई नहीं है, और फिर भी, एक ऐसी वस्तु का, जो अब तक बिल्कुल दूसरे रूप में रही है, यह एक नई दिशा में प्रवर्तन है। मान लीजिये कि इंग्लिस्तान से हमारा संबंध बिल्कुल टूट गया होता, और उसके बाद हम पुनः कामनवेल्थ अव् नेशन्स में सम्मिलित होना चाहते, तो वह एक नई कार्रवाई होती। मान लीजिये कि राष्ट्रों का कोई नया दल चाहता कि हम उसके साथ सम्मिलित हों, तब यह एक नई कार्रवाई होती, और उसके विविध परिणाम होते। इस अवसर पर, जो हो रहा है वह यह है कि एक विशेष साहचर्य काफी समय से अस्तित्व में रहा है। उस साहचर्य के ढंग में, लगभग एक वर्ष और आठ-नौ महीने से, १५ अगस्त, १९४७ से, एक बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। अब एक दूसरे बड़े परिवर्तन का विचार हो रहा है। क्रमशः धारणा बदल रही है। फिर भी वह एक खास कड़ी दूसरे रूप में बनी रहती है। अब, राजनैतिक दृष्टि से हम पूर्णतया स्वतंत्र हैं। आर्थिक दृष्टि से हम उसी प्रकार स्वतंत्र हैं जिस प्रकार कि कोई स्वतंत्र राष्ट्र हो सकता है। कोई भी सौ-प्रतिशत स्वतंत्र नहीं हो सकता, इस अर्थ में कि परस्परिक निर्भरता रह ही न जाय। फिर भी भारत को, अपने व्यापार के लिये, अपने वाणिज्य के लिये, बहुत और सी चीजें जिनकी उसे जरूरत है उनके लिये शेष संसार पर निर्भर रहना पड़ता है, और आज दुर्भाग्य से उसे अपने आहार के लिये भी, और दूसरी चीजों के लिये निर्भर रहना पड़ रहा है। हम दुनिया से बिल्कुल अलग होकर नहीं रह सकते। अब, यह सदन जानता है कि पिछले सौ बल्कि अधिक वर्षों से अनिवार्य रूप से इंग्लिस्तान और इस देश के बीच अनेक प्रकार के संपर्क हुए, उनमें से बहुत से बुरे थे, बहुत बुरे थे, और उनका अन्त करने में हमने अपनी जिन्दगियां खपा दीं। बहुत से सम्पर्क उतने बुरे नहीं हैं, बहुत से अच्छे हो सकते हैं, और बहुत से, चाहे वे अच्छे हों चाहे बुरे, अब भी बने हुए हैं। यहाँ पर मैं स्वयं इन संपर्कों की एक स्पष्ट मिसाल

हूँ, जो कि इस माननीय सदन के सामने अंग्रेजी में बोल रहा हूँ। निस्संदेह हम अपने व्यवहार की भाषा को बदलने जा रहे हैं, फिर भी यह बात अपनी जगह पर है कि मैं ऐसा कर रहा हूँ, और बहुत से सदस्य जो बोलेंगे वे भी ऐसा करेंगे। यह भी एक तथ्य है कि हम यहाँ जर कुछ नियमों और पाबन्दियों को स्वीकार करते हुए अपना कार्य संचालन कर रहे हैं जो ब्रिटिश विधान को आदर्श मान कर ग्रहण की गई है। जो कानून कि आज चल रहे हैं, वे अधिकांश में उनके बनाये हुए हैं। क्रमशः हम इनमें से अच्छे कानूनों को बने रहने देंगे और जो खराब हैं उन्हें फेंक देंगे। यदि कोई अकस्मात् परिवर्तन किया जाय और रिक्त स्थान की पूर्ति न हो तो वह अहितकर होगा। हमारे शिक्षा संगठन पर इन संपर्कों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। इन्हीं बातों का हमारे फौजी संगठन पर गहरा प्रभाव पड़ा है और उसका स्वाभाविक विकास ब्रिटिश सेना के अनुरूप हुआ है। अगर हम उसको बिल्कुल छोड़ देते हैं और दूसरे प्रकार से उसके संचालन का प्रबंध नहीं करते तो परिणाम यह होता है कि एक व्यवधान उपस्थित होता हैं। बेशक, यदि हम उसका मूल्य चुकाना चाहते हैं, तो हम ऐसा करें, हम अगर मूल्य नहीं चुकाना चाहते तो हम न चुकाएं और परिणाम का सामना करें।

लेकिन प्रस्तुत विषय के संबंध में हमें न केवल इन छोटे लाभों पर विचार करना है, जिनकी मैंने अभी आपसे चर्चा की है बल्कि अगर मैं कह सकता हूँ, तो संसार की समस्याओं के प्रति एक अधिक विस्तृत दृष्टिकोण से विचार करना है। जब मैं वहां लंदन में दूसरी सरकारों के प्रतिनिधियों से विचार विनिमय कर रहा था, तब मैंने अनुभव किया कि भारत गणतंत्र की पूर्ण स्वतंत्रता और सर्वोपरि सत्ता पर मुझे अनिवार्य रूप से पूरी तरह दृढ़ रहना है। किसी विदेशी शासन के प्रति निष्ठा स्वीकार करके कोई समझौता करना मेरे लिए असंभव था। मैंने यह भी अनुभव किया कि संसार की जैसी हालत है और भारत और एशिया की जैसी हालत है, उसे देखते हुए यह अच्छा होगा कि अगर हम इस प्रश्न पर मैत्रीभाव से पहुंचने का प्रयत्न करें, जिससे एशिया की और दूसरी समस्याओं का हल हो सके। मुझे भय है मैं सौदा करने में अच्छा नहीं हूँ। मैं बाजार के तरीकों में अभ्यस्त नहीं हूँ। मैं आशा करता हूँ कि मैं अच्छा योद्धा हूँ, और मैं आशा करता हूँ कि मैं अच्छा मित्र हूं। मैं इन दोनों के बीच का कुछ नहीं हूँ, और इसलिए जब आपको किसी विषय में बहुत मोल तोल करना हो तो आप मुझे न भेजा करें। जब आप लड़ना चाहें तो मैं आशा करता हूँ कि मैं लड़ सकूंगा, और जब आप किसी बात का निश्चय कर लें तो उस पर डटे रहें, मरते दम तक डटे रहें, लेकिन छोटी बातों के बारे में मैं समझता हूँ कि यह कहीं बेहतर है कि दूसरे पक्ष की हम सत्कामना प्राप्त करें। यह कहीं अधिक मूल्यवान है कि हम मैत्रीभाव से और सत्कामना के साथ किसी निर्णय पर पहुंचें बजाय इसके कि सत्कामना खोकर जहाँ-तहाँ एक शब्द में अपनी जीत करें।

इस प्रकार मैंने इस समस्या को देखा। और क्या मैं बताऊं कि दूसरों के विषय में मैंने क्या अनुभव किया ? मै ब्रिटेन के प्रधान मंत्री की प्रशंसा करना चाहूंगा, और दूसरों की भी, क्योंकि उन्होंने भी इसी भावना से इस समस्या को देखा, इस दृष्टि-कोण से नहीं कि विवाद के विषय में किसी बात पर उनकी जीत हो जाय या घोषणा में जहाँ-तहाँ एकाध शब्द बदल दिये जायं। यह संभव था कि यदि मैं जी तोड़ प्रयत्न करता तो इस घोषणा में जहाँ-तहाँ एकाध शब्द बदल जाते, लेकिन उसके सार में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता था क्योंकि उस घोषणा से जो सिद्ध होता है उससे अधिक हमें सिद्ध नहीं करना था। मैंने ऐसा करना पसंद नहीं किया क्योंकि मैंने यह प्रभाव—और मैं आशा करता हूँ कि ठीक प्रभाव–डालना पसंद किया कि भारत का दृष्टिकोण इन तथा संसार की अन्य समस्याओं के प्रति संकीर्णता का नहीं है। यह दृष्टिकोण ऐसा है जो उसकी अपनी शक्ति और उसके अपने भविष्य के प्रति विश्वास और आस्था पर आधारित है और इसलिए उसे भय नहीं कि कोई देश इस विश्वास को डिगा सकेगा, वह किसी लेख के किसी शब्द या वाक्यांश से भयभीत नहीं, बल्कि उसका निर्णय मूलतया इस बात पर आधारित है कि यदि आज किसी देश के प्रति मैत्री भाव, सत्कामना और उदारता दिखाते हैं, तो वैसा ही दूसरा भी करेगा, और कदाचित् वह और भी उदार व्यवहार करेगा। मुझे पूरा विश्वास है कि जिस तरह व्यक्तियों के साथ व्यवहार में होता है, उसी तरह राष्ट्रों के साथ व्यवहार में भी अर्थात् सत्कामना प्रदर्शित करने पर ही आपको सत्कामना प्राप्त हो सकेगी, और आप चाहे जितनी चतुराई दिखाइये या षड़यंत्र कीजिये बुरे तरीकों के अच्छे परिणाम नहीं निकलेंगे। इसलिए मैंने सोचा कि यह केवल इंग्लिस्तान को प्रभावित करने का अवसर नहीं है बल्कि औरों को भी, वास्तव में कुछ हद तक सारे संसार को प्रभा-वित करने का अवसर है, क्योंकि जिस विषय पर १० नम्बर डाउनिंग स्ट्रीट में विचार हो रहा था, वह ऐसा था, जिस पर कि सारे संसार की निगाहें थीं। इसने संसार का ध्यान कुछ तो इसलिए आकर्षित किया कि भारत एक बहुत महत्व रखनेवाला देश है, प्रच्छन्न रूप से और वस्तुतः भी और संसार की दिलचस्पी इस बात को देखने में थी कि यह अत्यन्त जटिल और कठिन समस्या, जो जान पड़ती थी हल न हो सकेगी, कैसे हल होती है। अगर हम उसे प्रख्यात विधान शास्त्रियों पर छोड़ देते तो यह हल न हो पाती। जीवन में विधान शास्त्रियों की उपयोगिता है; लेकिन सब जगह उनकी पहुंच न होनी चाहिये। यह समस्या उन संकीर्ण मन वाले राष्ट्रवादियों द्वारा भी हल नहीं हो सकती थी, जो दाहिने या बायें देख सकने में असमर्थ हैं, बल्कि अपने ही संकीर्ण क्षेत्र में रहते हैं, और इसलिए भूल जाते हैं कि संसार आगे बढ़ रहा है। यह उन लोगों द्वारा भी नहीं हल हो सकती थी जो कि अतीत में लिपटे रहते हैं। और इस बात का अनुभव नहीं करते कि वर्तमान अतीत से भिन्न है, और भविष्य उससे और भी भिन्न होने जा रहा है। यह किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा नहीं हल हो सकती थी, जिसका कि भारत में और भारत के भविष्य में विश्वास नहीं है।

मैं चाहता था कि संसार देखे कि भारत में आत्म विश्वास की कमी नहीं है, और भारत उन लोगों से भी सहयोग करने को तैयार है, जिनसे कि वह अब तक लड़ाई कर रहा था, शर्त यह है कि आज के सहयोग का आधार सम्मानपूर्ण हो, यह आधार स्वतंत्र हो, और यह आधार ऐसा हो जिससे केवल हमारा नहीं बल्कि संसार का भी भला हो सकता है। तात्पर्य यह कि हम सहयोग से केवल इसलिए इन्कार नहीं करेंगे कि अतीत में हमारी किसी पक्ष से लड़ाई रही है, और इस तरह पिछले कर्म की लकीर पीटते रहें। हमें बीते हुए समय की बुराइयों को धो डालना है। मैं चाहता था, अगर मैं पूरी विनम्रता से ऐसा कह सकता हूँ कि संसार को चीजों के प्रति एक नई दृष्टि परम्परा में देखने का अवसर दूँ, बल्कि यह प्रयत्न करके देखने का अवसर दूँ कि महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को किस तरह देखना और हल करना चाहिये। संसार की सभाओं में जो विवाद में चलते रहते हैं, हमने एक कटु दृष्टिकोण पाया है, एक दूसरे को बुरा भला कहते पाया है, और दूसरे पक्ष को समझने की नहीं, बल्कि जानबूझ कर उसकी बातों का गलत अर्थ लगाने की और चतुरता-पूर्वक तर्क प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति पाई है। अब, हममें से कुछ के लिए यह कार्य संतोषजनक प्रतीत हो सकता है– यह कि कुछ अवसरों पर चतुराई की बात निकाल लें, और अपने लोगों की या दूसरे लोगों की प्रशंसा प्राप्त कर लें। लेकिन संसार की आज जो हालत है, उसमें किसी भी जिम्मेदार व्यक्ति का ऐसा करना, एक घटिया बात होगी,–जबकि हम भीषण युद्धों की निकट आशंका में रह रहे हैं, जबकि राष्ट्रीय आवेग जगे हुए हैं, और जबकि यों ही कहा गया एक शब्द भी स्थिति में महान परिवर्तन ला सकता है।

कुछ लोगों का ख्याल है कि हमारे कामनवेल्थ अव नेशन्स में सम्मिलित होने से या बने रहने से हम अपने एशियाई पड़ोसियों से दूर हो रहे हैं या हमारे लिए और देशों से दुनिया के बड़े देशों से सहयोग करना कठिन हो गया है। लेकिन मैं समझता हूँ कि कामनवेल्थ में रहते हुए और देशों के साथ निकटतर संपर्क का विकास कर लेना जितना आसान है, उतना दूसरी तरह न होता। यह कहना एक अजीब बात है। फिर भी मैं ऐसा कहता हूँ, और मैंने इस विषय पर बहुत विचार किया है। कामनवेल्थ दूसरे [illegible] मैत्री या सहयोग करने के हमारे मार्ग में बाधक नहीं है। निर्णय अन्त में हमें ही करना होगा, और वह निर्णय हमारी शक्ति पर निर्भर करेगा। अगर हम अपने को कामनवेल्थ से पृथक कर लेते हैं तो तत्काल हम बिलकुल अलग-अलग हो जाते हैं। हम बिलकुल अलग-अलग बने नहीं रह सकते, इसलिए अनिवार्य रूप से परिस्थितियों के दबाव में, हमें किसी न किसी दिशा में झुकना पड़ेगा। लेकिन वह किसी दिशा में झुकना लाजिमी तौर पर आदानप्रदान के आधार पर होगा। यह संधि के रूप में हो सकता है, आप कुछ चीज दें और कुछ बदले में प्राप्त करें। दूसरे शब्दों में, जितनी हमारी वर्तमान वाग्बद्धता है, वह उससे अधिक हो

सकती है। आज तो हमारी कुछ भी वाग्बद्धता नहीं। इसी अर्थ में मैं कहता हूँ कि दूसरे देशों से मैत्रीपूर्ण समझौता करने के लिए आज हम अपेक्षाकृत ज्यादा स्वतंत्र हैं, और अगर आप चाहें तो यह कह लें कि हम और देशों के बीच आपस का समझौता करने के लिए सेतु-रूप में अपना कार्य करने के लिए भी अधिक स्वतंत्र हैं। इस बात को मैं बहुत बढ़ा कर नहीं कहना चाहता; फिर भी, इसे बहुत घटा कर कहने में भी कोई लाभ नहीं। मैं चाहूंगा कि आप आज की दुनिया पर चारों ओर नजर दौड़ायें, और विशेषकर पिछले लगभग दो वर्षों में भारत और शेष दुनिया की सापेक्ष स्थिति पर विचार करें। मैं समझता हूं, आप को यह ज्ञात होगा कि इस दो वर्ष या इससे कम समय में, भारत राष्ट्रों की तराजू में अपने प्रभाव और प्रतिष्ठा में बढ़ गया है। मेरे लिए यह बताना कुछ कठिन है कि ठीक-ठीक भारत ने क्या किया है या क्या नहीं किया है। किसी के लिए भी यह आशा करना बे-मतलब होगा कि भारत संसार के सभी ध्येयों के पक्ष में लड़ाई छेड़ दे और कुछ कर दिखावे। जिन मामलों में उसे सफलता मिली है, यह कोई छतों पर चढ़ कर घोषणा करने की बात नहीं है। लेकिन जिस बात को प्रकट करने की आवश्यकता है, वह भारत की संसार के मामलों में प्रतिष्ठा तथा प्रभाव की है। यह ख्याल करते हुए कि वह स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में अभी डेढ़ साल या कुछ अधिक समय से क्षेत्र में आया है, भारत ने जो कार्य किया है वह आश्चर्यजनक है।

मैं एक बात और कहना चाहूंगा। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की घोषणा में या उस प्रस्ताव में जो कि मैंने सभा के सामने रखा है, संशोधन की गुंजाइश नहीं है। या तो यह स्वीकार किया जाता है, या यह गिर जाता है। मुझे आश्चर्य होता है यह देख कर कि कुछ माननीय सदस्यों ने संशोधन के प्रस्तुत करने की सूचना दी है। किसी विदेशी शक्ति से हुई संधि को आप स्वीकार कर सकते हैं या अस्वीकार कर सकते हैं। यह आठ-या नौ देशों की सम्मिलित घोषणा है। यह स्वीकार की जा सकती है या अस्वीकार की जा सकती है। इसलिए, मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि इस विषय में सब पहलुओं पर विचार कीजिये। पहले तो इस बात पर अपना संतोष कर लीजिये कि यह हमारी पुरानी प्रतिज्ञाओं के अनुकूल है, और उनमें से किसी को तोड़ना नहीं है। यदि यह बात मुझ पर सिद्ध कर दी जाती है कि यह हमारी किसी प्रतिज्ञा को तोड़ती है, या किसी रूप में यह भारत की स्वतंत्रता को सीमित करती है, तो निश्चय ही इसे स्वीकार करने में मेरा कोई हाथ न होगा। दूसरे, आपको देखना चाहिये कि इससे हमारा और दुनिया का भला होता है या नहीं। मैं समझता हूँ इसमें संदेह नहीं हो सकता कि इससे हमारा भला होता है, और इस साहचर्य का हमारे लिए बनाये रखना इस समय लाभदायक है, और यह एक विस्तृत अर्थ में लाभदायक है, अर्थात् कुछ ऐसे लोकव्यापी उद्देश्यों के हित में है जिनका कि हम प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। और अन्त में, अगर मैं इसे नकारात्मक ढंग से कहूं, इस समझौते का न करना निश्चय

ही उन लोकव्यापी उद्देश्यों के लिए और हमारे लिए अहितकर होगा ।

और अन्त में इस विषय में, कहना चाहूंगा कि इस सभा को इस घोषणा का और उस सारी बातचीत का, जिनके परिणाम स्वरूप यह घोषणा हुई है, क्या मूल्य लगाना चाहिये। यह सब एक ऐसे ढंग से हुआ है, वांछनीय ढंग से हुआ है, जिससे कि घाव भर जाते हैं। इस दुनिया में, जो आज रुग्ण है, और जिसके पिछले दस या अधिक साल के अनेक घाव अभी भरे नहीं है, यह आवश्यक है कि हम लोक-व्यापी समस्याओं को आवेश या पक्षपातपूर्ण ढंग से न स्पर्श करें, बल्कि मैत्रीपूर्ण ढंग से, और एक ऐसे स्पर्श के साथ जो कि घाओं को भरे, और मैं समझता हूँ कि इस घोषणा का और उससे पहले जो हुआ उसका मुख्य मूल्य यह था कि इससे हमारे कुछ देशों से संबंधों को एक कोमल स्पर्श प्राप्त हुआ। हम उनके किसी रूप में भी अधीन नहीं है, न वह किसी रूप में हमारे अधीन हैं। हम अपनी राह जायंगे और वह अपनी राह जायंगे। लेकिन हमारे रास्ते, जब तक कि कोई ऐसी ही बात नहीं होती, मैत्री-पूर्ण होंगे; कम से कम एक दूसरे को समझने की, एक दूसरे के साथ मित्रता की, एक दूसरे के साथ सहयोग की कोशिशें होंगी। और यह तथ्य कि हमने जो एक नये प्रकार का साहचर्य आरम्भ किया है, जिसके साथ घावों को भरने वाला कोमल स्पर्श है, हमारे लिए कल्याणकर होगा, उनके लिए कल्याणकर होगा, और मैं समझता हूँ कि संसार के लिए कल्याणकर होगा।

हमने भविष्य को बांध नहीं दिया

यहाँ कल से काफी लम्बा वादविवाद रहा है, और बहुत से माननीय सदस्यों ने इस प्रस्ताव के पक्ष में भाषण दिये हैं। वास्तव में, यदि मैं ऐसा कह सकता हूँ, तो उनमें से कुछ, जिस हद तक मैं जाता, उससे भी आगे गये हैं। उन्होंने कुछ नतीजे ऐसे निकाले हैं, और ऐसे तात्पर्य निर्दिष्ट किये हैं कि मैं तो कम से कम पसंद या स्वीकार करता। फिर भी, हममें से सबको और हर एक को इस बात की स्वतंत्रता है कि भविष्य को अपने-अपने ढंग से देखें।

जहाँ तक कि मेरे इस प्रस्ताव और लंदन में हुई घोषणा का संबंध है, जो हमें देखना है वह यह है : पहले, यह हमारी प्रतिज्ञाओं को पूरा करती है, या कम से कम उनमें से किसी के विरुद्ध नहीं जाती; अर्थात् यह भारत को आगे ले जाती है, या भारत के एक पूर्ण सत्ताधारी स्वतंत्र गणतंत्र के ध्येय तक आगे जाने के मार्ग में बाधक नहीं होती। दूसरे, यह भारत की सहायता करती है, या भारत के त्वरित गति से अगले कुछ वर्षों में, अन्य क्षेत्रों में, उन्नति करने के मार्ग में बाधक नहीं होती। हमने एक अर्थ में राजनैतिक समस्या हल कर ली है, लेकिन राजनैतिक समस्या का देश की आर्थिक स्थिति से घनिष्ठ संबंध है।

अनेक आर्थिक कठिनाइयां हमारा सामना कर रही हैं। निश्चय ही वह हमारी चिंता की बातें हैं, लेकिन स्पष्ट है कि हम जो नीति भी ग्रहण करें, दुनिया हमें उसमें सहायता दे सकती है या बाधा पहुंचा सकती है। क्या यह प्रस्ताव जो कि इस घोषणा के अन्तर्गत है, हमारी शीघ्रतापूर्वक आर्थिक तथा इतर उन्नति में सहायक है ? यह दूसरी कसौटी है। मैं यह स्वीकार करने के लिए तैयार हूं कि बिना बाहरी सहायता के भी हम आगे बढ़ेंगे। लेकिन प्रकट है कि यह अपेक्षाकृत अधिक कठिन कार्य है, और उसमें कहीं अधिक समय लेगा। ऐसा करना सहज नहीं है।

तीसरी कसौटी यह है कि क्या आज की दुनिया में, इससे शान्ति को आगे बढ़ाने में और युद्ध से बचने में, सहायता मिलती है। कुछ लोग इस अथवा उस विशेष दल या गुट को प्रोत्साहन देने की बात करते हैं। मुझे भय है

भारत के 'कामनवेल्थ आफ़ नेशन्स' के अन्तर्गत बने रहने के निश्चय के संबंध में, संविधान संसद्, नई दिल्ली, में १७ मई, १९४९ को होने वाले वादविवाद के उत्तर में दिया गया भाषण।

कि हमारी सबकी यह आदत है कि अपने को या अपने मित्रों को दूध के धुले जैसा समझते हैं, और दूसरों को उसका उल्टा। हम सभी की यह विचार करने की प्रवृत्ति है कि हम उन्नति और जनसत्ता की शक्तियों के पक्ष में खड़े हैं और दूसरे नहीं खड़े हैं। मैं मानूंगा कि भारत और उसके लोगों के विषय में स्वयं गर्व रखते हुए, अब मैं अपनी, उन्नति और हमारे लोकतंत्र के अग्रणी होने की बात चलाने के विषय में अधिक विनम्र हो गया हूँ।

पिछले दो या तीन वर्षों के भीतर हम कठिन समय से गर्व को चूर करने वाले समय से होकर गुजरे हैं। हम उसके बीच होकर गुजर चुके हैं। यह बात हमारे पक्ष की बात है। हमने ऐसा समय पार कर लिया है। लेकिन मैं आशा करता हूँ कि हमने उससे पाठ भी सीखा है। जहाँ तक मेरा संबंध है, मैं इस या उस व्यक्ति, इस या उस राष्ट्र को बुरा कहने में संकोचशील हूँ क्योंकि ऐसे मामलों में कोई व्यक्ति या राष्ट्र दूध का धुला नहीं है। और दूसरे राष्ट्र को अपराधी और युद्ध का उकसाने वाला कह कर उनकी बुराई करने और स्वयं ठीक वैसी ही बात करने की प्रवृत्ति बहुत बढ़ गई है।

अगर कोई व्यक्ति संसार पर चारों ओर दृष्टि डालता है—बेशक, आदमी किन्हीं नीतियों के पक्ष में होता है—तो वह कुछ चीजों का विरोधी होता है और समझता है कि ये भयावह हैं और इनसे युद्ध छिड़ सकता है, लेकिन दूसरी चीजें ऐसी नहीं है। लेकिन सबसे आश्चर्यजनक बात जो मुझे जान पड़ती है वह यह है कि अगर आप पिछले ३० या अधिक वर्षों को देखें, जिनमें दो युद्धों और उनके बीच का काल आ जाता है, तो आप वही नारे उठाते हुए पावेंगे—जो परिवर्तित स्थिति के साथ अवश्य कुछ बदलते रहे हैं, फिर भी वही नारे हैं— वही दृष्टिकोण है, वही भय और संदेह का वातावरण है, वही सबका सशस्त्र होना है और युद्ध का आना है। वही चर्चा कि यह अंतिम युद्ध है, लोकतंत्र के पक्ष में युद्ध है, और इसी प्रकार की और बातें सब तरफ सुनाई पड़ती हैं। और फिर युद्ध समाप्त होता है, लेकिन संघर्ष बने रहते हैं और युद्ध की वही तैयारियां होती हैं। फिर दूसरा युद्ध होता है। अब यह एक बड़ी विचित्र बात है, क्योंकि मुझे विश्वास है कि इस विस्तृत संसार में शायद ही कोई युद्ध चाहता हो, सिवाय कुछ लोगों के या दलों के, जो कि युद्ध से नफा कमाते हैं,

कोई व्यक्ति और कोई देश युद्ध नहीं चाहता। ज्यों-ज्यों युद्ध अधिकाधिक भीषण होता जाता है त्यों-त्यों लोग उसे और भी कम चाहते हैं। फिर भी कोई अतीत पाप या कर्म या होनहार लोगों को एक विशेष दिशा में, रसातल की ओर ढकेल रहा है, और वह उन्हीं तर्कों में पड़े हुए हैं, और कठपुतलों की भांति उसी प्रकार के अंग विक्षेप का प्रदर्शन कर रहे हैं।

क्या हमारे भाग्य में भी यही करना लिखा है? मैं नहीं जानता लेकिन जैसे भी हो, मैं युद्ध की चर्चा और युद्ध की तैयारी की प्रवृत्ति के विरुद्ध लड़ना

चाहता हूँ। यह स्पष्ट है कि कोई भी देश और किसी भी देश की सरकार, अपने देश को, अनिश्चित घटनाओं के लिए, अतत्पर रखने का साहस न करेगी। दुर्भाग्यवश, जब तक कि हममें उतनी वीरता नहीं कि महात्मा गांधी के निर्दिष्ट पथ पर चल सकें, तब तक हमें अपने को तैयार रखना पड़ेगा। अगर हममें पर्याप्त वीरता है तो ठीक है। हम जैसा भी अवसर पड़ेगा देखेंगे। मुझे इस बात का विश्वास है कि अगर हममें पर्याप्त वीरता है तो यह नीति ठीक नीति होगी। लेकिन यह मेरे साहस या आपके साहस का प्रश्न नहीं है, बल्कि देश के साहस का प्रश्न है कि वह इस नीति का अनुसरण कर सकेगा और उसे समझ सकेगा। मैं नहीं समझता कि हम ज्ञान और आचरण के उस स्तर पर पहुंचे हैं। वास्तव में, जब हम उस स्तर की बात चलावें, तो मुझे कहना चाहिये कि पिछले डेढ़ वर्षों में हम इस देश में आचरण के सबसे नीचे स्तर तक गिर गये हैं। इसलिए महात्मा जी का नाम हमें व्यर्थ न लेना चाहिये। अस्तु, हम ऐसा नहीं कर सकते; कोई सरकार यह कह कर कि हम शान्ति के पक्ष में हैं, कुछ न करे, ऐसा नहीं हो सकता। हमें सतर्क रहना है और अपनी पूरी सामर्थ्य से तैयार रहना है। हम किसी दूसरी सरकार को जो ऐसा करती है, दोषी नहीं ठहरा सकते, क्योंकि यह एक अनिवार्य पेशबन्दी है जो आदमी को करनी पड़ती है। लेकिन इससे अलग। ऐसा जान पड़ता है कि कुछ सरकारें इससे बहुत आगे जाती हैं। वह निरंतर युद्ध की चर्चा करती रहती हैं। वह दूसरे पक्ष पर निरंतर दोषारोपण करती रहती हैं। वह यह सिद्ध करने का प्रयत्न करती हैं कि दूसरा पक्ष बिल्कुल गलती पर है और युद्ध उकसाने वाला है, आदि, आदि। वास्तव में वह उन्हीं स्थितियों को उत्पन्न करते हैं, जिनसे युद्ध हो जाते हैं। शान्ति की या अपने शान्ति प्रेम की बात करते हुए हम अथवा वह वही स्थितियां उत्पन्न कर देते हैं, जिनसे कि पहले युद्ध छिड़े हैं। वह परिस्थितियां, जिनसे कि अन्त में युद्ध छिड़ता है, साधारणतया आर्थिक संघर्षों की होती हैं। लेकिन मैं नहीं समझता कि आज यह आर्थिक संघर्ष है, या कि राजनैतिक संघर्ष है जिनके कारण युद्ध होगा, बल्कि यह छाया हुआ भय है, जो इसका कारण बन सकता है; इस बात का भय कि दूसरा पक्ष हमें पराभूत करेगा, यह भय कि दूसरा पक्ष अपनी शक्ति क्रमशः बढ़ा रहा है और इतना शक्तिशाली हो जायगा कि उसका कोई मुकाबला न कर सकेगा। और इसलिए हरएक पक्ष भीषण से भीषण शस्त्रों से अपने को सुसज्जित करता जा रहा है। मुझे खेद है कि मैं इस विषयांतर में पड़ गया।

हम आज की इस प्रमुख दुरवस्था का कैसे सामना करें? कुछ लोग एक दल में सम्मिलित हो सकते हैं जिसका कि ध्येय शान्ति है, दूसरे लोग दूसरे दल में शरीक हो सकते हैं, जिसका उद्देश्य भी उनके कथनानुसार कोई दूसरे प्रकार की शान्ति या उन्नति है। लेकिन अपने मन में मुझे पक्का विश्वास है कि इस तरह किसी दल में सम्मिलित होकर मैं शान्ति के उद्देश्य को पूरा नहीं करता। इससे भय का वातावरण

और गहरा ही हो जाता है। तब हमें क्या करना चाहिये ? मैं निष्क्रिय बैठने में या पलायनवाद की नीति का अवलम्बन करने में विश्वास नहीं रखता। आप भाग कर बच नहीं सकते। आपको समस्या का सामना करना ही होगा, और डट कर उसे हल करने की कोशिश करनी होगी। इसलिए जो लोग यह समझते हैं कि हमारी नीति निष्क्रिय अस्वीकृति की या पागलपन की नीति है, वे भूल करते हैं। इस विषय में मेरे ऐसे विचार कभी नहीं रहे हैं। मैं समझता हूँ कि हमारी एक निश्चित और सक्रिय नीति है और होनी चाहिये। अर्थात् लोगों के मन में युद्ध के पक्ष में जो साधारण प्रवृत्ति है, उसे दबाने की कोशिश करने की।

मैं जानता हूँ कि संसार के सामने जो महान समस्या है, हो उसमें भारत का सकता है काफी शक्तिशाली प्रभाव न हो। जो स्थिति है उसे बदलने या उसमें उलट-फेर करने के विषय में भारत का प्रभाव बहुत क्षीण हो, ऐसा भी हो सकता है। मैं लाजिमी तौर पर कोई परिणाम उत्पन्न करने का दावा नहीं करता। फिर भी मैं कहता हूँ कि एकमात्र नीति जिसका भारत को अनुसरण करना चाहिये, वह एक ऐसी सकारात्मक और निश्चित नीति होना चाहिये, जिसका कि ध्येय और देशों को युद्ध की ओर प्रवृत्त होने से रोकना, और वातावरण को भय और संदेह से व्याप्त होने से रोकना, और इस अथवा उस देश की प्रशंसा से अलग रहना है (चाहे यह देश संसार को विवेक के पथ पर ले जाने का दावा करते हों) बल्कि उन देशों के ऐसे गुणों पर जोर देकर जो कि अच्छे और ग्रहण करने योग्य हैं, उनमें जो कुछ भी सबसे अच्छा है, उसे खींच निकालना है, और इस तरह जहां तक संभव हो खिचावों को कम करना और शान्ति के पक्ष में काम करना है। हम सफल होते हैं या नहीं; यह दूसरी बात है। लेकिन यह अब हमारे हाथ में है कि हम अपनी पूरी शक्ति से उस दिशा में काम करें जिसे कि हम ठीक समझते हैं, न कि इसलिए कि हम डर गये हैं या भय हमारे ऊपर छाया हुआ है। हम पर बहुत भयानक बातें गुजर चुकी हैं और मैं नहीं समझता कि भारत और संसार में कोई ऐसी बात होने जा रही है जो हमें और भयभीत करनेवाली है। फिर भी हम नहीं चाहते कि दुनिया फिर मुसीबत में पड़े और ऐसे विश्वव्यापी संकट से गुजरे जिससे आप और हम न बच सकें और न ही हमारा देश बच सके। कोई नीति हमें इससे बचा नहीं सकती। यदि युद्ध इस देश तक फैल कर नहीं आता, फिर भी अगर विदेश में युद्ध होता है तो वह भारत को और संसार को घेर लेगा। हमें इस समस्या का सामना करना है।

यह समस्या जितनी मनोवैज्ञानिक है, उतनी व्यावहारिक नहीं, यद्यपि इसका व्यावहारिक पक्ष है। मैं समझता हूँ कि एक अर्थ में भारत इसका सामना करने के कुछ उपयुक्त है, क्योंकि बावजूद इसके कि हम कमजोर हैं और गांधी जी के योग्य अनुयायी नहीं हैं, जो कुछ उनकी शिक्षा थी उसे हमने कुछ अंश में हल किया है।

दूसरे, इन लोकव्यापी संघर्षों में आप देखेंगे कि एक के बाद एक घटना होती रहती है, अनिवार्य रूप से एक से दूसरे का लगाव होता है और इस प्रकार से बुराई की शृंखला फैलती है; युद्ध होता है और युद्ध से होने वाली बुराइयां सामने आती हैं, उनके कारण फिर दूसरा युद्ध होता है, घटनाओं की शृंखला बढ़ती जाती है, और हर एक देश कर्म या बुराई जो भी कहें, उसके चक्र में पड़ जाता है। अब तक इन बुराइयों के कारण पश्चिम में युद्ध हुए हैं, क्योंकि एक मानी में ये बुराइयां पश्चिमी शक्तियों में केन्द्रित रही हैं, मैं यह हरगिज नहीं कहना चाहता कि पूर्वी शक्तियां भली हैं, अब तक पश्चिम या यूरोप राजनीतिक कार्यों का केन्द्र रहा है और वह संसार की राजनीति पर छाया रहा है। इसलिए उनके झगड़े उनके विरोध और उनके युद्ध संसार पर छाये रहे हैं।

भाग्य से भारत में, हम लोग यूरोप के विद्वेषों के उत्तराधिकारी नहीं हैं। हम किसी व्यक्ति या वस्तु या विचार को नापसंद कर सकते हैं। लेकिन हमें वह उत्तराधिकार नहीं प्राप्त है, जो हमें कुचले। इसलिए, हमारे लिए अन्तर्राष्ट्रीय सभाओं में हो चाहे दूसरी जगह इन समस्याओं का सामना करते हुए यह अपेक्षाकृत सहज हो सकता है कि हम उन्हें तटस्थता और निरपेक्षता से निबटावें, साथ ही दूसरों की सत्कामना प्राप्त करें, जो किसी पुरानी दुर्भावना का हम पर संदेह न करेंगे। यह हो सकता है कि कोई देश उसी समय फलप्रद रूप से कार्य कर सकता है, जबकि उसके पीछे कुछ शक्ति हो। मैं तत्काल भौतिक या युद्ध संबंधी शक्ति का विचार नहीं कर रहा हूँ—उसका, बेशक, महत्व है—लेकिन उसके पीछे की साधारण शक्ति पर यहाँ विचार करूँगा। एक दुर्बल देश जो अपनी देखभाल नहीं कर सकता, वह दुनिया की और दूसरों की देख-भाल कैसे कर सकेगा? मैं चाहूंगा कि यह सदन इन सभी विचारों को सामने रक्खे और तब उस अपेक्षाकृत छोटे प्रश्न पर जिसे कि मैंने सभा के सामने रक्खा है, निर्णय करे, क्योंकि मेरे सामने ये सब विचार थे, और मैंने अनुभव किया कि सबसे पहले मेरा यह देखना कर्तव्य है कि भारतीय स्वतंत्रता और स्वाधीनता पर कोई आँचा न आवे।

यह स्पष्ट था कि जिस गणराज्य की स्थापना का हमने निश्चय किया है वह अस्तित्व में आयेगा। मैं समझता हूँ कि इसमें हमें सफलता मिली है। उसे हम, निश्चय ही हर हालत में प्राप्त करते लेकिन हमने उसे और बहुतों की शुभ कामना से प्राप्त किया है। मैं समझता हूँ कि यह हमारा अतिरिक्त लाभ है। उन लोगों की सदाशयता से इसे प्राप्त करना, जिन पर शायद इससे चोट पहुंची है, निश्चय ही एक सिद्धि है। यह इस बात को दिखाता है कि काम करने के ढंग का-उस ढंग का जो कि घृणा या दुर्भावना का चिन्ह नहीं छोड़ता, बल्कि सद्भावना संचार करने वाला होता है—बड़ा महत्व है। सद्भावना का मूल्य है, वह चाहे जिस

दिशा से आवे। इसलिए, जब मैं इस विषय पर लंदन में विचार कर रहा था, उस समय, उस समय और कुछ अंश में बाद में भी , यह ख्याल हुआ कि शायद मैंने कोई ऐसी बात की है जो गांधी जी पसंद करते। जो हुआ है उस पर मेरा इतना ध्यान नहीं है, जितना कि करने के ढंग पर है। मैंने समझा कि यह चीज खुद दुनिया में बड़ी सद्भावना उत्पन्न करेगी—ऐसी सद्भावना जो कि एक छोटे अर्थ में निश्चय ही हमारे हित की चीज है, और इंगलिस्तान के हित की, लेकिन जो एक बड़े अर्थ में—मनोवृत्ति संबंधी उन संघर्षों में, जिन्हें कि लोग एक दूसरे पर दोषारोपण करके और एक दूसरे को बुरा भला कह कर हल करना चाहते हैं—संसार के हित में है। हो सकता है कि किसी का दोष है, हो सकता है कि कुछ कूटनीतिज्ञों और बड़े आदमियों का दोष है, लेकिन कोई उन करोड़ों आदमियों को दोष नहीं दे सकता जो इन भीषण युद्धों में अपनी जानें गंवाएंगे। हर एक देश में मनुष्यों के विशाल समूह युद्ध नहीं चाहते। वे युद्धों से भयभीत होते हैं। कभी-कभी इसी भय को उकसा कर फिर से युद्ध कराया जाता है, क्योंकि यह हमेशा कहा जा सकता है कि दूसरा दल तुम पर आक्रमण करने आ रहा है ।

इसलिये मैं चाहूंगा कि यह सदन न केवल इस बात पर विचार करे कि हमने क्या हासिल कर लिया—उसे हासिल करने से, हर हालत में, हमें कोई रोक नहीं सकता था—बल्कि यह बात प्रासंगिक और महत्त्व की है कि हमने उसे इस रूप में हासिल किया कि उससे हमें सहायता मिलती है और दूसरों को सहायता मिलती है और पीछे कोई दुष्परिणाम नहीं होते, नहीं तो जब हम समझते हैं कि हमने दूसरे के दाम पर लाभ उठाया है तो इस बात की कसक दूसरे को सदा बनी रहती है और वह बाद में बदला लेना चाहता है। इसलिये यही तरीका है और अगर दुनिया इस तरीके पर अमल करती है, तो समस्याएँ कहीं अधिक सुगमता से हल होंगी और युद्ध और युद्ध के दुष्परिणाम शायद अपेक्षाकृत थोड़े होंगे। वे होंगे ही नहीं। अंग्रेजों की या साम्राज्यवाद की या दूसरे देशों की औपनिवेशिकता की त्रुटियों के विषय में बात करना सहज है। बिल्कुल ठीक है। आप आज हर एक राष्ट्र के गुणों या दुर्गुणों की सूची बना सकते हैं, जिसमें भारत भी होगा। अगर आपने ऐसी सूची बना भी ली, प्रश्न फिर भी रह जाता है कि दूसरे पक्षों के और आपके गुणों को उकसा कर कोई भी भविष्य की भलाई की नींव कैसे रख सकता है।

मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि सरकारी स्तर पर हो या राष्ट्रीय स्तर पर दूसरे पक्ष की बुराई पर जोर देने से विशेष सहायता नहीं मिलती। हमें उसकी ओर से आंख न मूंदना चाहिये, हमें उससे कभी-कभी लड़ना पड़ेगा। उसके लिये हमें तैयार रहना चाहिये, लेकिन इस सब के होते हुए , मैं नहीं समझता कि

अपने गुणों का समर्थन करते रहने का और दूसरे पक्ष का दोषारोपण का धंधा, वास्तविक समस्या को समझने में हमारी सहायता करेगा। यह हमें भीतरी संतोष अवश्य प्रदान करता है कि हम सच्चरित्र हैं और दूसरे पापी हैं। मैं धार्मिक शब्दावली का प्रयोग कर रहा हूँ, जो मेरे लिये उपयुक्त नहीं जान पड़ती, लेकिन सच यह है कि मैं इस सम्माननीय सदन के सामने इस प्रश्न के किंचित् नैतिक पहलू को रखना चाहता हूँ। भारत के हित को क्षति पहुंचा कर मैं उसे किसी ऊंचे नैतिक आधार पर न्याय प्रमाणित करने का साहस नहीं कर सकता। कोई सरकार ऐसा नहीं कर सकती। लेकिन यदि आप कोई नफे का सौदा कर सकते हैं और साथ ही वह नैतिक आधार पर अच्छा होता है, तब स्पष्ट है कि वह इस यो य है कि हम उसे समझें और उसका आदर करें। मैं निश्चयपूर्वक निवेदन करता हूँ कि जो कुछ हमने किया है, वह, नकारात्मक ढंग से कहा जाय, तो हमें किसी प्रकार से हानि नहीं पहुंचाता, न पहुंचा सकता है। सुनिश्चित रूप यह है कि हमने राजनैतिक क्षेत्र में जो प्राप्त करना चाहा था वह प्राप्त कर लिया है, और हमारी उन्नति संभावित है, और इस प्रकार से उन्नति के जितने अवसर मिल सकते हैं उतने आने वाले कुछ वर्षों में किसी दूसरी प्रकार से नहीं मिल सकते।

अन्त में, सरकार के प्रसंग में यह एक प्रोत्साहित करनेवाली बात है, और शांति के पक्ष में सहायक है—कितनी, यह मैं नहीं जानता, और निश्चय ही यह एक ऐसी चीज है जो इस देश को किसी दूसरे देश से बांधती नहीं। इस सभा या भवन के लिये हर समय इसका मार्ग खुला हुआ है कि इस कड़ी को तोड़ दे। लेकिन मैं केवल यह बता रहा हूँ कि हमने भविष्य को किसी अंश में भी बांध नहीं दिया है। भविष्य वायु के समान उन्मुक्त है, और, यह देश जो रास्ता चाहे, वह ग्रहण कर सकता है। अगर वह पाता है कि यह रास्ता ठीक है तो वह इसे ग्रहण किये रहेगा, नहीं तो वह दूसरा रास्ता ग्रहण करेगा। हमने उसे बांध नहीं दिया है। मैं यह अवश्य निवेदन करूंगा कि यह प्रस्ताव जो मैंने लंदन कानफ्रेंस के निश्चय और उसकी घोषणा के अनुमोदन के संबंध में इस सभा के सामने रक्खा है, एक ऐसा प्रस्ताव है जो इस सभा का समर्थन और उसकी स्वीकृति पाने के योग्य है, अगर मैं कह सकता हूँ, तो केवल एक उदासीन समर्थन और स्वीकृति पाने योग्य नहीं है, बल्कि उसके पीछे जो कुछ भी है, और हमारे नेत्रों के सामने क्रमशः खुलनेवाले भारत के भविष्य के लिये जो यह महत्व रख सकता है, उसका विचार करते हुए, इसका सक्रिय अनुमोदन होना चाहिये। वास्तव में बहुत समय हुए हम सबने अपने भाग्य को भारत के भाग्य से जोड़ लिया। हमारा भविष्य हमारा व्यक्तिगत भविष्य भारत के भविष्य पर निर्भर करता है, और बहुत दिनों से हमने इस भविष्य की कल्पना की है, और इसके स्वप्न देखे

हैं। अब, हम ऐसी मंजिल पर पहुंचे हैं जब कि हमें अपने निर्णयों और कार्यों द्वारा इस भविष्य को पग-पग पर ढालना है। अब यह पर्याप्त नहीं कि हम उस भविष्य की चर्चा केवल प्रस्ताव द्वारा या दूसरों पर दोषारोपण करके या दूसरों की आलोचना करके करें, अच्छा या बुरा, अब हमें ही उसका निर्माण करना है, कभी-कभी हममें से कुछ लोग उस भविष्य के विषय में नकारात्मक ढंग से, दूसरों पर दोष लगा कर विचार करने में बहुत रुचि लेते हैं। इस सदन के कुछ सदस्यों ने, जिन्होंने इस प्रस्ताव का विरोध किया है, और कुछ औरों ने, जो इस सदन में नहीं हैं, जिन्होंने इस प्रस्ताव का विरोध किया है, मैंने अनुभव किया है, कि वह अतीत के उस पिंजड़े से बाहर आने में बिल्कुल असमर्थ हुए हैं, जिसमें कि हम सब रह चुके हैं, यद्यपि मानसिक रूप से बाहर आने को उनके लिये द्वार खुला हुआ था। उन लोगों ने हमें पुरानी बातों का स्मरण दिलाया है और हमारे कुछ मित्रों ने मेरे १५–२० साल पहले के व्याख्यानों से उद्धरण देने की कृपा की है। अच्छा, अगर वे मेरे व्याख्यानों को इतना महत्त्व देते हैं तो वह मेरे अब के व्याख्यानों को जरा अधिक ध्यान देकर सुनें। संसार बदल गया है। बुराई अब भी बुराई है और भलाई भलाई है, मैं यह नहीं कहता कि ऐसा नहीं है, और मैं समझता हूँ कि साम्राज्यवाद एक बुरी चीज है और जहाँ भी यह बना हुआ है इसे जड़ से खोद कर उखाड़ना है, और औपनिवेशिकता एक बुरी चीज है और जहाँ वह अब भी बनी हुई है, इसे उखाड़ना है, और जातिवाद एक बुरी चीज है और इसका मुकाबला करना है। यह सब ठीक है। फिर भी संसार बदल गया है, इंग्लिस्तान बदल गया है, यूरोप बदल गया है, भारत बदल गया है, हर एक चीज बदल गई है और बदल रही है : और उसे अब देखिये। यूरोप को देखिये, जिसकी कलाओं में और विज्ञानों में पिछले तीन सौ वर्षों में विशाल सिद्धि रही है, और इसने सारे संसार में एक नई सभ्यता का निर्माण किया है। वास्तव में यह एक शानदार युग है, जिस पर कि यूरोप को या उसके कुछ देशों को गर्व हो सकता है, लेकिन इन तीन सौ या अधिक वर्षों में यूरोप ने अपना आधिपत्य एशिया और अफ्रीका पर भी फैलाया, वह साम्राज्यवादी बना रहा, उसने शेष संसार का शोषण किया और एक अर्थ में संसार के राजनैतिक क्षेत्र में छाया रहा। अच्छा, मेरा विश्वास है कि यूरोप में अब भी सुन्दर गुण हैं, और वहां के वे लोग, जिनमें ऐसे गुण हैं, सफल होंगे, लेकिन राजनैतिक दृष्टि से यूरोप अब संसार का केंद्र नहीं रह सकता या संसार के अन्य भागों पर वह प्रभाव नहीं रख सकता जो अब तक रहा है। इस दृष्टि से यूरोप का जमाना समाप्त हो गया और संसार के इतिहास का—राजनैतिक तथा अन्य कार्यों का—केंद्र दूसरी जगह चला जाता है। मेरा यह कहने का तात्पर्य नहीं कि कोई दूसरा महाद्वीप आधिपत्य प्राप्त करता है, औरों पर प्रभुत्व रखता है, ऐसी

बात नहीं। जो भी हो हम उस पर एक बिल्कुल बदले हुए दृश्य में नजर डालते हैं। अगर आप ब्रिटिश साम्राज्यवाद आदि की चर्चा करते हैं, तो मैं कहूंगा कि यदि वहाँ इच्छा भी हो तो साम्राज्यवाद की सामर्थ्य जाती रही है : ऐसा कहने मे काम न चलेगा। फ्रांसीसी—एशिया के कुछ भागों में साम्राज्यवादी व्यवहार कर रहे हैं। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि उसे बहुत आगे तक चला सकने की सामर्थ्य बीत चुकी है। वह इस तरह साल दो साल तक चला लें, लेकिन यह बहुत समय तक अब चल नहीं सकता। इसी प्रकार डच कुछ और जगहों में कर सकते हैं, लेकिन यदि आप स्थिति को इतिहास की दृष्टि परम्परा में देखेंगे, तो इन्हें बीती हुई चीजों का अवशेष मात्र पावेंगे। आज साम्राज्यवाद के पीछे कुछ शक्ति हो सकती है, यह कुछ वर्षों तक चल भी सकती है, इसलिये हमें उसका मुकाबला करना है और इसलिये हमें सतर्क रहना है—मैं इससे इनकार नहीं करता—लेकिन हमें यह न समझना चाहिये कि इंग्लिस्तान या यूरोप आज भी वैसा ही है जैसा कि १५ या २० वर्ष पहले था। वैसा अब नहीं है।

मैं उन मित्रों की बात कह रहा था जिन्होंने हमारी आलोचना की है और किंचित् नकारात्मक और उदासीनता का दृष्टिकोण बना लिया है। मैंने दूसरी जगह यह बताया है कि उनका दृष्टिकोण गतिहीन है। मैंने कहा इस विशेष प्रसंग में यह किंचित् प्रतिक्रियावादी है, और मुझे खेद है कि मैंने इस शब्द का उपयोग किया, क्योंकि मैं ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहता जिनसे चोट पहुंचे, और मैं लोगों के हृदय इस तरह से नहीं दुखाना चाहता। मैं चाहूं तो ऐसी भाषा का उपयोग कर सकता हूँ जो तीव्र और विवादपूर्ण हो, लेकिन मैं उसका उपयोग करना नहीं चाहता, क्योंकि हमारे सामने बड़ी समस्याएं हैं और तर्क में विपक्षी के विरुद्ध एक शब्द कह लेने से और उन्हें शब्दों से हरा देने से और उसके हृदय या मस्तिष्क को न स्पर्श करने से क्या संतोष हो सकता है, और मैं अपने लोगों के हृदयों और मनों को स्पर्श करना चाहता हूं, और अनुभव करता हूँ कि हमारे घरेलू मतभेद जो भी हों—ईमानदारी से अनुभव किये हुए मतभेदों को बने रहना चाहिये—हम नहीं चाहते कि देश में मतों की स्वतंत्रता न रह जाय।

जहाँ तक विदेशी मामले हैं, उनमें भी मतभेद हो सकते हैं, मैं इससे इनकार नहीं करता, लेकिन मूल बातें जो किसी के सामने होंगी, विशेषतः उनके सामने, जो भारतीय हैं, देशभक्त हैं—वे निश्चय ही भारत की स्वतंत्रता, अर्थात् पूरी स्वतंत्रता, भारत की आर्थिक तथा अन्य प्रकार की उन्नति, संसार की स्वतंत्रता और शांति स्थापना में भारत का भाग लेना, आवश्यक रूप से होंगी। ये मूल बातें हैं : भारत की उन्नति होनी चाहिये। भारत की आन्तरिक उन्नति होनी चाहिये। जब तक कि हम देश के भीतर आर्थिक दृष्टि से तथा अन्य प्रकार से शक्तिशाली न होंगे हम कुछ नहीं कर सकते। देश के भीतर हम ऐसा किस प्रकार करें, इस

विषय में मतभेद हो सकता है। मैं यह समझता हूँ कि हम लोगों में चाहे आंतरिक नीति के विषय में मतभेद भी हों, हमारे लिये यह संभव होना चाहिये कि हम कमोबेश एक संयुक्त विदेशी नीति ग्रहण करें जिसमें सब सहमत हों या अधिकांश में सहमत हों। क्या मैं अपनी बात स्पष्ट कर दूँ? मैं तर्क या टीका-टिप्पणी या आलोचना को जरा भी बन्द नहीं करना चाहता, यह तो स्वस्थ राष्ट्र के चिन्ह हैं, लेकिन यह मैं अवश्य चाहता हूँ कि वह तर्क एक मित्र का तर्क हो, विरोधी का तर्क न हो, जो कभी-कभी तर्क को तर्क के लिये नहीं बल्कि विरोधी पक्ष को नुकसान पहुंचाने के लिये करता है, जैसा कि राजनीति के खेल में अकसर होता है। किसी व्यक्ति की ओर से कोई बड़ा मतभेद विदेशी नीति के संबंध में मैं नहीं देखता। उन व्यक्तियों या दलों में, जो दूसरे देशों को दृष्टि में रख कर और भारत को दृष्टि में न रख कर विचार करते हैं, उनमें मैं अवश्य बड़ा मतभेद देखता हूँ। यह एक बुनियादी मतभेद है और उनके साथ किसी विषय पर समान दृष्टिकोण हो सकना बहुत कठिन है, लेकिन जहाँ लोग भारत को लेकर, उसकी स्वतंत्रता और निकट और दूर भविष्य में उन्नति की बात को लेकर विचार करते हैं, वहाँ हमारी विदेशी नीति के विषय में कोई बड़ा मतभेद न होगा। और मैं नहीं समझता कि वास्तव में कोई मतभेद है, यद्यपि कहने के ढंग अलग-अलग हो सकते हैं। यद्यपि कोई सरकार उसी भाषा का उपयोग कर सकती है जो सरकार के लिये उचित है, और लोग ऐसी भाषा बोलते हैं जो हम सब बोला करते थे, अर्थात् विरोधी और आंदोलन की भाषा। इसलिये मैं इस भवन से अनुरोध करूंगा और अगर मैं कह सकता हूँ, तो देश से अनुरोध करूंगा कि इस प्रश्न पर दलबन्दी की भावना से न देखें, और इस दृष्टि से नहीं कि यहाँ या वहाँ, किसी छोटे मामले में सौदा किया जाय।

किसी भी सौदे में हमें ध्यान रखना चाहिये कि राष्ट्र के लाभ की कोई वस्तु हम खो न दें। साथ ही हमें इस प्रश्न पर एक ऊंचे ढंग से देखना है। हम एक बड़े राष्ट्र हैं। अगर हम विस्तार की दृष्टि से एक बड़े राष्ट्र हैं, तो इससे ही हम बड़े न हो जायंगे जब तक कि हम विचार के बड़े नहीं, हृदय के बड़े नहीं, समझ में बड़े नहीं और कार्य करने में भी बड़े नहीं। बाजार में आप अपने साथ सौदा करनेवालों से या मोल-तोल करनेवालों से यहाँ या वहाँ कुछ घाटे में रह सकते हैं। अगर आप बड़े ढंग से कार्य करते हैं, तो लोगों की प्रतिक्रिया भी बड़ी होती है। चूंकि भलाई भलाई को जागृत करती है और दूसरों की भलाई को उकसाती है, और एक बड़ा कार्य, जिसमें भावों की उदारता दिखाई गई है, दूसरे पक्ष की उदारता को भी उकसाता है।

इसलिये, इस प्रस्ताव की सिफारिश करते हुए और यह आशा करते हुए क्या मैं अपना भाषण समाप्त कर सकता हूं कि यह सभा न केवल इसे स्वीकार

करेगी, बल्कि इसे अच्छे संबंधों के प्रेरक के रूप में स्वीकार करेगी, और इस रूप में हम अन्य देशों के प्रति, संसार के प्रति, उदारता का व्यवहार कर रहे हैं, और इस प्रकार अपने को, तथा शांति के पक्ष को, दृढ़ कर रहे हैं ?

भारत और विश्व

एशिया दुबारा जागा है

मित्रोऔर एशिया के साथियो, एशिया के नर-नारीगण, आप यहां क्यों एकत्र हुए हैं? आप लोग हमारे इस मातृ महाद्वीप के विविध देशों से आकर दिल्ली के इस प्राचीन नगर में क्यों इकट्ठा हुए हैं? हममें से कुछ साहसी लोगों ने इस सम्मेलन के लिये आपको निमंत्रण भेजा और आपने उस निमंत्रण का हार्दिक स्वागत किया। फिर भी केवल हमारा निमंत्रण ही आप को नहीं लाया, बल्कि एक भीतरी प्रेरणा थी जो आपको यहां लाई है।

हम एक युग के अन्त में, और इतिहास के नये युग के द्वार पर खड़े हैं। दो युगों की संधिवेला की इस विभाजक रेखा पर खड़े होकर, जो कि मानवीय इतिहास और मानवीय प्रयत्नों को दो धाराओं के समान विभाजित करती है, हम अपने लंबे अतीत पर दृष्टि डाल सकते हैं, और साथ ही उस भविष्य को देख सकते हैं जो कि हमारी आंखों के सामने बन रहा है। निष्क्रियता के एक लम्बे काल के बाद, एशिया आज अचानक संसार के मामलों में महत्वपूर्ण बन गया है। अगर हम इतिहास की सहस्त्राब्दियों पर दृष्टि डालें, तो पावेंगे कि एशिया के इस महाद्वीप ने, जिससे कि मिस्र का सांस्कृतिक मैत्री का इतना घना संबंध रहा है, मानवता के विकास में एक महान भाग लिया है। यहां पर सभ्यता का आरंभ हुआ, और मनुष्य ने जीवन की अपनी अनन्त साहसमयी यात्रा का आरंभ किया। यहां ही मनुष्य के मस्तिष्क ने निरन्तर सत्य का अनुसंधान किया और मनुष्य की आत्मा ने मार्ग-प्रदर्शक ज्योति की भांति प्रदीप्त होकर संसार को आलोकित किया।

यह गतिशील एशिया, जिससे कि संस्कृति के स्रोत सभी दिशाओं में प्रवाहित हुए, क्रमशः स्थिर और परिवर्तनहीन हो गया। और लोग, और दूसरे महाद्वीप, आगे आये और अपनी नई गतिशीलता के कारण फैले। उन्होंने दुनिया के बड़े-बड़े भागों पर अधिकार कर लिया। तब हमारा यह महान महाद्वीप यूरोप के प्रतिस्पर्द्धी साम्राज्यवादों का मैदान मात्र बन गया, और यूरोप मानवीय कार्यों में इतिहास और उन्नति का केन्द्र बन गया।

अब जमाना फिर से बदल रहा है और एशिया फिर अपने पैरों पर खड़ा हो रहा

एशियन कान्फ्रेंस का उद्‌घाटन करते हुए, नई दिल्ली में, २३ मार्च १९४७ को दिया गया भाषण।

है। हम परिवर्तन के एक महान युग में रह रहे हैं, और आज जब कि एशिया, दूसरे महाद्वीपों के साथ, अपना उचित स्थान ग्रहण कर रहा है, हम एक नई मंजिल पर पहुंच रहे हैं।

ऐसे महान क्षण में हम यहां मिल रहे हैं, और भारत के लोगों को दूसरे देशों के एशियायी भाइयों के स्वागत करने का और उनसे वर्तमान और भविष्य के विषय में परामर्श करने का, तथा आपस की उन्नति, कल्याण और मैत्री की नींव डालने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

एशिया की कान्फ्रेंस का विचार नया नहीं है, और बहुतों को यह बात सूझी है। वास्तव में यह आश्चर्य की बात है कि यह कई साल पहले क्यों न हुई, लेकिन तब शायद इसका वक्त नहीं आया था, और उस वक्त यह कान्फ्रेन्स करने का प्रयत्न कुछ कृत्रिम और सांसारिक घटनाओं से मेल न खाता हुआ होता। हमने भारत में यह कान्फ्रेंस बुलायी है, लेकिन इस तरह की कान्फ्रेंस का विचार एक साथ एशिया के कई देशों में और कई लोगों के मस्तिष्क में उठा। इसके लिये एक व्यापक प्रेरणा थी, और इस बात की चेतना थी कि हम एशिया के लोगों के आपस में मिलने का, परामर्श करने का और मिलजुल कर उन्नति करने का समय आ गया है। यह केवल एक अस्पष्ट इच्छा ही नहीं थी, बल्कि घटनाओं का दबाव था, जिसने कि हम सबको एक ही दिशा में सोचने पर विवश किया। इसी कारण, हमने भारत से जो आमंत्रण भेजा, उसका अनुकूल उत्तर मिला, और एशिया के सभी देशों ने शानदार ढंग से हमें सहयोग दिया।

आप सब प्रतिनिधियों का हम स्वागत करते हैं—आप जो चीन से आये हैं, उस महान देश से, जिसका कि एशिया इतना ऋणी है और जिससे कि बड़ी-बड़ी आशाएं हैं; आप जो मिस्र और पश्चिम एशिया के अरब देशों से आये हैं, और एक ऐसी गर्वशील संस्कृति के उत्तराधिकारी हैं, जो दूर दूर तक फैली हुई है और जिसने भारत पर भी प्रभाव डाला था; आप जो ईरान से आये हैं, जिसका कि इतिहास के आदिकाल से भारत से सम्बन्ध रहा है; आप जो इंडोनेशिया और हिन्दचीन से आये हैं, जिनके इतिहास भारतीय संस्कृति से गुंथे हुए हैं, और जहां आज स्वतंत्रता का शानदार युद्ध जारी है, जो इस बात की याद दिलाता है कि स्वतंत्रता लड़ कर ही प्राप्त होती है, भेंट स्वरूप नहीं मिलती; आप जो तुर्की से आये हैं, जिसे कि एक बड़े नेता ने नई जिन्दगी दी है; आप जो कि कोरिया, मंगोलिया, स्याम, मलय और फिलिपाइन्स से आये हैं; आप जो एशिया के सोवियत गण-राज्यों से आये हैं; जिन्होंने कि हमारी पीढ़ी में ही इतनी बड़ी उन्नति की है और जिनसे हमें बहुत से पाठ सीखने हैं; और आप जो हमारे पड़ोसी देशों अफगानिस्तान, तिब्बत, नेपाल, भूटान, बर्मा, लंका से आये हैं, और जिनसे हम विशेष रूप से सहयोग

और घनिष्ट मैत्रीपूर्ण संबंध की आकांक्षा करते हैं। इस कान्फ्रेंस में एशिया का बहुत अच्छा प्रतिनिधित्व हुआ है, और यदि दो एक देश अपने प्रतिनिधि नहीं भेज सके हैं, तो इसका यह कारण नहीं कि उनकी ऐसी इच्छा नहीं थी, बल्कि कुछ परिस्थितियां बीच में बाधक थीं, जिन पर हमारा वश नहीं था। हम आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड के दर्शकों का भी स्वागत करते हैं, क्योंकि हमारी उनकी बहुत सी समस्याएं समान हैं, खास कर एशिया के प्रशान्त और दक्षिण पूर्वी प्रदेशों में, और हमें मिल जुलकर उनके हल ढूंढने हैं।

आज जब हम यहां मिल रहे हैं, हमारे सम्मुख एशिया का लम्बा अतीत काल आता जाता है और हाल के वर्षों की मुसीबतें धीरे धीरे हमारी आंखों से ओझल हो जाती हैं और हजारों स्मृतियां जागृत होती हैं। लेकिन मैं आपसे इन बीते युगों के विषय में, उनकी गौरवगाथाओं, विजयों और असफलताओं के विषय में कुछ न कहूंगा और न हाल ही की बीती घटनाओं के बारे में ही कहूंगा; हम पर जो कठिन दिन बीते हैं, और जो आज भी कुछ अंशों में हमारा पीछा कर रहे हैं। पिछले दो सौ वर्षों के बीच, हमने पाश्चात्य साम्राज्यवाद की बढ़ती देखी है और एशिया के बड़े भूखंडों का औपनिवेशिक या अर्द्ध-औपनिवेशिक प्रस्थिति में पहुंचना देखा है। इन वर्षों में बहुत कुछ हुआ है लेकिन एशिया पर यूरोप के आधिपत्य का एक प्रमुख परिणाम यह भी हुआ कि एशिया के देश एक दूसरे से अलग अलग हो गये। भारत का सदा से पश्चिमोत्तर, पूर्वोत्तर, पूर्व और दक्षिण पूर्व के अपने पड़ोसी देशों से सम्पर्क रहा था। भारत में ब्रिटिश शासन के आने पर यह संपर्क टूट गया, और भारत शेष एशिया से करीब करीब अलग हो गया। पुराने स्थल-मार्ग प्राय: बन्द हो गये, और एकमात्र खिड़की, जिससे कि हम बाहर देखते थे, वह इंग्लिस्तान को जाने वाला जल-मार्ग था। इसी प्रकार की प्रक्रिया एशिया के और देशों में भी हुई। उनकी अर्थ-व्यवस्था किसी न किसी यूरोपीय साम्राज्यवाद से सम्बन्धित हो गई, सांस्कृतिक बातों में भी बजाय अपने मित्रों और पड़ोसियों के—जिनसे कि उन्होंने बीते समय में इतना कुछ प्राप्त किया था—वे यूरोप की ओर देखने लगे।

बहुत से राजनैतिक तथा अन्य कारणों से आज यह पृथकत्व टूट रहा है। पुराने साम्राज्यवादों का क्रमश: अन्त हो रहा है। खुश्की के रास्ते फिर से खुल गये हैं, और हवाई यात्रा एकाएक हमें एक दूसरे से बहुत निकट ले आई है। स्वयं यह सम्मेलन महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह एशिया के मस्तिष्क और आत्मा की उस गहरी प्रेरणा का उद्गार है, जो कि यूरोपीय प्रभुत्व काल में पैदा हुई अलहदगी के बावजूद कायम रही है। उस प्रभुत्व के उठते ही, जिन दीवारों ने हमें घेर रक्खा था, वे गिर पड़ीं और आज हम एक दूसरे इस तरह मिल रहे हैं, जिस तरह बहुत दिनों के बिछुड़े मित्र मिलते हैं।

इस सम्मेलन में और इस काम में न कोई नेता है और न कोई अनुगामी है। एशिया के सभी देशों को बराबरी के दर्जे पर एक समान कार्य और उद्योग में लगना है। यह उपयुक्त ही है कि भारत एशिया के विकास की इस नई अवस्था में अपना हिस्सा ले। इस बात को अलग रखते हुए भी कि भारत स्वयं स्वतन्त्र और आज़ाद हो रहा है, यह एक तथ्य है कि वह एशिया में काम करने वाली अनेक शक्तियों का प्राकृतिक केन्द्र तथा मध्य बिन्दु है। भूगोल एक जबर्दस्त प्रभाव डालने वाली शक्ति है और भूगोल की दृष्टि से भारत की ऐसी स्थिति है कि पश्चिमी, उत्तरी, पूर्वी और दक्षिण पूर्वी एशिया वालों के मिलने के लिये यह उपयुक्त स्थान बन सकता है। इसी कारण, भारत का इतिहास एशिया के दूसरे देशों से उसके सम्बन्धों का एक लम्बा इतिहास है। पश्चिम से और पूर्व से संस्कृति की धाराएं यहां आई हैं, और वे भारत में निमग्न हो गई हैं। उन्होंने यहां वह सम्पन्न और बहुरंगी संस्कृति उत्पन्न की है जो कि आज भारत में विद्यमान है। साथ ही भारत से संस्कृति की धाराएं एशिया के दूर दूर भागों में गई हैं। अगर आप भारत को समझना चाहते हैं, तो आपको अफगानिस्तान, पश्चिमी एशिया, मध्य एशिया, चीन, जापान और दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों में जाना होगा। वहां आपको भारत की उस संस्कृति की प्राण-शक्ति के विशाल प्रमाण मिलेंगे, जो कि फैली और जिसने कि बहुत बड़ी संख्या में लोगों पर अपना प्रभाव डाला।

बहुत पुराने काल में, ईरान से एक महान सांस्कृतिक धारा भारत में आई थी। और फिर भारत का सुदूर पूर्व से, विशेष कर चीन से निरन्तर पारस्परिक सम्बन्ध बना रहा। बाद के वर्षों में दक्षिण पूर्वी एशिया में भारतीय कला और संस्कृति का अद्भुत विकास हुआ। वह महान धारा, जो अरब से उठी और मिली जुली ईरानी-अरब संस्कृति के रूप में विकासित हुई, भारत में आई। ये सभी धाराएं यहां आईं और उन्होंने हम पर असर डाला फिर भी यहां भारत के अपने मस्तिष्क और संस्कृति की ऐसी दृढ़ छाप विद्यमान थी कि वह इन सब के वेग में बह नहीं गया, बल्कि उसने इन्हें ग्रहण किया। फिर भी, इस क्रम में हम सभी में परिवर्तन आये, और आज भारत में हम इन विभिन्न प्रभावों के मिश्रित परिणाम के रूप में हैं। एक भारतीय, वह एशिया में जाये चाहे कहीं और, वह जिस देश में पहुंचता है, वहां के लोगों से एक अपनापन अनुभव करता है।

मैं आपसे बीते हुए जमाने के बारे में नहीं बल्कि वर्तमान के सम्बन्ध में कहना चाहता हूं। हम यहां अपने पुराने इतिहास और संपर्कों पर बहस करने के लिये नहीं, बल्कि भविष्य की कड़ियों का निर्माण करने के लिये मिल रहे हैं। यहां पर मैं यह बता देना चाहता हूं कि यह सम्मेलन, या इसके अन्तर्गत जो विचार है, वह किसी दूसरे महाद्वीप या देश का विरोधी नहीं है। जब से इस सम्मेलन का समाचार फैला, यूरोप और अमेरिका के कुछ लोगों ने इसे संदेह से देखा

और यह कल्पना की कि यह एक प्रकार का पैन-एशियायी आंदोलन है जो कि यूरोप और अमेरिका के विरोध में है। हमारे मंसूबे किसी के विरोधी नहीं हैं। हमारा बड़ा मंसूबा तो सारी दुनिया में शांति और उन्नति को बढ़ाने का है। बहुत दीर्घकाल से हम एशियायी, पश्चिमी दरबारों और राजमंत्रियों के सामने प्रार्थी बने रहे हैं। इसे अब भूतकाल की कहानी बन जाना चाहिये। हम अपने पैरों के बल खड़े होना चाहते हैं, और उन सब के साथ सहयोग करना चाहते हैं जो कि हमारे साथ सहयोग करें। हम दूसरों के खिलौने नहीं बनना चाहते।

संसार के इतिहास के इस संकट काल में एशिया अनिवार्य रूप से एक महत्वपूर्ण भाग लेगा। एशिया के देशों को अब दूसरे लोग शतरंज के मुहरों की भाँति नहीं चला सकते, संसार के मामलों में उनकी अब अपनी नीति होगी। यूरोप और अमेरिका ने मानवीय उन्नति में बड़ा भाग लिया है, और इसके लिये हम उनकी प्रशंसा और उनका आदर करेंगे। उनसे जो बहुत से पाठ हम सीख सकते हैं, वह सीखेंगे। लेकिन पश्चिम ने हमें अनेक युद्धों और संघर्षों में भी फंसाया है, और अब भी, एक भीषण युद्ध के समाप्त होने के दूसरे ही दिन से, इस वर्तमान अणु बम के युग में, दूसरी लड़ाइयों की बात जारी हो गई है। इस अणु बम के युग में एशिया की शांति को बनाये रखने के लिये, हमें कारगर उपाय बरतने होंगे। वास्तव में, जब तक कि एशिया अपना उचित भाग नहीं लेता, तब तक विश्व में शांति हो ही नहीं सकती। आज अनेक देशों में संघर्ष हो रहा है, और एशिया में हम सभी की अपनी अपनी कठिनाइयां है। फिर भी एशिया की व्यापक भावना और उसका दृष्टिकोण शांतिपूर्ण है, और एशिया का संसार के मामलों में आगे आना, संसार की शांति के पक्ष में एक शक्तिशाली प्रभाव होगा।

शांति तभी आ सकती है जब कि सब राष्ट्र स्वतंत्र हों और जब कि मनुष्यों को सब जगह स्वतंत्रता, सुरक्षा और समान अवसर प्राप्त हों। इसलिये शान्ति और स्वतंत्रता पर, राजनैतिक और आर्थिक दोनों पहलुओं से विचार करना पड़ता है। हमें याद रखना चाहिये कि एशिया के देश बहुत पिछड़े हुए हैं और यहां रहन-सहन के स्तर भयानक रूप से निम्न हैं। इन आर्थिक समस्याओं के हल की तुरन्त आवश्यकता है, नहीं तो हम संकट और बरबादी में पड़ जायंगे। इसलिये हमें साधारण व्यक्ति के दृष्टिकोण से विचार करना चाहिये और अपने राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक ढांचे का इस रूप में निर्माण करना चाहिये कि जिन बोझों ने उसे कुचल रक्खा है, वे दूर हो जायं, और हमें विकास का पूरा अवसर मिले।

हम मानवीय धंधों के विषय में एक ऐसी स्थिति में पहुंच गये हैं जब कि 'एक संसार' का आदर्श या किसी न किसी प्रकार का लोक-संघ आवश्यक हो गया

है, यद्यपि रास्ते में बहुत से खतरे तथा रुकावटें हैं। हमें उस आदर्श के लिये काम करना चाहिये, न कि किसी ऐसे गुट्ट के लिये, जो कि संसार की इस एकता के मार्ग में बाधक हो इसलिये हम संयुक्त राष्ट्रों के संगठन का, जो कि अपने बाल्य-काल को बड़े कष्ट के साथ पार कर रहा है, समर्थन करते हैं। लेकिन 'एक संसार' को प्राप्त करने के लिये, हम लोगों को एशिया में यह भी देखना चाहिये कि एशियायी देश आपस में इस बड़े आदर्श के लिये किस तरह सहयोग करते हैं।

यह सम्मेलन, एक छोटे हद तक, एशिया के देशों के परस्पर निकट आने का सूचक है। यह सम्मेलन कुछ हासिल करे या नहीं, इसका होना ही एक ऐतिसाहिक महत्व रखता है। वास्तव में, यह अवसर इतिहास में अपने ढंग का एक ही है, क्योंकि इससे पहले इस तरह का सम्मेलन किसी जगह नहीं हुआ। इसलिये, केवल इस तरह मिलने से ही हमने बहुत कुछ हासिल कर लिया है, और मुझे कुछ भी संदेह नहीं कि इस सम्मेलन द्वारा और भी बड़ी बातें होंगी। जब कि हमारे वर्तमान युग का इतिहास लिखा जायगा, यह घटना एक ऐसा सीमा-चिह्न समझी जा सकती है, जो कि एशिया के अतीत को उसके भविष्य से विभाजित करती है। और क्योंकि हम इतिहास के इस निर्माण में भाग ले रहे हैं, इसलिये ऐतिहासिक घटनाओं की महत्ता हम सब के हिस्से में आती है ।

यह सम्मेलन विविध समस्याओं पर विचार करने के लिये , जो कि हम लोगों की समान दिलचस्पी की हैं, हिस्सों और समितियों में बँट जायगा हम किसी देश की आंतरिक राजनीति पर विचार न करेंगे, क्योंकि वह इस वर्तमान सम्मेलन के क्षेत्र के बाहर की बात है। स्वभावतः इन आन्तरिक राजनीतियों में हमारी दिलचस्पी है, क्योंकि उनकी आपस में एक दूसरे पर प्रतिक्रियाएं होती हैं, लेकिन उन पर इस अवस्था में हमें बहस नहीं करनी चाहिए क्योंकि यदि हम ऐसा करेंगे तो हम बड़ी जटिलताओं और तर्क-वितर्क में पड़ जाएंगे। जिस उद्देश्य से हम यहां एकत्र हुए हैं, उसकी सिद्धि में हम तब असफल हो सकते हैं। मुझे आशा है कि इस सम्मेलन के परिणामस्वरूप हमारी समान समस्याओं के अध्ययन के लिये और निकटतर सम्बन्ध की स्थापना के लिये एक स्थायी एशियायी संस्था का जन्म होगा और शायद एशिया स म्बधी अध्ययनों के लिये भी। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के एक दूसरे के यहां आने जाने तथा अदल बदल का कुछ प्रबन्ध भी हो सकेगा, जिससे हम एक दूसरे को ज्यादा अच्छी तरह समझ सकें। हम इससे भी अधिक कर सकते हैं, लेकिन मैं इन सब विषयों को गिनाने का साहस न करूंगा, क्योंकि उसके बारे में विचार करना और कुछ निश्चयों पर पहुँचना आपका काम होगा।

हम किसी संकीर्ण राष्ट्रीयता के पक्षपाती नहीं हैं। हर एक देश में राष्ट्रीयता का स्थान है और उसका पोषण होना चाहिये। लेकिन इसे ऐसा अग्रसर न होने

देना चाहिये कि यह अन्तरराष्ट्रीय विकास के मार्ग में बाधक बन जाय। एशिया यूरोप, अमरीका और अफ्रीका के पीड़ित भाइयों से मैत्री के लिये अपना हाथ बढ़ाता है। हम एशियायियों की, अफ्रीका के निवासियों के प्रति एक खास जिम्मेदारी है। मानवी घराने में उन्हें उनका उचित स्थान दिलाने में हमें उनकी सहायता करनी चाहिये। जिस स्वतंत्रता की हम कल्पना करते हैं, वह इस अथवा उस राष्ट्र के लिये सीमित नहीं है बल्कि उसे सारी मानव जाति में फैलाना चाहिये। वह व्यापक मानवीय स्वतंत्रता किसी वर्ग विशेष की सत्ता पर आधारित नहीं हो सकती। उसे सब जगह के साधारण जनों को प्राप्त होना चाहिये और उनको विकास के पूरे अवसर मिलने चाहिये।

आज हम एशियायी सभ्यता के महान निर्माणकर्ताओं का स्मरण करते हैं—सन्यात-सेन का, ज़ंगलोल पाशा का, अतातुर्क कमाल पाशा का, और औरों का—जिनके परिश्रम आज फल लाये हैं। हम उस महान व्यक्ति का भी ध्यान करते हैं जिसके परिश्रम और जिसकी प्रेरणा के फलस्वरूप भारत अपनी स्वतंत्रता के द्वार तक आ पहुंचा है अर्थात् महात्मा गांधी का। आज इस सम्मेलन में हम उनकी अनुपस्थिति अनुभव कर रहे हैं, फिर भी मैं आशा करता हूं कि वे हमारे कार्य के समाप्त होने से पहले यहां आ सकेंगे। वे भारत के साधारणजन की सेवा में लगे हुए हैं, और यह सम्मेलन भी उन्हें अपने काम से खींच कर यहां नहीं ला सका है।

सारे एशिया में हम परीक्षाओं और कठिनाइयों में से गुजर रहे हैं। भारत में भी आप संघर्ष और उपद्रव पावेंगे। हमें इससे हताश नहीं होना चाहिये। एशिया के सभी लोगों में एक नया जीवन और शक्तिशाली रचनात्मक प्रेरणाएं दिखायी पड़ रही हैं। जनता जाग गई है और वह अपने उत्तराधिकार की मांग कर रही है। सारे एशिया में प्रचंड बयारें बह रही हैं। हमें इनसे भयभीत नहीं होना चाहिये, बल्कि इनका स्वागत करना चाहिये क्योंकि इन्हीं की सहायता से हम अपने स्वप्नों के एशिया का निर्माण कर सकेंगे। हमें इन नई शक्तियों में उस स्वप्न में, जो कि अभी स्वरूप-ग्रहण कर रहा है, विश्वास करना चाहिये। सब से बढ़कर हमें मानवीय आत्मा में विश्वास करना चाहिये, जिसका कि एशिया, बीते हुए लम्बे युगों में, प्रतीक रहा है।

संकट का युग

हम लोग संकटों के इस युग में रह रहे हैं। एक के बाद दूसरा संकट आता है, और जब शान्ति भी रहती है तो वह आकुल श.न्ति होती है, जिसमें युद्ध का भय बना रहता है अथवा युद्ध की तैयारी होती रहती है। व्यथित मानवता वास्तविक शान्ति की भूखी है लेकिन कोई दुर्भाग्य उसके पीछे लगा हुआ है, जो उसे उसकी सब से इच्छित वस्तु से अधिकाधिक दूर ढकेलता रहता है। प्रायः यह जान पड़ता है कि एक भयानक भवितव्यता मानव-मात्र को बार बार होने वाली तबाही की ओर ढकेल रही है। हम सभी अतीत के इतिहास के जाल में फंसे हुए हैं और पिछली बुराइयों के परिणामों से बच नहीं सकते।

जिन अनेक राजनैतिक और आर्थिक संकटों का हमें सामना करना पड़ रहा है, उनमें कदाचित सब से बड़ा संकट मानवीय आत्मा का संकट है। जब तक कि यह संकट दूर नहीं किया जायगा, तब तक अपने दूसरे संकटों का हल पाना हमारे लिये कठिन होगा।

हम विश्व व्यापी शासन, और 'एक संसार' की बातें करते हैं और करोड़ों व्यक्ति इसकी आकांक्षा करते हैं। मानव जाति के इस आदर्श को प्राप्त करने के लिये उत्साहपूर्वक प्रयत्न जारी हैं। यह आदर्श आज बहुत जरूरी भी हो गया है। फिर भी अब तक ये प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए हैं यद्यपि यह बराबर स्पष्ट होता जा रहा है कि यदि कोई लोकव्यापी व्यवस्था नहीं कायम होगी तो एक दिन संसार में कोई व्यवस्था कायम रखना संभव न रहेगा। आज लड़ाइयां लड़ी जाती हैं और उनमें जीत या हार होती है, और जीतने वालों की करीब करीब उतनी ही हानि होती है जितनी कि हारने वालों की। निश्चय ही, युग की इस बड़ी समस्या के विषय में हमारा दृष्टिकोण दोषपूर्ण है, उसमें कोई आधारभूत त्रुटि है।

भारत में पिछली चौथाई सदी या इससे कुछ अधिक समय के बीच, महात्मा गांधी की न केवल भारत की स्वतंत्रता के हित में, बल्कि संसार की शांति के हित में, एक महान देन है। उन्होंने हमें अहिंसा का सिद्धान्त सिखाया—बुराई के आगे निष्क्रिय होकर झुक जाने के रूप में नहीं, बल्कि अन्ततोगत्वा अन्तर्जातीय भेदों

संयुक्त राज्य अमरीका के लिये, दिल्ली से, ३ अप्रैल १९४८ को प्रसारित भाषण।

का शान्तिपूर्ण हल प्राप्त करने के लिये सक्रिय रूप में। उन्होंने हमें दिखाया कि मानवीय आत्मा शक्तिशाली से शक्तिशाली हथियारों की अपेक्षा अधिक सशक्त है। उन्होंने राजनैतिक कार्यों में नैतिकता का प्रयोग किया और यह बताया कि साधन और उद्देश्य कभी जुदा नहीं किये जा सकते, क्योंकि साधनों का ध्येय पर प्रभाव पड़ता है। यदि साधन बुरे हैं, तो स्वयं ध्येय विकृत और कम से कम अंशतः कलुषित हो जाता है। किसी भी समाज में, जो कि अन्याय पर आधारित है, संघर्ष और ह्रास के बीज तब तक अनिवार्य रूप से रहेंगे, जब तक कि वह उस बुराई को दूर नहीं करता।

ये सब बातें आज के संसार में असंगत और अव्यावहारिक लग सकती हैं क्योंकि संसार एक बंधी लकीर पर सोचने का अभ्यस्त है। फिर भी हमने दूसरे तरीकों की असफलता देख ली है, और इससे अधिक अव्यावहारिक बात क्या हो सकती है कि हम उन्हीं तरीकों पर अमल करते रहें, जो कि बार बार असफल हो चुके हैं? हम मानवी प्रकृति की वर्तमान सीमाओं की और राजनीतिज्ञों के आगे उपस्थित वर्तमान संकटों की कदाचित् उपेक्षा नहीं कर सकेंगे। जिस रूप में संसार आज संगठित है, उसे देखते हुए युद्ध की अनावश्यकता भी हम सिद्ध नहीं कर सकेंगे। लेकिन मुझे इस बात का अधिकाधिक विश्वास हो गया है कि जब तक हम अपने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बधों में नैतिक नियम की प्रधानता नहीं स्वीकार करते, तब तक कोई स्थायी शान्ति नहीं हो सकती। जब तक कि हम ठीक साधनों को ग्रहण नहीं करते, तब तक हमारा ध्येय ठीक नहीं हो सकता और उससे नई नई बुराइयां निकलती रहेंगी। यही गांधी जी के संदेश का सार था, और यदि मानव-समाज स्पष्टता से देखना और आचरण करना चाहता है तो मनुष्य मात्र को इसका आदर करना पड़ेगा। जब कि आंखें लाल हो रही हों तो देखने की शक्ति स्वतः कम हो जाती है।

मुझे अपने मन में कोई संदेह नहीं है कि विश्व-शासन होना चाहिये और होकर रहेगा, क्योंकि दुनिया की बीमारी का दूसरा कोई इलाज ही नहीं है। इसके लिये एक यन्त्र निर्माण करना कठिन नहीं होना चाहिये। यह संघ-सिद्धान्त का एक विस्तार हो सकता है; संयुक्त राष्ट्रों के पीछे जो विचार है, उसका विकास हो सकता है; जिसमें कि हर एक राष्ट्रीय इकाई को अपनी प्रतिभा के अनुसार अपने भाग्य के निर्माण की स्वतंत्रता रहे। लेकिन वह स्वतन्त्रता हमेशा विश्व शासन के बुनियादी प्रतिज्ञा-पत्र के सिद्धान्तों के अधीन रहनी चाहिये।

हम व्यक्तियों और राष्ट्रों के अधिकारों की बात करते हैं, लेकिन यह याद रखना चाहिये कि हर एक अधिकार के साथ एक उत्तरदायित्व जुड़ा रहता है। अधिकारों पर तो बहुत अधिक जोर दिया गया है और उत्तरदायित्वों पर बहुत कम। यदि उत्तरदायित्वों की पूर्ति हो तो अधिकार तो स्वभावतः उनसे उत्पन्न होंगे।

इसके मानी यह हैं कि हमारा जीवन को देखने का ढंग, आजकल के प्रतिस्पर्द्धा-पूर्ण और झपट्टा मार कर जमा करते जाने वाले ढंग से भिन्न होना चाहिये।

आज हम सब भय से ग्रस्त हैं—भविष्य का भय, युद्ध का भय, उन राष्ट्रों के लोगों का भय, जिन्हें हम नापसन्द करते हैं या जो हमें नापसन्द करते हैं। यह भय कुछ हद तक वाजिब हो सकता है। लेकिन भय एक निम्न ढंग का उद्वेग है और हमें अंधयुद्ध की ओर ले जाता है। हमें इस भय को दूर करना चाहिये, और अपने विचारों और कार्यों को आधार रूप से ठीक और नैतिक बातों पर आधारित करना चाहिये। तब क्रमशः आत्मा के संकट का निवारण होगा। जो बादल हमें घेरे हुए हैं, वे उठ सकते हैं और तभी स्वतंत्रता पर आश्रित संसार-व्यापी व्यवस्था के विकास का मार्ग साफ हो सकेगा।

एशिया के लिए आर्थिक स्वतन्त्रता

सभापति महोदय और कमीशन के सदस्यों, भारत सरकार की ओर से मैं आपका इस देश में और इस स्थान पर स्वागत करता हूं। बहुत समय से भारत का संयुक्त राष्ट्रों से संबंध रहा है क्योंकि संयुक्त राष्ट्रों के उद्देश्यों और ध्येयों में शुरू से ही उसका विश्वास रहा है। यद्यपि कभी कभी संयुक्त राष्ट्रों से कोई स्पष्ट परिणाम नहीं निकले हैं, फिर भी हमारा विश्वास रहा है कि हमें और संसार को इसी मार्ग पर और इस आशा में चलते रहना चाहिये कि जल्दी अथवा देर में स्पष्ट परिणाम भी निकलेंगे। हमने आपके विविध कमीशनों में भाग लिया है, क्योंकि हमने अनुभव किया है कि संयुक्त राष्ट्रों के राजनैतिक पहलुओं से बिल्कुल अलग, आर्थिक पहलू भी, यदि अधिक नहीं तो कम से कम उतने ही महत्वपूर्ण जरूर हैं। शायद हम एक पर दूसरे के बिना विचार ही नहीं कर सकते।

बीते दिनों में राजनैतिक अर्थ में 'एक संसार' की बात हुई है, लेकिन आर्थिक दृष्टि से इस पर विचार करना और भी महत्वपूर्ण है। आप यहां एशिया और एशिया की समस्याओं पर, और अनिवार्यत: बृहत्तर संसार के दृष्टिकोण से, विचार करने के लिये एकत्र हुए हैं। क्योंकि आजकल हम प्राय: किसी समस्या पर, उसे लोकव्यापी प्रसंग से अलग करके विचार नहीं कर सकते। एशिया ही काफी बड़ा है और जो विषय आपके आगे हैं वे और भी बड़े और अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

मद्रास के गवर्नर ने उन विविध कागजों और स्मृतिपत्रों का हवाला दिया है जो कि आपके सामने हैं। जब मैं इन सब मिसलों और कागजों को देखता हूं, और इन विशेषज्ञों को देखता हूं तो किंचित् पराभूत हो जाता हूं, क्योंकि मैं साधारण जन की हैसियत से ही बोल सकता हूं। लेकिन यद्यपि विशेषज्ञ आज की दुनिया में अनिवार्य हैं, तो भी कभी कभी मेरी धारणा होती है कि वे अत्यधिक तटस्थ हो जाते हैं, और समस्याओं को इस तरह देखते हैं जैसे कि वे गणित या बीजगणित के सूत्र हों। अस्तु, हमें मनुष्यों के संबंध में विचार करना है, और इस क्षेत्र के

संयुक्त राष्ट्रों के एशिया और सुदूरपूर्व संबंधी आर्थिक कमीशन के तीसरे अधिवेशन के अवसर पर, उटकमंड, मद्रास में १ जून, १९४८ को दिया गया उद्घाटन भाषण।

मनुष्यों के संबंध में, जिसकी कि जांच हो रही है अर्थात् एशिया के संबंध में जिसकी जनसंख्या कम से कम एक अरब है। पाकिस्तान को मिलाकर भारत की जनसंख्या इसका ४० प्रतिशत है, अर्थात् चालीस करोड़। और हमें इतनी बड़ी मानव संख्या के विषय में विचार करना है, जो कि संसार की प्रायः आधी जनसंख्या है। यदि आप इस प्रश्न के मानवी पहलू को देखेंगे, इन एक अरब व्यक्तियों की, जिनकी अपनी तकलीफें हैं, अपनी आवश्यकताएं हैं, और अपने सुख-दुख हैं, तो समस्या केवल शुष्क आर्थिक समस्या से कुछ भिन्न हो जाती है, जिसे कि आपको हल करना है और जिसके शीघ्र हल करने की महान आवश्यकता है।

पिछले अनेक वर्षों से इन समस्याओं पर संसार के दृष्टिकोण से विचार होता आया है, और इस सम्बंध में मेरी यह धारणा रही है, कि एशिया महाद्वीप कुछ उपेक्षित, कुछ अनदेखा-सा रहा है। इसे इतना महत्वपूर्ण नहीं समझा जाता कि इसकी ओर उतना ध्यान दिया जाय, जितना कि संसार के कुछ और हिस्सों की ओर दिया जाता है।

ऐसा संभवतः इसलिये हुआ है कि इन समस्याओं पर विचार करने वाले अधिकतर लोग स्वयं संसार के अन्य भागों से घनिष्ट रूप से संबद्ध थे, और स्वभावतः उन्होंने उन्हीं भागों का प्रथम खयाल किया। यदि मुझे इन समस्याओं पर विचार करना पड़े, तो मैं भी स्वभावतः एशिया को ज्यादा महत्व दूंगा, क्योंकि इसका मुझसे घनिष्टतर संबंध है। इस तरह की प्रतिक्रियाओं को अलग रक्खा जाय, तो भी यह बिल्कुल स्पष्ट है कि आप एशिया की समस्याओं को या यूरोप की समस्याओं को या अमरीका की समस्याओं को या अफ्रीका की समस्याओं को और देशों की समस्याओं से अलग करके नहीं सोच सकते।

ऐसा किया ही नहीं जा सकता। और अगर कुछ देश जो कि आज काफी भाग्यशाली हैं, औरों की अपेक्षा अधिक भाग्यशाली हैं, यह समझते हैं कि वे अपना जीवन अलग-अलग रहकर बिता सकते हैं, चाहे बाकी दुनिया में जो कुछ भी होता रहे, तो जाहिर है कि वे धोखे में हैं। आज, अगर संसार के एक भाग का आर्थिक पतन होता है तो दूसरों को भी अपने साथ खींचने की उसकी प्रवृत्ति होती है। जिस तरह कि युद्ध के आरंभ होने पर, जो लोग युद्ध नहीं चाहते, वे भी, उसमें खिंच आते हैं। इसलिये यह प्रश्न नहीं रह जाता कि जो समृद्धिशाली हैं, वे अपने हृदय की उदारता के कारण उनकी सहायता करते हैं जो कि समृद्धिशाली नहीं हैं, अगर्चे उदारता एक अच्छी चीज है। बल्कि यह व्युत्पन्न स्वार्थ का एक प्रश्न है कि यह अनुभव किया जाय कि यदि संसार के कुछ हिस्से उन्नति नहीं करते, पिछड़े रह जाते हैं, तो उनका संसार की समस्त अर्थ-व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है; और वे हिस्से उन हिस्सों को भी, जो कि आज समृद्धि-

शाती हैं, नीचे खींच लाते हैं। इसलिये इन समस्याओं पर लोकव्यापी रूप में विचार करना और संसार के उन भागों पर, जो कि अपेक्षाकृत पिछड़े हुए हैं और भी अधिक ध्यान देना अनिवार्य हो जाता है।

एशिया कई पीढ़ियों से कुछ गतिहीन और पिछड़ी हुई दशा में रहा है। लेकिन पिछले कुछ वर्षों में एशिया में महान शक्तियां काम करती रही हैं। इन शक्तियों ने आरंभ में अनिवार्य रूप से अपने यहां राजनैतिक परिवर्तन पर ध्यान दिया, क्योंकि बिना राजनैतिक परिवर्तन के कोई स्थायी या दूर तक प्रभाव रखने वाला आर्थिक परिवर्तन संभव नहीं था। एशिया के कई बड़े बड़े भाग औपनिवेशिक शासन के अन्तर्गत दूसरे देशों के प्रभुत्व में थे। इस संबंध से उन्होंने कभी कुछ लाभ भी उठाया है। जहाँ एक ओर इस संबंध ने एक मानी में उनकी गतिहीन को झकझोरा, वहां इसने उस स्थिति को कायम भी रक्खा।

एशिया की राजनैतिक लड़ाई बिल्कुल तो नहीं, लेकिन अधिकतर समाप्त हो चुकी है। एशिया के कुछ भाग हैं, जहां कि राजनैतिक स्वतंत्रता के लिये अब भी लड़ाई चल रही है, और यह स्पष्ट है कि जब तक इस तरह की लड़ाई राजनैतिक क्षेत्र में जारी है, और कामों की उपेक्षा होगी या वे व्यर्थ सिद्ध होंगे। इसलिये जितनी जल्दी इसका अनुभव कर लिया जाय कि राजनैतिक दृष्टि से एशिया के प्रत्येक देश को पूरी तरह स्वतंत्र होना चाहिये, और उन्हें इस स्थिति में होना चाहिये कि किसी संसार-व्यापी संगठन द्वारा निर्धारित एक विश्व नीति के अन्तर्गत रहते हुए वे अपनी प्रतिभा के अनुकूल आत्म विकास कर सकें, उतना ही अच्छा है। यदि कोई एक बात निश्चित है तो वह यह है कि एशिया के किसी भाग में तब तक शान्ति स्थापित न होगी, जब तक कि संसार के किसी भी देश में किसी एशियायी देश पर बल द्वारा प्रभुत्व बनाये रखने की प्रवृत्ति कायम है। मुझे खेद है कि इस प्रकार के कुछ प्रयत्न एशिया के कुछ हिस्सों में अभी तक चल रहे हैं। ये प्रयत्न मुझे अवांछित ही नहीं बल्कि नितान्त दूरदर्शिताहीन जान पड़ते हैं। क्योंकि उनके प्रयत्नों का केवल एक ही परिणाम हो सकता है, वह यह कि सभी प्रकार के विदेशी नियंत्रणों को दूर कर दिया जाय।

अब साधारणतया एशियायी लड़ाई का यह राजनैतिक पहलू अपने स्वाभाविक और अनिवार्य अन्त को पहुँच रहा है। लेकिन साथ ही आर्थिक पहलू बना हुआ है, जो संसार पर असर रखने वाली अनेकानेक आर्थिक समस्याओं के साथ गुंथा हुआ है। एशियायी दृष्टिकोण से इन समस्याओं से निबटना मूलतया एक अत्यन्त आवश्यक विषय हो गया है। संसार के दृष्टिकोण से भी यह वास्तव में उतना ही आवश्यक है, क्योंकि जब तक एशिया की इन समस्याओं से निबटा नहीं जाता, तब तक वे संसार के अन्य भागों पर भी असर डालती हैं। मैं आशा करता हूँ

कि मैंने जो कुछ कहा है आप, इस कमीशन के सदस्य, उसके महत्व को अनुभव करते हैं। और आप संयुक्त राष्ट्रों के प्रति यह स्पष्ट कर देंगे, कि एशियायी समस्याओं की अवहेलना का प्रयत्न स्वयं संयुक्त राष्ट्रों के उद्देश्यों को विफल कर देगा।

एशिया में अनेक ऐतिहासिक शक्तियां पिछले अनेक वर्षों से काम कर रही हैं। बहुत सी बातें हुई हैं, जो अच्छी हैं, और बहुत सी ऐसी बातें भी हुई हैं, जो उतनी अच्छी नहीं हैं। जब व्यापक ऐतिहासिक शक्तियां काम करती हैं, तब सदा ऐसा ही होता है। वे शक्तियां अब भी काम कर रही हैं। हम उन्हें कुछ ढालने का, जहां तहां दूसरी दिशा में फेरने का, प्रयत्न करते हैं, लेकिन मूलतया वे अपना काम करती रहेंगी, जब तक कि उनका उद्देश्य और उनकी ऐतिहासिक भवितव्यता पूरी नहीं हो जाती। वह ऐतिहासिक भवितव्यता केवल यह हो सकती है कि पूरी राजनैतिक और आर्थिक स्वतंत्रता स्थापित हो, जो कि निश्चय ही किसी प्रकार के संसारव्यापी ढांचे के अन्तर्गत होगी। एशिया और शेष संसार के, विभिन्न देशों में विविध राजनैतिक और आर्थिक प्रणालियाँ चल रही हैं। यह स्पष्ट है कि जब तक हम आधार रूप में यह बात मंजूर न कर लें कि किसी भी देश की किसी राजनैतिक अथवा आर्थिक प्रणाली में हस्तक्षेप न किया जायगा, और उसे संसारव्यापी सहयोग के क्षेत्र के अन्तर्गत अपना विकास करने के लिये स्वतंत्र छोड़ दिया जायगा, तब तक सहयोग सहज न होगा।

अब आप एशिया की समस्याओं को दूरकालीन अथवा निकट के दृष्टिकोण से देख सकते हैं। निकटकालीन समस्याओं पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है, जिससे कि एशिया की कुछ बड़ी कठिनाइयां, जिन्हें तुरंत हल होना चाहिये, हल हो सकें। जैसे भोजन का प्रश्न है। यह एक असाधारण स्थिति है कि भारत जैसे देश में या इसी प्रकार के अन्य मुख्यतया कृषिप्रधान देशों में, खाने का अभाव हो या कि भोजन पर्याप्त मात्रा में न मिले। अगर ऐसा होता है तो स्पष्ट रूप से कहीं कुछ त्रुटि अवश्य है।

अपने मन में मुझे जरा भी संदेह नहीं कि भारत अपनी आवश्यकताओं के लिये भोजन उत्पन्न कर सकता है, और वह करेगा भी। आज तो नहीं, लेकिन कुछ वर्षों के भीतर। लेकिन इस समय तो हमें इस समस्या का और तरह सामना करना है। और भी ऐसी ही जरूरी समस्याएं आपके सामने विचारार्थ आवेंगी। इन समस्याओं पर, दूरकालीन दृष्टि से देखते हुए, मुझे जान पड़ता है कि हमें अनेक कमियों को पूरा करना है। हमें अपने उत्पादन की योग्यता को बढ़ाना पड़ेगा, कृषि और उद्योग में दोनों क्षेत्रों में। यह अब स्वीकार कर लिया गया है कि एशिया के इन देशों में औद्योगीकरण होना चाहिये। अब तक विविध समस्याओं और विविध प्रभावों के कारण यह कुछ रुका रहा है।

औद्योगीकरण को सीमित करने वाला मुख्य कारण पूंजी के साधनों का अभाव रहा है। कठिनाइयाँ ये हैं कि पूंजी के साधनों को और विशेष योग्यता को, उन देशों से जहां वे मौजूद हैं और अतिरिक्त मात्रा में हैं, कैसे प्राप्त किया जाय। उन्हें कहां तक प्राप्त किया जा सकता है, इसका हिसाब लगाना आपका काम है, और इस सम्बन्ध में निर्णय करना उत्पादन करने वाले देशों का काम है। यदि ये शीघ्र नहीं प्राप्त होतीं, तो औद्योगीकरण के क्रम में देर हो जायगी, लेकिन तब भी यह क्रम चलता रहेगा।

अब, अगर संसार के व्यापक हित में यह उचित समझा जाय कि भारत जैसे देश में और पूर्व के और देशों में औद्योगीकरण हो, वे वृद्धि करें, कृषि उत्पादन को आधुनिक रूप दें, तो जैसा कि मैंने कहा यह उन देशों के हित में है, जो इस क्रम में एशियायी देशों की, पूंजी के साधनों से और अपने विशेष अनुभव से सहायता कर सकते है। लेकिन ऐसा करते समय यह बात ध्यान में रखने की है कि कोई भी एशियायी देश इस प्रकार की किसी सहायता का स्वागत न करेगा, अगर इस सहायता के साथ कोई ऐसी शर्तें लगी हों, जिससे दूसरे देशों का किसी भी प्रकार का आर्थिक प्रभुत्व स्थापित होता हो। किसी देश के किसी भी प्रकार के आर्थिक प्रभुत्व को स्वीकार करने की अपेक्षा हम अपने औद्योगिक तथा अन्य विकास में देर करना पसन्द करेंगे, ।

यह एक निश्चित सिद्धान्त है जिसे कि भारत में सभी स्वीकार करते हैं। और मुझे आश्चर्य होगा यदि एशिया का कोई और देश इस पर न चले। हम संसार के हित में प्रस्तुत किसी भी नीति या कार्यक्रम में पूरी तौर से सहयोग देना चाहते हैं, चाहे इसमें, और देशों के साथ साथ, हमें सर्वसत्ता के किसी अंश का त्याग भी करना पड़े, शर्त यह है कि यह त्याग समान रूप से सभी पक्षों की ओर से हो। लेकिन बहुत काल के विदेशी प्रभुत्व ने एशिया के देशों को, प्रत्यक्ष या परोक्ष, किसी भी प्रकार के प्रभुत्व के अन्तर्गत ले जाने वाली बातों के प्रति बहुत अनुभूतिशील बना दिया है। इसलिये मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि आप इसका ध्यान रक्खें और अपने कार्यक्रमों और नीतियों का इस प्रकार निर्माण करें कि उसमें एक देश द्वारा दूसरे देश पर किसी प्रकार के आर्थिक प्रभुत्व की गंध न हो। यह स्वीकार किया जाता है कि राजनैतिक प्रभुत्व का परिणाम आर्थिक प्रभुत्व होता है। लेकिन यदि आप सावधान न रहे तो एक अदृश्य या अप्रत्यक्ष आर्थिक प्रभुत्व प्रवेश करजा सकता है। अगर इसने प्रवेश किया तो तुरन्त दुर्भावना जगेगी और सहयोग का वह वातावरण प्राप्त नहीं हो सकेगा जो कि ऐसे मामलों में परम आवश्यक है।

एक दूरकालीन दृष्टिकोण से, मैं भारत की ओर से कह सकता हूं कि हमारे लिये अपने शक्ति साधनों का विकास सब से महत्व की बात होगी। इससे देश के औद्योगीकरण को प्रोत्साहन होगा और हमारे भोजन के उत्पादन में भी वृद्धि होगी।

आप जानते ही हैं, कि आज भी भारत म और किसी भी देश की अपेक्षा आबपाशी अधिक है। हम अभी इसकी बहुत वृद्धि करने की आशा कर रहे हैं। हमारी निगाह में कम से कम बीस नदी घाटी योजनाएं हैं। कुछ बहुत बड़ी हैं, कुछ टेनेसी घाटी योजना से भी बड़ी हैं। और कुछ बहुत छोटी हैं। हमें इन योजनाओं को शीघ्र आगे बढ़ाना है। हमें बड़े-बड़े बांधों और जलाशयों को बनाना है, और इस कार्य के द्वारा भारत के बड़े भू-भागों में, जिनमें अभी खेती नहीं हो रही है, आबपाशी की सुविधाएं पहुंचानी हैं।

यहां मैं भारत की आबादी के संबंध में कुछ कहना चाहूंगा। हमारी भारी जनसंख्या के बारे में बहुत कुछ लिखा और कहा गया है। किस प्रकार यह हमें अभिभूत कर देती है, और किस तरह जब तक हम इसकी बढ़ती को रोकते नहीं, या इसे कम नहीं करते, हम किसी भी समस्या का हल नहीं कर सकते। मेरी यह इच्छा हरगिज नहीं है कि भारत की जनसंख्या बढ़ती जाय। मैं पूरी तरह से जनसंख्या को बढ़ने से रोकने के पक्ष में हूं, लेकिन मैं समझता हूं कि इस पहलू पर इतना जोर दिया जाना एक बड़ी भूल है। मैं इससे बिल्कुल सहमत नहीं हूं। मेरा खयाल है कि भारत कम आबाद देश है, और मैं यह इसलिये नहीं कहता हूं कि मैं इसकी आबादी बढ़ाना चाहता हूं। यह कम आबाद यों है कि भारत के बड़े टुकड़ों में अब भी आबादी नहीं। यह सही है कि अगर आप गंगा के मैदान में जायँ, तो वहाँ घनी आबादी पावेंगे। भारत के कुछ भागों की घनी आबादी अवश्य है, लेकिन बहुत से हिस्से ऐसे हैं जो कि बिल्कुल आबाद नहीं हैं।

कल रात इस सम्मेलन के एक प्रतिनिधि ने बताया था कि कराची से दिल्ली, मद्रास और फिर उटकमंड आते हुए उन्हें आबादी की कमी देखकर आश्चर्य हुआ। जाहिर है वह हवाई जहाज द्वारा यात्रा कर रहे थे, फिर भी सारा ग्राम प्रदेश उन्हें बिरल आबादी वाला जान पड़ा, और आखिर इतना तो आदमी जान ही सकता है कि देश घने तौर से आबाद है या नहीं। यह ठीक खयाल है, क्योंकि हमारा कितना ही विस्तृत भू-भाग आबाद नहीं हैं।

अगर आप यों कहना चाहें, तो हमारी उत्पादन की योग्यता के कम होने के कारण यह कहा जा सकता है कि हमारी आबादी अधिक है। अगर हम अपना कृषि संबंधी तथा अन्य उत्पादन बढ़ाते हैं, अगर यह आबादी उत्पादन के काम में लगती है, तो हमारी आबादी ज्यादा नहीं है। हमारी नदी घाटियों की ये बड़ी योजनाएं हैं, जो कि भूमि की आबपाशी के अतिरिक्त, बाढ़ों, धरती के कटाव और मलेरिया को रोकेंगी, और बड़े परिमाण में जल-विद्युत शक्ति का उत्पादन करेंगी। साथ ही औद्योगिक विकास में भी सहायक होंगी। अगर आप भारत के नक्शे को देखें, तो आप उत्तर से पूर्वोत्तर जाती हुई एक विशाल पर्वत-शृंखला देखेंगे। मेरी समझ में संसार

का कोई भी देश ऐसा भूखंड वाला नहीं, जहां कि इतनी अधिक प्रच्छन्न शक्ति विद्यमान हो। आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस शक्ति को ग्रहण करके उपयोग में लाया जाय। हम उसे ग्रहण करके उपयोग में लाना चाहते हैं। कुछ हद तक हमने ऐसा किया भी है। साथ ही हिमालय में अपार विविध खनिज साधन भी भरे पड़े हैं।

साथ ही मैं यह भी कहना चाहता हूं कि भारत ही नहीं, बल्कि यह सारा एशियायी भूखंड, मानवी और भौतिक दोनों तरह के अपार साधनों से भरा हुआ पड़ा है और हमारे सामने प्रश्न यह है कि इनके संयोग से किस प्रकार परिणाम प्राप्त किये जायं। यह नहीं कि हमारे यहां आदमियों या सामग्री की कमी हो। हमारे यहां ये दोनों हैं। इनको एक साथ काम में लगाने के लिये पूंजी के साधनों की और अनुभवी यन्त्र कुशल व्यक्तियों की कमी है जो उन देशों से प्राप्त हो सकते हैं, जहां इनकी बहुतायत है। ऐसा करने से अनिवार्य रूप से संसार का भला होगा। यदि यह नहीं हो सकता तो, हमें सीमित रूप में काम करना होगा। लेकिन किसी न किसी प्रकार हमें उस दिशा में जाना है।

इन नई योजनाओं से उत्पादन में वृद्धि करने के अतिरिक्त, हमारे लिये अपने मौजूदा साधनों का भी और अधिक अच्छा उपयोग करना आवश्यक है। मैं नहीं समझता कि आजकल उनका अच्छे से अच्छा उपयोग हो रहा है। जो कुछ हमारे पास है, उससे हम जितना काम ले रहे हैं, उससे अधिक ले सकते हैं। इसके साथ भारत में, और शेष एशिया में, भी अनेक समस्याएं लगी हुई हैं: अर्थ व्यवस्था की, पूंजी और श्रम के परस्पर सम्बन्ध की और मजदूरों को संतुष्ट करने की। इसमें कोई संदेह नहीं कि सभी, या कम से कम अधिकांश एशियायी देशों में चिरकालीन सामाजिक अन्याय चले आ रहे हैं, और स्वाभाविक है कि जहाँ ये सामाजिक अन्याय हों, वहां ठीक ठीक और संतोषजनक कार्य नहीं हो सकता। विशेषकर अब, जब कि सामाजिक अन्याय और सामाजिक विषमता की भावना इतनी तीव्र हो गई है।

इस में मुझे ज़रा भी संदेह नहीं कि भारत में इस सामाजिक अन्याय की तीव्र भावना के कारण उत्पादन में रुकावट आई है। एक व्यक्ति अथवा एक समाज प्रायः किसी भी भार को उठा सकता है। हमने पिछले युद्ध में देखा है कि राष्ट्रों ने किस प्रकार त्याग और कष्ट के रूप में भारी से भारी बोझ उठाये हैं। लेकिन जब कि उस बोझ के वहन करने में विषमता की भावना हो, अर्थात् एक पर कम बोझ पड़ रहा हो और दूसरे पर अधिक, तो अन्याय की भावना बढ़ जाती है। उस दशा में आप सहयोग और सुगमता से होता हुआ वह कार्य नहीं देख सकते, जिसकी कि आज, पिछले समय से कहीं अधिक आवश्यकता है। इसलिये विशुद्ध आर्थिक दृष्टिकोण की अपेक्षा इस समस्या को मानवी दृष्टिकोण से देखने की जरूरत है।

अगर कोई इस समस्या को इस मानवीय दृष्टिकोण से देखता है, और विना लम्बे तर्कवितर्क के, सहयोग करने का प्रयत्न करता है, तो मैं समझता हूं कि वह इसे बहुत दूर तक हल कर लेता है, और वह भिन्न सिद्धांत रखने वाले लोगों से भी बहुत कुछ सहयोग प्राप्त करने में सफल हो सकता है। इसलिये मैं इस कमीशन से अनुरोध करूंगा कि वह इस समस्या को सामाजिक अन्यायों के दूर करने के मानवीय दृष्टिकोण से देखे। यह ठीक है कि कमीशन किसी देश को उसके आर्थिक ढांचे के संबंध में कोई आदेश न देगा। लेकिन कमीशन यदि कोई परामर्श देता है, तो निश्चय ही उसका बहुत असर पड़ेगा और अधिकतर देश, संभवतः, उसका अधिक से अधिक पालन करेंगे।

अब, जो कुछ मैंने कहा है उसे दुहराऊं, तो मैं आशा करता हूं कि यह कमीशन इस बात का ध्यान रखेगा कि हम लोग करोड़ों मनुष्यों के विषय में विचार कर रहे हैं, न कि काल्पनिक देशों या काल्पनिक वर्गों के विषय में। हर एक व्यक्ति का अपना परिवार है, जिसमें बच्चे हैं, जो संभवतः भूखों रह रहे हैं, जिन्हें संभवतः कोई शिक्षा नहीं प्राप्त हुई है, और विकास और उन्नति के कोई भी अवसर नहीं मिले हैं।

मैंने शुरू में ही कहा था कि एशिया के कुछ हिस्सों ने अपनी राजनैतिक समस्याओं को भी अभी तक पूरी तौर पर हल नहीं किया है। कुछ में पिछले ही वर्ष में महान राजनैतिक परिवर्तन हुए हैं। भारत में ऐसा ही परिवर्तन हुआ है। भारत का एक हिस्सा पाकिस्तान बन गया है, वर्मा स्वतंत्र हो गया है, आदि। इस कमीशन में वर्मा और न्यूजीलेंड के प्रतिनिधियों का मैं विशेष स्वागत करना चाहता हूं। यहां पर इंडोनेशिया के प्रतिनिधियों को भी देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता होती।

मैं ऐसे विषयों के कानूनी और वैधानिक पहलुओं में न जाऊंगा, लेकिन व्यावहारिक दृष्टिकोण से मुझे यह आवश्यक जान पड़ता है कि इंडोनेशियन गणराज्य जैसे प्रदेश की, जो कि एशिया के सब से संपन्न प्रदेशों में है, उपेक्षा नहीं की जा सकती। आप एशिया के लिये जो भी योजना तैयार करें, उसमें यदि उस प्रदेश का प्रत्यक्ष और पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं होता, तो आपकी वह योजना अधूरी है। वह स्थिति की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करती। आप एशिया के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग को अलग करके, शेष एशिया के लिये योजना तैयार नहीं कर सकते। इसलिये इस बात का मुझे खेद है कि इंडोनेशियन गणराज्य के प्रतिनिधियों को अभी तक यहाँ सीधा प्रतिनिधित्व नहीं मिला है। मैं आशा करता हूँ कि इस कमीशन के परामर्शों में उन्हें आमंत्रित कर, किसी न किसी रूप में, उन्हें सम्मिलित करना संभव हो सकेगा।

जैसा मैंने कहा, आबादी के खयाल से, भारत इस एशियायी भूखंड का ४० प्रतिशत है। भौगोलिक दृष्टि से भी, इसकी स्थिति बहुत महत्वपूर्ण है।

भारत का निश्चय है कि वह एशिया और संसार के लिये इस सहयोगपूर्ण उद्योग में पूरा भाग लेगा।

लोग एशिया में भारत के नेतृत्व की अस्पष्ट रूप में चर्चा करते हैं। मैं इस तरह की बातचीत नापसन्द करता हूं। मैं चाहता हूं कि इस समस्या को इस रूप से न देखा जाय कि यह देश अथवा वह देश नेता है और दूसरों को खींच रहा है या ढकेल रहा है बल्कि एशिया के सभी देशों के परस्पर सहयोग की भावना से इस समस्या को देखा जाय। अगर कोई देश अधिक सहयोग करता है, तो अच्छा। अगर कोई देश समान ध्येय के लिये अपने हिस्से से अधिक सेवा अर्पित करता है, तो यह और भी अच्छी बात है उसकी प्रशंसा होनी चाहिये लेकिन किसी देश का यह समझना कि वह दूसरों का नेतृत्व कर रहा है, बड़े अभिमान की बात होगी। विशेषतः एक ऐसे संगठन में जो कि सभी के हित के लिये है, इस तरह का विचार अवांछनीय है।

हमें सभी देशों के बीच एकमात्र सहयोग की ही बात करनी चाहिये, वह चाहे कोई भी देश हों। मैं चाहता हूं कि भारत इसी भावना के साथ इस समस्या को देखे। साथ ही, मैं यह भी चाहता हूं कि सब की सेवा के उद्देश्य से बनाए गए कार्य-क्रम में भारत का प्रमुख भाग रहे, चाहे भारत के लिये उसका परिणाम जो भी हो।

आप का कमीशन यहाँ पर पहली बार आया है। मैं समझता हूं कि जो बातें आपको तय करनी हैं, उनमें से एक यह भी है कि आपका अस्थायी प्रधान कार्यालय कहां हो। संभवतः शीघ्र ही प्रादेशिक प्रधान कार्यालयों के लिये स्थान ढूंढ़ने का प्रश्न उठेगा। यह निश्चय करना आपका काम है, मैं इस विषय में अधिक न कहूंगा। लेकिन भारत सरकार की ओर से मैं आपको अपना प्रधान कार्यालय भारत में बनाने के लिये आमंत्रित करना चाहता हूं। यदि आप ऐसा निश्चय करेंगे, तो हम आपका बहुत स्वागत करेंगे, और यहाँ आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यथाशक्य प्रयत्न करेंगे। न केवल कमीशन का, बल्कि प्रादेशिक प्रधान कार्यालय भी हम यहां ही चाहेंगे। भारत में स्थान का ठीक निश्चय बाद में, आपकी और भारत सरकार की सुविधानुसार हो सकता है। हर हालत में मैं यह आमंत्रण एक गैररस्मी ढंग से आपके सामने रखना चाहता हूं, और आपका जो भी निर्णय होगा, उसे हम निश्चय ही स्वीकार करेंगे। चाहे जहां आपका प्रधान कार्यालय हो, हम आपके साथ पूरा सहयोग करेंगे।

मैं एक बार फिर आप का स्वागत करना चाहता हूं और यह इच्छा प्रकट करता हूं कि आपके प्रयत्न सफल हों।

पेरिस में ३ नवम्बर, १९४८ को संयुक्त राष्ट्रसंघ की साधारण सभा के विशेषाधिवेशन में भाषण देते हुए

उटकमंड (दक्षिण भारत) में जून १९४८ में सुदूरपूर्व तथा एशिया के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ के आर्थिक कमीशन के अधिवेशन में भाषण देते हुए श्री नेहरू

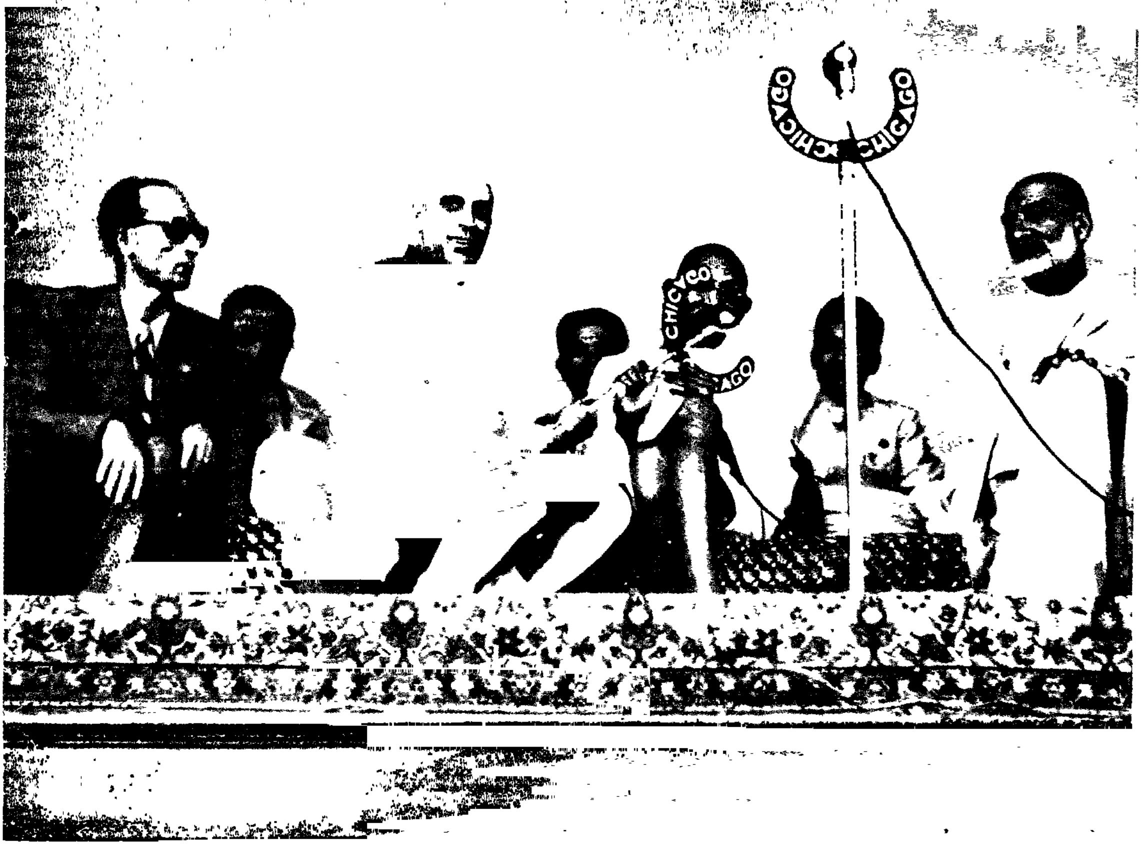

मार्च १९४७ में, नई दिल्ली में प्रथम एशियायी सम्बन्ध-सम्मेलन में

दिल्ली में, नवम्बर १९४८ म, अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष विज्ञान संघ की एशियायी प्रादेशिक कान्फ्रेंस का उद्घाटन करते हुए

विश्व स्वास्थ्य संघ

प्रतिनिधिगण, हमारी सरकार की ओर से स्वास्थ्य मन्त्री ने आपका हार्दिक स्वागत किया हैं, मैं उसमें सम्मिलित होता हूँ। मैं उस स्वागत के साथ कुछ थोड़े से शब्द और जोड़ना चाहूंगा और यह कहूंगा कि हम आपका केवल रस्मी ढंग से स्वागत नहीं करते हैं, बल्कि जो काम यह संगठन, विशेषकर दक्षिण पूर्वी एशिया के दृष्टि-कोण से, जहां कि संसार के और बहुत से भागों की अपेक्षा स्वास्थ्य की स्थिति पिछड़ी हुई है, कर रहा है, उसे हम बहुत अधिक महत्व देते हैं। स्वास्थ्य एक बहुत बड़ा शब्द है और आपके अधिकार पत्र के ध्येयों में मैं इसकी परिभाषा पाता हूँ। यह पढ़ कर मुझे प्रसन्नता हुई है कि आपने इसकी परिभाषा "शारीरिक, मानसिक और सामाजिक क्षेत्र की पूर्ण भलाई की स्थिति, केवल रोग या जीर्णता का अभाव ही नहीं" इस रूप में दी है। अगर आपका यह ध्येय सिद्ध होता है तो मुझे विश्वास है कि आप संसार की सारी समस्याओं को हल कर लेंगे, क्योंकि यदि यह हमें हासिल हो जाता है तो दुनिया से करीब करीब सभी समस्याएं लुप्त हो जाती हैं। इसलिये मुझे प्रसन्नता है कि आप भी आखिर—यद्यपि यह ध्येय जल्द नहीं परा हो सकता—लक्ष्य पर या किसी और अच्छे परिणाम पर पहुँच सकेंगे।

राजनैतिक क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र संघ दो या तीन वर्षों से कार्य कर रहा है। वहाँ उसे बहुत बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है और उन्नति करना उसके लिये सदा सुगम नहीं रहा है। फिर भी उसकी सब कमजोरियों के बावजूद, जो कि संगठन की कमजोरियां उतनी नहीं हैं जितनी कि उस दुनिया की हैं जिसमें हम रह रहे हैं, वह तरक्की कर रहा है। आज दुनिया में यही एक ऐसी चीज है, जो कि अन्ततः संसार की राजनैतिक समस्याओं के हल की कुछ आशा दिलाती है। इस अवसर से लाभ उठाने की दुनिया को काफी बुद्धि है भी या नहीं, इसकी भविष्यवाणी करने की मुझमें योग्यता नहीं। लेकिन मुझे जान पड़ता है कि सब क्षेत्रों में वास्तविक शान्ति हासिल करने की एकमात्र संभावना केवल अधिकाधिक अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में ही है। इसलिये हमारा कर्तव्य हो जाता है कि राजनैतिक क्षेत्र में और दूसरे क्षेत्रों में भी हम उस सहयोग को बरतें।

विश्व स्वास्थ्य संघ की दक्षिण पूर्वी एशिया की प्रादेशिक समिति के प्रथम अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए, नई दिल्ली में ४ अक्तूबर, १९४८ को दिया गया भाषण।

राजनैतिक स्तर पर बड़े-बड़े संघर्ष हैं, परन्तु दूसरे क्षेत्रों में वैसे संघर्ष नहीं हैं। लेकिन उनसे निबटने के लिये आपके पास पर्याप्त साधन होने चाहिये। इसलिये यदि हम इस कार्य में और ऐसे ही कार्यों में अधिकाधिक अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त कर लेते हैं, तो हम केवल एक ऐसे क्षेत्र में ही अच्छा काम नहीं कर रहे हैं, जो कि संसार की उन्नति के लिये आवश्यक है, बल्कि असल में हम परोक्ष रूप में संसार के और बड़े राजनैतिक और आर्थिक प्रश्नों को ही हल कर रहे हैं। इस प्रकार हम अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का एक वातावरण उत्पन्न करते हैं और यह एक बहुत बड़ी बात है। आज की दुनिया को देखते हुए मैं अनुभव करता हूँ कि यहां बड़े संघर्ष हैं। और ये संघर्ष अनेक कारणों से हैं, लेकिन कदाचित् सबसे बड़ा कारण यह है कि दुनिया में कुछ मनोवैज्ञानिक स्थितियां हैं, जिन पर भय की भावना छाई हुई है। हर आदमी का भय, एक दूसरे का भय और दूसरे देश का भय। अब, अगर भय की यह भावना चली जाय, तो हर एक कार्य क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग स्थापित हो जायगा।

इसलिये एक राजनीतिक व्यक्ति की हैसियत से, मैं यह कह सकता हूं कि राजनीति के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के ये प्रयास, वास्तव में राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं के हल के लिये एक आवश्यक पूर्व रूप हैं। कुछ लोग यह ख्याल कर सकते हैं कि इस ज़माने में दूसरे क्षेत्रों में यह सहयोग, राजनैतिक और आर्थिक प्रश्नों से कुछ अलग-अलग है, लेकिन राष्ट्रीय जीवन अन्ततः एक मिलीजुली चीज है। यदि कोई गलत बात हुई, तो सारा ढांचा बिगड़ जाता है। यदि एक व्यक्ति का स्वास्थ्य बिगड़ता है, तो एक राष्ट्र का शारीरिक स्वास्थ्य भी बिगड़ता है और इसका संसार पर भी प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार सभी दृष्टिकोणों से, इस विश्व स्वास्थ्य सम्मेलन का विचारणीय विषय यानी स्वास्थ्य, भौतिक तथा दूसरे क्षेत्रों में, संसार के भावी कुशल क्षेम के लिये, एक आवश्यक विषय है। इस तरह की शिकायत प्रायः हुई है, जिसे कि अवश्य ही आप सज्जनों ने भी सुना होगा, कि इन बड़े अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में उन समस्याओं पर खास जोर दिया जाता है जिनका कि यूरोप या अमेरिका या संसार के कुछ और हिस्सों से सम्बन्ध रहता है और एशिया के हिस्सों में वे विशेष दिलचस्पी नहीं लेते। मैं यह शिकायत इसलिये करता हूं कि, प्रायः जो लोग इन संगठनों में प्रमुख भाग लेते हैं, उनकी दिलचस्पी यूरोप की बड़ी समस्याओं में ही रहती है। यदि आप स्वास्थ्य के प्रश्न को लें, तो स्पष्ट है कि आपको एशिया के बड़े प्रदेशों और संसार के कुछ अन्य ही भागों को अपना कार्यक्षेत्र बनाना होगा।

यह भी आज भलीभांति विदित है कि दुनिया को हम इस तरह नहीं बांट सकते

कि कुछ भाग तो यहाँ स्वास्थ्यपूर्ण रहें और कुछ को अस्वस्थ रहने दिया जाय। क्योंकि छूत फैलती है, सभी कुछ फैलता है। आज अगर युद्ध होता है तो वह भी फैलता है, यदि रोग है तो वह भी फैलता है। इसलिये आपको सारी दुनिया को ही देखना होगा। तब सारी दुनिया को देखते हुए यह और भी अधिक आवश्यक हो जाता है कि आप उन भागों के लिये उपाय करें जो कि किसी खास दिशा में पिछड़े हुए हैं। इसलिये दक्षिण-पूर्वी एशिया की स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को निबटाना विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। और मुझे प्रसन्नता है कि प्रदेशों को लेकर इन समस्याओं के निबटाने का क्रम विकास पा रहा है। इस पद्धति से विशेष प्रदेशों की खास समस्याओं पर अधिक ध्यान दिया जा सकता है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जहां तक भारत सरकार का सम्बन्ध है, वह इस संगठन की सहायता करने में और इसके निर्णयों को कार्यान्वित करने में अपनी पूरी शक्ति से मदद देगी।

सहयोग का एक नया वातावरण

मैं इंग्लिस्तान में फिर कई वर्षों बाद आया हूं, और जहां भी मैं गया हूं, मुझे वहां स्वागत और मैत्री प्राप्त हुई है। मैं इसके लिये बहुत कृतज्ञ हूं।

मित्रो, मैंने यहां बहुत वर्ष बिताये हैं, लेकिन बीते हुए समय में अनिवार्यतः एक संघर्ष और विरोध की भावना रही है, जो कि भारत और इंग्लिस्तान के बीच थी। सौभाग्य से वह अब खत्म हो रही है, और हम एक नये ढंग से और सहयोग के एक नये वातावरण में एक दूसरे के निकट आ रहे हैं।

ब्रिटेन का पुराना औपनिवेशिक साम्राज्य क्रमशः बदल कर स्वतंत्र राष्ट्रमंडल के देशों अथवा कुछ उपनिवेशों और कुछ अस्वायत्त देशों के अवशेषों का समूह बना। अब वे उपनिवेश भी, या उनमें से अधिकांश स्वतंत्र हो गये हैं। कुछ अभी रह गए हैं। मैं आशा करता हूं कि यह परिवर्तन-क्रम शीघ्र ही पूरा होगा, जिससे कि यह राष्ट्रमंडल वास्तव में स्वतंत्र राष्ट्रों का राष्ट्रमंडल या कामनवेल्थ बन जायगा।

जहां तक भारत का संबंध है, वहां एक अद्भुत परिवर्तन हुआ है। न केवल इसलिये कि इसने बहुसंख्यक लोगों पर प्रभाव डाला है, बल्कि इसलिये भी कि पिछली कितनी ही पीढ़ियों से हमारा संघर्ष चला आ रहा था। यह इस बात को दिखाता है कि जब ठीक कदम उठाया जाता है, तो उस ठीक कदम के परिणाम शीघ्र निकलते हैं।

भारत में आज बीती बातों के बावजूद इंग्लिस्तान के विरुद्ध बहुत कम दुर्भावना है। और मैं समझता हूं कि जो कुछ बच रही है, वह भी बहुत जल्द मिट जायगी। उतना शीघ्र, जितना कि हम अपने सामने के बड़े कामों में, सहयोग करेंगे।

मैं यहां अधिराज्यों के प्रधान मंत्रियों की बैठक के संबंध में आया हूँ और दूसरे अधिराज्यों से आये हुए विख्यात राजनीतिज्ञों से मिलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। इस मेल का नतीजा यह हुआ है कि आपस में हमने एक दूसरे को समझा और हर एक व्यक्ति दूसरे की कठिनाइयों से परिचित हुआ है। हम सब बातों पर भले ही सहमत न हों, लेकिन यह एक आश्चर्यजनक बात है कि न केवल ध्येय के विषय में, बल्कि उन्हें प्राप्त करने के तरीकों के विषय में भी हम सब का इतना एकमत रहा है।

बी० बी० सी०, लंदन से २६ अक्तूबर, १९४८ को प्रसारित एक भाषण।

आखिरकार, कामनवेल्थ के ध्येय वही हो सकते हैं जो कि संयुक्त राष्ट्रों के अधिकार-पत्र में विस्तार से अंकित हैं; अर्थात् शान्ति की स्थापना, संघर्ष को रोकना और सारे संसार में मानवीय अधिकारों की प्रतिष्ठा।

यदि कामनवेल्थ इसके प्रतिपादन में न केवल अपने क्षेत्र में सफल होता है, बल्कि उसे संसार के विस्तृत क्षेत्र में सफल होने में सहायता देता है, तो कामनवेल्थ संसार का सर्वोत्तम नेतृत्व कर सकेगा।

इस बैठक ने मुझे दिखाया है कि कामनवेल्थ के लिये इस रूप में कार्य करने का, और न केवल अपनी बल्कि दूसरों की भी सहायता करने का, बहुत बड़ा क्षेत्र है।

अन्त में मै फिर ब्रिटेन के लोगों और ब्रिटेन की सरकार के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करना चाहता हूं।

संयुक्त राष्ट्रों के प्रति

इस महान सभा के सामने भाषण देने का जो अवसर मुझे दिया गया है, उसके लिये मैं कृतज्ञ हूँ। इस अवसर ने मुझे कुछ परेशानी और घबराहट में डाल दिया है, क्योंकि यह सभा संसार के समाज की प्रतिनिधि है, और जो लोग यहां मौजूद हैं वे चाहे बड़े स्त्री पुरुष हों, चाहे छोटे, वे सब एक विशाल उद्देश्य का प्रतिनिधित्व करते हैं, और उस विशाल उद्देश्य का बड़प्पन कुछ हम लोगों पर भी आता है, और हमें भी, वह एक क्षण के लिये, जैसे हम हैं, उससे अधिक बड़ा बना देता है।

इसलिये, इस सभा में भाषण देने का साहस करते हुए मुझे कुछ संकोच होता है। आप पेचीदा और कठिन समस्याओं को हल करने में लगे रहे हैं, और इस अवसर पर आपके सम्मुख विचारणीय बड़ी समस्याओं के विषय में, कुछ कहने का साहस मैं नहीं करता हूं और न करूंगा। आप संसार के बोझों और दुःखों को वहन कर सकते हैं। लेकिन अक्सर मुझे यह आश्चर्य होता है कि इन समस्याओं से निबटने के लिये जो रास्ता साधारणतः पकड़ा जाता है, वह ठीक भी है या नहीं? संयुक्त राष्ट्रों के अधिकारपत्र ने उदात्त भाषा में इस बड़े संगठन के सिद्धांत और उद्देश्य अंकित किये हैं। मैं नहीं समझता कि उस भाषा को सुधारना संभव है।

उद्देश्य स्पष्ट हैं, आपका ध्येय स्पष्ट है, और फिर भी, उस ध्येय को देखते हुए भी मैं यह कहने का साहस करना चाहता हूं कि हम अकसर अपने को छोटी छोटी बातों में खो बैठते हैं और अपने सामने के मुख्य ध्येय को भूल जाते हैं। कभी कभी ऐसा जान पड़ता है कि ध्येय स्वयं कुछ धुंधला हो जाता है और अपेक्षाकृत छोटे ध्येय हमारे सामने आ जाते हैं। और जिस मुख्य उद्देश्य हम को देख रहे थे उसे भूल जाते हैं।

मैं ऐसे देश से आ रहा हूं, जिसने कि एक लम्बी लड़ाई के बाद, यद्यपि वह लड़ाई एक शान्तिपूर्ण लड़ाई रही है, अपनी आजादी और अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की। लड़ाई के इन लम्बे वर्षों में, हमारे महान नेता ने हमें सिखाया था कि हमें न केवल अपने ध्येयों को न भूलना चाहिये, बल्कि उन तरीकों को भी न भूलना चाहिये,

---

संयुक्त राष्ट्र संघ की साधारण सभा के सामने, पेरिस में, ३ नवम्बर, १९४८ को दिया गया भाषण।

जिनसे कि यह ध्येय प्राप्त किया जाय। सदा उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि अच्छे ध्येय होना ही काफी नहीं है, यह भी उतने ही महत्व की बात है कि उन ध्येयों को प्राप्त करने के साधन भी अच्छे हों। साधन ध्येय के समान ही महत्व रखते हैं। आप इसे दुहराने की मुझे आज्ञा दें, क्योंकि मेरा विश्वास है कि ध्येय चाहे जितने अच्छे हों, वे चाहे संयुक्त राष्ट्रों के बृहत्तर ध्येय हों, चाहे अपेक्षाकृत छोटे ध्येय हों, जो कि अकेले राष्ट्रों की अथवा राष्ट्रों के वर्ग की हैसियत से हम समय समय पर अपने सामने रखते हैं, महत्व की बात यह है कि हम याद रक्खें कि अच्छे से अच्छे ध्येय भी सिद्ध न होंगे, अगर हमारे नेत्रों में खून की सुर्खी है और हमारे मस्तिष्क पर आवेग के बादल छाए हैं।

इसलिये हमारे लिये, यह आवश्यक हो जाता है कि एक क्षण के लिये हम यह भी सोचें कि हम किस तरह काम करते हैं, न सिर्फ यह कि हमारा ध्येय क्या है। अगर्चे हमें अपने ध्येय को भी कभी न भूलना चाहिये। यह आवश्यक है कि हम उन सिद्धांतों और उद्देश्यों को सदा याद रक्खें, जिनके लिये कि यह महान सभा बनी थी।

अब उन सिद्धांतों और उद्देश्यों के दुहराने मात्र से शायद संकेत मिल जाय कि किस तरह कभी कभी आवेग और पक्षपात में पड़कर, हम उस मार्ग से भटक जाते हैं। यह सभा दो महायुद्धों के बाद और उन युद्धों के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आई। इन दो युद्धों की क्या शिक्षा रही है? निश्चय ही इन युद्धों ने सिखाया है कि घृणा और हिंसा द्वारा आप शान्ति का निर्माण नहीं कर सकते। ये परस्पर विरोधी बातें हैं। इतिहास के लम्बे दौर की, और विशेषकर पिछले दो महायुद्धों की, जिन्होंने कि मानवता का भीषण संहार किया, यह शिक्षा रही है कि घृणा और हिन्सा सदा घृणा और हिंसा को ही जन्म देती है। हम घृणा और हिंसा के कुचक्र में पड़ गये हैं, और ओजस्वी से ओजस्वी बहसें भी आपको उससे बाहर न निकाल सकेंगी, जब तक कि कोई दूसरा रास्ता, दूसरे साधन आप प्राप्त न कर लें। यह स्पष्ट है कि आप इस चक्कर में पड़े रहें और युद्ध होते रहे, जिन्हें कि रोकने और दूर रखने के लिये यह सभा खास तौर पर बनी है, तो इसका नतीजा इतना ही न होगा कि सारी दुनिया पर भयानक तबाही आवेगी, बल्कि यह भी कि कोई भी शक्ति या वर्ग कभी अपने ध्येय को प्राप्त न कर सकेगा।

तब फिर हम कैसे आगे बढ़ें? हो सकता है कि घृणा, पक्षपात और भय को मन से दूर करना कठिन हो। फिर भी, जब तक हम इस तरह आगे बढ़ने की और इसी भय को दूर करने की कोशिश नहीं करते, तब तक हमें सफलता नहीं मिल सकती। इसका मुझे पूरा विश्वास है।

यहाँ संसार के करीब करीब सभी राष्ट्रों के प्रतिनिधि एकत्र हैं। अनिवार्य रूप से, आपके सामने और आप के पीछे वर्तमान कालीन बड़ी-बड़ी समस्याएं हैं जो खास तौर पर यूरोप की हैं, जिसने कि इतने कष्ट झेले हैं।

क्या मैं एशिया के एक प्रतिनिधि की हैसियत से यह कहूं कि हम यूरोप का उसकी संस्कृति के लिये और मानवीय सभ्यता में इसकी महान उन्नति के लिये, आदर करते हैं? क्या मैं कहूं कि हम यूरोप की समस्याओं के हल में भी उतनी ही दिलचस्पी लेते हैं? लेकिन क्या मैं यह भी कहूं कि दुनिया यूरोप से बड़ी है, और आप अपनी समस्याएं यह समझ कर नहीं हल कर सकते कि संसार की समस्याएं मुख्यतया यूरोप की ही समस्याएं हैं? दुनिया के बहुत बड़े ऐसे क्षेत्र हैं, जिन्होंने अभी, कुछ पीढ़ियों से, संसार के मामलों में हिस्सा न लिया था। लेकिन अब वे जाग गये हैं। अब उनके निवासी गतिशील हैं और वे हरगिज इस बात के लिये तैयार नहीं कि अपनी उपेक्षा या अपना पीछे छोड़ दिया जाना सहन करें।

यह एक सीधी-सी बात है, जिसे कि मैं समझता हूँ आपको याद रखनी चाहिये। क्योंकि जब तक आपके सामने दुनिया की पूरी तस्वीर न हो, आप समस्या को समझ ही न सकेंगे। और अगर आप दुनिया की एक भी समस्या को औरों से अलग करते हैं, तो आप उस समस्या को समझते ही नहीं। आज मैं यह निवेदन करने का साहस करता हूं कि एशिया की दुनिया के मामलों में गिनती है। कल उसकी गिनती आज से भी ज्यादा होगी। एशिया अब से कुछ पहले तक बहुत कुछ साम्राज्य-वाद और औपनिवेशिकता का शिकार बना रहा। उसका एक बड़ा हिस्सा आज स्वतंत्र है। अब भी कुछ हिस्सा स्वतंत्र नहीं हुआ है, और यह एक अचरज की बात है कि आज भी कोई देश औपनिवेशिकता के इस सिद्धांत को मानता रहे और उसे पेश करे, चाहे वह प्रत्यक्ष शासन के रूप में हो, चाहे किसी परोक्ष रूप में। जो कुछ हो चुका है, उसके बाद इस पर केवल आपत्ति ही न की जायगी, बल्कि सक्रिय आपत्ति की जायगी; औपनिवेशिकता के हर एक रूप के विरुद्ध, चाहे वह दुनिया के किसी भी भाग में हो, सक्रिय विरोध होगा। यह पहली बात याद रखने की है।

एशिया में हम लोगों ने, जिन्होंने कि औपनिवेशिकता की ये सब बुराइयां झेली हैं, अनिवार्य रूप से, हर एक औपनिवेशिक देश की आजादी के लिये प्रतिज्ञा कर ली है। एशिया में हमारे कितने ही पड़ोसी देश हैं, उनसे हमारी गहरी मित्रता है। हम उन्हें सहानुभूति के साथ देखते हैं, उनकी आजादी की लड़ाई को सहानभूति से देखते हैं। कोई भी शक्ति, चाहे बड़ी हो या छोटी, जो कि इस प्रकार इन लोगों की आजादी में बाधा डालती है, वह संसार की शांति के हक में अच्छा नहीं करती।

भारत जैसा बड़ा देश, जो कि औपनिवेशिकता की अवस्था से निकल चुका है, इसकी संभावना की भी कल्पना नहीं कर सकता कि और देशों पर औपनिवेशिक शासन का जुआ पड़ा रहे।

हम एशियायी इसे एक महत्व का प्रश्न समझते हैं, क्योंकि यह हमारे लिये सदा एक महत्व का प्रश्न रहा है। एक और प्रश्न भी है, जिस पर मैं आप का ध्यान दिलाना चाहता हूं। वह प्रश्न जातिगत समानता का है, जो ऐसी बात है कि जिसके विषय में संयुक्त राष्ट्रों के अधिकार पत्र में भी व्यवस्था की गई है। उसे दुहराना ठीक होगा, क्योंकि आखिरकार जातिगत समानता के प्रश्न पर अक्सर संयुक्त राष्ट्रों की सभा में विचार हुआ है।

मैं नहीं समझता कि इस प्रश्न के किसी खास पहलू पर मुझे कुछ कहने की आवश्यकता है। लेकिन मैं इस सभा को, इस प्रश्न के लोकव्यापी पहलुओं की याद दिलाना चाहूंगा। यह स्पष्ट है कि दुनिया के कई बड़े-बड़े प्रदेश हैं, जिन्होंने कि जातिगत विषमता के प्रश्न के कारण हानि उठाई है। हम यह भी अनुभव करते हैं कि दुनिया का कोई भी हिस्सा ऐसा नहीं, जहां कि यह विषमता भविष्य में स्वीकार की जायगी। यह दूसरी बात है कि अधिक बल के सामने किसी को जबरन झुकना पड़े। यदि जातिगत समानता को स्वीकार नहीं किया जाता, तो साफ तौर पर संघर्ष के बीज बोये जाते हैं, और संसार की शान्ति को संकट में डाला जाता है। यह संयुक्त राष्ट्रों के अधिकार पत्र के सिद्धान्तों के भी विपरीत है।

अतीत काल में इस विषमता के परिणामों को यूरोप की अपेक्षा एशिया, अफ्रीका और दुनिया के दूसरे कई भागों में कहीं अधिक अनुभव किया गया है। यह विषमता भविष्य में हमें संघर्ष की ओर ले जा रही है। यह एक प्रश्न है, जिसे यदि ठीक ठीक न समझा गया तो उसका हल न हो सकेगा।

यह एक अजीब सी बात है कि जब दुनिया में इतनी चीजों की कमी हो, दुनिया के बहुत से हिस्सों में भोजन और जरूरी चीजों की कमी हो, लोग भूखों मर रहे हों, तब राष्ट्रों की इस सभा का ध्यान कुछ राजनैतिक प्रश्नों पर ही केद्रिन्त हो। हमारी आर्थिक समस्याएं भी हैं। मैं नहीं जानता कि आप के सामने के राजनीतिक प्रश्नों से कुछ अवकाश ले लेना और तब तक उनके सम्बन्ध में मनुष्यों के विचारों को स्थिर होने देना तथा इस बीच गंभीर और आवश्यक आर्थिक समस्याओं पर ध्यान देना और यह देखना कि दुनिया में कहां खाने की कमी है, इस सभा के लिये कहां तक संभव होगा।

मैं अनुभव करता हूं कि दुनिया भय और आशंकाओं से अधिक जकड़ी हुई है, उनमें से कुछ अवश्य ही सकारण भी हैं। लेकिन जब कोई व्यक्ति भय अनुभव करता है, तो उसके बुरे और अनिष्टकर नतीजे जरूर निकलते हैं। भय अच्छा साथी नहीं है।

यह आश्चर्य की बात है कि भय की यह भावना बड़े-बड़े देशों पर अधिक व्याप्त दिखाई देती है। भय, और युद्ध का भारी भय, और बहुत सी बातों का भय! अस्तु, मैं समझता हूं कि यह स्वीकार किया जाता है या स्वीकार किया जाना चाहिये कि किसी प्रकार के अनधिकार आक्रमण सहन नहीं किये जा सकते। क्योंकि अनधिकार आक्रमण का विचार ही संतुलन को भंग कर देने वाला और युद्ध की ओर ले जाने वाला है, हमें सभी प्रकार के अनधिकार आक्रमण का मुकाबला करना होगा।

भय के और भी रूप हैं एक युद्ध का भय है। वर्तमान परिस्थिति में लोगों के लिए यह कठिन है कि वे अपनी रक्षा न करेंगे। क्योंकि अगर अनधिकार आक्रमण का भय है, तो आदमी को उसके विरुद्ध अपनी रक्षा करनी ही पड़ती है। हमें अपनी रक्षा करनी है, लेकिन अपनी रक्षा करने में भी हमें इस सभा के सामने बिना स्वच्छ हाथों के नहीं आना चाहिये। लोगों को दोषी ठहराना सहज है। हमें ऐसा नहीं करना चाहिये। क्योंकि कौन निर्दोष ऐसा है, जिसे स्वयं दोषी नहीं ठहराया जा सकता? एक अर्थों में हम सब, जो आज यूरोप के इस महाद्वीप में इकट्ठा हुए हैं, दोषी हैं। क्या हममें से कोई ऐसा है जो अनेक प्रकार से दोषी नहीं है? हम सभी नर और नारी अपराधी हैं। जब कि हम उन स्थलों को ढूंढ़ते हैं, जहां भूल हुई है, तब हमें यह भी न भूलना चाहिये कि हम में से एक भी ऐसा नहीं, जो कि निदोष हो।

अगर हम इस समस्या को लें और शांतिकाल में ही भय की मनोवृत्ति पर विचार-विनिमय कर लें, जो कुछ हो रहा है उसके परिणामों का हम अनुभव कर लें, तो यह संभव है कि भय का यह वातावरण दूर हो जाय। युद्ध का यह भय क्यों हो? हमें किसी भी संभावित आक्रमण से बचने की तैयारी कर लेनी चाहिये, और किसी को यह न समझना चाहिये कि कोई राष्ट्र, कोई समुदाय अनाचार कर सकता है। संयुक्त राष्ट्रों का यह संगठन सभी तरह के भय और क्षति को रोकने के लिये मौजूद है। लेकिन साथ ही हमें आक्रमणकारी मनोवृत्ति को, चाहे वह शब्द द्वारा हो या कार्य द्वारा, एक दम छोड़ देना चाहिये। फिर भी, मैं अनुभव करता हूँ कि हममें से बहुत कम इस रुख से बच पाते हैं, वह चाहे इस सभा के समाने विवाद के अवसर पर हो या किसी और जगह। आदमी अपना पक्ष इस तरह के आक्रमणात्मक शब्दों में रखने की कोशिश करता है। विवाद के प्रसंग में अपने पक्ष पर जोर देना सादा सहज है, लेकिन उसमें सदा एक कड़ुआपन रह जाता है, जो कि समस्या को और भी जटिल बना देता है। जैसा मैंने पहले ही कहा है मैं चाहता हूँ कि यह सभा याद रक्खे कि बड़ी समस्याएँ तब तक नहीं हल हो सकतीं, जब तक कि हमारी आंखों में खून झलक रहा हो और हमारे मनों पर उन्माद छाया हुआ हो।

मैं इस साधारण सभा से, अपने देशवासियों और अपनी सरकार की ओर से यह कहना चाहूँगा कि हम पूरे और पक्के तौर पर संयुक्त राष्ट्रों के अधिकारपत्र के सिद्धान्तों और उद्देश्यों में आस्था रखते हैं, और हम अपनी सारी योग्यता से उन सिद्धान्तों और उद्देश्यों की पूर्ति का प्रयत्न करेंगे।

अन्त में, क्या मैं इस साधारण सभा को मेक्सिको के प्रतिनिधि-मंडल द्वारा प्रस्तुत उस प्रस्ताव के लिए, जिसे कि उसने अभी स्वीकार किया है, बधाई दे सकता हूँ? यह निश्चय ही एक बड़ा प्रस्ताव है। यदि साधारण सभा इस प्रस्ताव पर अमल करती है तो वह शान्ति के मार्ग पर और जो समस्याएँ हमारे सामने हैं उनके हल के मार्ग पर बहुत आगे जा सकेगी। हम इन समस्याओं को भले ही हल न कर पावें। कोई भी इतना आशावादी नहीं, कि यह समझने लगे कि हमारे भले बनते ही सब समस्याएँ हल हो जाएँगी। मेरे कहने का यह तात्पर्य नहीं। समस्याएँ कठिन और जटिल हैं, और उनको हल करने के लिए काफी कोशिश करनी होगी। लेकिन यह भी मैं अनुभव करता हूँ कि हमें इन समस्याओं को भय, क्रोध और आवेश से न देखना चाहिये। तब शायद ये धीरे-धीरे भिन्न रूप धारण कर लेंगी और हम विरोधी पक्ष को ज्यादा अच्छी तरह समझ सकेंगे। तब शायद एक दूसरे का भय हमारे मनों में कम हो जाएगा और तब कोई हल निकल सकता है। यदि हल भी न निकले तो कम-से-कम भय का यह आवरण, जो हम पर छाया हुआ है, हल्का हो जाएगा, और यह स्वयं संसार की समस्या का एक आंशिक हल होगा।

अंतर्राष्ट्रीय सहयोग

सभापति महोदय, और अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष विज्ञान संगठन के एशियायी कमीशन के सदस्यो ! मैं यह ठीक-ठीक नहीं जानता कि मैं यहाँ क्यों हूँ, अर्थात् इस कान्फ्रेंस में, जहाँ विज्ञान की एक खास शाखा के माने हुए विशेषज्ञ हैं, उपस्थित होने के लिए मुझमें क्या विशेष गुण हैं, सिवाय इसके कि विज्ञान और वैज्ञानिक विकास में मेरी कुछ साधारण रुचि है और उसका कुछ अस्पष्ट ज्ञान है, जैसा कि सम्भवतः एक अर्धशिक्षित व्यक्ति का हो सकता है। मेरी इस विषय की कोई खास जानकारी नहीं, और इसलिए विशेषज्ञों की इस मंडली में मैं अपने को कुछ छोटा अनुभव करता हूँ।

लेकिन, मैं यहाँ अन्तरिक्ष विज्ञान के विषय में, जिसके विषय में आप मुझसे कहीं अधिक जानते हैं, बात करने के लिए नहीं आया हूँ; बल्कि भारत सरकार की ओर से आपका हार्दिक स्वागत करने आया हूँ, और इस बात पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करने आया हूँ कि आप दूर-दूर देशों से, यहां दिल्ली में, आपस में मिलने के लिए और जो समस्याएँ आपके सामने हैं, उनपर, राष्ट्रीय होड़ की भावना से नहीं, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भावना से, विचार करने आए हैं।

आज की दुनिया में हम प्रतिकूल शक्तियों की होड़ के रूप में बड़ा अजीब विरोध पाते हैं। एक ओर हम अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का एक अनिवार्य विकास देखते हैं। आज की दुनिया इस अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के बिना आगे नहीं चल सकती और, जैसा कि पहले वक्ता ने बताया, इसकी एक मिसाल यह कान्फ्रेंस और अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष विज्ञान संगठन है। मौसम की अवस्थाएँ या इसी प्रकार की दूसरी चीजें राष्ट्रीय सीमाओं में नहीं बंध सकतीं। वे उन्हें पार कर जाती हैं और उन पर असर डालती हैं। मौसम सम्बन्धी जो बात किसी दूर देश में होती है उसका प्रभाव हम पर यहाँ पड़ता है; और यदि हम इस क्षेत्र में संकीर्णता से काम लें, जैसा कि दुर्भाग्यवश हम में से अधिकतर लोग दूसरे क्षेत्रों में करते हैं, और यह सोचने लगें कि कृत्रिम सीमाएँ मनुष्यों को पूरी तरह विभाजित करती हैं, तो विज्ञान की इस शाखा में या किसी दूसरी शाखा में कोई उन्नति नहीं हो सकती।

अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष विज्ञान संगठन की एशियायी प्रादेशिक कान्फ्रेंस का उद्‌घाटन करते हुए, नई दिल्ली में, १० नवम्बर १९४८, को दिया गया भाषण।

इस प्रकार एक ओर तो हम अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का यह अनिवार्य विकास पाते हैं और दूसरी ओर राष्ट्रीयता की संकुचित भावना पाते हैं। यद्यपि राष्ट्रीयता के क्षेत्र में लोगों के मस्तिष्क की यह संकीर्णता अनिवार्य रूप से नहीं पाई जाती, फिर भी दुर्भाग्यवश यह स्पष्ट दिखाई देती है। इनमें से कौन-सी शक्ति अन्त में विजय पाएगी यह कहना ज़रा कठिन है; यद्यपि मैं यह मानता हूँ कि यह कहा जा सकता है कि अन्त में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की शक्ति की ही विजय होगी। यदि इसकी जीत नहीं होती, तो किसी की जीत नहीं होती। यह बात नहीं, कि दूसरी शक्ति की जीत होती है, बल्कि ऐसी चीज़ की जीत होती है जो निश्चय ही नकारात्मक और विनाशकारी है। संसार के बहुत-से कार्य, चाहे वे राष्ट्रीय हों चाहे अन्तर्राष्ट्रीय, उसके परिणाम स्वरूप हानि उठाते हैं।

इसलिए यह एक अच्छी बात है कि हम इन अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के अवसरों से लाभ उठाएँ, न केवल इसलिए कि यह एक विशेष कार्य-क्षेत्र में अच्छा है, बल्कि इसलिए कि उनका प्रभाव संसार में मानव-सम्बन्धों के बृहत्तर क्षेत्र पर पड़ता है, और इससे लोग यह अनुभव कर पाते हैं कि आखिरकार यह दुनिया आज बहुत हद तक अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के बल पर चल रही है। इस प्रसंग में, संचार की प्रणाली अधिकाधिक अन्तर्राष्ट्रीय हो जाती है, और विज्ञान की बहुत-सी शाखाओं की उन्नति अन्तर्राष्ट्रीय रूप में ही हो सकती है।

इसलिए, मैं उन सब प्रतिनिधियों का, जो यहां आए हैं, स्वागत करता हूँ, और आशा करता हूँ कि विज्ञान की इस विशेष शाखा में आपका प्रयत्न सफल होगा। यह विज्ञान केवल मानव-कल्याण के लिए ही नहीं, मानव सम्बन्धों के बृहत्तर क्षेत्र में भी बहुत महत्वपूर्ण है।

वायुमंडल पर विजय

सभापति जी, अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन संगठन की कौंसिल के प्रधान जी, और सरकारों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के प्रतिनिधिगण ! मैं यहाँ पर भारत सरकार की ओर से इस देश में और दिल्ली के इस अत्यन्त प्राचीन नगर में आपका अत्यन्त हार्दिक स्वागत करने के लिए उपस्थित हूँ। अभी, पिछले कुछ क्षणों में, यहाँ बैठा हुआ मैं सोचने लगा कि इस प्राचीन नगर ने मानव-इतिहास के प्रवाह में कितने महान् परिवर्तन देखे होंगे। यह नगर संसार के इने-गिने सबसे प्राचीन नगरों में से है—यह वर्तमान नगर नहीं, बल्कि यह जगह, जहाँ कि स्मरणातीत काल से नगर बसते आए हैं। मुझे आश्चर्य हुआ कि इसने कितने परिवर्तन देखे होंगे और अब इस हवाई यात्रा के युग में इसकी स्थिति क्या होगी—इस हवाई यात्रा के युग में ही नहीं, बल्कि इससे भी अधिक, जब कि मनुष्य क्रमशः तीसरे आयतन में प्रवेश कर रहा है, और उस पर नियन्त्रण पाने का प्रयत्न कर रहा है, और उसका भले और बुरे दोनों ही रूपों में उपयोग कर रहा है। इस प्रकार इतिहास का यह विस्तृत पट मेरे सामने आया।

अब, यदि आप एक निजी संस्मरण बताने की आज्ञा दें, तो मुझे याद है कि बहुत समय पहले जब मैं स्कूल का विद्यार्थी था, उड़ान के प्रथम प्रयासों में मेरी बहुत ही दिलचस्पी थी, और मुझे स्मरण है कि सन् १९०६ में मैंने स्कूल में हवाई उड़ान के विषय पर एक निबन्ध लिखा था। यह बहुत पुरानी बात है। मेरा ख्याल है, यह लगभग उस समय की बात है जब कि राइट बन्धु, लैथम, ब्लेरिओ और अन्य लोग या तो इंग्लिस्तान और फ्रांस के बीच का जलडमरूमध्य पार करने में लगे थे या और जगहों में उड़ान कर रहे थे। मैं उनके साहसिक कार्य से बहुत उत्तेजित हुआ था, और उस समय मैं स्वयं एक उड़ाका या कुछ इसी प्रकार का व्यक्ति बनने के स्वप्न देखता था।

मुझे स्मरण है कि अब से ४० या ४२ बरस पहले मैंने इंगलैण्ड के एक स्कूल से भारत में अपने पिता जी को लिखा था कि मैं शीघ्र ही सप्ताहान्त की छुट्टी बिताने के लिए हवाई जहाज से आपके पास आऊँगा। इस विषय में मैंने समय से

अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन संगठन की दक्षिण-पूर्व-एशिया प्रादेशिक हवाई यात्रा सभा में, नई दिल्ली में, २३ नवम्बर, १९४८, को दिया गया भाषण।

कुछ पूर्व की बात कही थी। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि सप्ताह के अन्त की छुट्टियाँ होने लगी थीं और मैं नहीं कह सकता कि कितने और लोग इंग्लिस्तान और भारत के बीच सप्ताह के अन्त की यात्रा का विचार करते थे।

थोड़े ही समय बाद जब पहला जेपलिन वायुयान आया तो मैं बर्लिन में था। उस अवसर की मुझे अच्छी तरह याद है। इस सदी के उन प्रारम्भिक दिनों में हवाई जहाजों के विविध प्रदर्शन और उड़ानें फ्रैंकफर्ट और पेरिस के बीच हुईं। इस तरह एक अर्थ में वायुयात्रा से मेरा सम्बन्ध बहुत पुराना है और शुरू लड़कपन के दिनों का है। तभी से मैं इस विज्ञान के विकास में अत्यधिक रुचि रखता रहा हूँ, और यह मुझे बड़ी उल्लासकारी चीज़ लगी है। मेरा अपना मुख्य खेद यह है कि मैं दूसरे धन्धों और कामों में पड़ गया और इतनी आशा करने और स्वप्न देखने के बाद भी उड़ाका न बन सका। पर मेरी आशा अभी टूटी नहीं है।

मैं यहाँ आपका स्वागत करने आया हूँ। वायुयात्रा में बड़ी दिलचस्पी रखने के बावजूद, मैं उसकी यन्त्र-प्रणाली को या समस्याओं की विस्तार की बातों को, जिन पर कि आप विचार करेंगे, नहीं जानता। इसलिए उनके विषय में मेरा कुछ कहना मूर्खता और अज्ञान प्रदर्शन होगा। विस्तार की बातों को जाने दीजिए, वायु-मंडल पर विजय मनुष्य-जाति के इतिहास की बड़ी भारी घटना है। केवल इसी एक बात से कल्पना प्रज्वलित हो उठती है।

मैं स्वयं अभी नहीं कह सकता कि अन्तिम विश्लेषण में यह मनुष्य-जाति के लिए अच्छी सिद्ध होगी या बुरी। विज्ञान मानव-जाति के इतिहास में सबसे बड़ी चीज़ है। विज्ञान के विकास से ही मनुष्य-जाति इतनी उन्नति कर सकी है। परन्तु जिस तरह हर अच्छे आविष्कार का बुरे उद्देश्य के लिए भी उपयोग हो सकता है, उसी तरह विज्ञान का भी बड़ा दुरुपयोग हुआ है। लेकिन यह विज्ञान का दोष नहीं है। यह मनुष्य का दोष है, जो बुरे काम के लिए उसका उपयोग करता है। पर यह दूसरा ही प्रश्न है। अब मैं समझता हूँ कि यदि हम इतिहास को एक लम्बी दृष्टि-परम्परा से देखें, तो वायुमंडल की यह विजय मनुष्य-जाति के इतिहास में परिवर्तन लानेवाली घटनाओं में वस्तुतः एक बड़ी घटना सिद्ध होगी। मैंने अभी तीसरे आयतन की चर्चा की थी। यह बड़ी घटना इसलिए है, कि धरती की सतह पर न्यूनाधिक दो दिशाओं में रेंगने वाला मनुष्य अचानक तीसरी दिशा में उछल कर पहुँच जाता है। उसका मस्तिष्क भी उसी के साथ उछल कर ऊपर पहुँचा या नहीं, यह मैं नहीं जानता; अगर वह भी पहुँचता तो सब ठीक ही होता। लेकिन, किसी तरह, घटनाएँ मनुष्य के मस्तिष्क से आगे चलती हैं और हम बहुत पीछे रह जाते हैं। काम करने के साधन हमें प्राप्त होते हैं। हम तरह-तरह के बड़े काम करते भी हैं, फिर भी यह

जानने की बुद्धि हमें नहीं आती कि उन्हें अच्छी तरह से कैसे किया जाय। हममें उन कामों के करने का शैल्पिक ज्ञान हो सकता है, लेकिन बुद्धियुक्त ज्ञान, कि उन्हें मनुष्य जाति के हित के लिए कैसे करना चाहिए, नहीं हो पाता। यह विषय दार्शनिकों के लिए है, इस कान्फ्रेंस के लिए उतना नहीं है। फिर भी, उसको ध्यान में रखना अच्छा है, क्योंकि यद्यपि शिल्प-कौशल बहुत महत्वपूर्ण है, फिर भी, उसका किसी और प्रकार के मानसिक गुण से मेल होना चाहिए, जिससे उसका उचित ध्येयों के लिए उपयोग हो सके।

आपको मालूम होगा कि यहाँ भारत में थोड़े ही समय के भीतर हमने उड़ान में, जैसा कि स्वाभाविक था, बड़ी तरक्की कर ली है, क्योंकि एक मानी में यह देश इसके लिए बहुत ही उपयुक्त है। आप यहाँ एक ऐसा विस्तृत क्षेत्र पाएँगे, जहाँ कि वर्ष के अधिकांश में ऋतु अनुकूल रहती है और जहाँ हवाई यात्रा प्राय: आवश्यक और अनिवार्य हो जाती है। एक बार आपको इसकी आदत पड़ गई तो फिर इसके बिना आपका काम नहीं चलता। आपको यह पता रहता है कि देश के बहुत से भागों में ऋतु कैसी होगी। इसलिए हवाई यात्रा और संचार का विकास निश्चय है।

लेकिन मैं कहूँगा कि यद्यपि हवाई यात्रा के प्रति मेरे अन्दर इतना उत्साह था, फिर भी मुझे यह आशा न थी कि भारत में वायु-सेवाएँ और वायु-संचार पिछले कुछ वर्षों में इतनी तेजी से बढ़ जाएगा। मेरा ख्याल है कि कुछ साल पहले भारत में हवाई यातायात के विकास के लिए एक दस साल की या कुछ ऐसी ही योजना बनी थी। मैं आशा करता हूँ कि मैं गलत नहीं कह रहा हूँ। मेरा ख्याल है कि हमने उस दस साल की योजना को अभी ही दो तीन वर्षों में पूरा कर लिया है। इसके लिए अधिक प्रयत्न नहीं करना पड़ा। यह काम जल्दी इसलिए पूरा हो गया कि इसके लिए उत्साह था। वह बढ़ा और बराबर बढ़ रहा है। कुछ और बड़े देशों की तरह भारत इस काम के लिए एक आदर्श देश है। और अगर मैं कह सकता हूँ तो यह उचित और ठीक ही है कि आप सब महिलाएँ और भद्र पुरुष, जोकि दूर देशों से यहाँ आए हैं, यहाँ एकत्र हों और आपस में इसपर विचार-विनिमय करें, कि इसका और विकास कैसे हो सकता है, जिससे कि हवाई यात्रा तेजी से, कुशलता से, और हिफाजत से हो सके और भविष्य में मनुष्यों के दूसरे कामों में भी आ सके।

आप दक्षिण-पूर्वी एशिया प्रदेश के प्रतिनिधि हैं। भौगोलिक दृष्टि से और अन्य दृष्टियों से भी भारत की स्थिति बड़ी विचित्र है। यह दक्षिण-पूर्वी एशिया का अंग है, यह दक्षिणी एशिया का अंग है, यह पश्चिमी एशिया का भी अंग है। यह

इस बात पर निर्भर है कि आप किस ओर से इसे देखते हैं, क्योंकि यह इन सबके बीच में है और चाहे आप पूर्वी एशिया की यात्रा का विचार करें, चाहे दक्षिणी एशिया की यात्रा का, भारत बीच में पड़ता है। सभी अन्तर्राष्ट्रीय मार्ग या दुनिया के चारों ओर जानेवाले मार्ग प्रायः अनिवार्य रूप से भारत के ऊपर होकर जाते हैं। फिर जब आप इसे व्यापार, वाणिज्य आदि की दृष्टि से देखते हैं, या रक्षा की दृष्टि से देखते हैं, तो भारत दक्षिणी, दक्षिणी-पूर्वी और पश्चिमी एशिया का धुरी केन्द्र हो जाता है। भूगोल ने उसे यह स्थिति दी है। और चूंकि भूगोल ने भारत को यह स्थिति दी है और निस्संदेह और कारणों से भी, इतिहास के प्रवाह ने यह दिखाया है कि भारत ने अपने आस-पास के देशों को किस तरह प्रभावित किया है, और वह उनसे किस तरह प्रभावित हुआ है।

किसी को यह कल्पना न करनी चाहिए कि भारत के इतिहास के किसी काल में यह देश शेष दुनिया से अलग रहा है। उसकी स्थिति को देखते हुए, ऐसा हो नहीं सकता था, और वह ऐसा चाहता भी न था, सिवाय अपने इतिहास के ऐसे काल में जब कि वह किसी प्रकार के आन्तरिक उपद्रव या कठिनाई का सामना कर रहा हो। डेढ़ सौ वर्ष पीछे तक, पड़ोसी देशों के साथ भारत का सम्पर्क बहुतायत से और अनिवार्य रूप से स्थलमार्ग और समुद्रमार्ग दोनों से रहा है, क्योंकि बहुत प्राचीन काल से भारत एक समुद्री शक्ति और व्यापारी देश रहा है। प्राचीन यूनान और रोम के जमाने में, रोम और यूनान से हमारे घनिष्ठ व्यापारिक सम्पर्क थे, और मिस्र से भी थे। पश्चिमी समुद्र-तट के हमारे बड़े बन्दरगाह ऐसे लोगों से भरे रहते थे, जो देश से बाहर आते-जाते रहते थे, भारत का माल बाहर पहुँचाते थे और विदेशों से माल भारत में लाते थे।

लेकिन भारत का इससे भी गहरा सम्पर्क दक्षिण-पूर्वी एशिया से था। यह सांस्कृतिक सम्पर्क था और कुछ हद तक धार्मिक भी था। यह सम्पर्क हज़ारों वर्षों तक कायम रहा। यदि आप दक्षिण-पूर्वी एशिया के किसी भाग में जायें, तो आपको इस सम्पर्क के भाषा, संस्कृति, स्मारक, पुरातत्त्व और स्थापत्य सम्बन्धी प्रमाण मिलेंगे। भारत के ये सम्पर्क समुद्र-मार्ग से थे। इसके अतिरिक्त, और कुछ अंशों में इससे भी महत्त्वपूर्ण, उसके सम्पर्क एशिया में स्थलमार्ग से थे। लगभग १५० वर्ष पहले उसका विकास बड़े समुद्र-मार्गों से हुआ। सारे संसार में परिवर्तन हुए, और भारत में भी परिवर्तन हुए, जो कि मुख्यतया राजनीतिक थे।

अँग्रेज लोग भारत में आए और धीरे-धीरे उन्होंने देश पर आधिपत्य जमा लिया। इसका नतीजा यह हुआ कि कुछ तो जानबूझकर, सुचिन्तित रूप में, और कुछ अनजाने भारत के सम्पर्क उसके पड़ोसी एशियायी देशों से धीरे-धीरे कम होते

गएं। हमारे स्थलमार्ग शिथिल पड़ गये, और कभी-कभी कारवानों या साधारण यात्रियों के आवागमन को छोड़कर प्रायः बन्द ही हो गए। हमारा समुद्री व्यापार इससे पहले ही क्षीण हो चला था, और इस सब के स्थान पर अब नए समुद्री मार्ग से और समुद्री यातायात के नए साधनों से, जो कि वाष्प-यंत्रों के विकास के परिणाम थे, नए सम्पर्क स्थापित हुए।

यूरोप का मार्ग और खासतौर से इंगलैंड का मार्ग खुल गया। इस प्रकार भारत का अपने पड़ोसी एशियायी देशों की अपेक्षा इंग्लिस्तान और पश्चिमी यूरोप से, निकटतर सम्पर्क हो गया और एशिया के देश धीरे-धीरे दूर और अपरिचित होते चले गए, और एक मानी में उन तक पहुँच कठिन हो गई। यह एक बड़ा परिवर्तन था, जिसने भारत पर बहुत गहरा असर डाला। यह स्थिति सौ वर्ष से अधिक रही और अब फिर परिवर्तन हुआ है।

वायुयान का विकास हुआ और पिछली पीढ़ी में समुद्र-यात्रा से ध्यान हटकर हवाई यात्रा की ओर गया। बड़े-बड़े अन्तर्राष्ट्रीय वायुयान पश्चिमी एशियायी रेगिस्तानों से होकर, बगदाद और तेहरान से और और जगहों से आए, और भारत को पार करके दक्षिण-पूर्वी एशिया पहुँचे। अब भारत से चीन जाना सुगम हो गया—करीब-करीब एक दिन की उड़ान थी। इस तरह जो पुराने सम्पर्क पिछले १५० वर्षों में टूट गए थे, फिर स्थापित हो गए। यातायात के इस विकास का प्रभाव जिस प्रकार और देशों पर पड़ा उसी प्रकार भारत पर भी पड़ा। इससे पुराने सम्पर्कों के पुनः स्थापन में बहुत सहायता मिली। निश्चय ही हवाई यात्रा का परिणाम यह हुआ कि संसार के देश एक दूसरे के बहुत ही निकट आ गए। कुछ हद तक इतिहास को एक विस्तृत दृष्टि-परम्परा से और कुछ-कुछ काल्पनिक ढंग से देखने का अभ्यस्त होने के कारण मुझे ऐसा लगता है कि मेरी कल्पना इन परिवर्तनों से और इससे भी अधिक भविष्य में होने वाले सम्भावित परिवर्तनों से उत्तेजित हो उठी है। इसलिए नागरिक वायु-यात्रा और यातायात के सम्बन्ध में एशिया और दुनिया के कार्यों के समीकरण की कोशिश मुझे आधुनिक संसार के लिए एक बड़ी आवश्यक बात मालूम पड़ती है।

मैं यह कह सकता हूँ कि आप लोग, जो कि अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के प्रतिनिधि हैं, यहाँ पर बैठकर केवल नीरस ढंग से इसकी गतिविधि पर ही विचार नहीं कर रहे, बल्कि एक अर्थ में आप सभी उस भविष्य की सन्तान हैं जो कि अपना स्वरूप प्रकट करने वाला है। आपके और संसार के आप जैसे लोगों के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप बड़ी-बड़ी घटनाएँ होंगी, जो मैं आशा करता हूँ, मनुष्य जाति के लिए विशेष हितकर होंगी।

इंडोनीशिया में संकट

महिलाओ और सज्जनो ! भारत सरकार की ओर से और अपनी ओर से मैं आपका हार्दिक स्वागत करता हूँ, और मैं आपकी सरकारों के प्रति अपनी गहरी कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूँ, जिन्होंने अल्पकालिक सूचना होते हुए भी हमारे अत्यावश्यक आमंत्रण को स्वीकार किया। यह स्वीकृतिमात्र इस बात की परिचायक है कि सारे एशिया में और संसार के अन्य भागों में इंडोनीशिया में होनेवाली हाल की घटनाओं ने कैसी गहरी भावनाएँ जागृत कर दी हैं। हम आज इसलिए इकट्ठे हुए हैं कि हमारे एक संगी देश की स्वतन्त्रता संकट में है, और एक बीते युग की समाप्त होती हुई औपनिवेशिकता ने फिर से सिर उठाया है और उन सभी शक्तियों को, जो कि संसार के एक नए ढाँचे के निर्माण के लिये यत्नशील हैं, चुनौती दी है। इस चुनौती का एक दूसरा ही अर्थ है, क्योंकि यह चुनौती उस नवजागृत एशिया को है, जो औपनिवेशिक शासन के विविध रूपों से बहुत काल से पीड़ित हो रहा है। यह चुनौती मनुष्य की आत्मा को भी है और एक विभाजित और आकुल संसार की सभी प्रगतिशील शक्तियों को भी है। संयुक्त राष्ट्रों की, जो कि 'ऐसे एक संसार' का प्रतीक है, जो विचारशील और सदाशय लोगों का आदर्श है, उपेक्षा हुई है, और उसके व्यक्त उद्देश्य को रद्द किया गया है। अगर इस चुनौती का कारगर ढंग से जवाब नहीं दिया गया, तो उसके परिणामों का प्रभाव इंडोनीशिया और एशिया पर ही नहीं सारी दुनिया पर पड़ेगा। वह विनाश और विच्छेद की शक्तियों की विजय का प्रतीक होगा और उसका निश्चित परिणाम निरन्तर संघर्ष और जगद्-व्यापी अव्यवस्था होगी।

यद्यपि हम एक तात्कालिक महत्त्व की जरूरी समस्या पर विचार करने के लिए इकट्ठा हुए हैं, पर मेरा मन इस अपूर्व सम्मेलन के ऐतिहासिक महत्त्व से भरा हुआ है। यहाँ एशिया के स्वतन्त्र राष्ट्रों के प्रतिनिधि जमा हैं, और आस्ट्रेलिया,

---

इंडोनीशिया विषय पर, नई दिल्ली में २० जनवरी, १९४९ को, १९ राष्ट्रों के सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए सभापति-पद से दिया गया भाषण। अफगानिस्तान, आस्ट्रेलिया, बर्मा, लंका, मिस्र, ईथोपिया, भारत, ईरान, लेबनान, पाकिस्तान, फिलिपाइन्स, सऊदी अरब, सीरिया और यमन की सरकारों की ओर से इस कान्फ्रेंस में, सचिवों के स्तर पर, प्रतिनिधि सम्मिलित थे, और चीन, नेपाल, न्यूज़ीलैण्ड और स्याम ने अपने प्रेक्षक भेजे थे।

न्यूज़ीलैंड, मिस्र और ईथोपिया के मित्र भी मौजूद हैं, जो कि पहली बार समान रूप से हमसे सम्बन्ध रखनेवाले एक विषय पर विचार करने के लिए इकट्ठा हुए हैं। एक ओर आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड और फिलिपाइन्स से लेकर दूसरी ओर मिस्र और ईथोपिया तक हम पृथ्वी के आधे भाग के, और आधी से भी अधिक आबादी के प्रतिनिधि हैं। हम पूर्व की प्राचीन सभ्यता का और पश्चिम की गतिशील सभ्यता का प्रतिनिधित्व करते हैं। राजनीतिक दृष्टि से हम स्वतन्त्रता और लोक-तन्त्र की भावना के, जो कि नवीन एशिया की इतनी प्रमुख विशेषता है, प्रतीक स्वरूप हैं। इतिहास का यह लम्बा दौर एशियायी देशों की अपनी सारी सुख-दुख की गाथाओं के साथ, मेरी आँखों के सामने से गुज़र रहा है, और वर्तमान के छोर पर खड़ा हुआ मैं उस भविष्य को देख रहा हूँ जो धीरे-धीरे खुलता जा रहा है। हम अपने इतिहास के इस लम्बे अतीत के उत्तराधिकारी हैं, लेकिन हम आनेवाले कल के, जो कि अपना रूप धारण कर रहा है, निर्माता भी हैं। उस आनेवाले कल का बोझ हमें संभालना है, और हमें उस बड़ी जिम्मेदारी के योग्य अपने को साबित करना है। यदि इस सम्मेलन का आज महत्त्व है, तो आनेवाले कल की दृष्टि-परम्परा में इसका और भी अधिक महत्त्व होना चाहिए। एशिया, जोकि चिरकाल तक दबा हुआ अधीन और दूसरे देशों के खेल की वस्तु रहा है, अब अपनी स्वतन्त्रता में कोई हस्तक्षेप सहन न करेगा।

इस सम्मेलन में हम इंडोनीशिया की वर्तमान स्थिति पर विचार करने के लिए इकट्ठा हुए हैं, और मेरा यह सुझाव है कि हम लोग अपना ध्यान इसी एक प्रश्न पर केन्द्रित करें; अन्य बहुत-से प्रश्नों पर नहीं, जो कि निश्चय ही विचारणीय हैं। इंडोनीशिया की पिछले तीन वर्षों की कहानी एक अजीब और आँखें खोलने वाली कहानी है। यह स्मरण रखना चाहिए कि मित्र राष्ट्रों ने इंडोनीशिया को जापानियों से जीतकर उसे डच लोगों के हवाले कर दिया था। इसलिए मित्र राष्ट्रों पर एक विशेष जिम्मेदारी आती है। पिछले तीस वर्षों में बहुत-सी बड़े मार्के की बातें इंडो-नीशिया में हुई हैं, और इनका ब्यौरा उन पत्रों में दिया हुआ है, जो कि सम्मेलन को दिए गए हैं। यह तोड़े गए वायदों की और इंडोनीशिया के गणराज्य को मिटाने या उसकी ताकत को कम करने की लगातार कोशिशों की एक लम्बी कहानी है।

पिछले वर्ष, १८ दिसम्बर को, जब कि शान्तिपूर्ण समझौते के लिए बातचीत चल रही थी, डच-सेनाओं ने बिना सूचना दिए, गणराज्य पर आक्रमण शुरू कर दिया। संसार के जड़ीभूत और क्लांत अन्तःकरण पर भी इसकी एक धक्के जैसी और अचम्भे की प्रतिक्रिया हुई। गणराज्य के नेतागण कैद कर लिए गए और एक दूसरे से अलग कर दिए गए और उनके साथ निर्दयता का व्यवहार किया गया। संयुक्त राष्ट्रों की सुरक्षा परिषद् ने कई प्रस्ताव पास किए, जिनमें प्रजातन्त्र के नेताओं को

मुक्त करने और युद्ध बन्द करने के लिए कहा गया और इसे शान्तिपूर्ण और सम्मानित समझौते की बातचीत फिर से चलाने के लिए एक आवश्यक प्राथमिक शर्त बताया गया। सुरक्षा-परिषद के निर्देशों का अभी तक पालन नहीं हुआ। डच अधिकारी अपने सम्पूर्ण प्रयत्नों को ऐसी तथाकथित अन्तरिम सरकार के निर्माण में लगाते हुए जान पड़ते हैं, जिसके सम्बन्ध में वे आशा करते हैं कि वह उनकी इच्छाओं के अधीन होगी। कोई भी व्यक्ति, जो इंडोनीशिया के निवासियों की या एशिया की भावना से परिचित है, यह जानता है कि इंडोनीशिया की राष्ट्रीयता और इंडोनीशिया के लोगों की स्वतन्त्रता के प्रति प्रेरणा के दमन का यह प्रयत्न विफल होगा। लेकिन अगर खुल्लमखुल्ला और बेशर्मी से किया गया यह हमला रोका नहीं जाता और और शक्तियों द्वारा इसका समर्थन होता है, तो आशा ही मिट जाती है, और लोग दूसरे तरीके और दूसरे साधन ग्रहण करेंगे, चाहे इसका परिणाम अधिक-से-अधिक तबाही ही क्यों न हो। एक बात निश्चित है कि हमले के आगे सिर नहीं झुकाया जाएगा और औपनिवेशिक नियन्त्रण को स्वीकार नहीं किया जाएगा, और न वह फिर से लादा ही जा सकेगा।

गहरे विचार के और उत्सुकतापूर्ण मनन के बाद ही हमने इस सम्मेलन को करने का निश्चय किया था। यह विश्वास करते हुए कि एक नवीन व्यवस्था के प्रतीक के रूप में संयुक्त राष्ट्रों की पुष्टि होनी चाहिए, हम कोई ऐसा कदम उठाने में संकोच करते थे, जो उसके अधिकार को कम करता प्रतीत होता। जब सुरक्षा परिषद् की इच्छा का ही तिरस्कार किया गया, तब हम लोगों पर यह स्पष्ट हो गया कि हम लोगों को संयुक्त राष्ट्रों को मज़बूत बनाने के लिए और भयावह स्थिति को और अधिक बिगड़ने से रोकने के लिए, हमें आपस में परामर्श करना चाहिए। इसलिए हम संयुक्त राष्ट्रों के घेरे के भीतर और उसके प्रतिज्ञा-पत्र के महान शब्दों को सामने रखते हुए मिल रहे हैं। यह प्रतिज्ञा-पत्र स्वयं ही अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की स्थापना के लिए प्रादेशिक प्रयत्नों की स्वीकृति देता है। इसलिए, हमारा यह एक प्रादेशिक सम्मेलन है, जिसमें हमने आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड को भी आमन्त्रित किया है, क्योंकि इंडोनीशिया की शान्ति और सन्तोष में उनकी भी उतनी ही रुचि है जितनी कि हममें से अन्य किसी की। हमारा मुख्य उद्देश्य यह विचार करना है कि हम इंडोनीशिया की समस्या का शीघ्र और शान्तिपूर्ण हल प्राप्त करने में सुरक्षा-परिषद् की अधिक-से-अधिक सहायता कैसे कर सकते हैं। हम सुरक्षा परिषद के प्रयत्नों के समर्थन के लिए मिल रहे हैं, न कि उसका स्थान लेने के लिए। हम किसी राष्ट्र या राष्ट्रों के समूह से विरोध की भावना रखते हुए यहां एकत्र नहीं हुए। हमारा प्रयत्न तो स्वतन्त्रता का विस्तार करके शान्ति की वृद्धि करना है। यह समझ लेना चाहिए कि स्वतन्त्रता और शान्ति अविभाज्य है। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि हम इस प्रश्न पर या किसी भी प्रश्न पर जातीयता की भावना

से विचार नहीं करना चाहते। जातिगत भेद-भाव की नीति कुछ और ही देशों की रही है और आज भी है। एशिया में हम लोग जो कि इसके बहुत शिकार हुए हैं, इसको प्रोत्साहन देना नहीं चाहते। हमें यकीन है कि यह न केवल लोकतन्त्र का उन्मूलन करती है, बल्कि संघर्ष का बीज भी बोती है। इसलिए हम इसका मुकाबला करेंगे। हमारे तीन कार्य होंगेः—

(१) ऐसे प्रस्ताव प्रस्तुत करना और उन्हें सुरक्षा परिषद् में भेजना, जिनके दोनों सम्बन्धित पक्षों द्वारा स्वीकृत होने पर इंडोनीशिया में तुरन्त शान्ति स्थापित हो जाय और इंडोनीशिया के लोगों को जल्द स्वतन्त्रता प्राप्त होने में सहायता मिल सके ;

(२) सुरक्षा-परिषद् को यह भी सुझाव देना कि यदि इस झगड़े के दोनों पक्षों में से कोई पक्ष उसकी सिफारिशों पर अमल न करे, तो उसे क्या कार्रवाई करनी चाहिए;

(३) ऐसे संगठन का निर्माण करना, और उसके लिए ऐसी कार्य-पद्धति स्थिर करना, जिससे कि वे सरकारें, जिनका आज यहाँ प्रतिनिधित्व है, आपस में विचार-विनिमय और इस सम्मेलन के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मिलजुल कर कार्यवाही करने के लिए एक दूसरे से सम्पर्क रख सकें।

मैं नहीं समझता कि इस स्थिति में मेरे लिए कोई विस्तृत प्रस्ताव पेश करना उचित होगा। यह तो सम्मेलन के विचार करने की बात है। लेकिन यह बात मुझे स्पष्ट जान पड़ती है कि हमारा तात्कालिक ध्येय यह होना चाहिए कि जहां तक सम्भव हो, डच हमले से पूर्व की स्थिति कायम हो जाय, जिससे कि गणराज्य स्वतंत्रतापूर्वक कार्य कर सके और एक स्वतन्त्र सरकार के रूप में, बिना फौजी या आर्थिक दबाव के, समझौते की बात-चीत में लग सके। दूसरा कदम यह होना चाहिए कि औपनिवेशिक राज्य का अन्त हो। इस बात को समझ लेना चाहिए कि जब तक एशिया में या कहीं औपनिवेशिकता किसी रूप में शेष रहती है तब तक संघर्ष होगा और शान्ति के लिए भय बना रहेगा। इंडोनीशिया की स्थिति भयंकर सम्भावनाओं से परिपूर्ण है और इसके लिए तुरन्त कार्यवाही की आवश्यकता है। इसलिए हमारा उद्देश्य अपने कार्य को जल्दी-से-जल्दी समाप्त करना होना चाहिए, जिससे कि सुरक्षा-परिषद्, जो कि अब भी इस कठिन समस्या पर विचार कर रही है, हमारे विचारों को अगले कुछ दिनों के भीतर जान सके। मुझे विश्वास है कि हम सभी लोग, जो यहाँ मिल रहे हैं, समान दृष्टिकोण रखते हैं और हमारे निर्णयों का शीघ्र फल निकलना चाहिए।

हम परिवर्तन के एक क्रान्तिकारी युग में रह रहे हैं। एक तरफ हम विभक्त और विच्छिन्न होती हुई दुनिया, तरह-तरह के संघर्ष और विश्वव्यापी युद्ध का निरन्तर बना हुआ भय देखते हैं। दूसरी तरफ हम रचनात्मक और सहयोगात्मक प्रेरणाओं को नये समन्वय और नई एकता की खोज करते हुए देखते हैं। रोज़-रोज़ नई-नई समस्याएँ उठती हैं जिनका लगाव हम सबसे या हम में से बहुतों से होता है। अमेरिकावालों ने कुछ समान हितों की मान्यता कर ली है, और उन समान हितों की रक्षा और वृद्धि के लिए संगठन बना लिया है। इसी तरह का एक आन्दोलन यूरोप में चालू है। क्या यह स्वाभाविक नहीं, कि एशिया के स्वतन्त्र देश किसी ऐसे संगठन की बात सोचें जो इस सम्मेलन से अधिक स्थायी हो, जिससे आपस में अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से परामर्श हो सके और समान ध्येयों की प्राप्ति के लिए मिलजुल कर प्रयत्न किया जा सके—स्वार्थ या किसी राष्ट्र या राष्ट्रसमूह से विरोध की भावना से नहीं, बल्कि संयुक्त राष्ट्रों के प्रतिज्ञापत्र में निर्दिष्ट उद्देश्यों और आदर्शों के समर्थन और उनकी पूर्ति के लिए घृणा, संघर्ष और हिंसा की इस दुनिया में, हमें मिल जुलकर और अन्य भले लोगों के साथ सहयोग करते हुए, शान्ति, सहिष्णुता और स्वतन्त्रता के हित को अग्रसर करने के काम में लगना चाहिए। यदि हम हिंसा का मार्ग ग्रहण करेंगे और संसार को और अधिक विभाजित करेंगे तो हम अपने ध्येय में सफल न हो सकेंगे। लेकिन यदि हम एशिया की प्राचीन भावना के अनुकूल अपने को बनाएँ और इस युद्ध-विक्षिप्त दुनिया को शान्ति और सत्य का प्रकाश दिखाएँ तो, सम्भव है, हम संसार में कोई अच्छा परिवर्तन कर सकें। क्या मैं बहुत विनम्रतापूर्वक, लेकिन गर्व के साथ, इस सम्मेलन को अपने उस राष्ट्र-पिता के संदेश की याद दिलाऊँ, जिसने हमारी पराधीनता की लम्बी रात्रि में हमारा नेतृत्व करके हमें स्वतन्त्रता का उषाकाल दिखाया ? उन्होंने हमें बताया कि घृणा या हिंसा या एक दूसरे के प्रति असहिष्णुता की भावना से राष्ट्र बड़े नहीं होते और न स्वतन्त्रता ही प्राप्त कर सकते हैं। कुछ हद तक उनके पीछे चल कर ही हमने अपनी स्वतन्त्रता शान्तिपूर्ण ढंग से प्राप्त की। दुनिया भय, घृणा और हिंसा के कुचक्र में पड़ गई है। जब तक यह दूसरे तरीके नहीं अपनाएगी और दूसरे साधनों को अमल में नहीं लाएगी, तब तक यह इस कुचक्र से बाहर न आ सकेगी। इसलिए हमें ठीक साधनों को ग्रहण किए रहना चाहिए और यह विश्वास रखना चाहिए कि सही साधन ही हमें अनिवार्य रूप से सही ध्येय पर पहुँचाएँगे। इस प्रकार हम एकीकरण और समन्वय के क्रम में, जिसकी कि आज दुनिया को इतनी अधिक आवश्यकता है, सहायक होंगे।

प्रकीर्ण प्रकरण

अन्तरिम राष्ट्रीय सरकार

मित्रो और साथियो ! जय हिन्द ! छः दिन हुए, मेरे सहयोगी और मैं भारत सरकार के उच्च पदों की कुर्सियों पर बैठे। इस प्राचीन देश में एक नई सरकार का अस्तित्व हुआ, जिसे कि हमने अन्तरिम या अस्थायी सरकार नाम दिया। यह भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए एक सीढ़ी थी। हमारे पास कई हजार संदेश, अभिवादन और शुभ कामना के पत्र दुनिया के सभी भागों से और भारत के कोने-कोने से आए। फिर भी हमने इस ऐतिहासिक घटना के अवसर पर उत्सव मनाने के लिए नहीं कहा, बल्कि लोगों के उत्साह को दबाया। हम चाहते थे कि वे यह अनुभव करें कि हम अब भी यात्रापथ पर हैं, और हमें अपने लक्ष्य पर पहुँचना बाकी है। मार्ग में अनेक कठिनाइयां और रुकावटें थीं, और हमारी यात्रा का अन्त उतना निकट न था जितना कि लोगों ने समझ रखा था। इस अवसर पर कोई भी कमजोरी, किसी प्रकार का आत्मतोष, हमारे उद्देश्य के लिए घातक होता।

कलकत्ते की भीषण दुर्घटना के कारण और भाई-भाई के मूर्खतापूर्ण झगड़ों के कारण हमारे हृदय भी भरे हुए थे। जिस आजादी की हमने कल्पना की थी, और जिसके लिए हमने पीढ़ियों की परीक्षा और यातना के बीच परिश्रम किया था, वह सभी लोगों के लिए थी; किसी एक वर्ग या दल या किसी धर्म के अनुयायियों के लिए नहीं। हमारा ध्येय एक ऐसे सहयोग प्रधान कामनवेल्थ का था, जिसमें कि अवसर के तथा उन सभी चीज़ों के, जो कि जीवन को मूल्यवान बनाती हैं, सभी लोग बराबर के साझीदार हों। फिर यह झगड़ा, यह भय, और एक दूसरे पर यह संदेह क्यों ?

आज मैं ऊँची नीति या अपने भविष्य के कार्यक्रम के विषय में अधिक न कहूँगा। उसे कुछ समय तक रुकना पड़ेगा। आज तो मुझे आपको उस प्रेम और स्नेह के लिए धन्यवाद देना है जो आपने इतनी बड़ी मात्रा में हमारे प्रति प्रदर्शित किया है। इस प्रेम और सहयोग का मैं सदा स्वागत करता हूँ, लेकिन आगे आनेवाले कठिन दिनों में उनकी अधिकाधिक आवश्यकता पड़ेगी। एक मित्र ने मुझे यह संदेश भेजा है : "राज्य के जहाज के प्रथम कर्णधार ! तुम सभी तूफानों को पार कर सको, तुम्हारी यात्रा सकुशल हो।" यह एक उत्साहित करनेवाला संदेश

नई दिल्ली से ७ सितम्बर, १९४६ को प्रसारित एक भाषण ।

है, लेकिन आगे बहुत से तूफान हैं, और हमारा राज्य का जहाज पुराना, क्षत-विक्षत, मंदगामी और इस तेजी से बदलनेवाले युग के लिए अनुपयुक्त है। इसे अलग करना होगा और इसके स्थान पर दूसरा लाना पड़ेगा। लेकिन जहाज चाहे जितना पुराना हो और कर्णधार चाहे जितना निर्बल हो, जब सहायता के लिए करोड़ों हृदय और हाथ हों, तो हम प्रचंड सागर में आगे बढ़ सकते हैं और भविष्य का विश्वासपूर्वक सामना कर सकते हैं।

उस भविष्य का निर्माण होने भी लगा है, और हमारी प्राचीन और प्रिय भारत-भूमि फिर पीड़ा और वेदना का अनुभव करने लगी है। वह पुनः नवीन है और उसके नेत्रों में साहस की झलक है। उसे अपने पर विश्वास है और अपने ध्येय के प्रति भी विश्वास है। बहुत वर्षों से वह कठोर बन्धन में थी और चिन्ता में डूबी हुई थी। लेकिन अब वह इस विस्तृत संसार पर दृष्टि डालती है और यद्यपि संसार अब भी संघर्ष और युद्ध के विचारों से पूर्ण है, वह अन्य राष्ट्रों के साथ मित्रता के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाती है। यह अन्तरिम राष्ट्रीय सरकार एक बृहत्तर योजना का अंग है, जिसके अन्तर्गत संविधान परिषद् भी है। शीघ्र ही स्वतन्त्र और स्वाधीन भारत के संविधान का निर्माण करने के लिए इस परिषद का अधिवेशन होगा। पूर्ण स्वराज्य की शीघ्र प्राप्ति की इस आशा से ही हम इस सरकार में शरीक हुए हैं, और इस रूप में कार्य करना चाहते हैं, कि आन्तरिक मामलों और वैदेशिक सम्बन्धों दोनों में ही हम धीरे-धीरे सक्रिय स्वतन्त्रता प्राप्त कर लें। हम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में स्वतन्त्र राष्ट्र की हैसियत से पूरा भाग लेंगे, हमारी अपनी स्वतन्त्र नीति होगी, हम किसी राष्ट्र के उपग्रह के रूप में न रहेंगे। हम और राष्ट्रों के साथ अपने इन निकट के और सीधे सम्पर्क स्थापित करने की और विश्वव्यापी शान्ति और स्वतन्त्रता को अग्रसर करने में उनके साथ सहयोग करने की आशा रखते हैं।

जहां तक सम्भव हो, हम विरोधी दलों की शक्ति-लालसा-प्रेरित राजनीति से अलग रहना चाहते हैं। ऐसी राजनीति के कारण ही अतीत में विश्वव्यापी युद्ध हुए हैं और यह आगे और भी बड़े पैमाने पर विनाश की ओर ले जा सकती है। हमारा विश्वास है कि शान्ति और स्वतन्त्रता अविभाज्य है, और यदि एक स्थान पर स्वतन्त्रता का अपहरण होता है तो दूसरे स्थान की स्वतन्त्रता भी खतरे में पड़ जाती है, और संघर्ष और युद्ध होते हैं। उपनिवेशों की और परतन्त्र देशों और राष्ट्रों की स्वतन्त्रता में और सैद्धान्तिक रूप से तथा क्रियात्मक रूप से सभी जातियों के लिए समान अवसरों की मान्यता में हम विशेष दिलचस्पी रखते हैं। हम जातिगत भेद-भाव के समर्थक नात्सी सिद्धान्त का घोर प्रतिवाद करते हैं, वह चाहे जहां और चाहे जिस रूप में व्यवहार में क्यों न हो। हम दूसरों पर आधिपत्य प्राप्त करने के भूखे नहीं

हैं और दूसरे लोगों के मुकाबले में हम अपने लिए किसी विशिष्ट स्थिति का दावा भी नहीं पेश करते। लेकिन हम यह मांग अवश्य करते हैं कि हमारे नागरिक जहां भी जाएँ, उनके साथ बराबरी का और आदर का व्यवहार हो। हम उनके साथ भेद-भाव का बर्ताव किया जाना स्वीकार नहीं कर सकते।

प्रतिद्वंद्विताओं, द्वेषों और आन्तरिक संघर्ष के बावजूद भी, संसार अनिवार्य रूप से निकटतर सहयोग और एक लोकव्यापी समानतन्त्र के निर्माण की दिशाओं में आगे बढ़ रहा है। इस 'एक संसार' के ही पक्ष में स्वतन्त्र भारत उद्योग करेगा, ऐसे संसार के पक्ष में, जहां कि स्वतन्त्र राष्ट्रों का स्वतन्त्र सहयोग होता हो और कोई वर्ग या दल किसी दूसरे का शोषण न करता हो।

संघर्ष के अपने पिछले इतिहास के बावजूद भी, हम आशा करते हैं कि स्वतन्त्र भारत के, इंग्लिस्तान और ब्रिटिश कामनवेल्थ के देशों से मैत्री और सहयोगिता पूर्ण सम्बन्ध होंगे। लेकिन यह भी स्मरण रखना चाहिए कि कामनवेल्थ के एक भाग में आजकल क्या हो रहा है। दक्षिण अफ्रीका में जातिगत भेद-भाव ने सरकारी सिद्धान्त का रूप धारण कर लिया है और हमारे नागरिक वहां एक अल्पसंख्यक जाति के अत्याचारों के विरुद्ध वीरतापूर्वक लड़ रहे हैं। यदि यह जातिगत भेद-भाव का सिद्धान्त सहन कर लिया जाय, तो यह हमें अनिवार्य रूप से महान संघर्षों और लोकव्यापी अनर्थ की ओर ले जाएगा।

अमेरिका के लोगों के प्रति, जिन्हें भाग्य ने अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में एक विशेष स्थान दिया है, हम अपना अभिवादन भेजते हैं। हमें विश्वास है कि इस महान जिम्मेदारी का शान्ति और मानवी स्वतन्त्रता को सर्वत्र अग्रसर करने में सदुपयोग किया जाएगा।

आधुनिक संसार के उस बड़े राष्ट्र सोवियट संघ के प्रति, जिसके ऊपर भी लोक-महत्त्व की घटनाओं को स्वरूप देने की महान जिम्मेदारी है, हम अपना अभिवादन भेजते हैं। एशिया में वह हमारा पड़ोसी है और अनिवार्य रूप से हम और वह अनेक समान कार्यों को उठाएंगे और एक दूसरे से अनेक प्रकार के सम्पर्क रखेंगे।

हम एशिया के हैं और एशिया के लोग दूसरों की अपेक्षा हमारे अधिक निकट और अधिक घनिष्ठ हैं। अपनी स्थिति के कारण भारत पश्चिमी, दक्षिणी, और दक्षिणी-पूर्वी एशिया की धुरी बन गया है। अतीत में उसकी संस्कृति इन सभी देशों में फैली और वे भी उसके पास अनेक उद्देश्यों से आए। उन सम्पर्कों को पुनर्नवीन किया जा

रहा है और भविष्य में निश्चय ही एक ओर भारत का दक्षिण-पूर्वी एशिया से और दूसरी ओर अफगानिस्तान, ईरान और अरब देशों से घनिष्ठ सम्पर्क हो जाएगा। स्वतन्त्र देशों के इस निकट सम्पर्क को आगे बढ़ाने के कार्य में हमें लगना चाहिए। भारत इंडोनीशिया-वासियों के स्वतन्त्रता-संग्राम में चिन्ता के साथ दिलचस्पी लेता रहा है, और उन्हें हम अपनी शुभ कामनाएँ भेजते हैं।

चीन एक विशाल अतीतवाला महान देश है, जो हमारा पड़ोसी है। वह युगों से हमारा मित्र रहा है। यह मित्रता बनी रहेगी और बढ़ेगी भी। हम हृदय से आशा करते हैं कि उसकी वर्तमान कठिनाइयों का शीघ्र ही अन्त होगा और एक संयुक्त और लोकतन्त्र चीन का आविर्भाव होगा, जो कि विश्व-शान्ति और प्रगति को आगे बढ़ाने में एक बड़ा भाग लेगा।

मैंने अपनी घरेलू नीति के विषय में कुछ नहीं कहा है और न इस स्थिति में में कुछ कहना ही चाहता हूँ। लेकिन अनिवार्य रूप से वह नीति उन सिद्धान्तों से शासित होगी जिन्हें कि हमने इतने वर्षों से अपनाया है। हम भारत के साधारण और भुलाए हुए मनुष्य की ओर ध्यान देंगे और उसकी कठिनाइयों के निवारण का और उसके रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करेंगे। अस्पृश्यता के अभिशाप के और हठात् लादी गई दूसरे प्रकार की विषमताओं के विरुद्ध हम अपनी लड़ाई जारी रखेंगे, और विशेष रूप से उनकी सहायता करेंगे जो कि आर्थिक दृष्टि से या दूसरे प्रकार से पिछड़े हुए हैं। आज करोड़ों व्यक्तियों को भोजन, वस्त्र और मकान की आवश्यकता है, और बहुत से भूख से मरने की दशा में पहुँच चुके हैं। इस तात्कालिक आवश्यकता को पूरा करना एक जरूरी और कठिन कार्य है, और हम आशा करते हैं कि दूसरे देश अन्न भेज कर हमारी सहायता करेंगे।

हमारे लिए उतना ही आवश्यक और गहन कार्य फूट की उस भावना पर विजय पाना है, जो कि भारत में फैली हुई है। आपसी संघर्ष के कारण हम भारतीय स्वतन्त्रता के उस भवन का निर्माण न कर सकेंगे, जिसका स्वप्न हम इतने दिनों से देख रहे थे। चाहे जैसी राजनीतिक घटनाएँ घटें, इस देश में हम सभी को मिल-जुल कर रहना और काम करना है। द्वेष और हिंसा इस बुनियादी तथ्य को नहीं बदल सकते, और न वे उस परिवर्तन को रोक सकते हैं, जो आज भारत में हो रहा है।

संविधान-परिषद के विभागों और समूहों के सम्बन्ध में बहुत गर्म बहसें हुई हैं। हम उन विभागों में बैठने के लिए तैयार हैं जो समूह बनाने के प्रश्न पर विचार करेंगे। अपने सहयोगियों की तरफ से और अपनी तरफ से मैं एक बात स्पष्ट कर

देना चाहता हूँ कि हम संविधान-परिषद् को संघर्ष का या एक के मत पर जबरदस्ती दूसरे का मत लादने का अखाड़ा नहीं समझते । एक सन्तुष्ट और संयुक्त भारत के निर्माण का यह तरीका न होगा । हम तो ऐसे सर्वसम्मत निर्णय चाहते हैं, जिनके पीछे अधिक-से-अधिक सद्भावना हो । हम संविधान-परिषद् में इस दृढ़ निश्चय के साथ जाएंगे कि सभी विवादग्रस्त विषयों पर समझौते का एक समान आधार ढूंढ़ निकालें । जो कुछ भी अब तक हुआ है और जो भी कड़े शब्द कहे गए हैं, उनके बावजूद हमने सहयोग का मार्ग खुला रखा है । हम उन लोगों को भी, जिनका कि हम से मतभेद है, बराबरवालों और साझियों के समान, बिना किसी प्रकार की प्रतिज्ञाबद्धता के संविधान-परिषद् में भाग लेने के लिए आमन्त्रित करते हैं । हो सकता है कि जब हम आपस में मिलें और समान कार्यों कोसा थ-साथ करें, तो हमारी कठिनाइयाँ दूर हो जाएँ ।

भारत आगे बढ़ रहा है और पुरानी व्यवस्था बीत रही है । हम लोग बहुत दिनों तक घटनाओं के निष्क्रिय दर्शक और दूसरों के हाथ के खिलौने बने रहे । अब हम लोगों को नेतृत्व का अवसर मिला है, और अब हम अपनी रुचि से इतिहास का निर्माण करेंगे । हम सबको इस महान् कार्य में लगे रहना चाहिए और अपने हृदय के गर्व, भारत, को राष्ट्रों में महान, और शान्ति और उन्नति की कलाओं में सर्व-प्रमुख बनाना चाहिए । द्वार खुला हुआ है और भाग्य हमारा आवाहन कर रहा है । इसका प्रश्न नहीं है कि किसकी जीत होती है और किसकी हार, क्योंकि हमें साथियों की भांति मिलजुल कर आगे जाना है, और या तो हम सभी जीतेंगे या सभी हारेंगे । लेकिन हम असफल नहीं हो सकते । हम भारत के ४० करोड़ लोगों की स्वतन्त्रता, स्वाधीनता, सफलता और कल्याण की दिशा में आगे बढ़ेंगे । जय हिन्द !

स्वतन्त्र पूर्णसत्तात्मक गणराज्य

यह प्रस्ताव उपस्थित करने की मैं अनुमति चाहता हूँ कि:—

(१) यह संविधान परिषद् भारत को एक स्वतन्त्र पूर्णसत्तात्मक गणराज्य घोषित करने और उसके भविष्य के शासन के लिए एक ऐसा संविधान प्रस्तुत करने के अपने दृढ़ और गम्भीर निश्चय को प्रकाशित करती है,

(२) जिसके अन्तर्गत वे प्रदेश, जो अब ब्रिटिश इंडिया में समाविष्ट हैं, वे प्रदेश, जिनसे देशी रियासतें बनी हैं, और भारत के ऐसे अन्य भाग, जो ब्रिटिश इंडिया और रियासतों से बाहर हैं, और ऐसे अन्य प्रदेश, जो कि स्वतन्त्र पूर्णसत्तात्मक भारत में सम्मिलित होने के इच्छुक हैं, मिलकर एक संघ कहलाएंगे, और।

(३) जिसके अन्तर्गत उक्त प्रदेश, अपनी वर्तमान सीमाओं के साथ या ऐसी सीमाओं के साथ, जो संविधान परिषद् द्वारा और उसके बाद विधान के नियमों के अनुसार निर्धारित हों, स्वायत्त-शासन इकाइयों का पद प्राप्त करेंगे और उसे धारण करेंगे। उन्हें अवशिष्टाधिकार भी प्राप्त होंगे और वे, ऐसे अधिकारों और कर्त्तव्यों को छोड़ कर जो कि संघ में निहित हैं या उसे मिले हैं, या स्वतःसिद्ध या मिले हुए मान लिए गए हैं, या संघ से ही उद्भूत हुए हैं, शासन और प्रबन्ध के सभी अधिकारों और कर्त्तव्यों को काम में लाएंगे,

(४) जिसके अन्तर्गत पूर्णसत्तात्मक स्वतन्त्र भारत की समस्त शक्ति और अधिकार, उसके अंगभूत भाग, और शासन के अवयव, जनता से निष्पन्न हैं,

(५) जिसके अन्तर्गत भारत की समस्त जनता को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय; दर्जे की, अवसर की और विधान के समक्ष समानता; कानून और शिष्टाचार को ध्यान में रखते हुए विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, पूजा, धंधा, सम्पर्क और कार्य की स्वतन्त्रता संरक्षित और प्राप्त होगी,

---

ध्येय सम्बन्धी प्रस्ताव उपस्थित करते हुए संविधान परिषद्, नई दिल्ली में, १३ दिसम्बर, १९४६, को दिया गया भाषण।

(६) जिसके अन्तर्गत अल्पसंख्यकों, पिछड़े हुए और आदिवासी क्षेत्रों, और दलित तथा अन्य पिछड़े हुए वर्गों के लिए पर्याप्त संरक्षण होंगे,

(७) जिसके द्वारा गणराज्य की सीमा की अखंडता और न्याय, और सभ्य राष्ट्रों के विधान के अनुसार स्थल, समुद्र और वायु में उसके पूर्णसत्तात्मक अधिकार स्थिर रखे जाएँगे, और

(८) यह प्राचीन देश संसार में अपना न्यायसंगत और सम्मानित स्थान प्राप्त करेगा और विश्वशान्ति तथा मानव-कल्याण की अभिवृद्धि के लिए स्वेच्छा से अपना पूरा योग देगा।

संविधान परिषद् के पहले-अधिवेशन का यह पांचवाँ दिन है। अब तक हमने कार्य-पद्धति सम्बन्धी कुछ आवश्यक विषयों पर विचार किया है। काम करने के लिए साफ मैदान मिला हुआ है। हमें जमीन तैयार करनी है, और यही हम कुछ दिनों से कर रहे हैं। हमें अब भी बहुत कुछ करना है। हमें कार्यविधि के नियम पास करने हैं और समितियां आदि बनानी हैं। इसके बाद ही हम वास्तविक पग आगे रख सकते हैं—यानी इस संविधान परिषद् का वास्तविक कार्य, अर्थात् एक राष्ट्र के स्वप्न और आकांक्षा को मुद्रित और लिखित रूप देने का महान साहसिक कार्य आरम्भ कर सकते हैं। लेकिन इस स्थिति में भी यह निश्चय ही वांछनीय है कि हम अपने को और उन लोगों को जो इस परिषद की ओर देख रहे हैं, और इस देश के करोड़ों व्यक्तियों को जो हमें देख रहे हैं और संसार को देख रहे हैं, इस बात का संकेत दें कि हम क्या करने जा रहे हैं, हमारा ध्येय क्या है, और हम किधर जा रहे हैं। इसी उद्देश्य से मैंने यह प्रस्ताव इस सभा के सामने रखा है। यह एक प्रस्ताव है, फिर भी यह एक प्रस्ताव से बहुत बढ़ कर है। यह एक घोषणा है। यह एक दृढ़ निश्चय है। यह एक प्रतिज्ञा है, और एक विशेषकार्य है, और मैं आशा करता हूँ कि यह हम सब के लिए एक उत्सर्ग का कार्य है। मैं चाहता हूँ कि यह सभा इस प्रस्ताव पर संकीर्ण कानूनी शब्दावली के रूप में नहीं बल्कि इस प्रस्ताव के पीछे जो भावना छिपी है उस को ध्यान में रखकर विचार करे। शब्दों में अक्सर जादू होता है, लेकिन शब्दों का जादू भी कभी-कभी मानवी भावना और एक राष्ट्र के तीव्र मनोवेगों के जादू को प्रकट करने में असमर्थ होता है। इसलिए मैं नहीं कह सकता कि यह प्रस्ताव भारतीय जनता के हृदयों और मनों में जो भावना है उसे प्रकट करता है या नहीं, यह बड़े निर्बल ढंग से संसार से यह कहने का प्रयत्न करता है कि हमने इतने समय तक क्या विचार किए हैं, क्या स्वप्न देखे हैं, और अब निकट भविष्य में हम क्या प्राप्त करने की आशा करते हैं। इसी भावना के साथ मैं इस सभा के सामने यह प्रस्ताव रखने का साहस करता हूँ, और मुझे विश्वास है कि इसी

भावना से यह सभा इसे ग्रहण करेगी और अन्त में स्वीकार करेगी । और, महोदय, क्या मैं आदरपूर्वक आपको और इस सभा को यह सुझाव दूं कि जब इस प्रस्ताव को स्वीकार करने का समय आये, तो हम इसे औपचारिक ढंग से हाथ उठाकर स्वीकार न करें, बल्कि अधिक गम्भीरता के साथ खड़े होकर स्वीकार करें और इस प्रकार नए रूप से यह प्रतिज्ञा करें ।

यह सभा जानती है कि यहां बहुत से लोग अनुपस्थित हैं, और बहुत से सदस्य, जिन्हें यहां उपस्थित होने का अधिकार है, नहीं आए हैं । इस बात का हमें खेद है, क्योंकि हम चाहते हैं कि हमारे साथ जितने भी लोग, भारत के विभिन्न भागों के जितने भी प्रतिनिधि, सम्मिलित हो सकें अच्छा है । हमने एक महान कार्य हाथ में लिया है, और हम इस कार्य में सभी लोगों का सहयोग चाहते हैं, क्योंकि भारत के जिस भविष्य की हमने कल्पना की है वह किसी एक दल या वर्ग या प्रान्त तक सीमित नहीं है, बल्कि वह भारत के सभी चालीस करोड़ लोगों का है, और इसलिए कुछ बेंचों को खाली देखकर, और कुछ सहयोगियों को, जिन्हें यहां उपस्थित होना चाहिए था, अनुपस्थित देखकर हमें बड़ा खेद होता है । उन्हें अवश्य आना चाहिए था और मैं आशा करता हूँ कि वे आएंगे, और आगे चलकर इस सभा को सभी के सहयोग का लाभ प्राप्त होगा । इस बीच हमारे ऊपर एक जिम्मेदारी आ जाती है और वह यह कि हम अनुपस्थित लोगों का ध्यान रखें और सदा यह ध्यान रखें कि हम यहां किसी एक दल या वर्ग का प्रतिनिधित्व करने के लिए नहीं हैं, बल्कि हमें समस्त भारत का ध्यान रखना है, और सदा उन चालीस करोड़ आदमियों के कल्याण का ध्यान रखना है जो भारत में रहते हैं । इस समय हम सब, अपने अलग अलग क्षेत्रों में दलविशेष के लोग हैं । कोई इस दल से सम्बन्ध रखता है, कोई उस दल से । और यह मानी हुई बात है कि हम लोग अपने अपने दलों में काम करते रहेंगे । फिर भी एक ऐसा समय आता है, जब कि हमें दल से ऊपर उठकर राष्ट्र का चिन्तन करना पड़ता है और कभी-कभी व्यापक संसार का ध्यान करना पड़ता है, जिसका कि हमारा राष्ट्र एक बड़ा भाग है । जब मैं इस संविधान परिषद् के कार्य का विचार करता हूँ तो मुझे जान पड़ता है कि समय आ गया है जब कि हमें यथाशक्ति अपने साधारण व्यक्तित्वों से और दलबन्दी के झगड़ों से ऊपर उठना चाहिए और हमारे सामने जो बड़ी समस्या है उस पर अधिक-से-अधिक व्यापक, अधिक-से-अधिक उदार, अधिक-से-अधिक कारगर ढंग से, विचार करना चाहिए, जिससे कि जो चीज़ हम प्रस्तुत करें वह समस्त भारत के योग्य हो और ऐसी हो कि संसार अनुभव करे कि हमने इस महान कार्य में जैसा चाहिए था वैसा योग दिया है ।

एक और भी व्यक्ति है जो यहां उपस्थित नहीं है और जिसका ध्यान हममें से बहुतों के मन में आज होगा । वह है हमारे देशवासियों का महान् नेता, हमारे

राष्ट्र का पिता। इस परिषद् का और इसकी स्थापना से पूर्व जो कुछ हुआ है उसका और इसके बाद जो कुछ होगा उसके अधिकांश का विधाता वही है। वह आज यहां इसलिए नहीं है, क्योंकि वह अपने आदर्शों के अनुसरण में भारत के एक दूर के कोने में निरन्तर कार्य में लगा हुआ है। लेकिन मुझे संदेह नहीं, कि उसकी आत्मा यहां मंडरा रही है और हमारे कार्य में हमें आशीर्वाद दे रही है।

महोदय, यहां पर खड़ा हुआ मैं तरह-तरह के विचारों के बोझ का अनुभव कर रहा हूँ। हम एक युग के अन्त पर पहुँच गए हैं, और सम्भवतः बहुत जल्दी एक नए युग में प्रवेश करेंगे। मेरे विचार भारत के गौरवमय अतीत की ओर जाते हैं—उस अतीत की ओर जो आज से ५००० वर्ष पहले आरम्भ हुआ था। भारत का इतिहास यहीं से आरम्भ होता है, और इसे मानवजाति के इतिहास का उषा-काल कह सकते हैं। यह सारा अतीत एक साथ मेरे सामने आता है और मुझे उल्लसित करता है, और साथ-ही-साथ कुछ दबाता भी है। क्या मैं इस अतीत के योग्य हूँ? जब मैं भविष्य के विषय में भी सोचता हूँ, और यह समझता हूँ कि वह और भी बड़ा होगा, तो विशाल अतीत और विशालतर भविष्य के बीच, वर्तमान की तलवार की धार पर खड़ा हुआ, मैं कुछ सिहर उठता हूँ और इस महान् कार्य से अपने को किंचित् अभिभूत अनुभव करता हूँ। हम यहां पर भारत के इतिहास के एक विचित्र क्षण में एकत्र हुए हैं। मैं नहीं जानता, लेकिन मैं अनुभव अवश्य करता हूँ, कि प्राचीन से नवीन में परिवर्तन के इस क्षण में कुछ जादू है, कुछ उस तरह का जादू है जो उस समय दिखाई देता है जब रात दिन में बदलती है। दिन चाहे मेघाच्छन्न ही क्यों न हो, फिर भी वह दिन ही है, क्योंकि जब बादल हट जायंगे तो हमें फिर सूर्य के दर्शन होंगे। इन सब बातों के कारण, इस सभा के सामने बोलने में और अपने सब विचारों को रखने में मुझे कुछ कठिनाई अनुभव होती है। मैं यह भी अनुभव करता हूँ कि इन हजारों वर्षों के लम्बे अनुक्रम में, मैं उन महान् व्यक्तियों को देखता हूँ जो आए और गए। और अपने उन साथियों की एक लम्बी कतार को भी देखता हूँ, जिन्होंने कि भारत की स्वतन्त्रता के लिए परिश्रम किया। अब हम इस बीतते हुए युग के छोर पर खड़े हैं और एक नए युग के आवाहन के लिए प्रयत्न और परिश्रम कर रहे हैं। मुझे विश्वास है कि यह सभा इस क्षण की गम्भीरता का अनुभव करेगी और इस प्रस्ताव पर, जिसे कि प्रस्तुत करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है, तदनुरूप गम्भीरता से विचार करेगी। मेरा ख्याल है कि इस प्रस्ताव पर बहुत से संशोधन इस सभा के सामने आयेंगे। उनमें से अधिकतर मैंने नहीं देखे हैं। इस सभा के किसी भी सदस्य को यह अधिकार है कि वह जो भी संशोधन चाहे प्रस्तुत करे। सभा को यह अधिकार है कि वह उस संशोधन को चाहे स्वीकार करे चाहे अस्वीकार। लेकिन मैं पूरे आदर के साथ यह सुझाव दूंगा कि जब हमें बड़ी बातों का सामना करना है, बड़ी बातें कहनी हैं, और बड़ी बातें करनी हैं, यह छोटी-छोटी

बातों के सम्बन्ध में पारिभाषिक और वैधानिक बारीकियों में जाने का समय नहीं है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि यह सभा इस प्रस्ताव पर एक उदार दृष्टि से विचार करेगी, और शाब्दिक बारीकियों और बहसों में न पड़ेगी।

मैं उन विविध संविधान-परिषदों का ध्यान करता हूँ जो पहले बन चुकी हैं, और महान् अमरीकी राष्ट्र के निर्माण के समय, जब कि उस राष्ट्र के निर्माताओं ने मिलकर एक ऐसे संविधान की रचना की जो कि डेढ़ सौ वर्ष से अधिक समय की कसौटी पर पूरा उतरा है, जो कुछ हुआ उसका भी ध्यान करता हूँ; तथा मैं उस महान् राष्ट्र का ध्यान करता हूँ जो उस संविधान के परिणामस्वरूप और उसी के आधार पर बना। मेरा ध्यान उस महान् क्रान्ति की ओर भी लौट कर जाता है, जो डेढ़ सौ वर्ष से अधिक पहले हुई और उस संविधान-परिषद की ओर भी, जो कि पेरिस के उस सुन्दर और शोभायमान नगर में हुई, जिसने कि स्वतन्त्रता की अनेक लड़ाइयां लड़ी हैं। मुझे उन सब कठिनाइयों का ध्यान आता है, जो कि राजा और दूसरे अधिकारियों की ओर से परिषद् के मार्ग में डाली गईं, जिनका उसे सामना करना पड़ा और फिर भी वह अपना काम करती रही। इस सभा को याद होगा कि जब ये कठिनाइयां आईं और परिषद् को सभा करने के लिए कमरा तक न दिया गया तो वह खुले टेनिस के मैदान में चली गई। वहां उसने अपनी बैठक की और वह शपथ ली जिसे "टेनिस के मैदान की शपथ" कहते हैं। राजा और दूसरे लोगों द्वारा डाली गई बाधाओं के बावजूद परिषद् उस समय तक अपनी बैठकें करती रही जब तक कि उसका काम पूरा न हुआ। अच्छा, तो मैं विश्वास करता हूँ कि उसी गम्भीर मनोभावना के साथ हम लोग भी यहां मिल रहे हैं, और हम लोग भी, चाहे इस कमरे में अपनी बैठकें करें, चाहे खेतों में या बाजार में, उस समय तक मिलते रहेंगे जब तक कि हम अपना काम पूरा न कर लेंगे।

इसके बाद मेरा ध्यान एक अधिक सन्निकट काल की क्रान्ति की ओर जाता है, जिसने कि एक नए प्रकार के राज्य को जन्म दिया। यह वह क्रान्ति है जो रूस में हुई और जिसके परिणाम स्वरूप सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ की स्थापना हुई। यह भी एक महान् देश है जो कि आज के संसार में प्रमुख भाग ले रहा है। यह केवल एक महान् देश ही नहीं है, हम भारतीयों के लिए तो यह एक पड़ोसी देश भी है।

इस तरह हमारा ध्यान इन बड़े उदाहरणों की ओर जाता है और हम उनकी सफलताओं से सीखना और उनकी विफलताओं से बचना चाहते हैं। शायद हम विफलताओं से सर्वथा न बच सकें, क्योंकि मानवी प्रयत्न में कुछ न कुछ विफलता अन्तर्निहित रहती ही है। फिर भी कैसी भी कठिनाइयां और बाधाएँ सामने क्यों

न हों, हम आगे बढ़ेंगे, और जो स्वप्न हमने इतने समय से देखा है उसे पूरा करेंगे। यह सभा जानती है कि यह प्रस्ताव बहुत सावधानी से तैयार किया गया है और इसमें बहुत अधिक या बहुत कम कहने से बचने का यत्न किया गया है। इस तरह के प्रस्ताव की रचना करना कठिन होता है। यदि बहुत थोड़ा कहा जाय तो प्रस्ताव एक "पवित्र निश्चय" मात्र रह जाता है और कुछ नहीं ; और यदि बहुत अधिक कहा जाय तो इसका अर्थ उन लोगों के कार्य में हस्तक्षेप करना समझा जाता है, जो कि संविधान का निर्माण करने जा रहे हैं, अर्थात् इसका अर्थ होगा इस सभा के कार्य में हस्तक्षेप करना। यह प्रस्ताव उस संविधान का अंग नहीं है, जिसका निर्माण हम करने जा रहे हैं, और न ऐसा समझना ही चाहिए। इस सभा को उस संविधान के निर्माण की पूरी स्वतन्त्रता है, जब और लोग इस सभा में आएंगे तो उन्हें भी संविधान के निर्माण की पूरी स्वतन्त्रता होगी। इसलिए यह प्रस्ताव दो दूरतम छोरों से हटकर बीच का मार्ग ग्रहण करता हुआ कुछ मूलभूत बातों को प्रस्तुत करता है, जिन पर मुझे पूरा विश्वास है, किसी वर्ग या दल को या भारत के किसी व्यक्ति को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। हमने कहा है कि हमारा यह दृढ़ और गम्भीर निश्चय है कि एक स्वतन्त्र पूर्णसत्तात्मक गणराज्य की स्थापना हो। भारत निश्चय ही पूर्णसत्ताधारी होगा, निश्चय ही स्वतन्त्र होगा और निश्चय ही एक गणराज्य होगा। राजतन्त्र आदि के विवाद में मैं न पड़ूंगा, लेकिन यह स्पष्ट है कि भारत में हम शून्य से राजतन्त्र नहीं उत्पन्न कर सकते। वह यहां है नहीं। अगर उसे एक स्वतन्त्र और पूर्णसत्तात्मक राज्य बनना है तो हम बाहर से किसी राजा को नहीं ला सकते और न हम इस बात की ही खोज शुरू करना चाहते हैं कि स्थानीय राजाओं में से कौन कानूनी अधिकारी है। इसे अनिवार्यतः एक गणराज्य होना है।

अब कुछ मित्रों ने यह प्रश्न उठाया है कि "आपने इस में 'लोकतन्त्र' शब्द क्यों नहीं रखा?" अच्छा तो मैंने उन्हें बताया कि इसकी कल्पना की जा सकती है कि एक गणराज्य लोकतन्त्रात्मक न हो। लेकिन हमारा सारा अतीत इस बात का साक्षी है कि हम लोकतन्त्रात्मक संस्थाओं के पक्ष में हैं। यह स्पष्ट है कि लोकतन्त्र ही हमारा उद्देश्य है, इससे कम कुछ नहीं। लोकतन्त्र किस प्रकार का होगा और उसकी रूप-रेखा कैसी होगी—यह दूसरा प्रश्न है।

यूरोप में और कुछ और जगहों में आजकल जो लोकतन्त्रात्मक राज्य हैं उन्होंने संसार की उन्नति में बड़ा भाग लिया है। लेकिन यदि ये राज्य पूरी तरह से लोक-तन्त्र बने रहना चाहते हैं तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि निकट भविष्य में ही उनको अपना रूप कुछ-न-कुछ बदलना पड़ेगा। हम किसी लोकतन्त्रात्मक कार्य-पद्धति या किसी तथाकथित लोकतन्त्रात्मक देश की किसी संस्था की केवल नकल करने नहीं

जा रहे हैं, ऐसी मेरी आशा है। हम उसका और सुधार कर सकते हैं। हर हालत में हम जिस शासन-पद्धति की यहाँ स्थापना करें उसे हमारी जनता की मनोवृत्ति के अनुकूल होना चाहिए और उसे मान्य होना चाहिए। हम लोकतन्त्र के पक्ष में हैं। यह काम इस सभा का होगा कि वह निर्णय करे कि उस लोकतन्त्र को क्या स्वरूप देना है। मुझे आशा है कि वह पूर्णातिपूर्ण लोकतन्त्र होगा। यह सभा देखेगी कि इस प्रस्ताव में यद्यपि हमने लोकतन्त्र शब्द का व्यवहार नहीं किया, क्योंकि हमने सोचा था कि 'गणराज्य' के अन्तर्गत ही उसका आशय स्पष्ट रूप से आ जाता है, और हम अनावश्यक और फालतू शब्दों के प्रयोग से बचना चाहते थे, फिर भी हमने इस शब्द के प्रयोग से भी कुछ अधिक कर दिया है। हमने इस प्रस्ताव में लोकतन्त्र का सार दे दिया है; लोकतन्त्र का सार ही नहीं, आर्थिक लोकतंत्र का सार दे दिया है, यह मैं कह सकता हूँ। दूसरे लोग इस प्रस्ताव पर यह कहकर आपत्ति कर सकते हैं कि हमने यह नहीं कहा कि इसे समाजवादी राज्य होना चाहिए। मैं समाजवाद के पक्ष में हूँ, और मैं आशा करता हूँ कि भारत भी समाजवाद के पक्ष में होगा और वह एक समाजवादी राज्य बनेगा और मुझे विश्वास है कि सारे संसार को समाजवादी बनना पड़ेगा। लेकिन वह समाजवाद कैसा होगा यह विषय फिर आपके विचार करने का है। लेकिन मुख्य बात यह है कि इस प्रकार के प्रस्ताव में अगर अपनी निजी इच्छा के अनुसार मैंने यह रख दिया होता कि हम एक समाजवादी राज्य चाहते हैं, तो कुछ लोगों के लिए तो वह मान्य होता पर कुछ लोगों के लिए मान्य न होता। और हम ऐसे विषयों में इस प्रस्ताव को विवादग्रस्त नहीं बनाना चाहते थे। इसलिए हमने सैद्धान्तिक शब्दावली और सूत्रों को बचाकर, उस वस्तु का सार रख दिया है जिसे हम चाहते थे। यह आवश्यक है और मैं समझता हूँ इसके सम्बन्ध में किसी को कोई आपत्ति न होगी। कुछ लोगों ने मुझे बताया है कि 'गणराज्य' शब्द का रखना भारतीय रजवाड़ों के शासकों को कुछ अप्रिय हो सकता है। सम्भव है इससे वे अप्रसन्न हों। लेकिन इसे मैं व्यक्तिगत रूप से स्पष्ट कर देना चाहता हूँ, और सभा इसे जानती है कि मैं कहीं भी राजतंत्र पद्धति के पक्ष में नहीं हूँ, और आज की दुनिया में यह व्यवस्था तेजी से उठ रही है। फिर भी, यह मेरे व्यक्तिगत विश्वास का विषय नहीं है। भारतीय रजवाड़ों के विषय में बहुत वर्षों से हमारा दृष्टिकोण यह रहा है, कि सब से प्रथम तो उन रियासतों के लोगों को आनेवाली स्वतंत्रता का पूरा-पूरा हिस्सा मिलना चाहिए। मैं यह कल्पना नहीं कर सकता कि रियासती जनता और रियासत से बाहर की जनता के बीच स्वतंत्रता के आदर्श और मात्रा के विषय में अन्तर हो। ये रियासतें संघ के अंग किस प्रकार बनेंगी, यह इस सभा में रियासतों के प्रतिनिधियों के साथ मिलकर विचार करने का विषय है। और मैं आशा करता हूँ कि रियासतों के सम्बन्ध के सभी मामलों में यह सभा रियासतों के वास्तविक प्रतिनिधियों से बात करेगी। मैं मानता हूँ कि हम इस बात के लिए बिल्कुल राजी हैं कि उन विषयों

पर, जिनका कि शासकों से सम्बन्ध है, हम शासकों और उनके प्रतिनिधियों से भी बात करें। लेकिन अन्त में, जब संविधान तैयार हो तो उसे रियासती जनता के प्रतिनिधियों द्वारा उसी प्रकार स्वीकृत होना चाहिए जिस प्रकार कि शेष भारत के उपस्थित प्रतिनिधियों द्वारा। हर हालत में हमें यह बता देना चाहिए या स्वीकार कर लेना चाहिए कि स्वतंत्रता की मात्रा रियासतों में वही होगी जो और जगह। इसकी सम्भावना है और व्यक्तिगत रूप से मैं यह चाहूँगा कि शासन यंत्र के सम्बन्ध में भी एक हद तक समानता रहे। फिर भी, यह विषय रियासतों से सहयोग और परामर्श के बाद निश्चित करने का है। मैं नहीं चाहता, और मेरा ख्याल है कि यह सभा भी न चाहेगी, कि रियासतों पर उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई चीज लादी जाय। यदि किसी रियासत की जनता किसी विशिष्ट प्रकार का शासन चाहती है, चाहे वह राजतंत्र ही हो, तो इसकी उसे स्वतंत्रता होगी। इस सभा को स्मरण होगा कि आयर ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अन्तर्गत एक गणराज्य है। फिर भी अनेक रूपों में वह ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का सदस्य है। इसलिए, ऐसी कल्पना की जा सकती है। होगा क्या, यह मैं नहीं जानता, क्योंकि यह बात कुछ तो इस सभा के और कुछ औरों के निर्णय करने की है। रियासतों में शासन के किसी विशेष रूप के स्थापित होने में न कोई वैषम्य है न असंभावित बात है, शर्त केवल यह है कि वहाँ जनता को पूरी स्वतन्त्रता हो और जो भी शासन हो वह जनता के प्रति उत्तरदायी हो, और जनता वास्तव में उसका संचालन करे। अगर किसी रियासत की जनता यह चाहती है कि शासन के नाममात्र प्रमुख के रूप में राजा लोग बने रहें, तो मैं इसे पसन्द करूँ चाहे न करूँ, मैं निश्चय ही इसमें हस्तक्षेप न करूँगा। इसलिए, मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि जहां तक इस प्रस्ताव या घोषणा का सम्बन्ध है, यह किसी भी रूप में उस काम में या बातचीत में हस्तक्षेप नहीं करती जिसे यह परिषद् भविष्य में करना चाहे या चलाना चाहे। केवल एक अर्थ में यह हमें सीमित करती है—अगर आप उसे सीमित करना कहें—अर्थात् हम कुछ मूल सिद्धान्तों की, जो कि इस घोषणा में अन्तर्निहित हैं, पाबन्दी करते हैं। मैं समझता हूँ ये मूल सिद्धान्त किसी वास्तविक अर्थ में विवादग्रस्त नहीं हैं। भारत में कोई भी इन पर आपत्ति नहीं करता, और न किसी को आपत्ति करनी चाहिए। लेकिन अगर इन पर कोई आपत्ति करेगा तो हम उसका जवाब देंगे, और अपने पक्ष का समर्थन करेंगे।

हम भारत का एक संविधान तैयार करने जा रहे हैं और यह स्पष्ट है कि हम भारत में जो कुछ करने जा रहे हैं उसका शेष संसार पर गहरा प्रभाव पड़ेगा, केवल इसलिए नहीं कि एक नया स्वतंत्र राष्ट्र संसार के रंगमंच पर आ रहा है, बल्कि इसलिए भी कि भारत एक ऐसा देश है जो अपने विस्तार और जनसंख्या के कारण तथा अपने महान साधनों और उन साधनों के उपयोग की योग्यता के कारण, संसार के मामलों में शीघ्र ही एक महत्वपूर्ण भाग ले सकता है। आज भी, स्वतंत्रता

के छोर पर खड़ा हुआ भारत संसार के मामलों में महत्वपूर्ण भाग लेने लगा है। इसलिए, यह उचित है कि हमारे संविधान के निर्माता इस विशाल अन्तर्राष्ट्रीय पहलू को ध्यान में रखें।

हम संसार के समक्ष एक मैत्रीपूर्ण भाव से आते हैं। हम सभी देशों से मित्रता, रखना चाहते हैं। हम इंग्लिस्तान से भी मैत्री रखना चाहते हैं, बावजूद इसके कि हमारे बीच पिछले संघर्ष का एक लम्बा इतिहास है। यह सभा जानती है कि मैं हाल ही में इंग्लिस्तान गया था। जिन कारणों से मैं वहां नहीं जाना चाहता था, उन्हें भी यह सभा जानती है। लेकिन मैं वहां ग्रेट ब्रिटेन के प्रधान मंत्री के व्यक्तिगत अनुरोध के कारण गया। मैं गया और मुझे सर्वत्र सौजन्य प्राप्त हुआ। भारत के इतिहास के इस मनोवैज्ञानिक क्षण में, हम यह चाहते थे और इस बात के भूखे थे कि हमें संसार के सब देशों से उत्साह, मैत्री और सहयोग के संदेश मिलें। अपने पुराने सम्पर्क और संघर्ष के कारण हमें यह आशा थी कि इंगलैंड से ऐसे सन्देश अवश्य आएंगे। परन्तु यह हमारा दुर्भाग्य है कि उत्साहवर्द्धक सन्देश तो दूर रहे मैं निराशा साथ लेकर लौटा।

मैं आशा करता हूँ कि ब्रिटिश मंत्रिमंडल तथा अन्य अधिकारियों द्वारा दिए गए हाल के वक्तव्यों के कारण, जो नई कठिनाईयां उठ खड़ी हुई हैं, वे हमारे मार्ग में बाधा न डालेंगी और हम अब भी, उन सब लोगों के सहयोग से सफल होंगे, जो यहां हैं और जो नहीं आए हैं। इससे मुझे धक्का पहुँचा है, और तकलीफ हुई है कि ठीक उस समय जब कि हम आगे बढ़ने जा रहे थे हमारे रास्ते में बाधाएँ डाली गईं, ऐसे नए प्रतिबन्ध लगाए गए, जिनकी पहले कोई चर्चा न थी और कार्य-संचालन की नई विधियों का सुझाव दिया गया। मैं किसी व्यक्ति की सचाई पर आपत्ति नहीं करना चाहता, लेकिन मैं यह कहना चाहता हूँ कि जब हम किसी ऐसे राष्ट्र के मामले पर विचार करते हैं जो कि स्वतंत्रता की भावना से भरा हो, उस समय कानूनी पहलू जो भी हो, ऐसे क्षण आ जाते हैं जब कि कानून सहारा नहीं देता। हम लोगों में से, जो यहां उपस्थित हैं, अधिकतर ऐसे हैं जिन्होंने पिछले वर्षों में एक पीढ़ी या अधिक समय से, अकसर भारत की स्वतन्त्रता की लड़ाई में भाग लिया है। हम लोग अँधेरी घाटी से होकर गुजरे हैं। हम इसके अभ्यस्त हो गए हैं और जरूरत पड़ेगी तो हम फिर उससे गुजरेंगे। फिर भी, इस सारे लम्बे काल में, हमने ऐसे समय का विचार किया है, जबकि हमें न केवल लड़ाई का और विनाश का, बल्कि निर्माण और रचना का भी अवसर मिलेगा। और अब, जब कि ऐसा जान पड़ता था कि स्वतन्त्र भारत में, जिसकी हम प्रसन्नता से बाट देख रहे थे, रचनात्मक प्रयत्न का अवसर मिलेगा, हमारे मार्ग में नई कठिनाइयां डाली गईं। इससे पता चलता है कि इसके पीछे जो भी शक्ति हो, उन लोगों में भी जो कि होशि-

यार, योग्य और बहुत बुद्धिमान् हैं, उस विचारपूर्ण साहस का अभाव है, जो बड़े अधिकारियों में होना चाहिए। क्योंकि अगर आपको किसी राष्ट्र से व्यवहार करना है तो आपको उसे विचार से जानना होगा, भाव से जानना होगा और बुद्धि से भी जानना होगा। अतीत की एक दुर्भाग्यपूर्ण देन यह चली आई है कि भारतीय समस्या को समझने में कभी विचार से काम नहीं लिया गया। लोगों ने अकसर हमें परामर्श दिया है या परामर्श देने की धृष्टता दिखाई है और इस बात का अनुभव नहीं किया है कि भारत, जिस रूप में कि आज वह है, किसी की सलाह नहीं चाहता और न यह चाहता है कि उसके ऊपर कोई अपना मत लादे। एकमात्र मित्रता, सहयोग और सद्भावना से ही भारत प्रभावित हो सकता है। वह विचारों के लादने के प्रत्येक प्रयत्न और आश्रयदान की गन्ध मात्र का भी विरोध करता है और करेगा। मैं समझता हूँ हमने बावजूद उन कठिनाइयों के जो हमारे सामने रही हैं, पिछले कुछ महीनों में, ईमानदारी से सहयोग का वातावरण उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है। हम इस प्रयत्न को जारी रखेंगे। लेकिन मुझे निश्चय ही बहुत भय है कि अगर दूसरों की ओर से पर्याप्त मात्रा में अनुकूल साहाय्य नहीं मिलेगा तो यह वातावरण विच्छिन्न हो जाएगा। फिर भी, चूंकि हम महान् कार्यों में लगे हुए हैं, मैं आशा और विश्वास करता हूँ कि हम यह प्रयत्न जारी रखेंगे, और मुझे यह भी आशा है कि अगर हमने इसे जारी रखा तो हम सफल होंगे। जहां हमें अपने ही देशवासियों से निबटना है, हम यह प्रयत्न उस दशा में भी जारी रखेंगे जब कि हमारी राय में हमारे कुछ देशवासी गलत मार्ग पर होंगे। क्योंकि, आखिर, हमें इस देश में एक साथ काम करना है, और हमें अनिवार्य रूप से आपस में सहयोग करना है—आज नहीं तो कल—कल नहीं तो परसों। इसलिए हमें इस समय ऐसी हर एक बात से बचना चाहिए, जो कि उस भविष्य के निर्माण में, जिसके लिए कि हम प्रयत्नशील हैं, कोई नई कठिनाई उपस्थित करे। इसलिए जहां तक अपने देशवासियों का सम्बन्ध है हमें अपनी शक्ति भर उनका अधिक से अधिक सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। लेकिन सहयोग का यह अर्थ नहीं, कि हम उन मूल आदर्शों को छोड़ दें, जिनका समर्थन हमने आज तक किया है और करना चाहिए। जिन चीजों से हमारा जीवन सार्थक हुआ है, उन्हें छोड़ देना सहयोग नहीं है। इसके अलावा, जैसा कि मैंने कहा, इस स्थिति में भी, जब कि हम एक दूसरे के प्रति संदेह की भावना से भरे हुए हैं, हम इंग्लैंड का सहयोग चाहते हैं। हम अनुभव करते हैं कि यदि वह सहयोग प्राप्त न हुआ तो यह भारत के लिए निश्चय ही कुछ हद तक हानिकर होगा। लेकिन कदाचित् इंग्लैंड के लिए यह अधिक हानिकर होगा और कुछ हद तक सारी दुनिया के लिए भी। हम अभी एक विश्वव्यापी युद्ध से बाहर निकले हैं, और लोग अस्पष्ट रूप से और कुछ उतावले ढंग से आनेवाले नए युद्धों की चर्चा करते हैं। ऐसे क्षण में उस नए भारत का जन्म हो रहा है जो कि नवजाग्रत, सजीव और निर्भय है। संसार के इस कोलाहल में, शायद इस नव-जन्म के लिए उचित अवसर है।

लेकिन हमें इस क्षण स्पष्ट आंखों से देखना चाहिए, क्योंकि हमें संविधान-निर्माण का भारी काम करना है। हमें वर्तमान की महान् संभावनाओं का और भविष्य की उससे भी महान संभावनाओं का विचार करना है, और इस अथवा उस वर्ग के लिए छोटे-मोटे लाभों की प्राप्ति के प्रयत्न में अपने को नहीं खो देना है। इस संविधान-परिषद् में, हम संसार के मंच पर काम कर रहे हैं। सारे संसार की आंखें हमारी ओर लगी हैं, और समस्त अतीत भी हमको देख रहा है। हमारा अतीत, हम यहां जो कुछ कर रहे हैं, उसका साक्षी है, और यद्यपि भविष्य ने अभी जन्म नहीं लिया है, मैं समझता हूँ, वह भी किसी न किसी तरह हमें देख रहा है। इसलिए मैं इस सभा से अनुरोध करूँगा कि वह इस प्रस्ताव पर हमारे अतीत की, कोलाहल पूर्ण वर्तमान की और शीघ्र आने वाले परन्तु महान और अजात भविष्य की विशाल दृष्टि-परम्परा में विचार करें।

ध्येयों के सम्बन्ध में प्रस्ताव

महोदय, मुझे इस बात का गर्व है कि छः सप्ताह पूर्व, इस प्रस्ताव को इस माननीय सभा के सामने पेश करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मैंने उस अवसर की गुरुता और गम्भीरता का अनुभव किया। मैंने इस सभा के सामने एक शब्दावली मात्र नहीं प्रस्तुत की, यद्यपि वे बहुत सावधानी से चुने हुए शब्द थे, बल्कि वे शब्द और प्रस्ताव एक राष्ट्र की यातनाओं और अन्ततः फलित आशाओं के सूचक थे।

उस अवसर पर जब कि मैं यहाँ खड़ा था तो मैंने अनुभव किया कि अतीत घिरकर मेरे चारों ओर आ रहा है, और मैंने भविष्य को भी साकार होते हुए देखा। हम वर्तमान की असि-धार पर खड़े हैं, और चूँकि मैं न केवल इस माननीय सभा को बल्कि भारत के करोड़ों निवासियों को जिनको हमारे काम में बड़ी दिलचस्पी है, संबोधन कर रहा था, और चूंकि मैंने अनुभव किया कि हम एक युग की समाप्ति पर पहुँच रहे हैं, मेरी कुछ ऐसी धारणा हुई कि हमारे पूर्वज हमारे इस उद्योग को देख रहे हैं और यदि हम ठीक रास्ते पर हैं, तो संभवतः इसे आशीर्वाद दे रहे हैं, और वह भविष्य जिसके कि हम न्यासधारी हैं, मुझे एक जीवित वस्तु-सा और हमारी आँखों के सामने एक आकार ग्रहण करता-सा जान पड़ा। भविष्य का न्यासधारी बनना एक बड़ा दायित्व था, और महान अतीत का उत्तराधिकारी बनना भी कुछ दायित्वपूर्ण काम था। और एक महान अतीत और हमारी कल्पना के महान भविष्य के बीच हम वर्तमान की धार पर खड़े थे, और मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि उस अवसर की गुरुता ने इस माननीय सभा को प्रभावित किया।

इसलिए मैंने यह प्रस्ताव इस सभा के सामने रखा, और मैंने आशा की थी कि यह एक या दो दिन के भीतर स्वीकृत हो जायगा और हम अपना और कार्य तुरन्त आरम्भ कर सकेंगे। लेकिन इस सभा ने एक लम्बे विवाद के बाद यह निर्णय किया कि इस प्रस्ताव पर आगे विचार स्थगित रखा जाय। क्या मैं कहूँ कि मुझे किञ्चित् निराशा हुई, क्योंकि आगे बढ़ने के लिए मैं अत्यंत उत्सुक था? मैंने ख्याल

ध्येयों के सम्बन्ध में प्रस्ताव पर हुए विवाद को समाप्त करते हुए, संविधान परिषद् में १३ जनवरी, १९४७ को दिया गया भाषण।

किया कि मार्ग में देर लगाने से, जो प्रतिज्ञाएँ हमने की थीं, हम उनके प्रति, सच्चे नहीं बने हुए थे। यह एक शुभ आरम्भ न था कि हम लोगों को ध्येय-सम्बन्धी ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव को स्थगित करना पड़े। क्या इसका यह तात्पर्य होगा कि हमारा भविष्य का कार्य भी धीमी गति से चलेगा और समय-समय पर स्थगित होता रहेगा? फिर भी, मुझे कोई संदेह नहीं कि सभा ने इस प्रस्ताव के स्थगित करने का जो निश्चय किया वह एक ठीक निश्चय था, क्योंकि हम सदा दो बातों का संतुलन करते आए हैं—एक तो अपने ध्येय पर शीघ्र पहुँचने की नितांत आवश्यकता का और दूसरे इस बात का कि हम उस तक, उचित समय में अधिक-से-अधिक संभावित बहुमत के साथ, पहुँचें। इसलिए, यदि मैं पूरे आदर के साथ कह सकता हूँ, तो यह उचित था कि यह सभा इस प्रस्ताव पर विचार स्थगित करने का निश्चय करे। इस प्रकार उसने न केवल संसार के आगे हमारी उत्कट इच्छा को प्रकट कर दिया कि हम, जो लोग अब तक यहां नहीं आ सके हैं, उन्हें बुलाने के उत्सुक हैं, बल्कि देश तथा अन्य सब को भी इस बात का आश्वासन दिया कि हम सबका सहयोग प्राप्त करने के कितने उत्सुक हैं। तब से छः सप्ताह बीत चुके हैं। और इस बीच उनके लिए, जो आना चाहते थे, पर्याप्त समय था। दुर्भाग्य से उन्होंने अब तक आने का निश्चय नहीं किया और वह अभी तक इस विषय में कोई निश्चय पर नहीं पहुँच पाये हैं, इसका मुझे खेद है, और मेरा केवल यही कहना है कि भविष्य में जब कभी वह आना चाहें हम उनका स्वागत करेंगे। लेकिन, बिना किसी गलत-फहमी की संभावना के यह स्पष्ट करना उचित होगा कि भविष्य में चाहे कोई आए चाहे न आए, कोई काम रोका न जायगा। काफी इंतिजार किया जा चुका। न केवल छः सप्ताह तक इंतिज़ार किया गया, बल्कि इस देश में बहुतों ने अनेकानेक वर्षों तक प्रतीक्षा की है, और इस देश ने अब कई पीढ़ियों तक प्रतीक्षा कर ली है। हम कब तक प्रतीक्षा करें? और अगर हम, हम में से कुछ, जो कि अधिक समृद्ध हैं अभी प्रतीक्षा कर सकते हैं, तो उन क्षुधितों और भूखे मरनेवालों की प्रतीक्षा के लिए क्या कहते हैं? यह प्रस्ताव क्षुधितों और भूखे मरनेवालों का पेट नहीं भर देगा, लेकिन यह अनेक बातों की आशा दिलाता है—यह स्वतंत्रता की आशा दिलाता है, यह भोजन की आशा बँधाता है और सबके लिए समान अवसर की आशा पैदा करता है। इसलिए, जितनी जल्दी हम अपने काम में लग सकें, उतना ही अच्छा है। हमने छः सप्ताह तक इंतिज़ार किया, और इन छः सप्ताहों के बीच देश ने इस पर विचार किया, खूब गौर किया और दूसरे देशों ने, और अन्य लोगों ने भी जो कि इसमें दिलचस्पी रखते रहे हैं, इसके विषय में विचार किया। अब हम, इस प्रस्ताव पर आगे विचार करने के लिए, यहां वापस आए हैं। इस पर एक लम्बा विवाद हो चुका है और हम इसे स्वीकार करने के निकट हैं। मैं डा० जयकर और श्री सहाय का कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने अपने संशोधन वापस ले लिए हैं। डा० जयकर का उद्देश्य प्रस्ताव के स्थगित होने से पूरा हो गया था, और ऐसा जान पड़ता है कि अब इस

विस्थापित व्यक्तियों के बीच

नई दिल्ली में, भारत में अमेरिकन राजदूत डा० हेनरी ग्रेडी व श्रीमती ग्रेडी को विदाई देते समय

गवर्नमेंट हाउस के स्टाफ द्वारा लार्ड माउन्टबेटन को दिये गये एक विदाई-भोज के समय

दिल्ली के निकट मेहरौली ईदगाह में
मुस्लिम बालिकाओं से बातें करते हुए

सभा में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो इस प्रस्ताव को, जिस रूप में वह है, पूरा-पूरा स्वीकार नहीं करता हो। यह हो सकता है कि कुछ लोग यह पसंद करेंगे कि इसकी शब्दावली कुछ भिन्न होती, या इस अथवा उस अंश पर अधिक ज़ोर दिया गया होता। लेकिन समग्र रूप से लेते हुए, यह एक ऐसा प्रस्ताव है, जिसने कि अभी ही इस सभा की पूरी स्वीकृति प्राप्त कर ली है, और इसमें कोई संदेह नहीं कि इसे देश की भी पूरी स्वीकृति प्राप्त है।

इसकी कुछ आलोचनाएँ हुई हैं, विशेषकर कुछ राजाओं की ओर से। उनकी एक आपत्ति यह थी कि रियासतों के प्रतिनिधियों की अनुपस्थिति में ऐसा प्रस्ताव स्वीकृत नहीं होना चाहिए। कुछ अंश तक मैं इस आपत्ति से सहमत हूँ, अर्थात् मैं पसन्द करता कि जब कि हम इस प्रस्ताव को स्वीकार करते, सभी रियासतों का, सारे भारत का और भारत के सभी भागों का यहां उचित प्रतिनिधित्व हुआ होता। लेकिन यदि वह यहाँ उपस्थित नहीं हैं तो इसमें हमारा दोष नहीं है: यह अधिकांश में उस योजना का दोष है जिसके अन्तर्गत हम यहां काम कर रहे हैं, और हमारे सामने यह विकल्प है: क्या हम अपना काम इसलिए उठा रखें कि कुछ लोग यहां उपस्थित नहीं हो सकते? यह बड़ी भयावह बात होगी, यदि हम न केवल इस प्रस्ताव को, बल्कि संभवत: और बहुत सी बातों को केवल इसलिए रोक रखें कि रियासतों के प्रतिनिधि यहाँ नहीं हैं। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, वह यहां शीघ्र से शीघ्र आ सकते हैं, और अगर वह रियासतों के अधिकारी प्रतिनिधि भेजते हैं तो हम उनका स्वागत करेंगे। इन छ: सप्ताह या एक महीने के बीच हमने रियासती शासकों की प्रतिनिधि समिति से, इस उद्देश्य से कि उनके उचित प्रतिनिधित्व का मार्ग निकल सके, सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न किया। अगर देर हुई है तो इसमें हमारा दोष नहीं है। हम सभी को, चाहे वह मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि हों, चाहे रियासतों के, चाहे कोई और, यहाँ बुलाने के लिए उत्सुक हैं। हम इस उद्योग को जिसमें कि यह सभा देश की अधिक से अधिक प्रतिनिधि-सभा बन सके, जारी रखेंगे। अतएव हम इस प्रस्ताव को, या और किसी चीज़ को, इसलिए स्थगित नहीं कर सकते कि कुछ लोग यहां मौजूद नहीं हैं।

एक और बात उठाई गई है: जनता की सर्वसत्ता का विचार, जो कि इस प्रस्ताव में समाविष्ट है, भारतीय रियासतों के कुछ शासकों को नहीं भाता। यह एक अद्भुत आपत्ति है, और, अगर मैं कह सकता हूँ, कि यह आपत्ति यदि गम्भीरता-पूर्वक किसी के द्वारा उठाई जाय, वह व्यक्ति चाहे शासक हो या सचिव, तो यह भारतीय रियासती प्रथा को, जिस रूप में वह भारत में मौजूद है, निकम्मा ठहराने के लिए पर्याप्त है। किसी के लिए भी, वह चाहे कितना ही बड़ा व्यक्ति क्यों न हो, यह कहना कि वह विशेष ईश्वरी न्याय के कारण, यहाँ लोगों पर शासन करने के

लिए आया है, आज एक घोर निन्द्य बात होगी । अगर कोई ऐसा कहे तो यह उसकी असह्य धृष्टता होगी, और यह एक ऐसी बात है जिसे कि यह सभा कभी स्वीकार न करेगी, और अगर यह बात उसके सामने रक्खी गई तो वह उसका प्रतिवाद करेगी । हम, राजाओं के इस दिव्य अधिकार के विषय में बहुत कुछ सुन चुके हैं, पुराने इतिहासों में इसके विषय में हमने बहुत कुछ पढ़ रखा है और हमने समझा था कि अब इसके विषय में आगे कुछ और सुनने को नहीं मिलेगा, और यह समाप्त हो चुका और युगों पहले धरती की खूब गहराई में दफ़न किया जा चुका है। अगर भारत में या कहीं भी कोई व्यक्ति इसका आज दावा करता है, तो वह आज के भारत को बिल्कुल नहीं जानता । इसलिए, इस तरह के लोगों को पूरी गम्भीरता से मैं सुझाव दूंगा, कि यदि वह चाहते हैं कि उनका आदर हो और उनके साथ कुछ मैत्री का व्यवहार हो, तो इस तरह के विचार को कभी प्रकट करना तो अलग रहा, उसकी ओर संकेत भी न किया जाय । इस विषय पर कोई समझौता असंभव है ।

लेकिन, जैसा कि पहली बार भाषण देते हुए मैंने साफ-साफ कह दिया था, यह प्रस्ताव इस बात को स्पष्ट कर देता है कि हम रियासतों के भीतरी मामलों में हस्तक्षेप करने नहीं जा रहे हैं । मैंने यहां तक कहा था कि यदि रियासतों की जनता यही चाहती है तो हम राजतंत्र प्रथा तक में हस्तक्षेप करने नहीं जा रहे हैं। मैंने आयरिश गणराज्य का उदाहरण दिया था जो कि ब्रिटिश कामनवेल्थ के अन्तर्गत है, और मैं इसकी कल्पना कर सकता हूँ कि यदि जनता ऐसा चाहती है, तो भारतीय गणराज्य के अन्तर्गत राजतंत्र शासन भी हों । यह बिल्कुल उसके निर्णय करने की बात है । यह प्रस्ताव, और अनुमानतः वह संविधान जो हम तैयार करने जा रहे हैं, इसमें हस्तक्षेप नहीं करेंगे । अनिवार्यतः यह आवश्यक होगा कि भारत के विविध भागों की स्वतंत्रता में समानता लाई जाय, क्योंकि मेरे लिए यह कल्पनातीत है कि भारत के कुछ भागों को जनसत्तात्मक स्वतंत्रता प्राप्त हो और दूसरों को नहीं । यह नहीं हो सकता । इससे उपद्रव की आशंका है, ठीक उसी तरह जैसे कि आज संसार में उपद्रव मचा हुआ है, क्योंकि कुछ देश स्वतंत्र हैं और कुछ नहीं। अगर भारत के कुछ हिस्सों में स्वतंत्रता हो और दूसरे हिस्सों में न हो, तो इससे भी अधिक उपद्रव का भय है ।

लेकिन हम इस प्रस्ताव में, भारतीय रियासतों के शासन के सम्बन्ध में किसी बंधी हुई प्रथा का निर्देश नहीं कर रहे हैं। जो कुछ हम कहते हैं वह यह है कि वे, या उनमें जो इतनी बड़ी हैं कि संघों का निर्माण कर सकें या छोटे छोटे संघों में सम्मिलित हो सकें, ऐसी रियासतें स्वायत्त इकाइयां होंगी, और उन्हें काफी हद तक जैसा वह चाहें, करने की स्वतंत्रता होगी, शर्त यह है कि केन्द्रीय शासन के जो खास

कार्य निर्धारित हों उनमें इनका सहयोग होगा और इनका केन्द्र में प्रतिनिधित्व होगा, पर इस विषय में नियंत्रण केन्द्र के हाथ में होगा। इसलिए एक प्रकार से यह प्रस्ताव उन इकाइयों के आन्तरिक कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करता है। वह स्वायत्त होंगी, और जैसा मैंने कहा है, यदि वह चाहेगी कि उनके यहाँ किसी प्रकार का वैधानिक राजतंत्र हो तो ऐसा करने के लिए वह स्वतंत्र होंगी। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मैं भारत में बल्कि सर्वत्र गणराज्य के पक्ष में हूँ। लेकिन मेरे विचार इस विषय पर जो भी हों, मैं दूसरों पर अपनी इच्छा लादना नहीं चाहता। मैं ख्याल करता हूँ कि इस विषय में सभा के चाहे जो भी विचार हों, पर उसकी यह इच्छा नहीं कि इन मामलों में अपने विचार वह किसी पर लादे।

इसलिए इस प्रस्ताव पर भारतीय रियासत के शासकों द्वारा की गई आपत्ति, जनता में निहित पूर्णसत्ता के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आशयों के विरुद्ध एक सैद्धान्तिक आपत्ति के रूप में रह जाती है। और किसी बात पर किसी को आपत्ति नहीं है। यह ऐसी आपत्ति है जो एक क्षण भी टिक नहीं सकती। हम इस प्रस्ताव में पूर्णसत्तात्मक स्वतंत्र भारतीय गणराज्य का—अनिवार्यतः गणराज्य का संविधान निर्माण करने के अधिकार का दावा करते हैं। भारत में इसके अतिरिक्त हो भी क्या सकता है? इस राज्य में और चाहे जो हो, चाहे न हो, यह असम्भव और कल्पना से परे और अवांछनीय है कि हम भारत में गणराज्य के अतिरिक्त दूसरी प्रथा का विचार करें।

अब, इस गणराज्य का संसार के और देशों से, इंग्लिस्तान से, ब्रिटिश कामनवेल्थ से और औरों से कैसा सम्बन्ध रहेगा? बहुत समय से हम स्वतंत्रता दिवस पर यह शपथ लेते आए हैं कि भारत को ग्रेट ब्रिटेन से अपना सम्बन्ध-विच्छेद करना होगा, क्योंकि यह सम्बन्ध ब्रिटिश आधिपत्य का एक प्रतीक बन गया है। हमने यह कभी विचार नहीं किया है कि हम संसार के इस भाग में और देशों से अपने को जुदा करके, या जिन देशों का हम पर आधिपत्य रहा है, उनसे विरोध ठान कर रहेंगे। इस महान अवसर पर, जब कि हम स्वतंत्रता की देहरी पर खड़े हैं, हम अपने साथ किसी देश के प्रति विरोध का पुछल्ला नहीं लगाना चाहते। हम सबके प्रति मैत्री का भाव रखना चाहते हैं। हम ब्रिटिश जनता से और ब्रिटिश कामनवेल्थ से मित्रता रखना चाहते हैं।

लेकिन मैं चाहूँगा कि जिस बात पर यह सभा विचार करे, वह यह है: जब कि इन शब्दों और इन लेबुलों के अर्थ में तेजी से परिवर्तन हो रहा है—और आज दुनिया में कोई राष्ट्र अलग-थलग नहीं—तो आप दूसरों से अलग होकर नहीं रह सकते। या तो आपको सहयोग करना पड़ेगा, या आपको लड़ना पड़ेगा। कोई बीच

का रास्ता नहीं है। हम शान्ति चाहते हैं। जहां तक हो सके हम किसी राष्ट्र से लड़ाई नहीं करना चाहते। और राष्ट्रों के साथ मिल कर हमारा एकमात्र संभावित वास्तविक ध्येय जो हो सकता है वह किसी सहयोगपूर्ण लोकव्यापी ढांचे का निर्माण करना है—उसे 'एक संसार' कह लीजिए, जो भी कह लीजिए। इस लोकव्यापी ढांचे का आरम्भ संयुक्त राष्ट्रों के संगठन द्वारा हो चुका है। उसमें त्रुटियां भले ही हों, फिर भी वह लोकव्यापी ढांचे का प्रारम्भ है और भारत ने उसके कार्य में सहयोग करने की प्रतिज्ञा की है।

अब, अगर हम उस ढांचे का और उसे कार्यान्वित करने के उद्देश्य से दूसरे देशों के साथ अपने सहयोग का विचार करें, तो राष्ट्रों के इस दल से या उस दल से मिल जाने का प्रश्न ही कहां उठता है? वास्तव में जितने अधिक दल या गुट्ट बनते हैं, यह ढांचा उतना ही निर्बल हो जायगा।

इसलिए इस बड़े संगठन को सुदृढ़ करने के लिए, सभी देशों के लिए यह वांछनीय होगा कि वे अलग-अलग दलों और गुट्टों के निर्माण पर ज़ोर न दें। मैं जानता हूँ कि आज इस तरह के अलग-अलग दल या गुट्ट हैं, और चूंकि आज उनका अस्तित्व है इसलिए उनमें आपस में विरोध है, और उनके बीच लड़ाई की चर्चा भी है। मैं नहीं जानता कि भविष्य में क्या होगा, युद्ध होगा या शान्ति रहेगी! हम एक चट्टान की छोर पर खड़े हैं, और एक ओर ऐसी विविध शक्तियां हैं जो कि हमें शान्ति और सहयोग की ओर खींच रही हैं, दूसरी ओर ऐसी विरोधी शक्तियां हैं जो युद्ध और विनाश के गड्ढे में ढकेल रही हैं। मैं ऐसा भविष्य वक्ता नहीं कि बता सकूं कि क्या होगा, लेकिन यह मैं जानता हूँ कि जो लोग शान्ति के इच्छुक हैं, उन्हें इन अलग-अलग गुट्टों का प्रतिवाद करना चाहिए, क्योंकि यह, हो न हो, एक दूसरे के विरोधी बन जाते हैं। इसलिए, जहां तक भारत की विदेशी नीति का प्रश्न है, उसने यह घोषित कर दिया है कि वह इन गुट्टों से स्वतंत्र और मुक्त रहना चाहता है, और वह बराबरी के दर्जे पर सभी देशों से सहयोग करना चाहता है। यह एक कठिन स्थिति है, क्योंकि जब लोगों के मन में एक-दूसरे का भय समाया हुआ हो, तो जो व्यक्ति तटस्थ रहता है, उसके विषय में यह संदेह किया जाता है कि वह दूसरे पक्ष से सहानुभूति रखता है। हम इस बात को भारत में देख सकते हैं और इसे हम संसार की राजनीति के विस्तृततर क्षेत्र में देख सकते हैं। हाल में, अमेरिका के एक राजनीतिज्ञ ने भारत की आलोचना ऐसे शब्दों में की, जिनसे पता चलता है कि अमरीकी राजनीतिज्ञ भी भारत के विषय में कितना कम ज्ञान और कितनी कम समझ-बूझ रखते हैं। चूंकि हम एक नीति का अनुसरण करते हैं, राष्ट्रों का यह वर्ग समझता है कि हम राष्ट्रों के दूसरे वर्ग का पक्ष ले रहे हैं, और दूसरा वर्ग समझता है कि हम इस वर्ग का पक्ष ले रहे हैं। यह होगा ही। अगर

हम स्वतंत्र आज़ाद, जनसत्तात्मक गणराज्य बनाना चाहते हैं तो इसलिए नहीं कि और देशों से अलग हो जायँ, बल्कि इसलिए कि स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में दूसरे देशों के साथ शान्ति और स्वतंत्रता के लिए पूर्ण रूप से सहयोग कर सकें, ब्रिटेन और ब्रिटिश कामनवेल्थ के देशों के साथ, संयुक्त राज्य अमरीका के साथ, सोवियत संघ के साथ और अन्य छोटे-बड़े देशों के साथ सहयोग कर सकें। लेकिन हमारे और इन राष्ट्रों के बीच सच्चा सहयोग तभी हो सकता है जब हम जानते हों कि हम सहयोग करने के लिए स्वतंत्र हैं, और हम पर कोई अपने विचार लादता नहीं या हमें सहयोग के लिए मजबूर नहीं करता। जब तक कि दबाव का लेशमात्र भी है, किसी प्रकार का सहयोग असंभव है।

इसलिए, मैं इस प्रस्ताव की सिफारिश न केवल इस सभा से बल्कि सारे संसार से करता हूँ, जिसमें कि यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाय कि यह सभी के प्रति मैत्री का एक संकेत है, और इसके पीछे विरोध की कोई भावना नहीं है। अब तक हमने बहुत कष्ट उठाये हैं। हमने अनेक संघर्ष किये और शायद आगे भी करने पड़ें, लेकिन एक अत्यन्त महान व्यक्ति के नेतृत्व में हमने दूसरों के प्रति, उनके प्रति भी जिन्होंने हमारा विरोध किया, मैत्रीभाव से और सत्कामना के साथ विचार करने का प्रयत्न किया है। यह हम नहीं कह सकते, कि हम कहां तक सफल हुए हैं, क्योंकि हम लोग दुर्बल मानव हैं। फिर भी, उस संदेश की छाप इस देश के करोड़ों लोगों के हृदयों पर सजीव है, और हम गलती करें और भटक भले ही जायं, पर हम उसे भुला नहीं सकते। हममें से कुछ छोटे आदमी हो सकते हैं, कुछ बड़े आदमी हो सकते हैं, लेकिन चाहे हम छोटे हों चाहे बड़े, इस समय एक बड़े उद्देश्य का प्रतिनिधित्व करते हैं और इसलिए बड़प्पन की कुछ छाया हम पर भी पड़ती है। आज इस सभा में हम एक महान उद्देश्य का प्रतिनिधित्व करते हैं, और यह प्रस्ताव जो मैं आपके सामने रख रहा हूँ, उस उद्देश्य का कुछ स्वरूप आपके समक्ष रखता है। हम इस प्रस्ताव को स्वीकार करेंगे, और मैं आशा करता हूँ कि इस प्रस्ताव द्वारा हम इसमें बनाए हुए ढंग का एक संविधान तैयार कर सकेंगे। मैं आशा करता हूँ कि फिर यह प्रस्ताव स्वयं हमें स्वतंत्रता तक पहुँचाएगा और हमारी भूखी जनता को अन्न प्रदान करेगा और उनके लिए वस्त्र तथा रहने के लिए घर जुटाएगा और सभी प्रकार की उन्नति के लिए अवसर देगा, और यह कि एशिया के दूसरे देशों की स्वतंत्रता का कारण बनेगा, क्योंकि हम चाहे जितने अयोग्य हों—हमें मान लेना होगा कि एक अर्थ में, हम एशिया में स्वतंत्रता के आन्दोलन के नेता बन गए हैं, और हम जो भी करें, हमें इस विस्तृत दृष्टिकोण से करना चाहिए। जब कि किसी छोटी बात पर हम में मतभेद हो और कठिनाइयां हों या छोटे-छोटे मामलों पर आपस में संघर्ष उत्पन्न हो तो हमें न केवल इस प्रस्ताव को स्मरण रखना चाहिए, बल्कि उस बड़ी जिम्मेदारी को भी, जो हमारे कन्धों पर है भारत की ४० करोड़

जनता की स्वतंत्रता की जिम्मेदारी, एशिया के एक बड़े हिस्से के नेतृत्व की जिम्मेदारी और किसी न किसी रूप में सारे संसार के बहुत से लोगों के पथप्रदर्शन की जिम्मेदारी। यह एक महान उत्तरदायित्व है। यदि हम इसका ध्यान रखें तो शायद हम इस जगह या उस पद के लिए, और इस वर्ग या उस वर्ग के थोड़े नफे के लिए, झगड़ा न करें। एक बात जो हम सबको स्पष्ट रूप से समझनी चाहिए वह यह है कि अगर भारत समृद्ध नहीं होता तो यहां का कोई वर्ग, कोई दल, कोई धार्मिक सम्प्रदाय उन्नति नहीं कर सकेगा। भारत गिरता है तो उसके साथ हम सब गिरते हैं, हमारे पास चाहे कुछ कम चाहे अधिक जगहें हों, और हमें चाहे कुछ अधिक सुविधा प्राप्त हो या न हो, लेकिन अगर भारत का कल्याण होता है, अगर भारत एक सप्राण, स्वतंत्र देश के रूप में जीवित रहता है, तो हमारा, हम सबका कल्याण है, चाहे हम जिस सम्प्रदाय या धर्म के क्यों न हों।

हम संविधान का निर्माण करेंगे, और मैं आशा करता हूँ कि यह एक अच्छा संविधान होगा, लेकिन क्या कोई व्यक्ति जो इस सभा में है यह कल्पना करता है कि जब एक स्वतंत्र भारत का प्रादुर्भाव होगा तो वह इस सभा द्वारा भी स्वीकृत किसी वस्तु से बँधा हुआ होगा? स्वतंत्र भारत एक बलशाली राष्ट्र की शक्ति का प्रस्फुटन देखेगा। वह क्या करेगा या न करेगा, यह मैं नहीं जानता, लेकिन इतना मैं अवश्य जानता हूँ कि वह किसी चीज़ से बंध जाना स्वीकार न करेगा। कुछ लोगों की कल्पना है कि हम जो करेंगे उसमें १० या २० वर्षों तक कोई हेर-फेर न हो सकेगा, अगर हम कोई बात आज नहीं कर लेते तो हम उसे आगे न कर सकेंगे। यह मुझे एक नितान्त भूल जान पड़ती है। मैं इस सभा के सामने यह नहीं कह रहा हूँ कि मैं क्या किया जाना पसंद करता हूँ या क्या नहीं किया जाना, लेकिन मैं चाहूँगा कि यह सभा विचार करे कि हम क्रान्तिकारी परिवर्तनों के ठीक सन्निकट हैं, जो कि हर एक मानी में क्रान्तिकारी होंगे, क्योंकि जब किसी राष्ट्र की आत्मा अपने बंधन तोड़ती है, तो वह विचित्र रूप में कार्य करती है, और उसे विचित्र ढंग से काम करना ही पड़ता है। हो सकता है कि जिस संविधान को यह सभा स्वीकार करती है उससे स्वतंत्र भारत को संतोष न हो। यह सभा अगली पीढ़ी को, या उन्हें, जो नियमित रूप से हमारे बाद आवेंगे, बांध नहीं सकती। इसलिए हम क्या करते हैं उसकी छोटी छोटी विस्तार की बातों में उलझने की आवश्यकता नहीं। अगर हमने उनको संघर्ष से प्राप्त किया है तो यह विस्तार की बातें अधिक समय तक टिक न सकेंगी। हम लोग जो भी सर्वसम्मति से और सहयोगपूर्ण ढंग से निर्णय करेंगे उसके टिकने की संभावना है। जहां-तहां संघर्ष के बाद, या ज़िद करके या धमकी देकर हम जो लाभ उठावेंगे वह अधिक समय तक टिक न सकेगा। वह केवल एक कटु स्मृति छोड़ जायगा। अतएव अब मैं इस प्रस्ताव की इस सभा से सिफा-रिश करता हूँ, और ऐसा करते हुए क्या मैं इस प्रस्ताव का अन्तिम पैराग्राफ पढ़

दूँ ? लेकिन, महोदय, ऐसा करने से पूर्व एक शब्द और कहूँगा ।

भारत एक बड़ा देश है, वह अपने साधनों की दृष्टि से बड़ा है, अपनी जन-शक्ति की दृष्टि से बड़ा है, अपने प्रच्छन्न साधनों की दृष्टि से बड़ा है, अर्थात् सब तरह से बड़ा है । मुझे बिल्कुल संदेह नहीं कि स्वतंत्र भारत प्रत्येक क्षेत्र में, भौतिक शक्ति के संकीर्णतम क्षेत्र में भी, संसार के रंगमंच पर एक महान कार्य कर दिखावेगा, और मैं चाहूँगा कि इस क्षेत्र में वह एक बड़ा हिस्सा ले । फिर भी, आज संसार में भिन्न भिन्न क्षेत्रों में शक्तियों के बीच आपस में संघर्ष है । हम अणुबम और अणु-शक्ति द्वारा प्रजनित उसके अनेक रूपों के विषय में बहुत सुनते हैं, और मूलतः आज संसार में दो वस्तुओं के बीच संघर्ष है, एक ओर तो अणु बम है और वह सब चीजें हैं जिनका वह प्रतिनिधित्व करता है, जबकि दूसरी ओर मानवता की भावना है । मैं आशा करता हूँ कि जहां भारत निस्संदेह भौतिक क्षेत्रों में बड़े काम कर दिखाएगा, वहां वह मानवता की भावना पर सदा जोर देगा, और इस बात में मुझे बिल्कुल संदेह नहीं कि अन्त में इस संघर्ष में जो कि संसार के सामने है, मनुष्य की आत्मा अणु बम के ऊपर विजय पाएगी । यह प्रस्ताव फलीभूत हो, और ऐसा समय आवे, जबकि इस प्रस्ताव के शब्दों में, यह प्राचीन देश संसार में अपना उचित और सम्मानित स्थान प्राप्त करे और लोकव्यापी शान्ति और मानव-कल्याण की वृद्धि में अपना पूरा और स्वेच्छापूर्ण सहयोग प्रदान कर सके ।

रक्षा सम्बन्धी सेवाओं के प्रति

स्वतंत्र भारत के सैनिको ! जयहिन्द ! कुछ महीने हुए, मैंने सेनापति से कहा था कि भारत की सशस्त्र सेनाओं के अफसरों और जवानों से जितनी बार संभव हो मिलने की, उनकी इकाइयों को, उनके काम और खेल-कूद को देखने की और खासकर उनसे बात करने की मेरी इच्छा है। मैं आपसे परिचित होना और बात-चीत करना चाहता था, क्योंकि यह बहुत जरूरी है कि हम एक दूसरे को समझें। एक स्वतंत्र देश में यह बहुत आवश्यक है कि अधिकारीगण, जो कि जनता के प्रतिनिधि हैं, सशस्त्र सेनाओं के लोगों के विचारों को जानें। साधारण जनता और सशस्त्र सेनाओं के बीच कोई दूरी नहीं होनी चाहिए, सब एक ही हैं, क्योंकि जनता के बीच से ही तो नए सैनिक भरती किए जाते हैं। सेना का कुछ अलग ही अस्तित्व है, इस पुराने विचार का अब महत्त्व नहीं रहा। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम लोग एक दूसरे को समझें। लेकिन काम की अधिकता के कारण और उन बहुत-सी सजीव समस्याओं के कारण जिनकी ओर तत्काल ध्यान देना जरूरी है, मैं आप लोगों में से अधिकांश से मिल नहीं सका, अगर्चे कुछ से मिलने और बात करने का मुझे अवसर मिला है। इसलिए मैंने निश्चय किया है कि रेडियो द्वारा आज शाम को आप लोगों से दो बातें करूँ।

हमारा देश स्वतंत्र हो गया है। स्वतंत्रता का क्या अर्थ है ? इसका अर्थ है कि बिना बाहरी हस्तक्षेप के हमें अब अपना काम करने की आज़ादी है। इसका यह अर्थ नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति मनमानी करने के लिए आज़ाद है, क्योंकि ऐसी मनमानी से अव्यवस्था उत्पन्न हो जायगी। अगर हर एक आदमी कानून अपने हाथ में ले ले, तो यह तो जंगल का कानून हुआ। इस तरह की आज़ादी सभ्य लोगों को शोभा नहीं देती।

हमारा देश एक प्राचीन देश है, जिसकी सभ्यता हजारों वर्ष पुरानी है। हमारी नव-जात स्वतंत्रता ने हम पर बड़ी जिम्मेदारियां डाल दी हैं। अगर कोई बात बिगड़ती है तो इसके लिये हम ही दोषी होंगे, हम दूसरों को दोष नहीं दे सकते। अच्छा काम करते हैं तो हम उसका लाभ उठायेंगे, बुरा काम करते हैं तो हमें उसके लिए भुगतना पड़ेगा। इसलिए, सशस्त्र सेना के जवानो, आप लोगों को विशेष

नए सैनिक कार्यक्रम का उद्घाटन करते हुए, नई दिल्ली से, आल इण्डिया रेडियो द्वारा प्रसारित, १ दिसम्बर, १९४७ को, सशस्त्र सेनाओं के प्रति दिया गया भाषण।

रूप से इन जिम्मेदारियों का अनुभव करना का चाहिए। अपने देश की और अपने देशवासियों की सेवा करना आपका कर्तव्य है।

लोग मुझे भारत का प्रधानमंत्री कहते हैं, लेकिन यह अधिक उपयुक्त हो अगर मैं भारत का प्रथम सेवक कहलाऊँ। इस युग में उपाधियों और पदों का मूल्य नहीं, केवल सेवा का मूल्य है। खास कर आपको सेवा करने का महान् अवसर प्राप्त है, क्योंकि आपके हाथ में राज्य की सशस्त्र शक्ति है। आप को ऐसी सावधानी बरतनी चाहिए कि इसका दुरुपयोग न होने पाये।

आप जानते हैं कि हमारी सेना कश्मीर में उन लोगों को, जिन्होंने कि उस रियासत पर आक्रमण किया है, मार भगाने में लगी हुई है। हमारे सैनिक वहाँ क्यों गए ? हम दूसरे देशों पर आक्रमण करना और लोगों को गुलाम बनाना नहीं चाहते। जिस तरह अपने देश के लिए हम स्वतंत्रता चाहते थे, उसी तरह दूसरे देशों के लिए, खास तौर पर एशिया के देशों के लिए स्वतंत्रता चाहते हैं। कश्मीर तो, बेशक, इसी देश का एक हिस्सा है। हमारी सेना वहाँ पर किसी को सताने या विजय के उद्देश्य से नहीं गई। वह वहां इसलिए गई कि कश्मीर के लोगों पर संकट आया था, और आक्रमणकारियों द्वारा उनकी भूमि का विध्वंस किया जा रहा था। वहां के लोगों ने हमारी सहायता मांगी। इसलिए वहां जाना और उनकी सहायता करना हमारा कर्तव्य हो गया। हमने अपने सैनिकों को भेजा, जिन्होंने अपना काम तेज़ी से और साहस के साथ किया। बहुत कुछ काम हो चुका है, लेकिन और भी कठिन काम आगे करने को है, और मुझे विश्वास है कि वह पूरा होगा।

मैं वहां गया और अपने जवानों से मैंने बात की। मैंने उनसे कहा कि वे वहां पर कश्मीर के लोगों के मेहमान और दोस्त और सेवकों के रूप में हैं, और भारत की नेकनामी उनके कार्यों पर निर्भर है। यदि कश्मीर में हमारे आदमियों ने कोई बे-समझी का काम किया तो उससे भारत की बदनामी होगी। मुझे इस बात की खुशी है कि वहां पर अपने कर्तव्य का पालन करते हुए उन्होंने कश्मीर के लोगों के साथ अच्छे संबन्ध स्थापित कर लिए हैं। हमें अपने को यह बराबर याद दिलाते रहना चाहिए कि हमारा धर्म या मत चाहे जो भी हो, हम सब एक ही हैं।

मुझे खेद है कि हाल के उपद्रवों के कारण हमारी बदनामी हुई है। बहुत से लोग इस उपद्रव में शरीक हो गए हैं। यह नागरिकता नहीं है। नागरिकता तो इसमें है कि देश की सेवा की जाय। अगर जल-सेना, थल-सेना और हवाई-सेना के आप लोग अपने देशवासियों की, वर्ग या धर्म का विचार किए बिना, सेवा करेंगे तो आप अपने और अपने देश के लिए सम्मान प्राप्त करेंगे। जयहिन्द !

एक जलयान का जलावतरण

इस जलयान को, उसकी पहली यात्रा के लिए जल पर उतारते हुए हमारे मन में अनेक प्रकार के विचार उठते हैं, विशेषकर ऐसे अवसर पर जबकि इतने बड़े आकार का पहला भारतीय जलपोत सदियों बाद बना हो और पानी में उतारा गया हो। अनिवार्यतः ध्यान उन युगों पर जाता है, जब कि जहाज बनाना भारत का प्रमुख उद्योग था। हम पुराने और मध्य युगों की सराहना करते हैं, जबकि हमारे देश की भलाई का बहुत काम किया गया और कुछ बुराई भी हुई, और ये सब काम अब इतिहास का अंग बन चुके हैं। ऐसा करते समय कुछ तो जहाज बनाने के उद्योग का और अधिकतर स्वयं देश के लाभ का ध्यान आता है। जहाज के जल पर उतारने के साथ एक दृष्टान्त मन में उठता है, अर्थात् राज्य रूपी जहाज का, जिसने कुछ ही मास पूर्व अपनी यात्रा आरम्भ की और जिसे बड़े तूफानी मौसम का सामना करना पड़ा है। हम जीवित रहे और तूफान को पार कर रहे हैं, लेकिन भारत में हमें बहुत-से तूफानों का सामना करना है। वास्तव में सारे संसार में और बहुत-से तूफान चल रहे हैं और बहुत-से आगे आने वाले हैं। लेकिन मेरा ख्याल है कि हमने यह दिखा दिया है कि हम काफी मजबूत हैं और तूफानों का मुकाबला करने के लिए दृढ़ निश्चय हैं।

भारत एक पुराना देश है। मैंने भारत की कल्पना सदा पर्वतों और समुद्रों की संतान के रूप में की है। एक ओर से हिमालय और दूसरी ओर से भारतीय समुद्र उसे गले लगाए हुए हैं। इसलिए मैंने सदा भारत का ख्याल शेष दुनिया से अलग-थलग एक देश के रूप में नहीं बल्कि एक ऐसे देश के रूप में किया है, जो संसार के और देशों से निकटतम और विस्तृततम व्यवहार के लिए बड़ा ही उपयुक्त है। दुर्भाग्य से हाल के वर्षों में—२०० वर्षों में, विशेषकर पिछले १५० वर्षों में—पर्वत और समुद्र दोनों ही ने इसे जुदा-सा कर दिया है। संसार के पश्चिमी देशों से, विशेषकर इंग्लिस्तान से हमारे सभी संपर्क समुद्र के मार्ग से रहे हैं। लेकिन

विजगापट्टम् मद्रास में 'जल-उषा' नामक जहाज के, जो कि भारत में बना पहला समुद्र-यात्रा योग्य स्टीमर है, जल पर उतारने के अवसर पर, १४ मार्च, १९४८ को दिया गया भाषण।

और देशों से यथा मध्य एशिया के पर्वती प्रदेशों से और पूर्वी तथा पश्चिमी एशिया से हमारे सम्पर्क प्रायः समाप्त हो गए थे। भारतीय इतिहास बताता है कि समुद्रों और पर्वतों को पार करके हम साहसिक यात्राओं पर जाते थे और उन दिनों हमारा अलग अस्तित्व न था। हम आगे देखते थे, और समुद्र के पार जाते थे, और अपनी वीरता और संस्कृति को लेकर दूर देशों में पहुँचते थे।

उन दिनों विचारों की संकीर्णता कही सुनी नही जाती थी। लेकिन समय बीतने पर हम में धर्म के नाम पर संकीर्णता विकसित हो गई। पर वह धर्म कैसा जो आदमी को आदमी से मिलने से रोके? धर्म के नाम पर समुद्र-यात्रा करना पाप कहा गया। यह कैसा धर्म है जो आदमी को अपनी मां के पास जाने से और अपनी मां पर भरोसा रखने से, रोकता है। आदमी यदि अपनी मां, बाप, भाई पर विश्वास न करे तो कैसे जिन्दा रहे और कैसे तरक्की करे? धर्म और दृष्टिकोण की यह संकीर्णता बहुत हो ली। हम समुद्र से, अपनी मां से, भय खाते हैं? अगर हम अपनी मां से डरने लगें और उस पर भरोसा न करें तो हम खतरे के समय में फिर कहां चैन पायेंगे और कहा आराम करेंगे? अब हमें फिर समुद्र में जाना चाहिए, जो कि हमारी मां है, और निर्भय होकर अपने जहाजों को उसके वक्षस्थल पर भेजना चाहिए। इस समुद्र को भविष्य में हमारे लिए एक प्रतीक बन जाने दीजिए। आइए, हम राज्य के जहाज को, अर्थात् भारत को, हिम्मत के साथ समुद्र में उतारें, और इस तरह न केवल भारत का विकास करें, बल्कि उसकी प्रतिष्ठा को बढ़ायें और दूसरे राष्ट्रों से सहयोग करें और भविष्य में सुदृढ़ हृदय के साथ अधिकाधिक साहस के कार्य करें।

भविष्य में अलग रहने के मानी होंगे मृत्यु और देश की बरबादी। हर एक बड़े देश के लिए, वह चाहे जितना बड़ा हो, अलग रहने के मानी हैं बाकी दुनिया से हट कर रहना। इसके मानी है संसार की उन्नति में पिछड़ जाना। हम दूसरे देशों के जीवन में हस्तक्षेप करने को उत्सुक नहीं हैं क्योंकि हम दूसरों पर आधिपत्य नहीं करना चाहते। हम अन्य देशों की मित्रता और सहयोग प्राप्त करने के इच्छुक हैं। पर साथ ही हम बाहरी हस्तक्षेप को सहन भी नहीं करेंगे। मैंने इस जहाज को इस भावना से पानी पर उतारा है, कि आप साहस की भावना से अपने व्यापारिक और समुद्री उद्योग को चलाएँ।

विजगापट्टम के इस बन्दरगाह में, हम न केवल जहाज बनाने के उद्योग का विकास कर रहे हैं, बल्कि यह एक महत्त्वपूर्ण जहाजी अड्डा भी है। भारत के पूर्वी समुद्र-तट का यह सबसे महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह है, और मैं चाहता हूँ कि इस जहाजी अड्डे की तरक्की हो और हमारे नवयुवक, होनहार नवयुवक, नौ सेना में भरती हों। अगर मैं नौजवान होता तो मैं स्वयं भी नौ-विभाग में भरती होना पसन्द करता।

अगर जहाजरानी से अधिक मेरी दिलचस्पी किसी और में है तो वह है हवाई मार्गों का विकास। लेकिन दुर्भाग्य से जीवन ने मेरे साथ बुरा खेल खेला है और मुझे दफ्तर में मेज पर बैठ कर काम करना पड़ता है, जिसे कि मैं बहुत ही नापसन्द करता हूँ। मुझे बताया गया है कि उड़ीसा के मछुए नौ-विभाग में भरती होना चाहते हैं। मैं इन प्रार्थनापत्रों का स्वागत करता हूँ, लेकिन इसके पहले कि वे भरती हो सकें, उन्हें कुछ आवश्यक योग्यता प्राप्त करनी होगी। अतएव हमारा यह कर्तव्य है कि हम उन्हें इस आवश्यक योग्यता को प्राप्त करने की सुविधाएँ दें।

सभापति महोदय, आपके भाषण में एक अजीब और कुछ हैरत में डालने वाले वाक्यांश का प्रयोग हुआ है, वह सरकार और उद्योग के बीच मेल-जोल के सम्बन्धों के विषय में है। क्या उद्योग शासन का प्रतिस्पर्द्धी है ? सरकार उद्योग की सब तरह से सहायता करेगी। अगर उद्योग ठीक-ठीक प्रगति नहीं करता तो सरकार हस्तक्षेप करेगी और उद्योग को अपने हाथ में ले लेगी। अगर उद्योग ने सन्तोषजनक ढंग से काम न किया तो वह सौ फीसदी सरकारी नियन्त्रण में ले लिया जायगा। जहाज के धंधे में रुकावट नहीं पड़नी चाहिए, उसे हर तरह से और सभी तरह से चलाया जायगा। किस तरह वह चल रहा है यह दूसरी बात है। आप विश्वास रखें सरकार को उसे प्रोत्साहन देने में बहुत ही दिलचस्पी है। सिंधिया कंपनी ने जो अब तक साहसपूर्ण उद्योग किया है, उसके लिए हम कृतज्ञ हैं। उद्योग को सदा प्रोत्साहन मिलेगा। इसने विदेशी निहित स्वार्थों के विरुद्ध निरन्तर युद्ध किया है। इस महत्त्वपूर्ण उद्योग को अनिवार्य रूप से अधिकाधिक सरकारी नियंत्रण में आना चाहिए। आखिर, जहाजों के निर्माण में लगे लोगोंकी—आपके दफ्तर के चोटी के आदमियों से लेकर उन श्रमिकों तक की जो कि वस्तुतः निर्माण कार्य करते हैं— स्थिति में इससे कोई अन्तर नहीं आता। जो भी हो, मैं भरोसा दिलाता हूँ, कि यंत्र-विभाग और प्रबन्ध-विभाग के कार्यकर्ताओं में कोई परिवर्तन न होगा। वे ज्यों-के-त्यों बने रहेंगे। केवल सर्वोच्च स्तर पर नीति सम्बन्धी तथा नफे से सम्बन्ध रखने वाले कुछ परिवर्तन हो जायँगे। मुझे यह जान कर प्रसन्नता है कि आपके जहाज के कारखाने में मालिकों और कार्यकर्ताओं के बीच सद्भावना और दोस्ती के भाव वर्तमान हैं, और आप उस औद्योगिक विराम-संधि के सिद्धान्त का जो कि कुछ समय पहले निर्द्धारित हुआ था, अनुसरण कर रहे हैं। मैं समझता हूँ आज उन सबसे महत्त्वपूर्ण बातों में जिनका कि हमें अनुभव होना चाहिए, एक यह है कि औद्योगिक झगड़े हमेशा राष्ट्र को हानि पहुँचाते हैं और उसे कमजोर बनाते हैं, लेकिन विशेषकर आज, जबकि हमने अपने राज्य के जहाज को अभी-अभी समुद्र में उतारा है, अगर जहाज के नाविक असहयोग आरम्भ कर दें तो जहाज अपनी यात्रा का आरम्भ कैसे करेगा ?

मेरी धारणा है कि मद्रास के अहाते में स्थिति ठीक नहीं है। निश्चय ही, मैं यहां की नहीं, बल्कि और जगहों की बात कर रहा हूँ। इस अशान्ति की

बुराई-भलाई पर प्रकाश डाले बिना मैं आप से यह कहना चाहता हूँ कि इस तरह की बात सहन न की जायगी । यह मद्रास सरकार का और भारत सरकार का काम होगा, कि जहां तक उनका सम्बन्ध है, वह इस उपद्रव को रोकें । मैं दूर से इसे देखता रहा हूँ और मुझे पता लगा है कि कुछ हड़तालें केवल हड़ताल करने के उद्देश्य से की गई हैं, और उनसे श्रमिकों का कुछ भी भला नहीं हुआ है । इस तरह की हड़-तालें जो केवल हड़ताल करने के उद्देश्य से की जाती हैं और जिनसे किसी का भी भला नहीं होता, सहन नहीं की जा सकतीं । हिंसा की एक भावना चारों ओर फैली हुई है । इसे भी सहन नहीं किया जा सकता । हमारा देश एक जन-सत्तावादी देश है, और हम हर एक वर्ग के लोगों को मत प्रगट करने की, कार्य करने की और विचार प्रकट करने की अधिक-से-अधिक स्वतंत्रता देना चाहते हैं, हम चाहे उससे असहमत ही क्यों न हों । स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं कि हिंसा या उसके लिए उत्तेजना फैलाई जाय । अगर हिंसा को उकसाया जाता है, जैसा कि इस अहाते में हुआ है, तो ऐसा करने वाले के साथ दृढ़ता से पेश आया जायगा । हम नाजुक समय में से गुज़र रहे हैं, वह समय न केवल इस देश में बल्कि सारे संसार में आया हुआ है । कोई नहीं कह सकता कि कल क्या होगा । कभी-कभी, जहां भी आवश्यक हुआ, झट कार्यवाही करनी पड़ेगी, जिससे कि राज्य रूपी जहाज, चाहे समुद्र में तूफान आया हो, चलता रहे । सारे संसार में स्थिति अधिकाधिक संकटमय होती जा रही है । इसलिए हमें अपने को संसार की कठिनाइयों और समस्याओं में न उलझा लेना चाहिए । पर हम उनसे बच भी नहीं सकते । हमें वस्तुओं को उचित दृष्टि-परम्परा में देखना होगा ।

हमें देश में शान्ति-स्थापना के प्रश्न को कार्यसाधक दृष्टि से देखना होगा । अगर हम संयमित जीवन व्यतीत करते हैं और अपनी समस्याओं को हल करते हैं, चाहे वे समस्याएँ औद्योगिक हों चाहे भिन्न, तो मैं आशा करता हूँ कि हमारे देश का उद्योग समृद्धिशाली होगा । उद्योग को आखिरकार अपनी समस्याओं को निश्चय ही सरकार की सहायता से खोजना और हल करना पड़ेगा । मैं आशा करता हूँ कि श्रमिक भी यह अनुभव करेंगे कि वर्तमान समय हड़ताल करने के लिये तनिक भी उपयुक्त नहीं है । सामने बहुत-सी भयावह बातें और खतरे हैं । हड़ताल का अस्त्र एक मूल्यवान् और उपयोगी अस्त्र है, और इसका ऐसे-वैसे उपयोग नहीं होना चाहिए । अगर हम चाहते हैं कि राष्ट्र के रूप में हम उन्नति करें तो औद्योगिक सम्बन्धों के अनु-शासन के लिए हमें हड़ताल के बजाय दूसरे उचित और स्वस्थ ढंग और तरीके ढूंढ़ निकालने होंगे । कोई भी प्रथा, जिसमें कि समय-समय पर झगड़े होते रहें, स्वस्थ और उचित नहीं है । अतएव अब मैं आपको इस उद्योग के लिये फिर बधाई देता हूँ । मेरी यह कामना है कि यह जहाज, जिसका हमने जलावतरण किया है, और भी बड़े-छोटे जहाजों का पूर्ववर्ती हो, और यह भारत के संदेश को संसार के कोने-कोने में पहुँचाये ।

माउन्टबेटन परिवार के प्रति

महिलाओ और सज्जनो ! लगभग पन्द्रह महीने हुए जब कि हम में से कुछ पालम के हवाई अड्डे पर नए वाइसराय और उनकी पत्नी का स्वागत करने गए थे। हम में से कुछ कल सबेरे फिर पालम हवाई अड्डे पर उन्हें विदा देने जायँगे। यह पन्द्रह महीने, का समय एक लम्बा समय जान पड़ता है, फिर भी ऐसा लगता है कि मानो कल ही लार्ड और लेडी माउन्टबैटन और पमेला माउन्टबैटन यहाँ आए हों। पर वास्तविकता यह है कि इन पन्द्रह महीनों में हमें संवेदना, सुख और दुख के इतने अनुभव हुए हैं कि यदि उन्हें इकट्ठा देखा जाय तो ऐसा जान पड़ता है मानो एक युग वीत गया हो।

इस अवसर पर बोलने में मैं कुछ कठिनाई का अनुभव करता हूँ, क्योंकि वे लोग जिनके बारे में मैं बोलने जा रहा हूँ, इस अर्से में हमारे बड़े प्रिय और घनिष्ठ मित्र हो गए हैं, और जो हमारे मित्र हैं और प्रिय हैं उनके बारे में कुछ कहना सदा कठिन होता है। यह सम्भव है कि आदमी अत्यधिक कह डाले, या, दूसरी ओर अगर वह बहुत ही सतर्क तो जितना कहना चाहिए उतना भी न कहे। हर हालत में मैं नहीं जानता कि लार्ड और लेडी माउन्टबैटन के बारे में कहने के लिए मेरे पास काफी शब्द हैं। पिछले कुछ दिनों अनेक प्रीतिभोज हुए जिनमें उनके प्रति प्रशंसा, मैत्री और मैं समझता हूँ स्वागत के शब्द कहे गए लेकिन मुझ पर उनका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। अधिकांश रूप में उनमें कुछ शिष्टाचार ही था।

यह मैं अवश्य अनुभव करता हूँ कि आज शाम को दिल्ली नगर में जो प्रदर्शन हुआ, उसके बाद मेरा कुछ कहना फीका-सा ही लगेगा। क्योंकि तीन-चार घंटे हुए, दिल्ली नगर ने अर्थात् दिल्ली के साधारण लोगों ने इकट्ठा इनका स्वागत किया था या यों कहिए कि इन्हें विदाई दी थी। मैत्री और प्रेम का यह प्रदर्शन इतना आश्चर्यजनक था कि उस घटना के बाद, मेरा कोई शब्द या वाक्य इस अवसर के शायद ही उपयुक्त हो। नहीं जानता—अधिक से अधिक मैं केवल अटकल भर लगा सकता हूँ—कि लार्ड और लेडी माउन्टबैटन ने इस अवसर

लार्ड और लेडी माउंटबैटन की भारत से विदाई के पूर्व नई दिल्ली में, २० जून, १९४८ को उनके सम्मान में दिए गए एक भोज के अवसर पर दिया गया भाषण।

पर क्या अनुभव किया। लेकिन यहां इन महान प्रदर्शनों का अभ्यस्त होते हुए भी, मुझ पर बड़ा प्रभाव पड़ा, और मुझे यह आश्चर्य हुआ कि एक अँग्रेज और एक अँग्रेज महिला भारत में इतने थोड़े समय में इतने स्वल्प काल में इतने लोक-प्रिय कैसे हो सके, और वह स्वल्पकाल भी ऐसा, जिसमें कि निश्चय ही बहुत कुछ सिद्धि और सफलता प्राप्त हुई, लेकिन जो शोक और विपत्ति का काल भी रहा।

वास्तव में, मुझे अक्सर आश्चर्य हुआ है कि भारत के लोग मुझ जैसे लोगों को, जिनका कि भारत के शासन से सम्बन्ध रहा है, पिछले कुछ महीनों में जो कुछ हुआ है उसके बाद, कैसे सहन कर सके। मैं कह नहीं सकता कि यदि मैं सरकार का एक अंग न होता तो मैं अपनी सरकार के कार्यो को सहन कर लेता। गुण-दोषों का विचार बिल्कुल अलग रखा जाय, तो तथ्य यह है कि चाहे जो घटना हो उसके लिए सरकार जरूर जिम्मेदार है और उसे होना चाहिए, और यदि जो कुछ होता है वह ठीक नहीं होता तो सरकार को जिम्मेदार ठहराना चाहिए। मैं समझता हूँ कि आमतौर पर यह एक अच्छी अनुभवोक्ति है। हो सकता है कि इसके लिए काफी बहाने ढूंढे जा सकते हों। इसलिए मुझे और भी आश्चर्य हुआ जबकि इस तूफान और बोझ और कठिनाई के काल के बाद, गवर्नर-जनरल और उनकी पत्नी, जिनका कि कुछ अर्थ में इन सब बातों से सम्बन्ध था, फिर भी जनता का इतनी अपार मात्रा में प्रेम प्राप्त कर सके।

यह स्पष्ट है कि जो कुछ हुआ उससे इसका सम्बन्ध न था, बल्कि इन दोनों की भलाई, मैत्री और भारत के प्रति प्रेम से इसका सम्बन्ध था। लोगों ने इन्हें अदम्य स्फूर्ति से, अध्यवसाय से और सब बाधाओं की अवहेलना करने वाली आशावादिता से कठिन परिश्रम करते देखा और देखने से अधिक उन्होंने इनकी भारत के प्रति मैत्री का अनुभव किया, और उन्होंने देखा कि ये अपनी पूरी योग्यता से भारत की सेवा में लगे हुए थे।

भारत में हम लोगों में बहुत सी त्रुटियां हैं और बहुत-सी कमजोरियां हैं, लेकिन जब हम भारत के प्रति मित्रता देखते हैं तो हमारे हृदय उन्मुक्त हो जाते हैं, और जो लोग भारत के मित्र हैं या जो भारत की सेवा करते हैं, वे जो भी हों या जहां भी हों, हमारे साथी बन जाते हैं। और इसलिए, भारत के लोगों ने यह अनुभव करते हुए कि लार्ड और लेडी माउंटबैटन निश्चय ही भारत और उसकी जनता के मित्र हैं, और उनकी सेवा करते रहे हैं, आपको भारतवासियों ने अपना स्नेह और प्रेम दिया। इससे अधिक वे और कुछ न दे सकते थे। आप को बहुत से उपहार, बहुत सी भेंटें मिल सकती हैं, लेकिन जनता के स्नेह और प्रेम से अधिक मूल्यवान कुछ भी नहीं। श्रीमान् और श्रीमती जी, आपने स्वयं देख लिया है कि स्नेह और प्रेम

किस रूप में काम करते हैं। मैं यह कह सकता हूँ, कि ये सबसे अधिक मूल्यवान् उपहार हैं। इसलिए जब आपने यह सब देख लिया है, तो मुझे अपनी ओर से सिवाय थोड़े से शब्दों के, जो शायद कुछ निजी हैं और कुछ निजी नहीं भी हैं अधिक नहीं कहना है।

आप यहां अपनी निजी हैसियत से और एक महान सार्वजनिक हैसियत से रहे हैं। हम में से बहुत से आपके मित्र हो गए हैं, और हम लोगों का इतिहास के एक अद्भुत क्षण में साथ हुआ है और हम इस ऐतिहासिक दृश्य में अभिनेता भी रहे हैं। मेरे लिए या किसी के लिए भी यह कठिन है कि उस पर निर्णय दे सके। हम उन घटनाओं के अत्यधिक निकट हैं और उनसे हमारा अत्यधिक निकट का संबंध भी रहा है। हो सकता है कि हमने और आपने बहुत-सी गलतियां की हों। पीढ़ी दो-पीढ़ी बाद इतिहासकार शायद यह निर्णय कर सकें कि हमने ठीक किया या गलत किया। फिर भी, हमने ठीक किया या गलत, इसकी सही कसौटी शायद यह है कि हमने ठीक करने का प्रयत्न किया या नहीं ? क्योंकि यदि हमने अपनी पूरी सामर्थ्य और शक्ति से ठीक काम करने का प्रयत्न किया तो फिर हमें बहुत ज्यादा परवाह न करनी चाहिए, यद्यपि इस अर्थ में परवाह होती है कि जो कुछ किया गया वह गलत निकला। हम अपने अभिप्रायों के निर्णायक नहीं हो सकते, लेकिन मैं यह अवश्य विश्वास करता हूँ कि हमने ठीक ही कार्य करने का प्रयत्न किया, और मुझे यह भी विश्वास है कि आपने भारत के प्रति ठीक ही कार्य करने का प्रयत्न किया, और इसलिए हमारे बहुत-से अपराध और हमारी बहुत-सी भूलें क्षम्य हो सकेंगी।

महोदय, आप यहां बड़ी ऊँची प्रतिष्ठा के साथ आए, लेकिन भारत में अनेक प्रतिष्ठाएँ विफल हुई हैं। आप यहां एक बड़े संकट और कठिनाई के काल में रहे, फिर भी आपकी प्रतिष्ठा विफल नहीं हुई। यह एक बहुत बड़ी बात है। हम में से बहुतों ने, जो इन संकट के दिनों में आप के सम्पर्क में आए आपसे बहुत कुछ सीखा है। जब भी हम ज़रा विचलित हुए हैं, हमने विश्वास संचित किया है, और बहुत-से पाठ, जो हमने आपसे सीखे हैं, कायम रहेंगे और उनसे हमारे आगे के काम में सहायता मिलेगी।

श्रीमती, आप से भी मै स्वयं कुछ कहना चाहूँगा। देवताओं ने या किसी सुन्दर परी ने आपको सौंदर्य, तीव्र बुद्धि, चारुता, आकर्षण और सजीवता प्रदान की। ये बड़े उपहार हैं, और जिसे भी ये प्राप्त हैं वह जहां भी जायगा महान कहलायेगा। लेकिन जो सम्पन्न हैं उन्हें भगवान से और भी मिलता है, और देवताओं ने आपको जो वस्तु दी है वह इन उपहारों से अधिक मूल्यवान है, उन्होंने आपको मनुष्यता, मानव प्रेम, पीड़ितों और दुखियों की सेवा के प्रति भावना प्रदान की है और गुणों के अद्भुत मेल ने आपको एक उज्ज्वल व्यक्तित्व और घावों को भरने

वाला संस्पर्श प्रदान किया है। जहाँ भी आप गई हैं, आपने लोगों को सान्त्वना दी है, आशा दिलाई है, और प्रोत्साहित किया है। तब फिर इसमें आश्चर्य ही क्या है कि भारत के लोगों को आपसे प्रेम हो, और वे आप को अपना आत्मीय समझें और आपके जाने से उन्हें दुख हो ?...सैकड़ों हजारों ने आपको विविध पड़ावों पर, अस्पतालों में और और जगहों पर देखा है और सैकड़ों-हजारों इस समाचार से दुखी होंगे कि आप जा रही हैं।

पामेला माउंटबेटन के बारे में भी दो शब्द कहूँ ? वह यहां सीधे स्कूल से आईं, और उनमें बड़ी मोहनी शक्ति है। उन्होंने भारत के इस आन्दोलित वातावरण में जो कार्य किया वह एक अच्छे सयाने व्यक्ति का कार्य था। मैं नहीं कह सकता आप सब लोग, जो उन्होंने किया, उससे परिचित हैं, लेकिन जो उससे परिचित हैं वे जानते हैं कि यह काम कितना श्लाघ्य रहा है और कितना पसन्द किया गया है।

मैं अधिक नहीं कहना चाहता, सिवाय इसके कि जो कुछ दूसरों ने कहा है उसी को मैं दुहराऊँ कि हम आपसे विदाई लेते हैं, लेकिन इसे हम सदा के लिए विदाई नहीं समझते।

हमें माउंटबैटन परिवार से बांधनेवाले बन्धन इतने दृढ़ हैं कि वे टूट नहीं सकते और हम यहाँ या अन्यत्र समय समय पर मिलते रहने की आशा रखते हैं, और चाहे हम मिलें या न मिलें हम आपको सदा याद रखेंगे। दिल्ली की जनता ने—भारत की जनता की ओर से—जो आपको दिया है उससे अधिक मूल्यवान या कीमती कोई भी उपहार हम आपको नहीं भेंट कर सकते, लेकिन मंत्रिमंडल के मेरे सहयोगियों और भारत के प्रान्तों के गवर्नरों ने मिल कर स्मृति-चिन्ह के रूप में एक छोटा-सा उपहार आपके लिए प्रस्तुत किया है, जिसे आपको भेंट करने का मेरा सौभाग्य है।

यह, जैसा आप देखेंगे, एक तश्तरी या थाल है। इस पर मंत्रिमंडल के सभी सदस्यों और भारत के सभी गवर्नरों के हस्ताक्षर अंकित हैं और इस पर ये शब्द खुदे हुए हैं :

"माउण्टबैटन परिवार के प्रति
भारत से उनकी विदाई के समय

प्रेम और शुभकामनाओं के साथ और मैत्री के प्रतीक के रूपमें"

महिलाओ और सज्जनो, क्या मैं आपसे कहूँ कि अब आप माउंटबैटन परिवार के स्वास्थ्य और सौभाग्य की कामना के उपलक्ष्य में पान करें ?

राष्ट्र गीत के लिए लय

यह प्रश्न मेरे सहयोगी, गृहसचिव से पूछा गया था। लेकिन इस विषय से मेरा बहुत सम्बन्ध रहा है, इसलिए मैं ही इसका उत्तर देने की स्वतंत्रता ले रहा हूँ। मैं उन माननीय सदस्य का कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने यह प्रश्न किया है, क्योंकि इससे सरकार को यह अवसर मिलता है कि वह इस विषय में फैली हुई कुछ भ्रान्तियां दूर कर सके।

१५ अगस्त, १९४७ के तत्काल बाद, ऐसे राष्ट्र गीत का प्रश्न, जिसकी कि वादक मंडलियों और बैंड द्वारा धुन बजाई जाय, एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न हो गया। यह प्रश्न उतने ही महत्त्व का था, जितना कि राष्ट्रीय झंडे का था। हमारी रक्षा सेवाओं, हमारे दूतावासों और प्रतिनिधि मंडलों तथा अन्य संस्थाओं की दृष्टि से यह महत्त्व का प्रश्न था। स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद स्पष्टतया यह उचित नहीं था कि 'ईश्वर हमारे राजा की रक्षा करे' इस गीत की धुन फौजी बैंडों द्वारा या विदेश में बजाई जाय। हमसे बराबर यह पूछा जाता रहा कि ऐसे अवसरों पर कौन सी धुन बजाई जाय। हम कोई उत्तर नहीं दे सके, क्योंकि इस विषय में संविधान परिषद् द्वाराकोई अन्तिम निर्णय नहीं हो सका था।

न्यूयार्क में, संयुक्त राष्ट्रों की साधारण सभा के अवसर पर, सन् १९४७ में इस प्रश्न का निर्णय करना आवश्यक हो गया। एक विशेष अवसर पर, वादकमंडली द्वारा धुन बजाई जाने के लिए हमारे प्रतिनिधि-मंडल से हमारे राष्ट्रीय गीत के विषय में पूछा गया। हमारे प्रतिनिधि--मंडल के पास 'जन-गण-मन' का एक रेकार्ड, था। उन्होंने उसे वादकमंडली को दे दिया और वादकमंडली ने उसका अभ्यास किया। जब उन्होंने इसे एक बड़े समारोह के सामने बजाया तो उसको बहुत पसन्द किया गया और बहुत से राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने इस नई लय की, जो कि उन्हें विशिष्ट और गौरवपूर्णवजान पड़ी, स्वर-लिपि मांगी। बजाई गई की वादक मंडली द्वारा 'जन-गण-मन' धुन का रेकार्ड बना कर भारत भेजा गया। हमारी रक्षा सेना के बैंडों को धुन को बजाने का अभ्यास हो गया, और अवसर पड़ने पर विदेशी दूतावासों और प्रतिनिधि मंडलों द्वारा भी इसका अभ्यास होने लगा। अनेक देशों से

संविधान (व्यवस्थापिका) परिषद् में नई दिल्ली में २५ अगस्त, १९४८ को थोड़ी सूचना पर प्रस्तुत एक प्रश्न के उत्तर में वक्तव्य।

हमें इस लय पर प्रशंसा और बधाई के संदेश प्राप्त हुए, । विशेषज्ञों द्वारा हमारा राष्ट्रगीत अन्य राष्ट्रीय गीतों की अपेक्षा श्रेष्ठतर समझा गया । भारत में तथा विदेशों में, बहुत-से कुशल संगीतज्ञों ने, और बहुत से बैंडों और वादक-मंडलियों ने इसका अभ्यास किया, और कभी-कभी थोड़ा बहुत परिवर्तन भी करना पड़ा । परिणाम यह हुआ कि आल इंडिया रेडियो ने उसकी विभिन्न धुनों को एकत्र किया ।

इस लिय की आम-पसंदगी की बात अलग रखी जाय तो उस समय हमारे सामने चुनाव करने का कोई ढंग भी नहीं था, क्योंकि किसी दूसरे राष्ट्रीय गीत की धुन जिसे कि हम विदेशों में भेज सकते, हमारे लिए प्राप्य भी नहीं थी । उस समय मैंने सभी प्रान्तीय गवर्नरों को लिखा और 'जन-गण-मन या किसी और गीत को राष्ट्रीय गीत के रूप में स्वीकार करने के विषय में सम्मति मांगी । मैंने उनसे कहा कि अपने अपने प्रधान मंत्रियों से परामर्श करके मुझे उत्तर दें । मैंने यह बात उनसे बिल्कुल स्पष्ट कर दी कि अन्तिम निर्णय संविधान परिषद् द्वारा ही हो सकता है । लेकिन विदेशी दूतावासों और रक्षा-सेनाओं को निर्देश भेजने की आवश्यकता को देखते हुए एक अल्पकालिक निर्णय होना जरूरी था । इन गवर्नरों में से एक अर्थात् मध्यप्रदेश के गवर्नर को छोड़ कर सभी ने 'जन-गण-मन' को पसन्द करने की सूचना दी । इसके बाद मंत्रिमंडल ने इस विषय पर विचार किया और व इस निर्णय पर पहुँचा कि 'जन-गण-मन' की लय को राष्ट्रीय गीत के रूप में अस्थायी तौर पर उस समय तक के लिए स्वीकार किया जाए, जब तक कि संविधान परिषद् अपना अन्तिम निर्णय न दे । इसलिए इसी के अनुसार प्रान्तीय गवर्नरों के पास निर्देश भेज दिए गए । यह बहुत स्पष्ट था कि 'जन-गण-मन' की शब्दावली पूर्णतया उपयुक्त नहीं है और कुछ परिवर्तन करने पड़ेंगे । जो बात महत्त्व की थी वह यह थी कि किस लय की, शब्दावली की नहीं, बैंडों और वादक-मंडलियों द्वारा धुन बजाई जाय । बाद में पश्चिमी बंगाल के नए प्रधान मंत्री ने सूचित किया कि उनकी और उनकी सरकार की पसन्द 'वन्दे मातरम्' के पक्ष में है । इस समय यह स्थिति है । यह दुर्भाग्य की बात है कि 'वन्दे मातरम्' और 'जन-गण-मन' के बीच एक तरह का विवाद खड़ा हो गया है । 'वन्दे मातरम्' स्पष्ट और निर्विवाद रूप से भारत का प्रधान राष्ट्रीय गीत है, और इसकी महान ऐतिहासिक परम्परा है, और यह हमारे स्वतंत्रता के इतिहास के साथ घनिष्ठ रूप से संबद्ध है । वह स्थान इसे सदा प्राप्त रहेगा और कोई दूसरा गीत उसकी जगह नहीं ले सकता । यह उस युद्ध की भावनाओं और तीव्रता का प्रतिनिधित्व करता है, लेकिन कदाचित् उसकी परिणति का नहीं । राष्ट्रीय गीत की लय के सम्बन्ध में यह अनुभव किया गया कि शब्दावली से अधिक लय का महत्त्व है, और यह लय ऐसी होनी चाहिए कि यह भारतीय संगीत प्रतिभा का प्रतिनिधित्व करे और कुछ हद तक पाश्चात्य शैली के भी अनुकूल हो, जिसमें कि वादक-मंडलियों

और बैंडों द्वारा भी इसकी धुन बजाई जा सके। राष्ट्रीय गीत का वास्तविक महत्त्व कदाचित् विदेशों में अपने देश की अपेक्षा अधिक है। पिछले अनुभव ने हमें बताया है कि 'जन-गण-मन' की लय को विदेशों में बहुत पसन्द किया गया और उसकी वहां बड़ी प्रशंसा हुई है। वह अपनी बड़ी विषशेता रखता है और उसमें एक विशेष जीवन और गति है। कुछ लोगों ने यह समझा कि 'वन्दे मातरम्' की लय आकर्षक होते हुए भी और उसकी ऐतिहासिक महत्ता होते हुए भी वह सहज में विदेशों में वादक-मंडलियों के उपयुक्त नहीं और उसमें पर्याप्त गति नहीं। इसलिए यह जान पड़ा कि जहां भारत में 'वन्दे मातरम्' सर्वोच्च राष्ट्रीय गीत रहेगा, राष्ट्रीय गीत की लय 'जन-गण-मन' वाली हो और 'जन-गण-मन' की शब्दावली में वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार थोड़ा-सा परिवर्तन कर दिया जाय।

इस प्रश्न पर संविधान परिषद् में विचार किया जायगा, और वह इस विषय में जो निर्णय करना चाहेगी उसे करने के लिए वह स्वतंत्र होगी। वह एक बिल्कुल नया गीत या लय भी अगर वह प्राप्य हो, चुन सकती है।

हमारी लम्बी यात्रा का अन्तिम चरण

श्रीमान् उप-सभापति महोदय, हम अपनी लम्बी यात्रा के अन्तिम चरण पर पहुँच गए हैं। लगभग दो वर्ष हुए, हम इस भवन में मिले और यह मेरा बड़ा सौभाग्य था कि मैंने उस महत्त्वपूर्ण अवसर पर वह प्रस्ताव प्रस्तुत किया जो कि ध्येय सम्बन्धी प्रस्ताव के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह उस प्रस्ताव का किंचित् गद्यमय विवरण है, क्योंकि उस प्रस्ताव में केवल ध्येयों से कुछ अधिक बात थी, यद्यपि किसी राष्ट्र के जीवन में ध्येय बहुत महत्त्व रखता है। इसने उस समय भारतीय जनता की जो भावना थी उसे जहाँ तक छापे के शब्दों द्वारा ऐसा करना संभव था, समाविष्ट करने का प्रयत्न किया। किसी राष्ट्र या जनता की भावना-को एक ऊँचे स्तर पर निरन्तर बनाए रखना कठिन होता है, और मैं नहीं कह सकता कि हम इसमें सफल हुए हैं। फिर भी, मैं आशा करता हूँ कि हम उसी भावना से इस संविधान के बनाने के काम में लगेंगे, और उसी भावना से हम इसके विस्तार की बातों को उठायेंगे और उस ध्येय सम्बन्धी प्रस्ताव को मापदंड मानते हुए इस संविधान की प्रत्येक धारा और वाक्यांश पर विचार करेंगे। हो सकता है कि हम उस प्रस्ताव में कुछ सुधार कर सकें, और अगर ऐसा संभव हो तो हमें अवश्य करना चाहिए। लेकिन मैं समझता हूँ उस प्रस्ताव ने, अपने कुछ वाक्यांशों में, यह निर्धारित कर दिया है कि इस संविधान का मूल और बुनियादी आधार क्या होना चाहिए। कोई भी संविधान अन्ततः सरकारों की प्रणालियों और जनता के जीवन का एक प्रकार का कानूनी स्वरूप है। यदि कोई संविधान जनता के जीवन,ध्येयों और आकांक्षाओं से सम्पर्क नहीं रख पाता तो वह प्रायः खोखला हो जाता है, और यदि वह उन ध्येयों से विचलित हो जाता है, तो वह जनता को नीचे खींच कर ले आता है। उसे अपने उद्देश्य से कुछ ऊँचा होना चाहिए, जिससे कि जनता की दृष्टि और उसके विचार एक विशिष्ट ऊँचे चिन्ह पर केंद्रित हों। मैं समझता हूँ कि ध्येय सम्बन्धी प्रस्ताव इस दृष्टि से सफल रहा। तब से, एक राष्ट्र की आकांक्षाओं और इच्छाओं को साकार करने के प्रसंग में, अनेक वाद-विवादों में, जो अनिवार्यतः कुछ ऐसे विषयों पर, अपेक्षाकृत छोटे और महत्त्वहीन हैं, आवेश जागृत हुए हैं। यह नहीं कि वे विषय बिल्कुल महत्त्वहीन हैं क्योंकि एक राष्ट्र के जीवन में प्रत्येक महत्त्व बात रखती है,

---

माननीय डा० बी० आर० अम्बेदकर के प्रस्ताव पर कि संविधान का मसविदा, जिस रूप में ;वह ड्राफ्टिंग कमेटी द्वारा प्रस्तुत हुआ है, विचार के लिए उठाया जाय, संविधान परिषद, नई दिल्ली में, ८ नवम्बर, १९४८ को दिया गया भाषण।

फिर भी अपेक्षाकृत महत्त्व का प्रश्न अर्थात् यह प्रश्न रह जाता है कि किसका प्रथम महत्त्व है, और यह प्रश्न भी है कि कौन-सी बात पहले आती है और किसे बाद में आना चाहिए। आखिरकार, यह हो सकता है कि सत्य विविध हो, लेकिन यह जानना महत्त्व की बात है कि प्रथम सत्य क्या है। घट- नाओं के किसी खास प्रसंग में यह जानना महत्त्व रखता है कि पहली बात, जिसे कि किया जाय, जिस पर कि विचार किया जाय, और जिसे अंकित किया जाय, क्या है? किसी राष्ट्र या जनता की इस बात से परख होती है कि वह प्रथम और द्वितीय महत्त्व की वस्तुओं में भेद कर सकती है या नहीं। अगर हम द्वितीय महत्त्व की वस्तुओं को पहले रखते हैं, तो अनिवार्य रूप से सबसे अधिक महत्त्व की वस्तुओं की हानि होती है और उन पर आवरण पड़ जाता है।

अब, महोदय, आपकी आज्ञा से संविधान के मसविदे पर विवाद की प्रारम्भिक अवस्था में भाग लेने का मैंने साहस किया है, लेकिन मेरा इरादा उसके किसी खास भाग के विषय में, पक्ष में अथवा विपक्ष में, कुछ कहने का नहीं है, क्योंकि इस तरह की बहुत सी बातें कही जा चुकी हैं और निश्चय ही आगे कही जाएँगी। लेकिन इस बात को विचार में रखते हुए, मैं शायद इस विवाद में कुछ उपयोगी भाग इस रूप में ले सकता हूँ कि कुछ मौलिक बातों पर फिर ध्यान दिलाऊँ। मैं समझता हूँ कि मैं ऐसा और भी अधिक कर सकता हूँ, क्योंकि पिछले दिनों और सप्ताहों में मैं भारत से बाहर रह चुका हूँ, मैंने विदेशों की यात्रा की है, दूसरे देशों के प्रसिद्ध लोगों और राजनीतिज्ञों से मिला हूँ, और अपने इस प्रिय देश को एक फासले से देखने की सुविधा मुझे रही है। यह कुछ सुविधा अवश्य है। यह सही है कि जो लोग दूर से देखते हैं वे उन बहुत-सी चीजों को नहीं देख सकते जो कि इस देश में मौजूद हैं। लेकिन यह भी उतना ही सच है कि जो लोग इस देश में हैं और अपनी अनेक कठिनाइयों और समस्याओं से हर समय घिरे रहते हैं, कभी-कभी पूरा चित्र नहीं देख पाते। हमें दोनों ही बातें करनी हैं, अपनी समस्याओं के विस्तार की बारी- कियों को समझने के लिए उन्हें देखना है, और उन्हें एक दृष्टि-परम्परा में भी देखना है, जिससे उनका वह चित्र समग्र रूप में हमारी दृष्टि में रह सके।

तेजी से बदलते हुए इस युग में जिससे कि हम गुजरे हैं, यह और भी महत्व की बात है। हम लोग इस परिवर्तन काल में उसकी विजयों, कीर्तियों, दुखों और तीक्ष्णताओं के बीच रहे हैं, और हम पर इन सब बातों का प्रभाव पड़ा है। हम स्वयं बदल रहे हैं, पर हम अपने को और अपने देश को बदलता हुआ उतना जान नहीं पाते। कुछ समय के लिये इस उथल-पुथल से बाहर रह कर दूर से देखना और कुछ हद तक दूसरे लोगों की दृष्टि से देखना पर्याप्त रूप से सहायक हो सकता है। मुझे ऐसा अवसर मिला है। ऐसा सुअवसर प्राप्त करने की मुझे प्रसन्नता

है, क्योंकि एक समय के लिए मैं जिम्मेदारी के उस भारी बोझ से मुक्त रहा, जिसे कि हम सभी लोग ढो रहे हैं, और जिसे कुछ अंशों में उन लोगों को जिन पर शासन के चलाने का काम है और भी अधिक ढोना पड़ता है। कुछ समय के लिये मैं उन तात्कालिक जिम्मेदारियों से मुक्त था और अधिक स्वतंत्र मन से उस चित्र को देख सकता था। मैंने उस दूरी से भारत के उदय होते हुए नक्षत्र को क्षितिज से बहुत ऊपर, और जो कुछ हुआ है उसके बावजूद संसार के बहुत से देशों पर प्रकाश डालते देखा—उन देशों पर जो उसे आशापूर्वक देखते थे, जो समझते थे कि इस नए स्वतंत्र भारत से विविध शक्तियाँ आएँगी जो एशिया को और कुछ हद तक संसार को ठीक मार्ग पर लाने में सहायता करेंगी, तथा जो अन्य इसी प्रकार की दूसरी जगहों की शक्तियों से सहयोग करेंगी, क्योंकि एशिया का यह महाद्वीप और यूरोप और सारा संसार बुरी अवस्था में है, और उसे ऐसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जो प्रायः अजेय हैं। कभी-कभी आदमी को ऐसा अनुभव होता है कि हम सभी किसी ऐसे भयानक यूनानी दुःखान्त नाटक के अभिनेता हैं, जो अपनी विनाशकारी चरम सीमा की ओर अनिवार्य रूप से चला जा रहा है। लेकिन जब मैंने इस चित्र को फिर दूर से और यहां से देखा तो मुझे न केवल भारत के कारण बल्कि और बातों के कारण भी जिन्हें मैंने देखा इस बात की उम्मीद हुई कि वह दुःखान्त घटना जो कि अनिवार्य जान पड़ती थी आवश्यक रूप से अनिवार्य नहीं है, और यह कि बहुत-सी और शक्तियां काम कर रहीं हैं और संसार में सद्भावना रखनेवाले असंख्य नर-नारी हैं, जो इस विपत्ति और दुःखान्त घटना को होने से रोकना चाहते हैं और इसकी पूरी संभावना है कि इसे रोकने में सफल होंगे।

लेकिन भारत की बात फिर लीजिए जब मैंने इस सभा के सामने—पूरा एक वर्ष और ग्यारह महीने हुए—यह ध्येय सम्बन्धी प्रस्ताव रखा, तब से हम लोग अद्भुत परिवर्तनों और अवस्थाओं से होकर गुजरे हैं। हम उस समय की अपेक्षा आज कार्य करने के लिए अधिक स्वतंत्र हैं। अब हम एक पूर्ण सत्ताधारी स्वतंत्र राष्ट्र की हैसियत से कार्य कर रहे हैं। लेकिन हमने इस काल में बहुत कुछ दुःख और तीव्र वेदना काभी अनुभव किया है, और उसका हम सब पर गहरा प्रभाव पड़ा है। जिस देश के लिए हम संविधान बनाने जा रहे थे, उसके दो टुकड़े हो गए। उसके बाद जो कुछ हुआ वह हमारे मन में ताजा है और आनेवाली एक लम्बी अवधि तक अपनी पूर्ण भयानकता के साथ ताजा बना रहेगा। यह सब हुआ, और फिर भी, इन सब बातों के बावजूद, भारत की शक्ति और स्वतंत्रता में वृद्धि हुई है। निस्संदेह भारत की यह वृद्धि, भारत का एक स्वतंत्र देश के रूप में यह आविर्भाव, इस पीढ़ी की महत्त्वपूर्ण घटनाओं में हमारे, लिए है।

इस देश में रहनेवाले हमारे बहुसंख्यक भाई-बहनों के लिए, एशिया के लिये, और संसार के लिये भी यह महत्त्वपूर्ण है। संसार को यह अनुभव होने लगा है—मुख्यतया मैं ऐसा समझता हूँ और इसकी मुझे प्रसन्नता है—कि एशिया और संसार में भारत जो पार्ट अदा करेगा वह कल्याण लाने वाला होगा। हो सकता है कि इस विषय में कुछ भय भी उपजता हो, क्योंकि भारत कुछ ऐसे काम भी कर सकता है—जिन्हें कुछ लोग, और कुछ देश, जिनके अलग ही हित हैं विशेष पसन्द न करें। यह सब हो रहा है, लेकिन मुख्य बात यह महत्त्वपूर्ण घटना है कि भारत इतने लम्बे काल तक पराधीन रह कर, एक आजाद, पूर्णसत्ताधारी जन सत्तात्मक स्वतंत्र देश के रूप में आगे आया है, और यह ऐसी घटना है जो इतिहास में परिवर्तन लानेवाली है और ला रही है। कहाँ तक यह इतिहास को बदल सकेगी, यह हम पर, इस वर्तमान सभा पर, और भविष्य में आनेवाली ऐसी और सभाओं पर जो कि भारतीय जनता की संगठित इच्छा का प्रतिनिधित्व करेंगी, निर्भर करता है।

यह एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। स्वतंत्रता जिम्मेदारी ले आती है। वास्तव में बिना जिम्मेदारी के स्वतंत्रता नाम की कोई चीज हो ही नहीं सकती। गैर-जिम्मेदारी का अर्थ है—स्वतंत्रता का अभाव। इसलिए स्वतंत्रता के साथ जो जिम्मेदारी आई है उसके महान् बोझ का—स्वतंत्रता के संयम का और स्वतंत्रता के उपभोग के संगठित तरीके का—हमें बोध होना चाहिए। इतिहास, परम्परा, साधन, भौगोलिक स्थिति, महान् प्रच्छन्न शक्ति आदि अनेक कारणों से, भारत अनिवार्य रूप से संसार के मामलों में महत्त्वपूर्ण भाग लेने योग्य हुआ है। इस अथवा उस चीज को चुनने का सवाल नहीं है। भारत जैसा है, और स्वतंत्र भारत को जैसा होना चाहिए, उसका यह अनिवार्य परिणाम है। और चूंकि संसार के मामलों में हमें यह भाग अनिवार्य रूप से लेना है, हमारे ऊपर एक दूसरी और भी बड़ी जिम्मेदारी आती है। कभी कभी अपनी सारी आशावादिता और उम्मीदों और अपने राष्ट्र के प्रति विश्वास के बावजूद, हमारे ऊपर जो जिम्मेदारियाँ डाली जा रही हैं और जिनसे हम बच नहीं सकते, उनसे मैं सहम जाता हूँ। अगर हम अपने संकीर्ण वाद-विवादों में फँसे तो हम इनको भूल सकते हैं। पर हम चाहे भूलें या न भूलें जिम्मेदारियाँ तो बनी ही रहेंगी। अगर हम अपनी जिम्मेदारियों को भूलते हैं तो उस हद तक हम विफल होते हैं। इसलिए मैं इस सभा से अनुरोध करूँगा कि भारत पर, और चूंकि इस तथा अन्य क्षेत्रों में हम भारत का प्रतिनिधित्व करते हैं, इसलिए इस सभा के हम सब लोगों पर, जो बड़ी जिम्मेदारियाँ आ पड़ी हैं उन पर हम विचार करें और उन्हें ध्यान में रखते हुए संविधान के निर्माण में मिल-जुलकर लगें। संसार की निगाहें हम पर हैं और संसार के एक बड़े हिस्से की आशाएँ और आकांक्षाएँ भी हमसे लगी हुई हैं। हम छोटापन दिखाने

की धृष्टता नहीं कर सकते। अगर हम ऐसा करते हैं तो हम अपने देश की और अपने चारों ओर के देशों की आशाओं और आकांक्षाओं की अवहेलना करते हैं। मैं चाहूँगा कि इस संविधान के विषय में यह सभा इस रूप में विचार करे: सबसे पहले तो ध्येय सम्बन्धी प्रस्ताव को अपने सामने रखे और यह देखे कि हम कहां तक उसके अनुसार कार्य कर सकते हैं और किस प्रकार सके अनुसार एक ऐसे स्वतंत्र पूर्णसत्तात्मक गणराज्य का निर्माण कर सकते हैं, जिसके अन्तर्गत पूर्ण सत्तात्मक स्वतंत्र भारत की समस्त शक्ति और अधिकार, उसके अंगभूत भाग और शासन के अवयव जनता से निष्पन्न हों और जिसके अन्तर्गत भारत की समस्त जनता को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय की, पद की, अवसर की और विधान के समक्ष समानता, कानून और शिष्टाचार का ध्यान रखते हुए विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, पूजा, धंधा, सम्पर्क और कार्य की स्वतंत्रता प्राप्त हो, और यह प्राचीन भूमि संसार में अपना न्याय-संगत और सम्मानित स्थान प्राप्त करे और लोक शान्ति की अभिवृद्धि और मानव मात्र के कल्याण के लिए अपना पूरा और स्वेच्छापूर्ण योगदान करे।

मैंने यह अन्तिम उपवाक्य विशेष रूप से पढ़ा है, क्योंकि यह हमें संसार के प्रति भारत के कर्तव्य का स्मरण दिलाता है। मैं चाहूँगा कि जब यह सभा विविध विवाद-ग्रस्त बातों पर विचार करे—विवाद-ग्रस्त विषय आयेंगे ही और उन्हें आना चाहिए, क्योंकि हम एक जीवित और प्राणशक्ति रखनेवाले राष्ट्र हैं, और यह ठीक है कि लोग अपने अपने विचार रखें—तो यह अनुभव करे कि जहाँ निर्णय करते समय विभिन्न विचारों का होना उचित है, वहाँ औचित्य इसमें भी है कि निर्णय को कार्यान्वित करते समय मिल जुल कर काम किया जाय। अनेक समस्याएँ हैं जिनमें कुछ बड़े महत्त्व की हैं जिनके विषय में बहुत कम विवाद है। उन्हें सर्वसम्मति से स्वीकार कर लेना चाहिये। इनके अलावा कुछ और समस्याएँ हैं जो अपेक्षाकृत कम महत्त्व की हैं। उन पर हम अधिक समय, उत्साह और आवेश व्यय कर सकते हैं। यह हो सकता है कि जिस भावना से हमें समझौते पर पहुँचना चाहिए उस भावना से हम समझौते पर न पहुँचें। मैं केवल एक या दो विषयों की चर्चा करूँगा। आज देश में भाषाओं के आधार पर प्रान्तों के निर्माण की बात चल रही है और इस सभा की और देश की क्या भाषा हो यह विषय भी है। मैं इन प्रश्नों के सम्बन्ध में अधिक नहीं कहना चाहता, सिवाय इसके कि बहुत समय से मुझे यह अनिवार्य-सा लग रहा है कि भारत में प्रान्तों का इस प्रकार पुनर्गठन हो, कि वह जनता की सांस्कृतिक, भौगोलिक और आर्थिक स्थितियों और उनकी इच्छाओं के अधिक अनुकूल हो। इसके प्रति हम बहुत समय से प्रतिज्ञाबद्ध हैं। मैं समझता हूँ कि भाषा पर आधारित प्रान्त मात्र कहना पर्याप्त रूप में उचित नहीं। भाषा एक बड़ा

विचारणीय कारण अवश्य है, लेकिन और भी महत्त्व की विचारणीय बातें हैं। इसलिए इससे पूर्व कि जो कुछ हमारे यहाँ है उसे आप तोड़ें, और तब एक नव-निर्माण में लगें, आपको सम्पूर्ण चित्र पर विचार कर लेना चाहिए । जो मैं इस सभा के सामने रखना चाहूँगा वह यह है कि यद्यपि हमारे भविष्य के जीवन और शासन की दृष्टि से यही प्रश्न महत्त्व का है, मैं इसको इतने प्रमुख महत्त्व का नहीं समझता कि इस पर यहां और आज ही तत्काल निर्णय किया जाय। यह विशेष रूप से ऐसा प्रश्न है जिसपर कि सद्भावना और शान्ति के वातावरण में और विषय के विविध पक्षों पर पाण्डित्यपूर्ण विवाद के अनन्तर निश्चय किया जा सकता है। मुझे ज्ञात हुआ है कि दुर्भाग्य से इसने बड़ी गर्मी और उत्तेजना उत्पन्न कर दी है, और जब गर्मी और उत्तेजना पैदा हो जाती है तो अक्ल मारी जाती है। इसलिए मैं इस सभा से अनुरोध करूँगा कि वह इन विषयों पर जब उचित समझे विचार करे और यह ख्याल रखे कि ये विषय जल्दी में और जब आवेश जागृत हों, निर्णीत न किये जायें बल्कि जब उनके लिए समय परिपक्व हो और उचित क्षण आ जाय तब उन पर विचार होना चाहिए ।

यही तर्क, अगर मैं कह सकता हूँ, तो भाषा के प्रश्न पर भी लागू होता है। यह एक जाहिर-सी बात है और महत्त्व की बात है कि किसी देश का, विशेषकर जबकि वह एक आजाद और स्वतंत्र देश हो, काम-काज उस देश की भाषा में ही होना चाहिए। दुर्भाग्य से यही बात कि मैं इस सभा में एक विदेशी भाषा में बोल रहा हूँ और हमारे बहुत-से सहयोगियों को इस सभा में एक विदेशी भाषा में बोलना पड़ता है, हमें यह बताती है कि किसी चीज़ की कमी है। कमी है, इसे हमें मान लेना चाहिए। हम इस कमी को निस्सन्देह दूर कर लेंगे। लेकिन अगर हम एक परिवर्तन, तात्कालिक परिवर्तन, पर ज़ोर देने की कोशिश में बहुत से विवादों में पड़ जाते हैं, और सम्भवतः सारे संविधान में भी विलम्ब डालते हैं, तो मैं इस सभा से निवेदन करूँगा कि यह एक बड़ी बुद्धिमानी की बात नहीं है। भाषा, व्यक्ति और राष्ट्र के जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है और रही है, और चूंकि यह महत्त्वपूर्ण है, हमें इस पर पूरा-पूरा विचार और ध्यान देना चाहिए। महत्त्वपूर्ण होने के कारण यह आवश्यक विषय भी है, अतएव इस मामले में जल्दी करने से हमारा काम बिगड़ सकता है। इसमें कुछ विरोधाभास है। क्योंकि अगर हम एक आवश्यक विषय में, हो सकता है बहुमत से, देश के कुछ भागों के विरोधी अल्पसंख्यकों पर, या इस सभा में ही, कुछ निर्णय लादें, तो वास्तव में हम जो प्राप्त करने चले हैं उसमें सफल नहीं होते। इस देश में शक्तिशाली प्रभाव काम कर रहे हैं, जो कि अनिवार्य रूप से अँग्रेजी भाषा के स्थान पर एक भारतीय भाषा को या जहाँ तक देश के भिन्न-भिन्न भागों का सम्बन्ध है, भिन्न-भिन्न भारतीय भाषाओं को बिठावेंगे, लेकिन एक अखिल भारतीय भाषा सदा रहेगी। उस अखिल भारतीय

भाषा के निर्माण में भी शक्तिशाली प्रभाव काम कर रहे हैं। भाषा सदा जनता से वृद्धि पाती है। यह बहुत कम होता है कि वह ऊपर से लादी जा सके। भाषा के किसी रूप को लोगों पर हठात् लादने के प्रयत्न का बराबर ज़ोरदार विरोध हुआ है, और जैसा उसके समर्थक चाहते रहे हैं उसका ठीक विपरीत ही परिणाम निकला है। मैं इस सभा से इस बात पर विचार करने का और यदि वह मुझ से सहमत हो तो यह अनुभव करने का अनुरोध करूँगा कि एक स्वाभाविक अखिल-भारतीय भाषा के विकास का सबसे पक्का ढंग यह है कि प्रस्ताव स्वीकृत न किये जायें और कानून न बनाये जायें बल्कि और प्रकार से उस ध्येय की सिद्धि के लिए काम किया जाय। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, अखिल भारतीय भाषा क्या होनी चाहिए, इसकी मेरी एक विशेष कल्पना है। दूसरे लोगों की कल्पना मुझसे भिन्न हो सकती है। मैं अपनी कल्पना को सभा या इस देश पर नहीं लाद सकता, ठीक उसी तरह, जिस तरह कि कोई दूसरा व्यक्ति अपनी कल्पना, जब तक कि देश उसे स्वीकार न करे देश पर नहीं लाद सकता। मैं तो अपनी या किसी की कल्पना को लादने के प्रयत्न को बचाना पसन्द करूँगा, और उसके बदले इस ध्येय के लिए सहयोग और मैत्रीभाव से काम करना चाहूँगा और यह देखना चाहूँगा कि जब हम संविधान के विषय में और बड़ी-बड़ी बातें तै कर लें, जब हम और भी अधिक मात्रा में सुदृढ़ता प्राप्त कर लें, तब इन अलग प्रश्नों को उठाया जाय और उन पर एक अधिक अच्छे वातावरण में निर्णय किया जाय।

इस सभा को स्मरण होगा कि जब मैं ध्येय सम्बन्धी यह प्रस्ताव सभा के सामने लाया था, तब मैंने इस बात की चर्चा की थी कि हम इसकी मांग कर रहे हैं, बल्कि यह निर्द्धारित कर रहे हैं कि संविधान एक स्वतंत्र पूर्णसत्ताधारी गणराज्य के लिए बने। मैंने उस समय कहा था और बाद में भी कहा है कि हमारे गणराज्य बनने का विषय एक ऐसा विषय है जो कि निश्चय ही पूर्णतया हमारे निर्णय करने का है। हमारा और देशों से, विशेषकर ब्रिटेन या राष्ट्रमंडल से जो कि ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के नाम से प्रसिद्ध था, क्या सम्बन्ध हो, उससे इस प्रश्न का लगाव बिल्कुल नहीं या नगण्य है। वह एक प्रश्न है, जिसे इस सभा को ही निर्णय करना है, किसी और को नहीं, और संविधान कैसा बनना है, इसे स्वतंत्र रूप से निर्णय करना है।

मैं इस सभा को यह सूचित करना चाहता हूँ कि हाल के हफ्तों में, जब कि मैं ब्रिटेन में था, जब कभी यह या इससे मिला-जुला कोई प्रश्न आपस के वाद-विवाद में उठा, तो उस पर कोई खुला विवाद या निर्णय नहीं हो सका क्योंकि कामनवेल्थ कांफ्रेंस ने, जिसमें कि मैंने भाग लिया, अपने अधिवेशनों में इस पर बिल्कुल ही विचार नहीं किया। अनिवार्यतः ये आपस के विवाद थे, क्योंकि यह विषय

न केवल हमारे लिए बड़े महत्व का था, बल्कि और देशों के लिए भी, कि अगर हम ब्रिटेन से कोई सम्बन्ध रखें तो वह क्या हो? हमारा क्या सम्पर्क, क्या कड़ियां इन देशों से हों? जो पहली बात मैं इन विवादों में बराबर कहता था वह यह थी कि मैं व्यक्तिगत रूप से--यद्यपि मैं प्रधान मंत्री के ऊँचे पद से सम्मानित था—किसी प्रकार या किसी अर्थ में देश को या उस सरकार को, जिसका प्रतिनिधित्व करने का मुझे सम्मान प्राप्त था, बांध नहीं सकता। यह मूलतया ऐसा विषय था जिसका निर्णय भारत की संविधान परिषद ही कर सकती थी। यह बात मैंने बिल्कुल स्पष्ट कर दी थी। यह स्पष्ट करने के बाद मैंने उनका ध्यान संविधान परिषद के ध्येय सम्बन्धी प्रस्ताव की ओर दिलाया। मैंने कहा कि संविधान परिषद इस प्रस्ताव में, जिस तरह कि और बातों में, परिवर्तन करने के लिए स्वतंत्र है, क्योंकि वह इस बात में तथा अन्य बातों में सर्वसत्ताधारी है। यही निर्देश संविधान परिषद ने अपने संविधान का मसविदा तैयार करने वाली समिति को दिया था, और जब तक यह निर्देश बना रहेगा—और मैंने यह भी कहा कि जहां तक मैं जानता हूँ यह बना रहेगा—यह संविधान ध्येय सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुसार ही होगा। यह स्पष्ट करने के बाद, मैंने कहा कि हमारी तरफ से अकसर यह कहा गया है कि हमारी इच्छा और देशों के साथ, ब्रिटेन और कामनवेल्थ के साथ, मैत्रीपूर्ण सम्पर्क रखने की है। इस प्रसंग में, ऐसा किस तरह होगा या हो, यह विषय ध्यानपूर्वक विचार करने और अन्तिम निर्णय करने का है और स्वभावतः जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, इसका निर्णय संविधान परिषद द्वारा होगा और जहां तक ब्रिटेन तथा कामनवेल्थ के अन्य सदस्यों का सम्बन्ध है, उनकी विविध सरकारों या जनता द्वारा होगा। इस सम्बन्ध में मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ, क्योंकि इस अधिवेशन में आगे चलकर यह विषय निःसन्देह इस सभा के सामने अधिक निश्चित रूप में आयेगा। लेकिन जिस रूप में भी वह अब या बाद में उठे, जिस बात पर मैं जोर देना चाहूँगा वह यह है, कि जिस संविधान पर हम विचार कर रहे हैं उससे यह बात, अलग और एक अर्थ में स्वतंत्र है। हम एक स्वतंत्र पूर्णसत्ताधारी जनसत्तात्मक भारत के लिए, अगर आप पसन्द करें तो गणराज्य के लिए, संविधान स्वीकार कर लें, और दूसरे प्रश्न पर जब आप उचित समझें, बाद में विचार किया जा सकता है। यह किसी भी अर्थ में हमारे संविधान को बाँधना या सीमित करना नहीं है, क्योंकि यह संविधान भारत की जनता के प्रतिनिधियों द्वारा भारत के भविष्य के शासन के विषय में उसकी जनता की स्वतंत्र इच्छा का प्रतिनिधित्व करता है।

मैंने जो पहले कहा, है क्या मैं उसे फिर दुहराने की अनुमति मांग सकता हूँ? भाग्य ने इस देश पर एक निश्चित कर्तव्य डाल रखा है। हम लोगों में जो यहां उपस्थित हैं कोई भाग्य-निर्दिष्ट व्यक्ति हैं या नहीं, यह मैं नहीं जानता। यह एक बड़ा शब्द है, जो कि साधारण मनुष्यों के लिए उपयुक्त नहीं। लेकिन हम

भाग्य द्वारा निर्दिष्ट व्यक्ति हों या न हों, भारत एक भाग्य-निर्दिष्ट देश है। और जहां तक हम इस विशाल देश का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसके सामने कि यह महत् भविष्य है, हमें भी अपनी समस्याओं को और भविष्य की और इस संसार तथा एशिया को परम्परा में देखते हुए उस महान् जिम्मेदारी को, जो कि इस स्वतंत्रता ने और हमारे देश के बड़े होनहार ने हम पर डाली है, कभी न भूलते हुए अपने को छोटे-छोटे विवादों और बहसों में, जो कि उपयोगी हो सकती हैं, लेकिन जो इस प्रसंग में असंगत या बेसुरी हैं, न खोते हुए भाग्य-निर्दिष्ट व्यक्तियों की तरह काम करना चाहिये। असंख्य मानव और अगणित आंखें हमारी ओर देख रही हैं। हमें उन्हें याद रखना है। अपने ही करोड़ों लोग हमारी ओर आशापूर्वक देख रहे हैं और करोड़ों अन्य लोगों की भी आशापूर्ण दृष्टि हम पर लग रही है। स्मरण रखिए कि जहाँ हम इस संविधान को जितना ठोस और स्थायी बनाया जा सकता है, बना सकते हैं, वहां यह भी ध्यान में रखना होगा कि संविधानों में कोई स्थायित्व नहीं होता। प्रत्येक संविधान में लचीलापन होना चाहिए। अगर आप किसी वस्तु को कठोर और स्थायी बना देते हैं तो आप राष्ट्र की वृद्धि को, एक जीवित प्राणवान् सुगठित जनता की वृद्धि को रोकते हैं। इसलिए इसे लचीला होना ही चाहिए। जब आप इस संविधान को स्वीकार करें, तो कुछ वर्षों की अवधि निर्दिष्ट कर दें—वह अवधि जो भी हो—जिसमें संविधान में परिवर्तन सहज में किए जा सकें। और मैं समझता हूँ यह प्रस्ताव आ भी रहा है। कुछ भी हो, कई एक कारणों से यह बड़ा आवश्यक प्रतिबन्ध है। एक कारण तो यह है कि यद्यपि हम लोग, जो कि इस सभा में एकत्र हैं, निश्चय ही भारत की जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं; फिर भी मैं समझता हूँ यह कहा जा सकता है और सचाई से कहा जा सकता है कि जब एक नई सभा, उसे आप चाहें जो नाम दें, इस संविधान के अनुसार चुनी जायगी और भारत के प्रत्येक वयस्क को—वह स्त्री हो या पुरुष—मत देने का अधिकार होगा, तब जिस रूप में भी सभा का निर्माण होगा वह निश्चय ही जनता के हरएक वर्ग की पूर्ण प्रतिनिधि सभा होगी। इस संविधान के अन्तर्गत उस सभा को सब कुछ करने का अधिकार होगा। और यह उचित ही है कि इस प्रकार चुनी हुई सभा को, जो परिवर्तन वह करना चाहे, कर सकने की सुगमता हो। लेकिन, हर हालत में, हम यह नहीं चाहते, जैसा कि कुछ और बड़े देशों ने किया है, कि हम संविधान को इतना कड़ा बना दें कि उसे परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल न बनाया जा सके। विशेषकर जबकि आज संसार आन्दोलित है और हम एक तेज गति वाले परिवर्तन-काल से होकर गुजर रहे हैं, तो हो सकता है कि हम आज जो भी करें, वह कल की परिस्थितियों में उपयोगी न रह जाय। इसलिए जहाँ हम ऐसा संविधान तैयार करें जो कि पुष्ट हो और यथासम्भव बुनियादी हो, वहां उसे लचीला भी होना चाहिए, और एक अवधि तक हमें ऐसी स्थिति में रहना चाहिए कि हम उसे अपेक्षाकृत सुगमता से बदल सकें

क्या मैं देश की कुछ प्रवृत्तियों के विषय में, जिनका सम्बन्ध आज की परिस्थितियों में अलग-अलग अस्तित्व या विशेष सुविधाओं की बातों से है, फिर कुछ शब्द कहूँ ? इसी ध्येय-सम्बन्धी प्रस्ताव ने अल्पसंख्यकों की, आदिवासी इलाकों की, दलित और अन्य पिछड़े वर्गों की पर्याप्त रक्षा के लिए उपबंध कर दिए हैं। ऐसा निस्संदेह किया जाना चाहिए और यह बहुसंख्यकों का कर्तव्य और दायित्व है कि ऐसा किया जाय, और वे उन सभी अल्पसंख्यकों का, जिनके मन में अविश्वास और भय हो, विश्वास प्राप्त करें। यह उचित और महत्वपूर्ण है कि हम भारत के पिछड़े वर्गों का स्तर ऊँचा करें और उन्हें औरों के बराबर ले आवें। लेकिन यह उचित न होगा कि ऐसा करने के प्रयत्न में हम और रुकावटें खड़ी कर दें, या मौजूदा रुकावटों को ही कायम रखें, क्योंकि हमारा अन्तिम उद्देश्य पार्थक्य नहीं है, बल्कि एक सुघटित राष्ट्र का निर्माण है। यह आवश्यक नहीं कि इस राष्ट्र में एकरूपता हो, क्योंकि हमारे यहां एक विभिन्नतापूर्ण संस्कृति है, और देश के विभिन्न भागों के लोगों के रहन-सहन के ढंग, आदतें और सांस्कृतिक परम्पराएँ भिन्न हैं। इसके विषय में मुझे कहना नहीं है। अन्ततः आधुनिक संसार में जो प्रचलित संस्कृति है उसी में दूसरों को प्रभावित करने की दृढ़ प्रवृत्ति है। लेकिन मैं समझता हूँ कि भारत का यही गौरव है कि उसने दो वस्तुओं को इस तरह एक साथ चालू रक्खा है। अर्थात् एक अपार विविधता को और साथ ही उस विविधता में एकता को। दोनों ही का रहना जरूरी है, क्योंकि यदि केवल विविधता है तो उसके मानी होंगे पार्थक्य और छिन्न-भिन्नता। अगर किसी प्रकार की आरोपित समानता हम ले आते हैं तो वह एक जीवित, सुसंगठित शरीर को निर्जीव-सा बना देती है। इस लिए जहां हमारा यह निश्चित कर्तव्य है कि हम हर एक अल्पसंख्यक वर्ग को अवसर दें और हर एक पिछड़े वर्ग को उठायें, वहाँ मैं नहीं समझता कि यह उचित होगा, जैसा कि अब तक इस देश में हुआ है, कि विशेष संरक्षण देकर टट्टियाँ खड़ी की जायें। वास्तव में बहुसंख्यकों से पृथक् करने वाली इन टट्टियों से किसी भी अल्पसंख्यक वर्ग की जितनी कम रक्षा हो सकती है उतनी दूसरी चीज़ से नहीं। ऐसा करना इस वर्ग को सदैव के लिए अलग कर देता है और उसे देश के और वर्गों के निकट लाने में बाधक होता है।

महोदय, मैं विश्वास करता हूँ कि जो कुछ मैंने इस सभा में निवेदन करने का साहस किया है, उस पर, जब कि विविध धाराओं पर विचार हो, ध्यान रक्खा जाएगा और अन्त में हम इस संविधान को, उस गम्भीर क्षण की भावना के अनुसार जिसमें कि हमने इस प्रयास को आरम्भ किया, स्वीकार करेंगे।

इस पीढ़ी को कठिन परिश्रम का दंड मिला है

केन्द्रीय सिंचाई बोर्ड के सदस्यो और महाशयो, मुझे आपकी इस सभा के सम्पर्क में आने में प्रसन्नता है, और मैं आपका कृतज्ञ हूँ कि इस अवसर पर आपने मुझे आमंत्रित किया। पिछले कुछ वर्षों में मैं कई प्रकार के कार्यों में दिलचस्पी रखता रहा हूँ और अपने वर्तमान पद के कारण मुझे बहुत-सी चीजों में रुचि लेनी पड़ती है। व्यक्ति और राष्ट्र के लिये जीवन स्वयं एक जटिल और पेचीदा विषय है, और कभी-कभी यह कह सकना कठिन होता है कि किन्हीं दो वस्तुओं में कौन अधिक महत्व की है, क्योंकि इन दोनों को हम क दूसरे पर निर्भर पाते हैं। फिर भी यह सच है और इसे मैंने अनेक बार पहले कहा है और आपने भी बताया है कि भारत में नदी-घाटियों का विकास एक अत्यन्त बुनियादी और आधारभूत महत्त्व की चीज है। पिछले कई वर्षों से, मैं इस विषय में बहुत रुचि रखता रहा हूँ—इंजीनियर की हैसियत से नहीं, क्योंकि मैं इंजीनियर नहीं हूँ—बल्कि इसके व्यापक सार्वजनिक पहलू में, अर्थात् यह कि वह भारत में बड़े पैमाने की योजनाओं की नींव है। योजनाओं में मेरी दिलचस्पी इसलिये रही है कि मैं इसे एक विचित्र और दुर्भाग्य की बात मानता रहा हूँ—और यह यह बात एक प्रकार से सारे संसार पर लागू होती है—कि भारत के समस्त प्रच्छन्न साधन हमारी जनता और हमारे राष्ट्र के रहन-सहन के स्तर को उठाने में उपयोग में नहीं लाए गए हैं।

सुदूर अतीत में एक ऐसा समय भी था जबकि कुछ यथार्थता के साथ यह कहा जा सकता था कि संसार के साधन संसार की आबादी के रहन-सहन के स्तर को उस हद तक ऊँचा उठाने के लिए पर्याप्त नहीं थे जिस हद तक कि इच्छा की जाती थी। अब, मैं समझता हूँ कि यह बात साधारणतम बुद्धि के व्यक्ति को भी स्पष्ट हो गई होगी कि संसार के वर्तमान साधनों के उचित उपयोग द्वारा—आगे के विकास की बात छोड़ भी दी जाय और आप चाहें तो दुनिया की बात भी छोड़ दें—हम भारत में रहन-सहन का स्तर ऊँचा कर सकते हैं। कागज और पेंसिल की सहायता से यह दिखाया जा सकता है। पर यथार्थता यह है कि हमने उनका अच्छे-से-अच्छा उपयोग नहीं किया, बल्कि हमने इन साधनों को विनाशक कार्यों द्वारा नष्ट होने

नई दिल्ली में, केन्द्रीय सिंचाई बोर्ड के नवें वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर, ५ दिसम्बर, १९४८ को दिया गया भाषण।

दिया है। यह वर्तमान पीढ़ी की एक दुःखद घटना है और पिछली पीढ़ियों से कहीं अधिक दुःखद है।

इतिहास में निर्माणकारी और विध्वंसकारी शक्तियों के बीच संघर्ष बराबर मिलता है, लेकिन आज यह और भी तीव्र रूप में देखा जाता है। राष्ट्रों के एक-दूसरे के प्रति रुख में, वर्गों के बीच, और अन्त में शायद मनुष्य की आत्मा में भी यह संघर्ष देखने को मिलता है। कोई भी व्यक्ति ऐसा भविष्यवक्ता नहीं हो सकता कि यह बता सके कि क्या होनेवाला है। फिर भी, यदि किसी व्यक्ति में यह विश्वास हो कि निर्माणकारी और रचनात्मक प्रयास की विजय होगी तो वह फलदायक रूप से काम कर सकता है। मुझे कुछ भी संदेह नहीं कि उसकी विजय होगी, लेकिन मैं नहीं जानता कि विरोधी शक्तियाँ योजना के और मानवता के स्तर को ऊँचा करने के कार्य में विलम्ब डाल कर कितनी क्षति पहुँचायेंगी।

तो, हमें इन विशाल प्रच्छन्न साधनों को काम में लाना है। एशिया और भारत के नक्शे को देखिए। मेरे कमरे में और मेरे दफ्तर में यह मेरे ऊपर झांकता रहता है, और जब कभी मैं उसे देखता हूँ तो तरह-तरह के चित्र मेरे सामने आते हैं। ये चित्र अपने इतिहास के लम्बे अतीत के, सबसे आरम्भिक अवस्थाओं से लेकर मनुष्य के क्रमिक विकास के, बड़े कारखानों के रास्तों के, संस्कृति, सभ्यता और कृषि के आदिकालीन उपक्रम के, और उन प्रारम्भिक दिनों के जबकि शायद पहली नहरें बनी थीं और सिंचाई सम्बन्धी निर्माण हुये थे और उनके परिणामस्वरूप होनेवाली बातों के होते हैं। तब मैं भविष्य का विचार करता हूँ। मेरा ध्यान विशाल पर्वतों के उस भीमकाय विस्तार पर जाता है जिसे हिमालय कहते हैं, जो कि हमारी पूर्वोत्तर सरहद की रक्षा करता है। इन्हें देखिए। इनकी कल्पना कीजिए। क्या आप संसार के और किसी ऐसे भाग की कल्पना कर सकते हैं कि जो विस्तार में इसके समान हो, जो प्रच्छन्न शक्ति और सामर्थ्य का ऐसा ही भंडार हो ? मैं संसार का कोई ऐसा स्थान नहीं जानता जहाँ इतनी अपार शक्ति बन्द पड़ी हो जितनी हिमालय में और उससे निकलनेवाली नदियों में है। हम इसका कैसे उपयोग करें ? इसके बहुत-से तरीके हैं। मुख्यतया यह इंजीनियरों का काम है कि वे इस संचित शक्ति का उपयोग जनता के लाभ के लिए करें। आप इंजीनियरों का यह कर्तव्य होता है कि इस काम में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और फलप्रद भाग लें। इस दृष्टि से भारत में इंजीनियर का पेशा और काम बड़े ही महत्त्व और मार्के का हो जाता है।

इतिहास के किसी विशेष काल में आप किसी राष्ट्र की वृद्धि का अनुमान यह देख कर कर सकते हैं कि राष्ट्र के किस वर्ग ने औरों की अपेक्षा उस काल में अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त की। एक समय आप पा सकते हैं कि ज़मींदार, जो कि भूमि का स्वामी है, उच्च पदस्थ होता है, और उसकी बड़ी प्रतिष्ठा होती है। इससे आप

उस समय के समाज की कल्पना कर सकते हैं। इसी तरह आप देखेंगे कि विभिन्न पेशे विभिन्न कालों में सबसे आगे रहे हैं और आप उस समय की सामाजिक पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में किसी परिणाम पर पहुँच सकते हैं और यह पता लगा सकते हैं कि वह स्थिर है या रचनात्मक है या उसका विकास गतिशील ढंग से निर्माणकारी है। पिछले लम्बे इतिहास को न भी लें, तो भी कुछ समय पहले अर्थात् पिछली एक-दो पीढ़ियों में भारत के सम्बन्ध में यह बड़ी रोचक और विचारणीय बात है कि दो रास्ते ऐसे थे जिन पर लोगों की दृष्टि रहती थी। एक तो सरकारी नौकरी थी, विशेषकर शासन के महकमों से सम्बन्ध रखनेवाली नौकरी। बेशक किसी राज्य का शासन अच्छी तरह संचालित होना चाहिए, यह आवश्यक है। लेकिन भारत की शासन-सम्बन्धी नौकरी कुछ असाधारण प्रकार की थी। एक हद तक यह अच्छी थी, क्योंकि जो उसका उद्देश्य था उसे वह पूरा करती थी। उसके और उद्देश्य नहीं थे। उसका वास्तव में यह उद्देश्य नहीं था कि सरकार में या जनता में एक सामाजिक दृष्टिकोण का विकास हो। लेकिन जहां तक उसका अपना काम था, उसने उसे ठीक किया। शायद तीस, चालीस, या पचास वर्ष पहले यह कहा जा सकता था कि हर एक भारतीय की यह आकांक्षा रहती थी कि वह भारत की शासन सम्बन्धी नौकरी का अंग बने, क्योंकि इसमें सम्मान और कुछ मात्रा में शक्ति प्राप्त होती थी और काफी वेतन मिलता था और रौब-दाब रहता था। लगभग इसी समय एक और कार्य भी प्रमुखता प्राप्त किए हुए था। जो लोग सरकारी सेवा में नहीं जाते थे, उनके लिए ख्याति, धन आदि की प्राप्ति का साधन वकालत का पेशा था। इस प्रकार हम देखते हैं कि पिछली दो या तीन पीढ़ियों में नवयुवक भारतीयों की सर्वोच्च आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए ये दो चोटियां थीं: शासन सम्बन्धी उच्च सरकारी नौकरियों में उन्नति करना और वकालत के पेशे में उन्नति करना। बेशक और देशों में भी ऐसा रहा है। अब ये दोनों अर्थात् वकालत का पेशा और शासन सम्बन्धी सेवाएँ, मेरी समझ से अपने-अपने ढंग पर उपयोगी होते हुए भी (यद्यपि वकालत के पेशे के विषय में मुझे कुछ संदेह है), समाज के एक निश्चल दृष्टिकोण का, जो न मूलतया परिवर्तनशील है और न गत्यात्मक, प्रतिनिधित्व करती हैं। वकील हमेशा नजीरों की बात करता है। शासक परम्परागत परिचलन के आधार पर अपना काम करता है। यह हो सकता है कि शासक या वकील गतिशील रहे हों, लेकिन वे समाज के एक गतिहीन, अपरिवर्तनशील दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करते हैं। लेकिन कोई देश पूर्णतया परिवर्तनहीन नहीं हो सकता। आप जानते हैं कि वकीलों ने ही राष्ट्रीय आन्दोलनों में बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग लिया। यह दूसरे देशों में भी इसी रूप में हो सकता है। आज आप देखेंगे कि राष्ट्रीय आन्दोलन में या राष्ट्रीय उद्योग के दूसरे प्रकारों में वकील का भाग एक बढ़ते हुए क्रम से कम हो गया है। अपने विशिष्ट कार्यक्षेत्र में अब भी उसका महत्त्व है, लेकिन वह महत्त्व एक अधिक विस्तृत दृष्टिकोण से, जैसा कि पहले था, उससे बहुत ही कम हो गया है। भारत में

प्रादेशिक शासकों का अब भी महत्त्व है, जैसा कि शासकों का होता है। लेकिन उनका पहले जितना महत्त्व था उससे अब बहुत कम हो गया है।

आज के नवयुवक की उच्च अभिलाषा क्या होती है? यह हो सकता है कि आकांक्षाओं में विभिन्नता हो, लेकिन मुझे इसमें संदेह है कि पहले जितने लोग वकालत या शासकीय नौकरियों के अभिलाषी थे उतने अब भी हैं। अब वे और बातों को भी सोचते हैं। वे राजनीतिज्ञ के जीवन पर विचार करते हैं और सचिव पदों या मंत्रिपदों आदि के विषय में सोचते हैं। किसी के लिए यह बहुत सुखद शिक्षा-क्षेत्र नहीं, लेकिन फिर भी लोग इस दिशा में देखते हैं। वे हमारी प्रतिरक्षा-सेवाओं, सेना, हवाई सेना और नौ-सेना में सम्मिलित होने की बात सोचते हैं। वे अर्थशास्त्री होना चाहते हैं, क्योंकि आज की दुनिया में अर्थशास्त्री का महत्त्व है। वे इंजीनियर होने की बात सोचते हैं, क्योंकि इंजीनियर बड़ा प्रभाव रखते हैं और रखेंगे। आप देखते हैं कि हमारे समाज की निश्चल प्रवृत्ति अब क्रमशः बदल कर कुछ गतिशील हो रही है, और यह लोगों की अथवा व्यक्ति की इस प्रेरणा में लक्षित होती है कि उसे क्या पेशा अपनाना चाहिए।

आज का संसार जैसा है वह बहुत ही गतिशील है। यह ठीक भी है, और अनिवार्य भी, भले ही हम इस विषय में असफल रहे हों। आज का संसार एक क्रान्तिकारी परिवर्तन की अवस्था में है, अतएव आप अपने को बदलने की कोशिश किए बिना रह नहीं सकते। नहीं तो आप कठिनाई में पड़ जाएँगे। हम एक ऐसे जमाने से गुजरे हैं—काफी लम्बे जमाने से—यद्यपि भारत के लम्बे इतिहास को देखते हुए वह बहुत छोटा ही था, जो कि बेशक बदलता हुआ था।

लेकिन एक दूसरे अर्थ में वह जमाना परिवर्तनहीन भी था—मेरा तात्पर्य है हमारे इतिहास के ब्रिटिश काल से। परिवर्तन प्रत्यक्ष रूप में भी होते हैं और अप्रत्यक्ष रूप में भी, लेकिन जब एक बाहरी बड़ी शक्ति किसी स्थिति पर वशवर्ती हो जाती है, तो देश के भीतर काम करने वाली विविध शक्तियां, उस शक्ति द्वारा दबा दी जाती हैं और वे सहज में परस्पर संतुलन और समन्वय खो बैठती हैं। यह संतुलन प्राप्त करने का काम एक विकासवादी क्रम में या एक क्रान्तिकारी क्रम में, शान्तिपूर्ण ढंग से अथवा हिंसात्मक ढंग से होता है। किसी भी मानव-समाज में संतुलन प्राप्त करने का प्रयास सदा होता अवश्य है, और जब तक इसे सफलता नहीं मिलती तब तक उपद्रव होता रहता है। जब कोई बाहरी माध्यम उस संतुलन की प्राप्ति में बाधक होता है, तो तत्काल परिणाम अच्छा भी हो सकता है। लेकिन होता प्रायः यह है कि समस्याएँ इकट्ठी होती रहती हैं और उन्हें इतिहास अपने ही ढंग से हल करता है, जो कभी तो शान्तिपूर्ण ढंग से होता है और कभी रक्तपात से।

अगर आप उसे हल नहीं करते, तो आप उस समस्या को ही समाप्त करके उसका हल प्राप्त करते हैं। राष्ट्रों और वर्गों के साथ भी ऐसा ही होता है। लेकिन जब कोई असाधारण माध्यम इस हल में बाधक होता है, तो समस्याएँ इकट्ठी हो जाती हैं। इस प्रकार, भारत में समस्याएँ इकट्ठी होती रहीं। भारतीय रियासतों की समस्या निस्सन्देह हल हो गई है। हमारी कृषक समस्याएँ जिन्हें कि बहुत पहले हल हो जाना चाहिए था, खिचती रहीं, खिचती रहीं, यहां तक कि हमें अब तुरन्त उनका सामना करना पड़ रहा है और उन्हें जल्दी में हल करना पड़ रहा है, जबकि उन्हें क्रमशः और कहीं अच्छे ढंग से हल होना चाहिए था। अब चूंकि समस्याएं इकट्ठी हो गई हैं, हमें आज एक नहीं बल्कि अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। यह निश्चय करना बहुत कठिन है कि आप और समस्याओं को अलग करके केवल एक या दो समस्याएँ पहले उठाएँगे। हम ऐसा कर ही नहीं सकते। क्योंकि अगर हम कुछ समस्याओं के हल करने के सम्बन्ध में अपने प्रयत्न में ढील डाल दें और केवल एक या दो समस्याओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करें, तो दूसरी समस्याएँ हमें अभिभूत कर लेंगी। हम शरणार्थियों की समस्या को ही ले लें। इनकी संख्या करोड़ों में है। परन्तु मूलतः यह कोई आधारभूत समस्या नहीं है। यह एक स्वल्पकालीन समस्या है। लेकिन है अत्यन्त महत्त्व की, क्योंकि इसके साथ बहुसंख्यक मानवों और उनके जीवन का सम्बन्ध है, और जब बहुसंख्यक मानवों के जीवन का प्रश्न हो, तो राष्ट्र के लिए वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समस्या हो जाती है। हम इस मानवीय साधन को नष्ट और विच्छिन्न नहीं होने दे सकते। इस समस्या के मानवीय पहलू पर ध्यान न देकर अगर हम इसकी अवहेलना करने का प्रयत्न करें तो मामला बिगड़ता ही जायगा और दूसरी समस्याओं के हल करने के मार्ग में भी बाधा पड़ेगी।

हमें इन इकट्ठी समस्याओं का कुछ हद तक एक साथ ही सामना करना होगा। आदमी को विविध मोर्चों पर काम करना पड़ता है और यह देखना पड़ता है कि प्रत्येक मोर्चे पर ठीक ठीक प्रगति हो रही है। ऐसा हो सकता है कि आप एक मोर्चे पर आगे बढ़ें और दूसरे मोर्चे पर रुकावट आ जाय और आपको रुकना पड़े। ऐसे ही अवसरों के लिए योजनाओं की उपयोगिता है और योजना बनाना आवश्यक हो जाता है।

भारत में योजनाओं के विषय में हम काफी समय से बात करते आए हैं। मेरा स्वयं योजना-व्यवस्था और इसी तरह की बातों से संपर्क रहा है। मुझे यह सोचकर अत्यन्त निराशा की भावना स्वीकार करनी पड़ती है, कि हमारे सभी प्रयत्नों के बावजूद परिणाम उतने अच्छे नहीं दिखाई दिए जितने हम चाहते थे। मैं कहीं अधिक अच्छे परिणामों की आशा करता था और कहीं अधिक अच्छे परिणाम होने चाहिए थे। अब तक क्या हुआ और इस विषय में हमारी क्या कठिनाइयाँ या विफलताएँ

हमारे लिए रहीं, यह समझना जरूरी है। और इसके लिए यह जरूरी है कि हममें से कोई व्यक्ति, चाहे वह प्रधान मंत्री हो या सचिव या राज्य के अन्य ऊँचे पद पर स्थित हो, किसी समस्या के विषय में जिस की उस पर जिम्मेदारी रही हो, यह न समझे कि विफलता की जिम्मेदारी किसी दूसरे पर है या दोष किसी दूसरे का है, बल्कि यह समझे कि यदि कोई विफलता होती है तो उसके लिए वह ही जिम्मेदार है। हम सब में इस बात की अत्यधिक प्रवृत्ति है (और मैं फिर कहूँगा कि मैं इस श्रेणी में प्रधान मंत्री तथा अन्य मंत्रियों को भी सम्मिलित करता हूँ) कि हम विफलता का आरोप सदा दूसरे पर करें। अगर हर एक व्यक्ति अपने नियत कार्य को सोचे और यह भी सोचे कि वह उसमें विफल रहा है, तो समस्या को हम अधिक अच्छी तरह से निबटा सकेंगे। वस्तुस्थिति यह है कि हर एक बड़े कार्य में ऊपर से लेकर नीचे तक बहुत से लोगों के सहयोग और परिश्रम की आवश्यकता होती है और अगर इस सहयोग का, साथ मिल जुल कर काम करने की इस भावना का, अभाव हुआ तो वह काम ठीक से नहीं हो पाता या उसमें देर होती है। तब इससे कुछ विशेष लाभ नहीं कि हम एक दूसरे पर दोषारोपण करें, यद्यपि कभी-कभी यह आवश्यक भी होता है। हमें इस देश में हर एक क्षेत्र में विविध काम करने हैं। किसी ने एक बार कहा था कि हम लोग इतिहास के ऐसे युग में उत्पन्न हुए हैं जो कि परिवर्तनशील भी है और क्रान्तिकारी भी, और बहुत कल्पनातीत बातें घटित हो रही हैं। अब इन कल्पनातीत घटनाओं का उलाहना देने से कोई लाभ नहीं है। चूंकि हमने जन्म लिया है, इसलिए हमें उनका सामना करना है। हम उनसे बच नहीं सकते। और जब बच नहीं सकते तो हमें उनका सामना मर्दों की तरह करना चाहिए और कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। मुझे भय है कि हमारी पीढ़ी में (आने वाली पीढ़ियों के विषय में मैं नहीं जानता) चैन या वास्तविक शान्ति नहीं मिल सकती। हमारी पीढ़ी के भाग्य में पिछले श्रम के परिणामस्वरूप प्राप्त अवकाश और शान्ति नहीं। हमारे सामने तो काम करने और परिश्रम करने का ही दृश्य है। इस पीढ़ी को कठिन परिश्रम का दंड मिला है। यह कठिन परिश्रम निर्माणकारी कार्य के रूप में हो सकता है जो चाहे जितना कठिन हो, समाज को और राष्ट्र को ऊपर उठायेगा, यह परिश्रम फलहीन भी हो सकता है या बुरी दिशा में भी ले जा सकता है, लेकिन कठिन परिश्रम से आप बच नहीं सकते। इसलिए हमें चाहिए कि इस कठिन परिश्रम को निर्माणकारी और रचनात्मक दिशाओं में ले चलें, जिससे कम से कम इस पीढ़ी के सम्बन्ध में यह कहा जा सके कि हमने अपने देश का निर्माण करने में जहां तक हो सका सहायता दी, जिससे कि बाद की पीढ़ी और उसके बाद आने वाली पीढ़ियों को पूरा अवकाश प्राप्त हो सके—यद्यपि मैं यह बात बहुत अधिक नहीं चाहता कि किसी व्यक्ति को बहुत अवकाश रहे, लेकिन कुछ अवकाश मिलना ही चाहिए। कदाचित् अवकाश की इतनी आवश्यकता नहीं है। किस प्रकार का कार्य करना पड़ता है, यह अवकाश से अधिक आवश्यक है। जो भी हो मुझे

भय है कि मैं अपने विचारों और कल्पना में कुछ टेढ़े मेढ़े पथ पर चला गया। मैंने श्री खोसला के भाषण को ध्यान से सुना है। मैं कह सकता हूँ कि प्रायः सभी बातों से जो कि उन्होंने अपने भाषण में बताईं, मैं सहमत हूँ। उनके दृष्टिकोण को मैंने पसन्द किया, और मैं आशा करता हूँ कि इस बोर्ड का और भारत के इंजीनियरों और सरकार का दृष्टिकोण भी यही होगा। मैं यह अवश्य चाहूँगा कि जो इंजीनियर यहां उपस्थित हैं वे यह अनुभव करें कि इंजीनियरों पर आज बड़ा दायित्व है और निर्माण-कारी उद्योग की महान् जिम्मेदारी है और भविष्य बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि वे अपने कर्तव्यों का किस तरह पालन करते हैं और किस भावना से वे उनका पालन करते हैं। हम चाहते हैं कि आप अपने कार्यों में प्रथम श्रेणी की कुशलता दिखावें, क्योंकि दूसरी श्रेणी का काम कभी अच्छा नहीं होता। वह राष्ट्र के लिए बुरा होता है। लेकिन उसके अतिरिक्त, हम यह भी चाहते हैं कि आप अपने कार्य में एक उच्चतर भावना का अर्थात् रचनात्मक कार्यों को अत्युत्तम ढंग से पूरा करने की और विशेष ध्येयों और आदर्शों की पूर्ति की भावना का समावेश करें जो कि आपके कार्य को आप लोगों से भी बड़ा बना सके। आप मध्य युगों को या और भी पुराने समय को लौट कर देखें, तो आप पुरानी इमारतों, प्राचीन निर्माणों, मन्दिरों, गिरजाघरों, मसजिदों और इसी तरह की चीज़ों को देखेंगे। कोई नहीं जानता कि किन लोगों ने उन्हें बनाया; लेकिन जो भी उन्हें देखता है यह कह सकता है कि वे लोग बड़े कुशल निर्माणकर्ता और इंजीनियर ही नहीं थे, बल्कि वे अपने काम में आस्था रखने वाले भी थे। जब तक यह आस्था न हो तब तक कोई भी व्यक्ति किसी सुन्दर वस्तु का निर्माण नहीं कर सकता। यूरोप के विशाल गिरजाघरों को देखिये। बहुत कम लोग यह जानते होंगे कि उनके बनानेवाले कौन थे, लेकिन हम यह जानते हैं, क्योंकि प्रमाण हमारी आखों के सामने है, कि वे इंजीनियर और निर्माणकर्ता के विश्वास की मूर्ति हैं। यह बात हमारे महान मन्दिरों और मसजिदों और इमारतों के विषय में भी ठीक उतरती है। अब हम एक दूसरे ही युग में रह रहे हैं। हम मसजिदों, गिरजाघरों और मन्दिरों के निर्माण में उतना उत्साह नहीं दिखाते, बल्कि दूसरे प्रकार के सार्वजनिक निर्माणों में उत्साह रखते हैं। लेकिन इन सार्वजनिक निर्माणों को भी उत्तम और सुन्दर होना चाहिए, क्योंकि वह आस्था मौजूद है। इसलिए मैं चाहूँगा कि आप इस भावना से काम करें और यदि आप इस भावना और इस आस्था से काम करेंगे, तो आपको इससे स्वतः आनन्द प्राप्त होगा।

मैं एक और छोटे से विषय पर कुछ कहना चाहूँगा। श्री खोसला ने पारिभाषिक शब्दों के हिन्दी कोष के विषय में कुछ कहा है। मुझे यह सुन कर प्रसन्नता हुई है। लेकिन क्या मैं आपको सतर्क कर दूं कि पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण करते हुए आप कुछ ऐसी चीज़ न तैयार कर लें, जिसे कि साधारण आदमी न समझ सके। आज ऐसा करने की बहुत अधिक प्रवृत्ति है। मेरा अपना ख्याल है कि जो विदेशी

शब्द इस देश में चल निकले हैं उन्हें बनाए रखना चाहिए, कुछ तो इस लिए कि वे चालू हैं और कुछ इसलिए कि वे शेष संसार में प्रचलित हैं और हमारी शब्दावली में वैज्ञानिक और शिल्प सम्बन्धी जितने शब्द समान हों, उतना ही अच्छा है। विज्ञान और शिल्प में विभाजन करने वाली सरहदें नहीं होतीं। कोई अंग्रेजी विज्ञान, फ्रांसीसी विज्ञान, अमरीकी विज्ञान, चीनी विज्ञान की बात नहीं करता और न किसी को करनी चाहिए। भारतीय विज्ञान नाम की कोई वस्तु नहीं होनी चाहिए। यही बात शिल्पकला के विषय में भी है। इन प्रश्नों को संकीर्ण राष्ट्रीय ढंग से देखने का यह महान धन्धा अन्त में आप के विज्ञान को और शिल्प को संकीर्ण बना देगा। ऐसी विशेष शब्दावली का निर्माण, जो न जनसाधारण को और न संसार में और किसी को मालूम हो, वास्तव में आपको ज्ञान के प्रवाह से अलग कर देगा और साथ ही आपको अपने ही लोगों से पृथक् कर देगा जो आपकी पारिभाषिक शब्दावली को न समझेंगे। इस तरह आप अपने को कुछ ऐसा बना लेंगे जिसे न कोई समझता है न जिसकी कोई परवाह करता है।

मनुष्य के आत्मोत्सर्ग का लेखा

मैं यहाँ भारत सरकार की ओर से आपका हार्दिक स्वागत करने के लिये आया हूँ। सरकार की हैसियत से स्वभावतया हम अनेक कार्यों में रुचि रखते हैं और प्रधान मंत्री की हैसियत से मुझे अनेक मंचों पर आना और विविध विषयों पर कुछ न कुछ कहना होता है। लेकिन मुझे संदेह है कि कोई भी विषय, सुनने के ख्याल से, और कभी कभी बोलने के ख्याल से भी, उतना रोचक होगा जितना कि इतिहास का विषय है। मैं इसे स्वीकार करता हूँ कि इतिहास का केवल प्रेमी होने के कारण इतनी बड़ी संख्या में विशेषज्ञों से मिलकर मैं किंचित् अभिभूत होता हूँ। पर इतिहास-प्रेमियों का भी अपना एक स्थान होता है, और शायद कभी कभी वे एक झाड़-खंड पर समग्र रूप से अधिक अच्छी तरह दृष्टि डाल सकते हैं जब कि विशेषज्ञ अलग-अलग वृक्षों के पर्यवेक्षण में ही व्यस्त रह सकते हैं।

हम इतिहास की बात करते हैं और मैं समझता हूँ कि लोगों का इतिहास को देखने का अलग-अलग ढंग है। आपका जो भी ढंग हो और जो भी दृष्टि-कोण हो, चाहे आप पुराने और बिल्कुल दकियानूसी ढंग से इसे राजाओं के कृत्यों और युद्धों और इस तरह की चीजों का लेखा समझें, चाहे उसे सामाजिक और आर्थिक उन्नति या सांस्कृतिक उन्नति, या समग्र प्रकार से मानवता के विकास के लेखे के रूप में देखें; चाहे वह किसी एक देश या राष्ट्र का इतिहास हो, और चाहे उसे संसार के इतिहास की पृष्ठभूमि में देखा जाय, जैसा कि स्वभावतया उसे देखा जाना चाहिए, अनिवार्य रूप से सब का आधार तथ्यों का एकत्रीकरण और आलेख और मान्य तत्त्व हैं। आदमी इतिहास के विषय में अपने विचार यत्र-तत्र एकत्रित ज्ञान और मान्यताहीन तत्त्वों के आधार पर बनाता है। इसलिए ऐतिहासिक आलेखों के विषय में एक शोधमंडल इतिहास के उचित निर्माण के लिए बहुत ही आवश्यक है। यह हिस्टारिकल रेकार्ड्स कमिशन अपनी रजत जयन्ती मना रहा है। इस अवसर पर जो कुछ कार्य इसने अब तक किया है और जो मैं आशा करता हूँ यह भविष्य में और भी उत्साह के साथ करने जा रहा है, उसके लिए यह बधाई का पात्र है।

मैं नहीं जानता कि आप लोगों में से बहुत से लोग जब किसी ऐतिहासिक विषय

'इंडियन हिस्टारिकल रेकार्ड कमिशन' के रजत जयन्ती अधिवेशन का उदघाटन करते हुए नई दिल्ली में, २३ दिसम्बर १९४८ को दिया गया भाषण।

पर विचार करते हैं तो क्या अनुभव करते हैं। मैं अपने लिए कह सकता हूँ कि इतिहास के विषय में मेरी बेहद दिलचस्पी है और उसके लिए आकर्षण है, और जब मैं इस लम्बे प्रवाह पर विचार करता हूँ तो मेरा मन कुछ ऊँचा लगता है। और मैं न केवल दिलचस्पी बल्कि ज्ञान की प्रेरणा या ज्ञान या यह सब कुछ ग्रहण करता हूँ। मैं नहीं जानता कि आदमी इससे समग्ररूप से सदा प्रेरणा प्राप्त करने में सफल होता है। उसे अकसर इसके ऐसे दूसरे पहलू मिलते हैं जो प्रेरणा देने से बहुत दूर हैं। हर हालत में आदमी को वर्तमान को समझने के लिए और भविष्य कैसा हो इसको समझने का प्रयत्न करने के लिए, इसकी शरण में जाना पड़ता है। लोग कहते हैं कि इतिहास अपने को दुहराता नहीं। मैं समझता हूँ यह सही है। फिर भी किसी बात को समझने के लिए, उन शक्तियों और उन घटनाओं की जड़ों तक पहुँचने के लिए जो आज हो रही हैं, यही एक आधारभूत तत्व है जो आपको प्राप्य है, नहीं तो आपको अपनी कल्पना का आधार ग्रहण करना पड़ता है।

इतिहास, जैसा कि एक प्रसिद्ध लेखक ने लिखा है, 'मनुष्य के आत्मोत्सर्ग का लेखा' है। शायद सत्य यही है। यह प्रत्येक आत्मोत्सर्ग के सूली पर चढ़ने के अनन्तर पुनर्जीवन प्राप्त करने का भी लेखा है। इस तरह आप आत्मोत्सर्ग और सूली पर चढ़ने की क्रिया के अनन्तर नवजीवन प्राप्त करने का क्रम बराबर चलता हुआ देखते हैं। आप इतिहास को मानवता की, मनुष्य की आत्मा की आगे बढ़ती हुई यात्रा समझ सकते हैं। फिर भी हम यह देख कर ठिठक जाते हैं कि किस तरह इस अग्रगामी यात्रा में व्यवधान होता है, और हमें पीछे फेंक दिया जाता है।

मैं समझता हूँ कि प्रत्येक युग अपने को परिवर्तन का युग समझता है। फिर भी, मैं अनुमान करता हूँ कि हमारे इस विचार में कि वर्तमान युग, जिसमें हम रह रहे हैं, विशेष रूप से एक परिवर्तन और तबदीली का युग है, सचाई का कुछ अंश है। कम से कम, जिन समस्याओं का सामना हमें करना पड़ता है, वे और समस्याओं की अपेक्षा कहीं बड़ी और कहीं तीव्र जान पड़ती हैं। यह कुछ तो इसलिए भी है कि इनका विस्तार बढ़ गया है। आज की प्रत्येक समस्या लोकव्यापी समस्या बन जाती है। आधुनिक घटनाओं को या उस इतिहास को, जिसका कि निर्माण हो रहा है, किसी एक देश या राष्ट्र या इलाके के इतिहास के रूप में समझना आज बिल्कुल असम्भव है। आज आप को अनिवार्यतः समग्र संसार की बात सोचनी पड़ती है। बेशक इस बड़ी तस्वीर के प्रत्येक छोटे पहलू को आप देख सकते हैं, और आपको देखना चाहिए। आप उन्हें ज्यादा नजदीक से देख सकते हैं। लेकिन एक विशिष्ट देश के इतिहास की ऐसी कल्पना, जिसके अन्तर्गत राजाओं और सम्राटों के नामों को रट लेने का क्रम आता है, मेरी समझ से बहुत पहले समाप्त हो चुकी है। मैं नहीं कह सकता कि भारत के स्कूलों और कालिजों से भी यह क्रम उठ गया है या

नहीं, लेकिन कम से कम मैं आशा करता हूँ कि वह समाप्त हो चुकी है, क्योंकि बच्चों के लिए राजाओं के शासन और युद्धों के विवरण पढ़ने से अधिक निरर्थक वस्तु की कल्पना मैं नहीं कर सकता।

इतिहास का दूसरा पहलू अर्थात् सामाजिक पहलू या सामाजिक संगठन का विकास अब कहीं अधिक सामने आएगा। पर साधारण मनुष्यों के जीवन के विषय में हमें अपेक्षाकृत कहीं गहरी खोज करने की आवश्यकता है। हो सकता है कि सौ या हजार वर्ष पहले के घरेलू आय-व्यय के लेखे में एक सौ या एक हजार एक बातें हमें मिल जायें जिससे कि हमें इस बात का कुछ अनुभव हो सके कि पिछले युग में मनुष्य का जीवन कैसा था। तभी हम इतिहास के शुष्क ढाँचे पर जीवन और मांस-रक्त का आवरण चढ़ा सकते हैं। मैं स्वीकार करूँगा कि अब भी बावजूद इस माने हुए नए दृष्टिकोण के, इतिहास की अधिकतर पुस्तकें, और इतिहास सम्बन्धी अधिकतर निबन्ध जो प्रकाशित होते हैं, उनका विषय भले ही रोचक हो, मुझे अद्भुत रूप से निर्जीव और प्राणहीन जान पड़ते हैं। वे केवल शुष्क ठठरियाँ हैं, उनमें रक्त और मांस नहीं। मैं अनुमान करता हूँ कि इतिहास के पढ़ने, लिखने और समझने का एक ही वास्तविक तरीका है, वह यह कि मन में एक ऐसे सजीव समाज का चित्र जागृत किया जाय जो कि अपने काम में लगा हुआ है, विचार कर रहा है, जिसमें मनुष्यों के सभी गुण-दोष देखने को मिलते हैं और जो क्रमशः उन्नति की दिशा में या किसी दूसरी दिशा में चढ़ रहा है। उसके लिए भी, मैं अनुमान करता हूँ दो बातें आवश्यक हैं, एक तो यह कि विस्तार की बातों का अधिक घनिष्ठ ज्ञान हो, जिसे कि इस कमिशन को एकत्र करना और लोगों तक पहुँचाना चाहिए, और दूसरी यह कि इस प्रकार के मस्तिष्क की आवश्यकता है जो इन विस्तार की बातों को जामा पहना सके और उन्हें जीवन का सादृश्य प्रदान कर सके। मैं आशा करता हूँ कि यह हिस्टोरिकल रेकार्ड्स कमिशन और इससे सम्बन्धित विख्यात इतिहासकार जो कि सामग्री एकत्र करेंगे और उस पर प्रबन्ध और निबन्ध और पुस्तकें लिखेंगे, सदा इन दो बातों का ध्यान भी रखेंगे। एक तो यह कि उन्हें सदा एकमात्र अपने साथी इतिहासकारों के लिए ही नहीं लिखना चाहिए। उनकी मोहक परिधि के बाहर भी और लोग हैं जिन तक उनकी पहुँच होनी चाहिए। मैं ऐसा इसलिए कहता हूँ कि साधारण पारिभाषिक या वैज्ञानिक निबन्ध इस हद तक उस मोहक परिधि के भीतर के लोगों के ही लिए या उन के लिए जिनकी कि विषय के किसी विशिष्ट संकीर्ण पहलू में रुचि है लिखा गया होता है या कम से कम लिखा गया जान पड़ता है कि जनता के अपेक्षाकृत बड़े भाग को उसमें रुचि नहीं हो पाती। अतः इस प्रकार के कमिशन को, निश्चय ही, एक अधिक विस्तृत वातावरण में कार्य करने का प्रयत्न करना चाहिए और एक ज्यादा बड़े जन-समुदाय के मस्तिष्क के लिए रोचक बनने का प्रयत्न करना चाहिए—ऐसे सम्प्रदाय के लिए जो कि बुद्धि या थोड़ी बहुत समझ

रखता है। लोक-प्रियता के उद्देश्य से लिखना अर्थात् पांडित्य से हट कर लिखना एक नए ही प्रकार का दृष्टिकोण जान पड़ता है। मैं नहीं समझता कि वास्तविक पांडित्य और इस लोकप्रिय दृष्टिकोण के बीच अनिवार्यतः कोई पारस्परिक विरोध है। ऐसे निबन्धों और लेखों में, जिन्हें मैं कभी-कभी देखता हूँ, अचेतन रूप से, इस तथ्य को भुलाने का प्रयत्न दिखाई पड़ता है, कि एक अपेक्षाकृत बड़ा जन-समुदाय है जिसे सम्बोधित करना है या करना चाहिए। मेरी समझ में यह ठीक नहीं, क्योंकि इससे आप अपने को उस वृहत्तर जन-समुदाय से अलग कर लेते हैं। आपको उसका समर्थन प्राप्त नहीं होता, और वह अपेक्षाकृत बड़ा जन-समुदाय आपके परिश्रम का लाभ नहीं उठा पाता। दूसरी यह कि जिस विषय में भी आप अनुसन्धान करें, यद्यपि अनिवार्य रूप से आप एक विशिष्ट विषय पर अनुसंधान करेंगे, उस विषय पर इस रूप में साधारणतः विचार होना चाहिए कि वह एक वृहत्तर और व्यापक विषय से संबंधित है। नहीं तो, आपकी रुचि के एक फुटकर प्रसंग से अधिक उसका कोई वास्तविक मूल्य नहीं रह जाता, क्योंकि यदि किसी बात को समझा जाता है, तो उससे संबंधित सभी बातों को समझने की आवश्यकता होती है। नहीं तो उसका कोई अर्थ नहीं रह जाता। जब हम घटनाओं के एक-दूसरे से संबंधित होने के प्रश्न पर विचार करते हैं, तो सामने एक विशाल क्षेत्र खुल जाता है, क्योंकि प्रत्येक वस्तु प्रत्येक अन्य वस्तु से संबंधित है, कोई वस्तु अलग-थलग नहीं। जीवन का प्रत्येक पहलू किसी न किसी रूप में दूसरे पहलू से लगाव रखता है और एक राष्ट्र के जीवन के प्रत्येक पहलू का दूसरे राष्ट्रों के जीवन से लगाव है। कुछ हद तक ऐसा पहले भी रहा है। लेकिन इस युग में यह बहुत स्पष्ट हो गया है, क्योंकि सभी तरह की बातें हैं जो कि राष्ट्रों को एक दूसरे के सन्निकट ले आती हैं, चाहे वे परस्पर प्रेम न रखते हों। इसलिए इस बात का ध्यान रखते हुए हर एक छोटे विषय को देखना चाहिए। मैं यह भी कहूँगा, यद्यपि कदाचित् यह कहीं अधिक कठिन कार्य होगा कि इसका समन्वित ऐतिहासिक दृष्टिकोण से क्या सम्बन्ध होगा, इस पर भी विचार करना चाहिए। इतिहास को इस रूप में देखा जा सकता है या नहीं, मैं नहीं कह सकता। लेकिन मानवीय मस्तिष्क वस्तुओं को समन्वित रीति से समझने का प्रयत्न करता है। नहीं तो उनका कोई महत्त्व नहीं रह जाता, और हमें इस परिणाम पर पहुँचना पड़ता है कि जो घटनाएँ घटती हैं उनका एक दूसरे से सम्बन्ध नहीं होता। वे आकस्मिक, और अनियमित ढंग से घटती हैं। इस विषय को इस रूप में देखते हुए, आदमी को यह विचार करना होगा कि इतिहास क्या है? क्या मैं कहूँ कि वह मानवीय उन्नति का एक लेखा है, मनुष्य के मस्तिष्क, मनुष्य की आत्मा के किसी ज्ञात या अज्ञात ध्येय की ओर अग्रसर होने के संघर्ष का लेखा है। इस रूप में यह एक बहुत ही रोचक अध्ययन हो जाता है। अन्ततः यह सत्य हो या न हो, फिर भी यह एक सूत्र हमें दे देता है जिससे कि अलग-अलग घटनाओं को एक साथ पिरोया जा सके। शुरू में, मैं अनुमान करता हूँ कि इतिहास एक मात्र राजनीतिक लीक पर लिखा जाता था, और उसके

साथ, बहुत से और पहलू संबंधित होते थे—धार्मिक और कुछ हद तक सांस्कृतिक भी।

फिर आर्थिक पहलू पर बड़ा जोर दिया गया और निश्चय ही यह बड़े महत्व का पहलू है। किसी ने यह कभी नहीं कहा कि आर्थिक पहलू ही एक मात्र पहलू है—यह बेतुकी बात होगी—लेकिन यह एक महत्वपूर्ण पहलू है, और एक विस्तृत अर्थ में इसमें सांस्कृतिक पहलू भी आ जाता है। लेकिन इतिहास के इन जुदा-जुदा और विभिन्न पहलुओं से अलग, मैं समझता हूँ, कुछ ऐसी चीज़ है, जिसकी मैं परिभाषा नहीं कर सकता। कह लीजिए कुछ ऐसा समझने का प्रयत्न है कि इतिहास के इस सारे प्रवाह का अर्थ क्या है, वह किधर जा रहा है और स्वयं उसके कोई मानी हैं या नहीं। मैं अनुमान करता हूँ कि अन्ततः प्रायः सभी समस्याओं को, जिनका कि सामना हमें संसार में करना पड़ता है, एक या दो वाक्यों में रखा जा सकता है। ये समस्याएँ व्यक्ति के व्यक्ति से सम्बन्ध की, व्यक्ति के वर्ग से सम्बन्ध की, और वर्गों के आपस के सम्बन्ध की समस्याएँ हैं। प्रायः हर एक राजनीतिक, सांस्कृतिक या व्यक्तिगत समस्या इस वाक्य के अन्तर्गत लाई जा सकती है, और ये क्रमशः बदलते हुए सम्बन्ध ही हैं, जो समाज के सुसंगठित शरीर को, जिसे कि हम अपने चारों ओर देखते हैं, सार्थक बनाते हैं।

मैं कुछ अनियमित ढंग से इस उच्च विद्वन्मंडली के सामने विचारों को उँडेल रहा हूँ, जिससे कि यह हिस्टारिकल रेकार्ड्स कमिशन, जहां तक संभव हो, अपने कार्य को विस्तृततर मानसिक दृश्यों और ऐतिहासिक विचार के साथ समन्वित कर सके, क्योंकि बिना ऐसा किए वह अपने क्षेत्र को सीमित करेगा और साधारण विचारवालों की अनुकूल प्रतिक्रिया न प्राप्त कर सकेगा। हम सभी लोग अधिक या कम इतिहास का निर्माण करते हैं। इतिहास, अन्त में, करोड़ों मानवों के जीवन का एक प्रकार का परिणाम है। लेकिन यह सच है कि शायद कुछ व्यक्ति इतिहास के निर्माण में अपेक्षाकृत अधिक भाग लेते हैं। वर्तमान युग में इतिहास के निर्माण में कुछ भाग ले सकने का हमें अवसर मिला है, और जो व्यक्ति ऐसा करता है, उसके लिए इतिहास की क्रियाओं को समझना एक और आवश्यक बात हो जाती है, जिससे कि वह अपने को विस्तार की बातों में खो न दे और उसके मुख्य प्रवाह को भूले नहीं। भाग्य और परिस्थिति ने भारतीय इतिहास के प्रवाह में मुझे एक अभिनेता के रूप में पिछले बीस तीस वर्षों से अपने अन्य साथियों के समान ही डाल रखा है। इतिहास में बीती हुई या दूर अतीत की बातों में मेरी रुचि केवल शास्त्रीय ढंग की नहीं रह गई, बल्कि मेरे लिए यह एक निजी गहरी दिलचस्पी की चीज बन गया है। मैंने उन घटनाओं को आज की घटनाओं से सम्बन्धित करके समझना चाहा, और आज

की घटनाओं को जो कुछ हो चुका है उसकी पृष्ठभूमि में समझना चाहा, और चाहे जितने धूमिल रूप में हो, उस ज्ञान की सहायता से भविष्य में झांकने का यत्न किया। मैं यह नहीं कह सकता कि उस खोज ने वस्तुओं को ठीक-ठीक समझने में मेरी मदद की या नहीं, क्योंकि पिछले कुछ वर्षों में युद्ध आदि ऐसी घटनाएँ घटी हैं, जिनके विषय में मैं यही कह सकता हूँ कि वे समझ के बिलकुल बाहर हैं, और हमारी मानवता की सुविहित उन्नति की सारी कल्पना उनके कारण हिल उठी है। इन अध्ययनों ने समझने में मदद दी हो या नहीं यह निश्चय ही एक बड़ा रोचक कार्य रहा है, और कभी-कभी मैं ख्याल करता हूँ कि यह कार्य किसी विश्वविद्यालय या संस्था के शान्ततर वातावरण में, जिस प्रकार का जीवन मैं बिताता हूँ उसकी उत्तेजनाओं और विघ्नों से दूर रह कर विशेष चलाया जाय तो आनन्ददायक हो! लेकिन यह भी एक प्रकार का गृह-विरह है, जिससे मैं अनुमान करता हूँ, वे सभी लोग पीड़ित होते हैं जो उस विशिष्ट कार्य को जिसमें कि वे लगे हुए हैं, पसन्द नहीं करते।

मैं आप सबका यहाँ स्वागत करता हूँ और आशा करता हूँ कि आप का परिश्रम सफल होगा, न केवल सच्चे इतिहास के निर्माण में, जो कि घटनाओं और तिथियों से ऊपर उठकर एक वस्तु है—बल्कि यदि मैं कहूँ तो लोगों को एक सूत्र में बांधने में भी। इतिहास हमें बांधने वाली और विच्छिन्न करने वाली दो प्रकार की क्रियाओं का लेखा प्रस्तुत करता है, और संसार में जैसा सदा होता आया है, आज भी यही हो रहा है कि बांधने और निर्माण करने वाली शक्तियां अधिक स्पष्ट रूप से काम कर रही हैं, और उसी प्रकार विदारक और विच्छिन्न करने वाली शक्तियाँ भी काम कर रही हैं, और हम जो भी काम करें उसमें हम चाहें तो बांधने वाले और निर्माण करने वाले पहलुओं पर या इससे विपरीत पहलुओं पर जोर डाल सकते हैं। बेशक हमें इच्छा-प्रेरित विचारों के वश में नहीं होना चाहिए, और इस प्रकार उन बातों पर जोर नहीं देना चाहिए जिनका कि वस्तुस्थिति से कोई लगाव न हो। फिर भी, मैं समझता हूँ कि यह सम्भव है कि पांडित्य और यथार्थता और सत्य की सीमा में रहते हुए, बांधने वाले और निर्माणकारी पहलू पर, न कि इस के विरोधी पहलू पर, जोर दिया जाय, और मैं आशा करता हूँ कि इतिहासकारों के और इस कमिशन के कार्य इसी ध्येय से प्रेरित होंगे। मैं आपका एक बार फिर स्वागत करता हूँ।

सरोजिनी नायडू

महोदय, इस भवन के नेता की हैसियत से समय-समय पर यह मेरा दुखद कर्तव्य रहा है कि मैं भारत के विख्यात पुत्रों और पुत्रियों के निधन की चर्चा करूँ। अभी हाल में, मैंने भारत के एक बड़े प्रख्यात पुत्र, सर तेज बहादुर सप्रू के निधन की चर्चा की थी। इसके बाद एक प्रान्त के गवर्नर की आकस्मिक मृत्यु हो गई। वे राज्य के एक प्रतिष्ठित जनसेवक थे। जब हम देश के इन प्रतिष्ठित व्यक्तियों की चर्चा करते हैं तो हम प्रायः यह कहते हैं कि उनके स्थान की पूर्ति कठिनता से होगी, और उनकी जगह कोई नहीं ले सकता, जो कि आंशिक रूप में सत्य हो सकता है। लेकिन आज, मैं आपकी अनुमति से एक ऐसे व्यक्ति के कल बहुत सबेरे हुए निधन की चर्चा करूँगा, जिनके विषय में पूरी सचाई से यह कहा जा सकता है, कि उनके स्थान की पूर्ति करना या उनके समान दूसरा व्यक्ति पाना असंभव है।

वे पिछले डेढ़ साल या कुछ अधिक समय से एक ऐसे बड़े प्रान्त की गवर्नर थीं, जिसकी अनेक समस्याएँ हैं, और उन्होंने बड़ी ही योग्यता और बड़ी ही सफलता से गवर्नरी का काम निभाया। इसका अनुमान यों हो सकता है कि उस सूबे में प्रधान मंत्री और उनके मंत्रिमंडल और सरकार और विविध दलों और वर्गों और धार्मिक सम्प्रदायों से लेकर मजदूर और खेतिहर तक सभी उनके प्रति आकर्षित थे और उनके हृदय में इन सब ने स्थान पाया था। गवर्नर और राज्य की उच्चासीन एक प्रमुख सेविका के रूप में उन्होंने बड़ी सफलता पाई थी। लेकिन गवर्नर के रूप में उनके विषय में मैं अधिक न कहूँगा, क्योंकि गवर्नरों में साधारणतः जितना बड़प्पन अपेक्षित है, उससे वे कहीं बड़ी थीं। वे क्या थीं, यह कहना मेरे लिए कुछ कठिन है, क्योंकि वे हम लोगों का एक अंग बन गई थीं। वे हमारी आज की राष्ट्रीय दाय का एक अंग थीं, और हम जैसे व्यक्तियों से अभिन्न रूप से सम्बन्धित थीं, क्योंकि हमें उनके साथ बहुत वर्षों तक अपनी स्वतंत्रता के युद्ध में तथा अन्य कार्यों में भाग लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

महोदय, जिन व्यक्तियों से अपना इतना घनिष्ठ संपर्क रहा हो, उनका ठीक ठीक मूल्यांकन कर सकना कठिन होता है। फिर भी आदमी इसका कुछ हद तक अनुभव

श्रीमती सरोजिनी नायडू की निधन स्मृति में, संविधान परिषद (व्यवस्थापिका) में, नई दिल्ली में, ३ मार्च, १९४९ को दिया गया भाषण।

कर सकता है, और उनका ध्यान करते हुए हमारे सामने एक ऐसा चित्र आता है, जिसके सम्बन्ध में अनेक गुणवाचक शब्द और विशेषण लगाए जा सकते हैं। वे अत्यन्त प्रतिभाशालिनी थीं। वे सजीव और सप्राण थीं। वे अनेक गुणों से सम्पन्न थीं, लेकिन उनमें कुछ अद्वितीय गुण थे। उन्होंने कवि के रूप में जीवन आरम्भ किया। बाद के वर्षों में जब कि घटनाओं ने उन्हें राष्ट्रीय संग्राम में उतरने के लिए विवश किया, और उन्होंने अपने को पूरे उत्साह और सरगर्मी के साथ राष्ट्रीय युद्ध में लगा दिया, उन्होंने कागज और कलम से अधिक कविताएँ नहीं लिखीं, बल्कि उनका सारा जीवन ही एक कविता, एक संगीत बन गया। और उन्होंने एक अद्भुत कार्य किया, अर्थात् उन्होंने हमारे राष्ट्रीय युद्ध में कला और कवित्व का पुट दिया। जिस प्रकार कि राष्ट्र-पिता ने इस युद्ध को एक नैतिक विशालता और महानता प्रदान की उसी प्रकार श्रीमती सरोजिनी नायडू ने उसे कलात्मकता और कवित्व प्रदान किया, और जीवन के प्रति वह उत्साह और वह अजेय भावना प्रदान की, जिसने कि विपत्ति और अनर्थ का सामना डट कर किया, ओठों पर गीत और मुखाकृति पर मुसकान के साथ किया। मैं स्वयं राजनीतिज्ञ हूँ, जैसा कि प्रायः हम सभी हैं, और मैं नहीं जानता कि हमारे राष्ट्रीय जीवन को इससे अधिक मूल्यवान कोई भेंट प्राप्त हो सकती है कि उसे विशुद्ध राजनीतिक स्तर से उठा कर एक उच्चतर कलात्मक स्तर पर रखा जाय। इसी कार्य में सरोजिनी नायडू को एक हद तक सफलता प्राप्त हुई।

उनके जीवन पर दृष्टि डालते हुए, हम उसमें अनेक गुणों का एक अद्भुत समन्वय पाते हैं। एक ओर तो हम सजीवता पाते हैं, और दूसरी ओर ५० वर्षों का ऐसा सप्राण और सक्रिय व्यक्तित्व पाते हैं जो कि हमारे जीवन के अनेक सांस्कृतिक तथा राजनीतिक पहलुओं को स्पर्श करता है। जिस वस्तु का भी उन्होंने स्पर्श किया, उसमें उन्होंने कुछ अपनी ज्वाला भर दी। वे वास्तव में एक अग्नि-स्तम्भ थीं। साथ ही वे उस ठंडी प्रवाहिनी जलधारा की भांति भी थीं, जो शान्ति देती है। वे अपनी राजनीति के आवेश को मनुष्यों के अपेक्षाकृत ठंडे स्तरों पर ले आती थीं। इसलिए उनके विषय में किसी के लिए कुछ कहना कठिन है, सिवाय इसके कि आदमी इस बात का अनुभव करता था कि वह एक ज्वलन्त आत्मा थी, जो अब नहीं रही।

हम निस्सन्देह उन्हें आने वाली अनेक पीढ़ियों तक स्मरण रखेंगे। लेकिन जो लोग हमारे बाद आयेंगे और जिनका उनसे इतना घनिष्ट संपर्क नहीं रहा है, वे उस व्यक्तित्व की संपदा का, जिसे कि लिखे या कहे गए शब्दों में सहज में नहीं उतारा जा सकता, ठीक-ठीक अनुमान न कर सकेंगे। उन्होंने भारत के लिए काम किया। वे काम करना भी जानती थीं और विनोद करना भी। यह एक अद्भुत संयोग था। वे जानती थीं

कि बड़े ध्येयों के लिए किस तरह से त्याग किया जाता है। वे इसे इतने सुन्दर और इतने अच्छे ढंग से करना जानती थीं कि ऐसा करना एक सहज-सी बात जान पड़ती थी, और ऐसी नहीं जिसमें आत्मा को वेदना होती हो। यदि उनका जैसा संवेदनशील व्यक्ति आत्मा की भीषण वेदना से पीड़ित हो सकता है तो निश्चय ही वे पीड़ित हुई थीं—लेकिन उन्होंने उसे ऐसी प्रसन्नता से ग्रहण किया कि ऐसा जान पड़ा कि यह उनके लिए बहुत सहज बात थी। इस तरह उन्होंने हमारे युद्ध को एक ऊँचे स्तर पर उठाया, और उसे ऐसा संस्पर्श दिया, जैसा कि मैं समझता हूँ कोई दूसरा नहीं दे सकता था, न भविष्य में दे सकेगा। महोदय, मैंने कहा है कि वे कितनी ही बातों का एक विचित्र सम्मिश्रण थीं। अपने में वे एक समृद्ध संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती थीं, जिसमें कि विविध धाराएँ, जिन्होंने कि भारतीय संस्कृति को इतना महान बनाया है, आकर मिलती थीं। उनमें भारतीय संस्कृति की विविध धाराओं का और साथ ही पूर्व और पश्चिम की संस्कृति की विविध धाराओं का सम्मिश्रण हुआ था। इस तरह उनका एक महान राष्ट्रीय व्यक्तित्व तो था ही, वे वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व से भी सम्पन्न थीं, और इस विस्तृत संसार में जहां कहीं भी वे चली जातीं, उन्हें इस रूप में स्वीकार किया जाता था, और संसार के बड़े लोगों में उनकी गिनती थी। यह स्मरण रखना अच्छा होगा, विशेषकर आज, जबकि परिस्थितियों से विवश होकर हम कभी कभी एक संकीर्ण राष्ट्रीयता के मार्ग में भटक कर जा सकते हैं और उन वृहत्तर ध्येयों को भूल सकते हैं, जिन्होंने कि हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की नींव रखनेवाली महान आत्माओं को प्रेरित किया था।

हमारे महान राष्ट्रपिता ने और इस महान महिला ने हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को बहुत जोरदार ढंग से स्वरूप दिया है—सीधे राजनीतिक क्षेत्र में उतना नहीं, यद्यपि वे इस क्षेत्र में भी सक्रिय रूप से काम करती थीं, बल्कि उन अदृश्य स्तरों पर, जो कि बड़े महत्व के होते हैं, क्योंकि वे राष्ट्र के चरित्र का निर्माण करते हैं, क्योंकि अन्त में वे ही उसके मानसिक और कलात्मक और सौन्दर्यग्राही दृष्टिकोण का निर्माण करते हैं, और बिना उस मानसिक, नैतिक, सौंदर्यग्राही और कलात्मक दृष्टिकोण के जो भी सफलता हमें प्राप्त हो वह सारहीन सफलता होगी, क्योंकि आखिरकार, हम ऐसी स्वतंत्रता की आकांक्षा करते हैं जो कि स्वतः अच्छी हो, न कि ऐसी की जिससे किसी दूसरी वस्तु की प्राप्ति हो। हम स्वतंत्रता इसलिए चाहते हैं कि हमारी जनता का जीवन अच्छा हो सके। अच्छा जीवन क्या है? क्या आप किसी ऐसे जीवन को भी अच्छा कह सकते हैं जिसमें कि कलात्मक और सौंदर्यग्राही तत्त्व न हों, या कि जिसमें नैतिक तत्त्व न हों? यह अच्छा जीवन न होगा। यह अस्तित्व की कोई अस्थायी अवस्था होगी, जो कि शुष्क और कठोर होगी। दुर्भाग्य से संसार शुष्कतर, कठोरतर और अधिक निर्दय होता जा रहा है। पिछले दो वर्षों के हमारे ही अनुभव में राजनीतिक जीवन कुछ अधिक कठोर, निर्मम, असहिष्णु

और संदेहपूर्ण हो गया है, और संसार में हम आज सर्वत्र संदेह और भय का वातावरण पाते हैं। हम इस भावना पर कैसे विजय पावें ? नैतिक ऊँचाइयों के कुछ अनुभव द्वारा ही हम इस पर विजय पा सकते हैं, और यही मार्ग हमें राष्ट्रपिता ने दिखाया था। या फिर सफलता का दूसरा रास्ता मानवतापूर्ण दृष्टिकोण का है, कलात्मक और सौंदर्यग्राही दृष्टिकोण का, और मानवतापूर्ण दृष्टिकोण में क्षमा है, दया और मनुष्यता की सूझबूझ है, उसके गुणों की भी और उसके दोषों की भी सूझबूझ है। और इस प्रकार सरोजिनी देवी मानवता का दृष्टिकोण लेकर आईं, जो सूझबूझ से पूर्ण था, और सभी के प्रति, चाहे वे भारत के हों चाहेबाहर के, दया से पूर्ण था।

इस भवन को विदित है कि भारत के और किसी भी व्यक्ति से अधिक वे भारत की सर्वांगीण एकता, उसकी सांस्कृतिक एकता,और उसकी भौगोलिक एकता के पक्ष में दृढ़ थीं। इसके लिए उन्हें उत्कट अनुराग था। यह उनके जीवन का ताना-बाना था। जब कभी हम संकीर्णतर लीकों में पड़ें तो हमारे लिए यह स्मरण रखना उचित होगा कि बड़प्पन मानसिक संकीर्णता के आधार पर कभी नहीं प्राप्त हो सकता। राष्ट्र और व्यक्ति की महानता एक विस्तृत कल्पना, विस्तृत दृष्टि-परम्परा, सर्वग्राही दृष्टिकोण और जीवन के प्रति मानवतापूर्ण पहुँच द्वारा ही प्राप्त होती है। इस तरह वे भारत में सर्वत्र हमारी समृद्धिपूर्ण सांस्कृतिक विरासत की व्याख्या करने वाली बन गईं। वे भारत में उन बहुत सी चीजों की व्याख्या करने वाली बन गईं जो कि पश्चिम ने उत्पन्न की हैं और संसार के और भागों में उन्होंने भारत की समृद्धिपूर्ण संस्कृति की व्याख्या की। वे पूर्व और पश्चिम के बीच और भारत के विविध वर्गों के बीच एक आदर्श राजदूत और कड़ी थीं। मैं नहीं देख पाता कि हम उनके जैसा व्यक्ति भविष्य में फिर कैसे पायेंगे। निस्संदेह हमारे यहां भविष्य में महान पुरुष और महान नारियां होंगी, क्योंकि अतीत में जब भारत का राजनीतिक दृष्टि से नीचा स्थान था, तब भी उसके पुत्रों में बड़प्पन की कमी नहीं रही और अब जबकि भारत स्वतंत्र है, मुझे कोई संदेह नहीं कि अतीत और वर्तमान की ही भांति वह भविष्य में भी महान नर-नारियों को जन्म देगा। अपनी आंखों के सामने हमने इन महान व्यक्तियों को देखा है। फिर भी मुझे संदेह है कि जहां भारत महान पुरुषों और महान नारियों को जन्म देगा, वहाँ वह सरोजिनी जैसा एक दूसरा व्यक्तित्व उत्पन्न कर सकता है या करेगा। इसलिए हम उनका ध्यान करते हैं एक ज्योति और एक विशेष सजीवता और उज्ज्वलता के रूप में; कवित्व के रूप में, जिससे कि जीवन और क्रियाकलाप अनुप्राणित होते हैं, एक बहुत ही महत्वपूर्ण और समृद्ध वस्तु के रूप में, जो कि भौतिक मापदंड से किंचित् काल्पनिक, अग्राह्य और अवर्णनीय हो; कुछ ऐसी वस्तु के रूप में जो कि केवल अनुभव की जा सकती है, जैसे कि आप सौंदर्य का अनुभव करते हैं, जैसे कि आप जीवन की अन्य उच्चतर चीजों का अनुभव करते हैं। हो सकता है कि

इसकी कुछ स्मृति और पीढ़ियों तक पहुँचेगी, जिन्होंने कि उन्हें नहीं देखा है, और उन्हें प्रेरणा प्रदान करेगी। मैं समझता हूँ यह पहुँचेगी, लेकिन मैं नहीं समझता कि इसका वे उस प्रकार अनुभव करेंगी, जैसा कि हम देहधारी करते हैं जिनको कि उनके सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त रहा है।

इसलिए इस भवन में यह चर्चा करते हुए मैं केवल उन विविध विचारों को दुहरा सकता हूँ जो कि मेरे मन में उठते हैं, और कदाचित् मैं उन्हें एक उलझे ढंग से दुहरा रहा हूँ, क्योंकि मेरा मन दुखी और अव्यवस्थित है, मानो उसका एक घनिष्ठ अंश कट कर अलग हो गया हो, और इसलिए भी कि जिन लोगों के प्रति आदमी का बहुत स्नेह हो उनके विषय में बोलना या निर्णय करना कठिन हो जाता है। यह एकात्मीयता का स्नेह था। यह एक ऐसे आदमी का स्नेह था जिसने कि अपनी युवावस्था में भी उनके भाषण और कार्य से महान प्रेरणा प्राप्त की थी और जो बाद की दशाब्दियों में उनसे अधिकाधिक स्नेह करने लगा था, और उनकी प्रशंसा करने लगा था और उन्हें एक अत्यन्त समृद्ध और दुर्लभ व्यक्तित्व समझने लगा था। वह समृद्ध और दुर्लभ व्यक्तित्व अब नहीं रहा, और यह हमारे लिए अनिवार्यतः एक दुख की बात है, बल्कि यह दुख से भी कुछ अधिक है। अगर हम दूसरे ही प्रकाश में इसे देखें तो यह हमारे लिये एक आनन्द और उत्कर्ष की बात है कि हमारी पीढ़ी के भारत ने ऐसी दुर्लभ आत्माओं को जन्म दिया, जिन्होंने हमें प्रेरणा दी और जो भविष्य में भी हमें प्रेरणा देतीं रहेंगी।

महोदय, इस तरह की चर्चा करते हुए यह प्रथा है कि यह कहा जाय कि इस भवन की सहानुभूति और संवेदना दिवंगत व्यक्ति के संबंधियों के पास पहुँचा दी जाय। मैं भी यह कहता हूँ, लेकिन वास्तव में वह बंधन जो कि सरोजिनी देवी को यहां हम सभी लोगों से बांधता था, और इस देश के हजारों-लाखों लोगों से बांधता था, इतना घनिष्ठ था, और बंधन के रूप में इतना महान था, जितना कि वह बंधन जो उन्हें अपने तन के बच्चों से और दूसरे संबंधियों से बांधता था। इसलिए संवेदना का यह संदेश हम इस भवन की ओर से भेज रहे हैं। अपने हृदयों को शान्त करने के लिए इस संदेश की हम सभी को आवश्यकता है।

Central Archaeological Library,

NEW DELHI. 1676

Call No. 954.04/204/Neh

Author— जवाहरलाल नेहरू

Title— स्वाधीनता और उसके बाद

"A book that is shut is but a block"

ARCHAEOLOGICAL

GOVT. OF INDIA

Department of Archaeology

NEW DELHI

Please help us to keep the book clean and moving.